# ब्रह्मपुराण

## (प्रथम खण्ड)

(मूल व सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)

—※—

सम्पादक:
वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
चार वेद, १०८ उपनिषद, षट्दर्शन, २० स्मृतियाँ,
१८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार और लगभग
१५० हिन्दी ग्रन्थो के रचियता

—※—

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब ( वेद नगर ) बरेली (उ०प्र०)

प्रकाशक :

डा० चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब ( वेद नगर )

बरेली ( उ० प्र० )

*

सम्पादक :

श्रीराम शर्मा आचार्य

*



*

मुद्रक :

दाऊदयाल गुप्त

सस्ता साहित्य प्रेस

मथुरा

*

प्रथम संस्करण :

सात रुपये पचास पैसे

१९७१

# भूमिका

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चेत्पुराणं सम् विद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥

"ब्रह्म पुराण" का यह कथन पुराणों के प्रति प्राचीन काल के विद्वानों की भावना का दिग्दर्शन कराता है। इस लेखक के मतानुसार यद्यपि 'वेद' भारतीय धर्म के मूलाधार हैं, पर केवल उन्हीं के पठन-पाठन से मनुष्य धर्म के सम्पूर्ण स्वरूप को जानकारी प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिये वह कहता है कि "मनुष्य चाहे चारों वेदों का उपनिषदों सहित अध्ययन कर ले, पर यदि पुराणों की जानकारी नहीं है, तो उसे "विद्वान्" नहीं कहा जायगा।"हम जानते हैं कि हिन्दू-समाज के ही अनेक व्यक्ति और एकाध नवीन सम्प्रदाय वाले इस कथन से असन्तुष्ट होंगे कि पुराणों की तुलना वेदों से की जा रही है, पर हमारी सम्मति में जो कुछ ब्रह्माण्ड पुराणकार" ने कहा है वह ठीक ही है। यह सत्य है कि वेदों का महत्त्व बहुत अधिक है और अध्यात्म-विद्या की दृष्टि से उपनिषद् उनसे भी आगे बढ़े हुये हैं, पर यह समस्त एकांगी है। भारतीय मनीषियों ने धार्मिक ज्ञान के तीन विभाग किये हैं, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। वेद और उपनिषदों को आध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत माना गया है, पर शेष दो विभागों का वर्णन विस्तार के साथ पुराणों में ही पाया जाता है।

जो व्यक्ति भारतवर्ष के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का व्यापक परिचय और व्यावहारिक स्वरूप जानना चाहता है उसको पुराणों का अध्ययन करना अनिवार्य है। यद्यपि पुराणों में प्राचीन काल के महापुरुषों, राजवंशों और प्रसिद्ध शासकों का वर्णन कथा के रूप में ही किया गया है तो भी उनसे विभिन्न कालों की राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति का कुछ आभास तो प्राप्त होता ही है। इस प्रकार के वर्णनों का आधार

पर ही हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि तत्कालीन व्यक्ति उन आध्यात्मिक तथा धार्मिक आदर्शों का वास्तव मे कितनी हद तक पालन कर पाते थे। इस समस्या पर विचार विमर्श करते हुये एक विद्वान् ने कहा है—

भारतीय गवेषणा के स्रोत पुराण ग्रन्थ हैं। वेदो मे सब प्रकार की गवेषणाओ का सूक्ष्म रूप है। "ब्राह्मण" और आरण्यक ग्रन्थो मे आधिदैविक और अधियज्ञ गवेषणा प्रधानतया दिखाई देती है।। पुराणों मे सब प्रकार की बौद्धिक, व्यावहारिक, नैतिक एव सांस्कृतिक गवेषणाओ को इतिहास और कथानको के माध्यम से आकर्षक तथा बुद्धि गम्य साहित्य के रूप मे श्री व्यास जी ने विस्तृत किया है। इसमे न केवल शास्त्राभिप्रेत आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्तादि दैनिक क्रियाओं की गवेषणा मात्र है, अपितु मनुष्य जीवनोपयोगी महती भावनाओ का विस्तृत विधान है। भारतीय ज्ञान-गाथा मे वेदार्थ को प्राप्त करने मे मनुष्यता रूपी निधि की प्राप्ति बताई गई है। "इतिहास पुराणाभ्यां वेद समुपबृंहयेत" के अनुसार महाभारतादि इतिहास तथा अष्टादश पुराणो को समझने से वेदार्थ की निधि प्राप्त हो सकती है।

"बिना पुराण ग्रन्थो के अध्ययन के तथा निरुक्तादि शास्त्रों के जानने के वेदार्थ का यथार्थ ज्ञान असम्भव है। तपस्वी कृष्णद्वैपायन वेदव्यास जी ने "उत्तरमीमासा ब्रह्मसूत्र" मे वेद प्रतिपाद्य अध्यात्म-निष्ठा द्वारा त्रिविध सन्ताप से मुक्त होने का सरल उपाय ज्ञान-निष्ठा की प्राप्ति बतलाया है, और इस ज्ञान-निष्ठा का परिपाक पुराण पाठ द्वारा कहा है। इतिहास, पुराणो के कथानक ही प्रत्येक साधन को बुद्धि मे सरलता पूर्वक ग्रहण करा सकते हैं। "यजुर्वेद" मे कहा गया है—"ईशावास्यमिदमर्ं यत्किञ्चजगत्यां जगत। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।" मनुष्यता के विकास का पूरा पूरा साधन इस मन्त्र मे आ गया है, पर केवल मन्त्र पाठ और उनके अर्थ को जान लेने से ही जीवन मे उस भावना का अनुरूप, सधार होना कठिन है। अतः पुराणो मे

वर्णित सत्यनिष्ठा, त्यागनिष्ठा, अद्रोह-निष्ठा के "प्रतिपादक हरिश्चन्द्र" "शङ्ख" "च्यवन" आदि के कथानको का मनन करते हुये जीवन में सत्य एवं करुणा का संचार तत्काल होने लगता है। अतः "सत्यंवद धर्मंचर" जैसे सूत्र रूप वेद वाक्यों का भावार्थ समझाने का प्रयास वेदव्यास जी ने पुराण ग्रन्थो में किया है।"

इसमे सन्देह नही कि सामान्य जनसमुदाय में धार्मिक तत्वो की जानकारी तथा उनका प्रसार होने के लिये कथा-ग्रन्थों का पठन-पाठन आवश्यक और उपयोगी है। मध्यकाल में एक प्रकार से वेदो का लोप ही हो गया था और उनके जानने वाले उँगलियो पर गिनने लायक रह गये थे, फिर भी महाभारत, रामायण और विविध पुराणो की कथाओ और उनके आधार पर लिखे गये धार्मिक आख्यानो की पुस्तको ने जनता की धर्मनिष्ठा को स्थिर रखा। यद्यपि उस समय वेदो का दर्शन होना भी कठिन हो गया था, तथापि पुराणो मे उनकी चर्चा सुनकर ही लोग उनके प्रति श्रद्धा बनाये रहे। पुराणो मे सत्यनिष्ठा के सम्बन्ध मे महाराज हरिश्चन्द्र का उपाख्यान, पतिव्रत की निष्ठा के लिये सुकन्या और सावित्री का उपाख्यान, पितृभक्ति के लिये भीष्म पितामह का उपाख्यान पढ़-सुन कर लोग धर्म-मार्ग की भावना को ग्रहण करते रहते थे। रामायण की कथा सुनकर लोग अनुभव करते थे कि किस प्रकार राम ने पिता के वचनो की रक्षा के लिये राज्य-त्याग कर दिया, अन्याय और दुराचार का अन्त करने के लिये रावण जैसे महाबली सम्राट् से संघर्ष किया, जनमत का आदर करने के लिये अपनी परम प्रिय पत्नी का त्याग कर दिया। इन कथाओं का प्रभाव जन-जीवन पर बहुत अधिक पड़ता था और बहुसंख्यक लोग ऐसे महामानवो के चरित्र को आदर्श मानकर उनसे शिक्षा ग्रहण करते थे।

हम इससे भी इन्कार नहीं करते कि वर्तमान समय में पुराणों का जो स्वरूप दिखाई पड़ता है वह "मूल रूप" से बहुत बढ़ा हुआ और भिन्न भी है। पुराणो मे ही जगह-जगह यह कथन आता है कि आरम्भ

में 'वेद' एक था और "पुराण" भी एक ही था। साथ ही यह भी कहा गया है—

> पुराण सर्व शास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
> अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥
>
> (मत्स्यपुराण ५३-१)

"अर्थात्" सर्व प्रथम ब्रह्माजी ने पुराण कथन किया और तदनन्तर उनके मुखों से वेद बहिर्गत हुये।"

इस तथ्य को सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं कि पौराणिक कथानकों में उपमा, अलङ्कार और दृष्टान्त आदि का बहुत अधिक प्रयोग किया गया है, जिससे सामान्य बुद्धि के श्रोता उन्हें रुचि पूर्वक सुन सकें और धर्म के सूक्ष्म तत्वों का सार उन कथाओं में से ग्रहण कर सकें। इसलिये उपर्युक्त श्लोक में वर्णित "पुराण" और 'वेद" कौन से थे जो "चतुर्मुख ब्रह्मा" द्वारा प्रकट किये गये इस वाद विवाद को उठाना हम तनिक भी आवश्यक नहीं समझते। इस तरह के पचड़े में पड़ना तो हम उन्हीं "खण्डन-मण्डन प्रिय" सज्जनों के लिये छोड़ देते हैं जिन्हें "आम खाने से नहीं वरन् पेड़ गिनने" से ही प्रयोजन होता है। हम तो इसका आशय इतना ही मानते हैं कि वेद और पुराणों का आदिस्रोत एक ही है। वहीं से प्रकट एक धारा ने "सिद्धान्त" का रूप ग्रहण किया और दूसरी ने "कथा" का। ये दोनों ही आवश्यक हैं। बिना सिद्धान्त के "कथा" का कोई महत्व नहीं और बिना कथा के "सिद्धान्त" का हृदयगम होना सम्भव नहीं। वर्तमान समय में भी विद्यालयों में पढ़ने वाले प्रत्येक विद्यार्थी को प्रत्येक सिद्धान्त अनेक "उदाहरण"(एक्जाम्पिल) देकर ही बताया और समझाया जाता है।

हम 'पुराणों' को ऐसे ही ग्रन्थों के रूप में ग्रहण करते हैं जिनमें भारतीय धर्म के सभी सिद्धान्त अनेक प्रकार के "उदाहरण" देकर समझाये गये हैं। इनमें "सत्य" "अर्द्ध सत्य" और "काल्पनिक" सभी तरह के उदाहरण हो सकते हैं। पर जिस प्रकार "बीज गणित" में

एक संख्या की कल्पना के द्वारा ही बड़े से बड़े जटिल प्रश्नों का सही उत्तर जान लिया जाता है, यही बात अधिकांश में "पुराणों" की है। यद्यपि उनमें मनोरंजक कथाएँ भरी पड़ी है, पर उनका उद्देश्य श्रोताओं को धार्मिक नियमों पर सुदृढ़ रखना ही है। हम यह भी समझते हैं कि मूल लेखकों ने "पुराणो" को जिस रूप में रखा था उसमें आगे उत्पन्न होने वाले "कथा-व्यास" नये-नये उदाहरण और भी जोड़ते चले गये। इतना ही नही नवीन लेखकों ने अठारह पुराणों के छत्तीस, फिर चौअन और अन्त में बहत्तर तक बना दिये ! और तो क्या गुजरात मे निवास करने वाले एक "पहलवान-वंश" का वर्णन करने के लिये "मल्ल-पुराण" भी तैयार कर दिया गया।

पर इसका आशय इतना ही है कि उनके लेखकों ने "पुराण" शब्द को "कथा वाचक" मान कर अपनी रचनाओं का वैसा नाम करण कर दिया है। फिर उन्होंने बड़े पुराणों की यह 'शैली' भी ग्रहण कर ली कि प्रत्येक रचना पर अलग-अलग लेखकों का नाम न देकर सबको "मूल लेखक" व्यासजी के ही नाम से प्रचलित कर दिया। अब छापेखानों की वृद्धि होकर पुस्तकों की बाढ़ आ जाने से हमको सबसे पहले प्रत्येक पुस्तक के लेखक और प्रकाशक की खोज करने की आवश्यक्ता पड़ती है, पर पहले जमाने मे जब छापेखानों की "ऑटोमेटिक मशीनें तो दूर रही, लिखने का कागज भी एक दुर्लभ वस्तु माना जाता था, पुस्तकें लिख कर नाम और धन कमाने का विचार किसी के ध्यान में नही आता था। विशेषतः धार्मिक लेखक तो अपनी रचनायें परोपकार और पुण्य की भावना से ही प्रस्तुत करते थे। इस प्रकार की प्रथा आरम्भ हो जाने से कुछ दोष और भ्रम भी उत्पन्न हो गये पर तत्कालीन परिस्थितियो को देखते हुए उनको क्षम्य माना जा सकता है। जब पचास वर्ष पहले हमारे सामने अंगरेज शासकों के पर्याप्त प्रयत्न करने और लाखों सार्वजनिक स्कूल खोल दिये जाने पर भी "साक्षर" व्यक्तियो की संख्या सौ मे से सात ही थी तो पुराने समय में जब कि कागज का

उपयोग अधिकांश में राजा और अमीर लोग ही करते थे, पढ़ने-लिखने वाले व्यक्तियों की संख्या दो-चार सौ में केवल एक हो तो भी कुछ आश्चर्य नहीं, ऐसे समय में जिन सज्जनों ने धार्मिक विचारों को लिखने और फैलाने में जो परिश्रम किया उसे गनीमत ही समझना चाहिये।

इतने विवेचन से पाठक यह अनुमान करने में समर्थ हो सकते हैं कि भारतीय धार्मिक-साहित्य में पुराणों का क्या स्थान है? उन्हें न तो धर्म का "मूलाधार" अथवा "अन्तिम निर्णायक" माना जा सकता है और न सर्वथा "अनुपयोगी" या "त्याज्य" कहना उचित है। यह दोनों ही प्रकार की सम्मतियाँ "अतिवादी" अथवा "कट्टर" श्रेणी के सज्जनों की ही हो सकती हैं। हम पुराणों की त्रुटियों को जानते हुये भी उनके महत्व से इनकार नहीं करते। गुण-दोष किसमें नहीं होते। केवल "गुणों" का दावा करने वाले "कल्पना राज्य" में भले ही विचरण करते हों, प्रत्यक्ष संसार में तो उनका अस्तित्व ढूँढने पर भी नहीं मिलता। इसी दृष्टि से समन्वय वादी प्रवृत्ति के सत्पुरुष पुराणों को भी उपयोगी मान लेते हैं।

हमने इसी दृष्टिकोण से अपनी यह "पुराण-सीरीज" तैयार की है। कितनी ही बातें ऐसी हैं जो "पुराणों के पंच लक्षणों" की पूर्ति के लिये सब पुराणों में एक प्रकार से ही वर्णन कर दी गई हैं। कुछ बातें साम्प्रदायिक महत्ता सिद्ध करने के लिये किसी विशेष पुराण में बहुत अधिक मात्रा में वर्णन की गई हैं। कुछ बातें लेखक की रुचि या जानकारी का परिचय देने के ध्यान से विस्तारपूर्वक शामिल की गई हैं। कुछ उपाख्यान विशेष प्रभावशाली और लोकप्रिय समझ कर एक दूसरे से उद्धृत कर लिये गये हैं। इन कारणों से अधिकांश पुराणों का कलेवर बहुत बढ़ गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि औसत दर्जे के पाठकों द्वारा पुराणों का पठन-पाठन प्रायः समाप्त ही हो गया। यदि किसी ने साहस करके पुराणों को प्रकाशित भी किया तो वे बीसियों वर्ष तक ज्यों के त्यों धरे रह गये और धीरे-धीरे साहित्य-क्षेत्र से लोप होने लग गये। आज

स्थिति ऐसी आ गई है कि कितने ही मूल पुराणों का प्राप्त कर सकना भी बड़ा कठिन हो गया है। उदाहरण के लिये अठारह पुराणो की 'नामावली' मे इस "ब्रह्म पुराण" का नम्बर सबसे पहला है, पर कही भी प्राप्त न हो सकने के कारण इसका प्रकाशन सम्भव न हो सका। अब सब पुराणों के छप चुकने पर अन्त मे यह प्राप्त हो सका है।

इस स्थिति को देखकर ही हमने पुराणो के "जनोपयोगी" (पोपुलर) संस्करण निकालने का निश्चय किया। इनमे से सब पुराणो में बार-बार आने वाले वर्णनों, साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से बहुत बढ़ा-चढ़ाकर किये गये वर्णनों, एक दूसरे से उद्धृत किये हुये उपाख्यानो, लेखकों की विशेष रुचि के आधार बहुत विस्तार से वर्णन की गई कला, विद्या सम्बन्धी बातों और किसी विशेष स्वार्थपूर्ति या अभिसन्धि की दृष्टि से शामिल किये गये अनुचित और हानिकारक वर्णनो को पृथक् करके हमने प्रत्येक पुराण के उपयोगी अंशो को सङ्कलित किया है। इनमें पाठको को प्रामाणिक मूल पाठ के सहित उसका निष्पक्ष भाव से किया गया भावार्थ मिल जाता है। इससे उनकी ज्ञान वृद्धि होकर पुराणो की समस्त उपयोगी सामग्री की जानकारी हो जाती है। इससे सामान्य जनता मे पुराणों के प्रति आकर्षण पर्याप्त मात्रा मे बढा है और वे उनको रुचि-पूर्वक पढने लगे हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य के प्रेमियो की दृष्टि मे हमारी यह सेवा महत्वपूर्ण प्रतीत हुई जिसका अनुमान हमारे पास ऐसे प्रेमियो के आये हुये पत्रो से किया जा सकता है।

### "ब्रह्मपुराण" की महत्ता—

विभिन्न पुराणो के अन्तर्गत और अन्य प्राचीन ग्रन्थो मे भी पुराणो की जो सूचियाँ दी गई हैं, उनमे थोड़ा बहुत भेद देखने में आता है, किन्तु सभी लेखको ने प्रथम स्थान "ब्रह्मपुराण" को ही दिया है। इसका कारण यह हो सकता है कि यह समस्त विश्व 'ब्रह्म' से ही उद्भूत है, इसलिये सर्व प्रथम उसी का कीर्तन किया जाना उचित है। पर इसमें निराकार ब्रह्म चर्चा कहीं नही पाई जाती, आरम्भ से अन्त तक "ब्रह्म" के साकार

रूपो की ही चर्चा है। सबसे पहले सूर्योपासना का विषय आया है और वास्तव मे इस जगत् के प्रत्यक्ष कर्त्ता-धर्त्ता "सूर्य नारायण" ही है। पुरुषोत्तम क्षेत्र ( जगन्नाथ पुरी ) की चर्चा बडे विस्तार से की गई है, और इसे पुराण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय कहा जा सकता है। अन्य भी बहुत से तीर्थों का वर्णन है, पर वह प्रायः पाँच सात पृष्ठो मे ही पूरा होता चला गया है। शिव-पार्वती का विवाह और कृष्ण-चरित्र पर्याप्त विस्तार से वर्णित हैं। कंस के अत्याचारो से लेकर द्वारिका गमन तथा बाणासुर वध तक की समस्त कथायें जो भागवत आदि मे वर्णित हैं "ब्रह्मपुराण" मे भी पूर्ण रीति से दी गई हैं। वाराह, नृसिंह, वामन आदि अन्य अवतारो के चरित्र भी उसमे स्थान-स्थान पर अच्छे रूप मे दिये गये हैं। इन समस्त कथाओं के सुपरिचित होने तथा अन्य पुराणो मे अधिक विस्तार से वर्णित होने के कारण हमने उनको संक्षिप्त रूप मे ही दिया है।

## सूर्य माहात्म्य और सूर्यपूजा—

'ब्रह्म-पुराण" की विषय सूची पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि सूर्य भगवान् का माहात्म्य, उनकी पूजा-उपासना की विधि, और उनके द्वारा महान् पुण्य-फल की प्राप्ति का वर्णन इसकी एक उल्लेखनीय विशेषता है। "सूर्यदेव" का प्रमुख मदिर उडीसा प्रान्त के "कोणादित्य" ( अथवा "कोणार्क" ) नामक स्थान मे अवस्थित है, उसका परिचय भी इस पुराण मे बडी भक्ति प्रवणता से दिया गया है। अन्य पुराणो मे जैसी विस्तृत और सांगोपाग उपासना-विधि विष्णु और शिव की दी गई है वैसी ही इस पुराण के आरम्भ मे "सूर्य भगवान्" की सन्निवेशित है। "कोणार्क' के प्रसिद्ध मन्दिर का परिचय देते हुये पुराणकार ने लिखा है।

"भारतवर्ष मे दक्षिण सागर में संस्थित "ओड्र देश" (उड़ीसा) है जो स्वर्ग और मोक्ष दोनो के प्रदान करने वाला है। वह सब गुणो से अलंकृत और पुण्य शीलो का देश है। उस देश मे उत्पन्न ब्राह्मण तपस्या

और स्वाध्याय में निरत रहने वाले हैं और सदा ही वन्दना करने योग्य तथा पूज्य हैं । उसी प्रदेश में "कोणादित्य" नाम से प्रसिद्ध भगवान सूर्य देव का मन्दिर अवस्थित है जिसमे भुवन-भास्कर का दर्शन करके मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है । भगवान रविदेव का यह पुण्य-क्षेत्र डेढ़ योजन विस्तार वाला है जो भोग और मोक्ष दोनो का प्रदानकर्त्ता है । वहां पर सहस्रांशु-देव स्वयं विराजमान रहते हैं, जिनका शुभ नाम "कोणादित्य" प्रसिद्ध है । माघ शुक्ल सप्तमी के दिन सूर्य-भगवान की उपासना का विशेष पर्व होता है । उस दिन "कोणादित्य" की यात्रा करके मकरालय में स्नान करे और विशुद्ध आत्मा वाला होकर दिवाकर देव का स्मरण करे । रात्रि के अन्त मे समाहित होकर सागर मे विधिपूर्वक स्नान करके देव, ऋषि तथा मनुष्यों का भली भांति तर्पण करना चाहिये ।

"इसके पश्चात् नवीन धुले हुये वस्त्र धारण करके आचमन करे और भक्ति पूर्वक समुद्र तट पर उपविष्ट हो जाय । उस सूर्योदय काल में पूर्व दिशा की ओर मुख करके स्थित होना चाहिये और रक्त-चन्दन को घिस कर उससे एक अष्ट-दल पद्म चित्रित करना चाहिये । तत्पश्चात् एक ताम्र पात्र अथवा अर्क-पत्रो से बने दोने मे तिल, अक्षत रक्त चन्दन से युक्त जल, रक्त पुष्प और दर्भ रख कर सूर्य भगवान की पूजा करे । उदय आदि अंगो से करन्यास तथा अंग न्यास करके परम श्रद्धा के साथ भगवान भास्कर का ध्यान करे फिर उस रक्त चन्दन से निर्मित अष्टदल पद्म मे अन्तरिक्ष मे स्थित सूर्यदेव का आवाहन करके विधि पूर्वक पूजा करे । पूजा समाप्त हो जाने पर फिर ध्यान मग्न होकर भास्कर देव का ध्यान करे कि पिंगल वर्ण के नेत्र वाले, दो भुजाओ से युक्त रक्त वर्ण वाले, पद्म दल के समान अरुण अम्बर से युक्त रवि देव सब सुलक्षणो से समन्वित हैं और समस्त आभरणो से सुशोभित हैं । वे सुन्दर रूप वाले, वरदान प्रदान करने वाले, परम शान्त रूप से स्थित और प्रभा-मण्डल से मण्डित हैं । सिन्दूर के समान सघन वर्ण के

उदय कालीन सूर्य-देव का दर्शन करे। फिर उस पूजा पात्र को मस्तक पर रख कर, जानुओ से पृथ्वी पर स्थित होकर चित्त को एकाग्र करे और मौन रह कर भगवान सूर्यदेव को अर्घ्य दे। भगवान सूर्य भक्ति-भाव से युक्त मनुष्य का ही अर्घ्य ग्रहण करते है, वह दीक्षित है या अदीक्षित इसका ध्यान नही रखते।"

लेखक ने उपरोक्त वर्णन मे कोई नई बात नही कही है। जो पूजा-विधान अन्य प्रमुख देवताओ का है वही सूर्य का भी बतला दिया है। केवल ध्यान करने मे सूर्य की विशेषताओ के अनुसार उनके स्वरूप और वर्ण का वर्णन थोड़ा पृथक है। इस पूजा और उपासना का फल भी ज्यो का त्यो कहा गया है। यथा—

"भगवान आदित्य देव को अर्घ्य देने से रोग युक्त मनुष्य रोग से विमुक्त हो जाता है, धन के अभिलाषी को धन की प्राप्ति होती है, विद्यार्थी विद्या के प्राप्त करने मे सफल होता है और पुत्र की अभिलाषा रखने वाला पुत्रवान बन जाता है। जिस-जिस कामना को रख कर सूर्य भगवान को अर्घ्य दिया जाता है सुधी पुरुष उसी-उसी कामना के अनुसार फल प्राप्त करते हैं। इसके पश्चात् सूर्यदेव के मन्दिर मे जाकर पुष्प द्वारा देवार्चन करके मौन रहते हुये तीन बार प्रदक्षिणा करना चाहिये। फिर दण्डवत प्रणाम करके "जय" शब्दो की ध्वनि के साथ स्तवन करे। इस प्रकार सहस्रांशु देव का, जो इस जगत के पति हैं, पूजन करने से मनुष्य को दश अश्वमेधो का फल प्राप्त होता है।"

## सूर्य की सर्वोपरि महिमा—

"आदित्य-माहात्म्य" की इति श्री यही नही हो गई है। जिज्ञासुओ ने फिर प्रश्न किया कि "गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी-इनमे से जो मोक्ष चाहता है, वह किस देव की उपासना करे, इस विश्व-ब्रह्माण्ड मे देवो का भी देव कौन है ? और पितृगणो का भी पिता कौन होता है ? हम सब से बड़े देव को जानने के अभिलाषी है।"

इस प्रश्न का समाधान करते हुये ब्रह्मा बाबा ने कहा—"हे द्विजोत्तमो ! ये भगवान् भास्कर ही समस्त जगत को अन्धकार से रहित कर दिया करते हैं। इनसे बड़ा कोई भी देव नही है। अर्थात् यह सूर्य ही परात्पर देव हैं। यह देव आदि और अन्त से रहित हैं और यह शाश्वत और अव्यय पुरुष हैं। अपनी किरणो से अत्यन्त तेजोमय रूप धारण करके यह तीनो लोकों को तपाया करते हैं। ये सर्व देवमय और तपन करने वालों में सर्व श्रेष्ठ हैं। ये ही इस सम्पूर्ण जगत् के नाथ और सर्व साक्षी हैं। ये सब भूतों को लय और पुनः सृजन करते रहते हैं। ये ही प्रकाश देते हैं, अपनी उष्णता द्वारा शीत से रक्षा करते हैं और अपनी किरणों द्वारा वर्षा किया करते हैं। यही धाता है, यही विधाता हैं, यही समस्त भूतो के आदि हैं और समस्त भूतो पर कृपा करके उनका पालन करने वाले हैं, इनका कभी क्षय नही होता, इनका मण्डल चिरस्थायी ही बना रहता है। यही पितृगणो के पिता तथा देवो के भी देव हैं। जब सृष्टि का अवसर होता है तो सम्पूर्ण जगत आदित्य से ही प्रसूत होता है और जब प्रलय होती है तो समस्त विश्व उन्ही मे लीन हो जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवगण तो शब्द से ही कहे जाते हैं, वास्तव में तो यह सूर्य ही परम देव हैं जिनकी एक मात्र भक्ति की जानी चाहिये ॥"

सूर्य के स्वरूप का जो यह विवेचन धार्मिक भावना से और वैसी ही भाषा में किया गया है पूर्णतः सत्य और प्रमाण सिद्ध है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी इस सम्बन्ध में यही कहा है। उनके मतानुसार हमारी पृथ्वी और इसके समीप के बुध, मगल, शुक्र, बृहस्पति, शनि आदि समस्त ग्रह और चन्द्रमा आदि उपग्रह सूर्य के ही भाग हैं जो एक-एक करके सूर्य में से निकले हैं और अन्त मे एक समय ऐसा आयेगा जब ये पुनः उसी मे लीन हो जायेंगे। ये दोनो अवस्थाएँ सृष्टि और प्रलय की ही मानी गई हैं। इसी प्रकार वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि संसार के समस्त पदार्थ और प्राणी सूर्य के प्रभाव से भिन्न-भिन्न स्वरूपो और

रश्मो के दिखाई पड़ते हैं। जब सूर्य की शक्ति उनमे से निकल जाती है, उनके देह प्राकृतिक अथवा कृत्रिम ताप से दग्ध हो जाते हैं तो सब कोयले या उसके भी पश्चात् भस्म के रूप मे परिणित हो जाते हैं, जो कि समस्त भौतिक पदार्थों का मूल रूप है। इस प्रकार नेत्रों से दिखाई पड़ने वाला यह प्रत्यक्ष जगत असदिग्ध रूप से सूर्य से ही प्रादुर्भूत होता है और उसी मे लीन हो जाता है, ऐसी परिस्थिति मे सूर्य को सबका "आदि कारण" या "आदि देव" कहा जाय तो कोई गलती नहीं है।

## उत्कल प्रदेश की महिमा —

यद्यपि वर्तमान समय मे उत्कल ( उड़ीसा ) का प्रदेश अनेक दृष्टि से पिछड़ा हुआ माना जाता है और उससे लगे हुए बंगाल प्रान्त में अधिकाश उड़िया लोगो को 'कुली' या मजदूर ही कहा जाता है, पर यह स्थिति सदैव से नही चली आई है। अब से दो-ढाई हजार वर्ष पहले यह भू-भाग "कलिङ्ग" के नाम से प्रसिद्ध था और भारतवर्ष का एक महत्वपूर्ण भू-भाग माना जाता था। मगध के जगत प्रसिद्ध सम्राट अशोक ने कलिंग को जीतने के लिये अत्यन्त घोर सग्राम किया था। वहाँ का शासक महाराज खारवेल ( जिसको नई इतिहासकारो ने जैन धर्मावलम्बी कहा है ) उस युद्ध मे अत्यन्त वीरता से लड़ा था। इतिहास से विदित होता है कि इस अवसर पर इतनी अधिक सख्या में सेना का विनाश हुआ कि उसे देख कर अशोक का हार्दिक भाव बदल गया। यद्यपि उसने एक लाख से भी अधिक सैनिको का वध हो जाने पर कलिंग को विजय कर लिया, पर उसके पश्चात् उसने युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर ली और बौद्ध धर्म का अनुयायी होकर आजन्म अहिंसा और जीव दया का प्रचार करता रहा। पर उस युद्ध के फल से उत्कल की शक्ति और वैभव कई शताब्दियो के लिये नष्ट हो गया और वह हीनावस्था मे पहुँच गया।

हम नही कह सकते कि "ब्रह्म पुराण" के लेखक ने किस जमाने के "उड़ीसा-प्रदेश" का वर्णन किया है, पर इस ग्रंथ मे "कोणार्क" के

मन्दिर के साथ ही वहां के अन्य समस्त तीर्थों और विशेष रूप से पुरुषोत्तम क्षेत्र का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। जिस प्रकार शैव-पुराणों में कहा गया है कि वाराणसी क्षेत्र से बढ़ कर संसार में कोई "पुण्य स्थान" नहीं है और वैष्णव पुराणों में जिस प्रकार वृन्दावन की महिमा सर्वोपरि बतलाई है, उसी प्रकार लक्ष्मी जी के प्रश्न करने पर भगवान विष्णु ने कहा है।

सुखोपास्यः सुसाध्यश्चाभिरामश्च सुसत्फला।
आस्ते तीर्थवरे देवि विख्यातः पुरुषोत्तमः॥
न तेन सदृशः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
कीर्तनाद्यस्य देवेशि मुच्यते सर्व पातकैः॥

इस प्रकार पुराणकार ने इस क्षेत्र को सब प्रकार से सुख देने वाला, सुविधापूर्ण, सुन्दर और उत्तम फलों से युक्त कहा है। वहाँ पर स्थित पुरुषोत्तम क्षेत्र के समान स्थल तीनों लोकों में अन्य कोई नहीं है। उसका कीर्तन करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। "जगन्नाथ जी" की महिमा राजस्थान और उत्तर प्रदेश के एक बड़े भाग में अब भी बहुत अधिक मानी जाती है और प्रतिवर्ष लाखों व्यक्ति यहाँ से उसकी यात्रा करने जाते हैं। पर हमने इन यात्रियों को "सुन्दरता" अथवा "फल फूलों" की प्रशंसा करते नहीं सुना, वरन् वे एक भजन गाते हुये यही कहा करते हैं—"झारखण्ड में आय विराजे वृन्दावन के स्वामी।" कुछ भी हो सूर्योपासना और महाराज इन्द्रद्युम्न, द्वारा पुरुषोत्तम क्षेत्र की स्थापना का सविस्तार वर्णन ब्रह्मपुराण की विशेषता अवश्य है जो अन्य पुराणों में ( स्कन्द महापुराण को छोड़कर ) देखने में नहीं आती।

## शिव पार्वती विवाह—

'ब्रह्म पुराण' में अनेक कथायें अन्य पुराणों से भिन्न प्रकार से लिखी गई हैं। शिव पार्वती के विवाह के सम्बन्ध में कहा गया है कि पहले शिवजी विकृत रूप बनाकर स्वयं पार्वती जी के पास गये और

उनसे विवाह का प्रस्ताव किया। पार्वती के यह कहने पर कि इसकी स्वीकृति तो मेरे पिता ही दे सकते हैं शिवजी उनके पिता हिमाचल के पास गये और विवाह का निश्चय हो गया। विवाह के अवसर पर जब सब देवगण हिमाचल के घर आये तो उन्होंने देखा कि एक छोटा शिशु जिसके पाँच शिखाएँ हैं पार्वती की गोद मे सो रहा है। इस पर क्रोधित होकर इन्द्र ने उसे मारने को अपना वज्र उठाया पर उसका हाथ जहाँ का तहाँ स्तम्भित हो गया। जब ब्रह्माजी ने बहुत स्तुति की तब शंकर जी अपने रूप मे प्रकट हुये। इन्द्र का हाथ ठीक हुआ और विवाह विधि भी सम्पन्न की गई। इसी प्रकार मदन-दहन की प्रसिद्ध कथा भी विवाह के पश्चात् वर्णन की गई है। कहा गया है कि विवाह हो जाने पर जब वे गृह के भीतर विराजमान हुये तो उनको एकाएक कामवृत्ति का उत्पादन करने वाले मदन महीपति पर बड़ा क्रोध आया कि यह सब ऋषि-मुनियो की तपस्या मे विघ्न-डाला करता है और बहुतो को तो भ्रष्ट कर देता है। इस विचार के आने पर उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोला और उसे भस्म कर दिया। फिर मदन की पत्नी रति के प्रार्थना करने पर उसे अशरीरी रह कर ही ससार भर पर प्रभाव डाल सकने का वर दिया।

## समुद्र-महिमा—

समुद्र-स्नान भी जगन्नाथ पुरी की एक विशेषता है। यहा का समुद्री तट पर बहुत सुन्दर और स्वास्थ्यप्रद जल वायु युक्त जाता है। "ब्रह्म-पुराण" मे समुद्र-स्नान की बड़ी प्रशसा की गई है और उसका माहात्म्य सब तीर्थों से अधिक बतलाया है। उसका कहना है कि पुष्कर, हरिद्वार, प्रयाग आदि तो केवल अपना-अपना माहात्म्य ही बतलाते हैं, पर समुद्र मे तो सभी पुण्य सरिताओ तथा सरोवरो का समावेश हो जाता है। सब का जल अन्त मे समुद्र मे जाकर ही मिल जाता है। इसलिये समुद्र ही वास्तव मे "तीर्थराज" है और उसी का महत्व सर्वाधिक मानना चाहिये—

तावद् गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वैः पृथक् पृथक् ।
यावन्न तीर्थ राजस्य माहात्म्यं वर्ण्यते द्विजाः ॥

सागर-स्नान की विधि में "नारायण" का जो वर्णन किया गया है, वह भी सागर की महत्ता को प्रतिपादित करने वाला है। उसमें कहा है—

"सागर के समीप जाकर सर्व प्रथम आचमन करे और सब प्रकार से पवित्र होकर परम पुरुष नारायण का ध्यान करे। तत्पश्चात् शरीर और हाथों मे अष्टाक्षर मंत्र का न्यास करना चाहिये। उसका मंत्र है— "ॐ नमो नारायणाय"। इस मंत्र की ही समस्त मनीषीगण प्रशंसा किया करते हैं। जब यह मन्त्र प्राप्त हो गया तब अन्य बहुत से मन को विभ्रम में डालने वाले मन्त्रो की क्या आवश्यकता है। "ॐ नमो नारायणाय" यह मन्त्र सब मनोरथों की पूर्ति करने वाला है। 'नर' के पुत्र होने से ही जल का नाम "नारा" प्रसिद्ध हुआ है। वही "नारा" नामक जल भगवान् का "अयन" (निवास-स्थल) होने से इनका नाम "नारायण" कहा गया। समस्त पुराण भगवान नारायण का ही पारायण और प्रतिपादन करने वाले हैं। सब द्विजगण भी नारायण के स्मरण में ही तत्पर रहते हैं। सब यज्ञ भी नारायण की प्राप्ति के लिये किये जाते हैं। समस्त शास्त्रोक्त धर्म क्रियाएँ भी नारायण के उद्देश्य से ही की जाती हैं। यह समस्त पृथ्वी भी नारायण मे पारायण होती है। इस विश्व के समस्त पदार्थ नारायण के ही विभिन्न स्वरूप होते हैं। उनके अतिरिक्त यहाँ कुछ भी नहीं है। जल में, स्थल मे, पाताल में स्वर्गलोक में, अम्बर मे, पर्वत में भगवान नारायण ही स्थित हैं। आप अर्थात् जल ही भगवान विष्णु का आयतन ( निवास स्थल ) है इसलिये जलनिधि ( समुद्र ) में स्नान करते समय नारायण का स्मरण करना अनिवार्य है।"

पुरुषोत्तम क्षेत्र के वर्णन में मत्स्य वाराह नरसिंह आदि समस्त अवतारों के स्थान भी वहीं पर बतलाये हैं। सबके मन्दिर वहाँ पर बने हैं जिनकी पूजा-उपासना महान् फलो को देने वाली कही गई है। इन

मन्दिरो मे नृसिंह अवतार मत्स्य-माधव श्वेत-माधव आदि के मन्दिर प्रसिद्ध हैं। वहाँ श्वेत गङ्गा और वट रूपी कल्पवृक्ष भी है।

## गंगा के दो स्वरूप——

गङ्गावतरण के विषय मे एक अद्भुत कथा यह दी है कि पार्वती से विवाह हो जाने के पश्चात् भी भगवान शिव गङ्गाजी को अपने जटाजूट मे छिपाये रहते थे और उससे बड़ी प्रीति रखते थे। यह बात उमादेवी को सहन नही होती थी। अतएव उन्होंने अपने पुत्र गणेश स्कन्द तथा पुत्री जयादेवी को एकान्त मे बुलाकर कहा कि तुम्हारे पिता बड़े रसिक और कामुक हो गये हैं मैंने बहुत कुछ प्रयत्न किया पर वे किसी प्रकार गङ्गा को नही छोड़ते। इसलिये तुम सब मिलकर कोई ऐसा उपाय करो जिससे,गङ्गाजी उनकी जटाओ से निकलकर भूलोक में बहने लग जायें अन्यथा मैं पुनः अपने पिता हिमालय के यहाँ जाकर तपस्या करने लगूँगी। इस पर परम बुद्धिमान गणेश जी ब्राह्मण का वेष धारण करके और अपनी बहिन जया को लेकर गौतम ऋषि के आश्रम में गये। वहाँ जया गौ का रूप धारण करके गौतम के चावल के खेत को खाने तथा नष्ट करने लगी। यह देखकर गौतम ने उसे हटाने का प्रयत्न किया तो वह मूर्छित सी होकर वहीं गिर पड़ी। इस पर उस आश्रम मे रहने वाले सभी,मुनिगण, विशेषतया ब्राह्मण वेषधारी, गणेश जी बहुत हाय-हाय करने लगे। जब गौतम जी ने उपाय पूछा तो उनने कहा कि शिवजी की जटाओ मे रहने वाली गङ्गा को यहाँ ले आओ, उनके जल से अभि-षिञ्चन करने से यह गौ स्वस्थ्य हो जायगी। गौतम जी ने यही किया और वे शिवजी को अपनी स्तुति और प्रार्थनाओ से प्रसन्न करके वर-स्वरूप गौतमी-गङ्गा को माँग लाये। इससे एक तरफ सासारिक मनुष्यो को पुण्य प्राप्त कर सकने का सुअवसर प्राप्त हुआ और दूसरी तरफ पार्वती जी का उद्देश्य पूरा हो गया।

इस प्रकार की कथाएँ चाहे कुछ लोगो को पसन्द आती हो, पर हम नहो समझते कि ससारी लोगो की तरह देवता और देवियो मे भी

"सौतिया डाह" की प्रवृत्ति बतलाना कोई अच्छी बात है। फिर एक तरफ तो शिवजी को कामदेव को भस्म करने वाले योगिराज के रूप में चित्रित करना और दूसरी तरफ इतना "कामुक" बतलाना कि वे अपनी विवाहिता पत्नी के सामने ही एक अन्य नारी को सदैव समीप रखते हैं, एक असभ्यता की सी बात प्रतीत होती है। संभव है उत्कल प्रान्त में जिस समय वाम मार्गीय तन्त्र-शास्त्र का विशेष जोर था किसी लेखक ने इस प्रकार के वर्णन इस पुराण में सम्मिलित कर दिये हों। जगन्नाथ पुरी के प्रसिद्ध मन्दिर के ऊपर जो स्त्री-पुरुष के "काम-व्यवहार" की अनेक मूर्तियाँ बनी हुई है, उनका मूल-स्रोत भी विद्वानों ने वहाँ पर प्रचलित वाम-मार्ग को ही बतलाया है। उन मूर्तियों के विरुद्ध कई बार आवाज भी उठाई गई थी, और संभवतः अब उनमें से कुछ को ढक दिया गया है।

गङ्गा के पन्द्रह रूप—

आगे चलकर गंगा के महत्व की वृद्धि करने के लिये एक विशेष वर्णन यह भी मिलता है कि जिस भागीरथी को हम एक मात्र गङ्गा मानते हैं केवल वही एकमात्र गंगा नहीं है वरन् जब गौतम ऋषि भूलोक के कल्याणार्थ उसे माँगकर लाये तो वह पंद्रह स्थानों में बँट गई। इनमें से चार धारायें तो स्वर्ग लोक को गईं, सात मनुष्य लोक मे आईं। नर्मदा, सरस्वती, कृष्णा, भीमरथी, तुंगभद्रा और गोदावरी ये सब गंगा के ही रूप हैं। इनमें भी गौतमी गंगा या गोदावरी का महात्म्य सर्वाधिक है। इसके विषय में पुराणकार ने लिखा है—

"यह गौतम गंगा सर्वदा ही समस्त मनुष्यों के लिये महान तीर्थ है। यह इन दो सौ योजनों मे बहेगी उसमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ समुत्पन्न होंगे। माहेश्वरी गंगा, गोदावरी नन्दा, सुनन्दा और काम दायिनी है। यह ब्रह्मतेज द्वारा लाई गई है और सब प्रकार के पापों का शमन करने में समर्थ है। यह शिव-प्रिया स्मरण मात्र से ही पापों के समुदाय को नष्ट कर देने

वाली है। पाँचो भूतो मे जल ही परम श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ है। उसमे जो तीर्थभूत जल है वह सब से प्रमुख माना गया है। सब तीर्थ जलो मे भागीरथी का जल श्रेष्ठ कहा गया है, और उससे भी गौतमी का जल परम श्रेष्ठ है। यह गौतमी शिवजी की जटाओ सहित ही लाई गई है। इससे बढ़कर शुभ तथा समस्त मनोरथो का पूरा करने वाला तीर्थ स्वर्ग मे तथा भूतल मे कही भी नही है।"

पौराणिक माहात्म्य वर्णन की यह विशेषता है कि जिसकी प्रशंसा की जाती है उसी को उस अवसर पर सर्वोपरि बना दिया जाता है। गगा के वर्णन मे स्थान-स्थान पर ऐसी ही प्रशसा की गई है। एक अन्य पुराण मे सर्व श्रेष्ठ तीर्थ सरिता और तीर्थ का स्थान नर्मदा को दिया गया है।

## "ब्रह्मपुराण" का तीर्थ वर्णन---

"ब्रह्म पुराण" के तीर्थ वर्णन में भी कुछ विशेषता है। इसमें जिन कपोत तीर्थ, पैशाच तीर्थ, क्षुधा तीर्थ, चक्र तीर्थ, गणिका-संगम, अहिल्या सगमेन्द्र तीर्थ, श्वेत तीर्थ, वृद्धा-सगम तीर्थ, ऋण प्रमोचन तीर्थ, सरस्वती सगम तीर्थ, रेवती सगम तीर्थ, राम तीर्थ, पुत्र तीर्थ, यक्षिणी सगम तीर्थ, वाणी सगम तीर्थ, कपिला सगम तीर्थ, खड्ग तीर्थ, आनन्द तीर्थ, निम्न भेद तीर्थ, आदि का नामोल्लेख है वे किसी अन्य पुराण में नही मिलते। फिर दूसरी विशेषता यह भी है कि इन तीर्थों में से अधिकाश "गौतमी" से सम्बन्ध रखते हैं। इन कथाओ से सम्बन्ध रखने वाले अधिकाश व्यक्तियो का उद्धार "गौतमी" द्वारा ही हुआ। इन कथाओ में से कितनी में बिल्कुल नई बातो का पता लगता है।

"वृद्धा-सगम तीर्थ" में एक बडी विचित्र कथा कही गई है कि एक गौतम वशीय ब्राह्मण, जो भाग्यवश विद्या, धन तथा सौन्दर्य, सभी गुणो से वंचित रह गया था, भ्रमण करता हुआ एक दिन किसी पहाड़ की गुफा मे जा पहुचा। उसे वहाँ एक बहुत वृद्धा स्त्री दिखाई पडी।

वृद्धा ने ब्राह्मण से आग्रह किया कि तुम मेरे गुरु बन जाओ। ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि मैं सब प्रकार से गुणहीन हूँ तुम्हारा गुरु कैसे बन सकता हूँ ? वृद्धा ने बतलाया कि मैं क्षत्रिय राजा और गन्धर्व कन्या से उत्पन्न हुई हूं। मेरी माता चलते समय मुझ से कह गई थी कि तेरी इस गुफा में जो पुरुष सबसे पहले प्रविष्ट हो वही तेरा पति होगा। पर सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी यहाँ कोई पुरुष नहीं आया। आज सबसे पहले पुरुष तुम्हीं इसमें प्रविष्ट हुये हो, इसलिये मैंने तुमसे इस प्रकार का प्रस्ताव किया। फिर वृद्धा ने अग्नि देव से प्रार्थना करके गौतम ब्राह्मण को विद्वान् और स्वरूपवान भी करा दिया। तब वे दोनों उसी गुफा में पति-पत्नी के रूप में निवास करने लगे। किसी समय सप्त ऋषिगण उनकी गुफा के निकट होकर निकले और गौतम ब्राह्मण ने उनकी भली प्रकार अभ्यर्थना की। वे ऋषिगण इस युवक तथा वृद्धा की जोड़ी को देख कर विस्मित हुये और इसका कारण पूछा। गौतम ने पूरा किस्सा कह सुनाया। अगस्त ऋषि ने उस पर दयार्द्र होकर गौतमी में स्नान करने की सम्मति दी। गौतमी की कृपा से वृद्धा नव-यौवना हो गई और फिर वे पति-पत्नी बहुत काल तक सुख पूर्वक निवास करते रहे।

दूसरी कथा "सरमा" नामक कुतिया की है जो स्वर्गलोक में देवताओं की गौओं की रखवाली करती थी। एक बार वहां कुछ दैत्य आये और सरमा को घूस ( रिश्वत ) के रूप में कुछ धन देकर गायों का हरण करके ले गये। जब इस घटना की जाँच पड़ताल की जाने लगी तो सरमा ने कहा कि दैत्यगण मुझे बाँध कर जबर्दस्ती गायों को लेकर चले गये। पर देवगुरु बृहस्पति ने ध्यान द्वारा सारी घटना को जान लिया और सरमा के दोष की बात इन्द्र को बतलादी। इन्द्र ने कुतिया को लात मारी और शाप दिया कि तू मनुष्य-लोक में जाकर जन्म ले। सरमा पृथ्वी पर कुतिया के रूप में इधर-उधर फिरती हुई कष्ट सहन करने लगी। यह देख कर उसके दो पुत्रों ने जो यमराज के

प्रिय सेवक थे, अपनी माता की दुर्दशा के सम्बन्ध में यमराज को सब कथा सुनाई। इस पर यमराज ने अपने पिता सूर्य से सम्मति ली और तदनुसार गौतमी-गङ्गा की आराधना करके सरमा को शाप से विमुक्त कराया।

यद्यपि ये दोनो कथायें गौतमी गङ्गा की माहात्म्य बढ़ाने की दृष्टि से रची गई हैं, पर हर तरह के दोष करने वाले को थोड़ी बहुत क्षमा-प्रार्थना और खुशामद करने पर दण्ड से मुक्त कर देना कोई श्रेष्ठ आदर्श नहीं कहा जा सकता। प्रथम तो देवलोक के सुख साधनों में रह कर जहां कल्पवृक्ष से सब कामनाओं की पूर्ति होती बताई गई है, रिश्वत लेना और कर्तव्य विमुख हो जाना, एक बड़ा जघन्य अपराध है। ऐसे लालची व्यक्ति को अपने यहां से निकाल देना सर्वथा उचित ही था। दूसरी कथा एक वृद्धा का एक नवयुवक के साथ परिणय होना भी कोई अच्छा आदर्श नहीं कहा जा सकता। यदि कोई व्यक्ति विवशता या लालच के कारण ऐसा कार्य कर लेता है, तो भी वह लोक निन्दा का पात्र ही बनता है।

अन्य बहुत सी कथाएं उपदेश पूर्ण और प्रेरणा दायक भी हैं। "चक्र तीर्थ" की कथा में बतलाया गया है कि किस प्रकार मनुष्य को ज्ञान की आराधना करके क्रोध, तृष्णा, आसक्ति, संशय आदि दोषों पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। संसार में सब कोई धनी और वैभव शाली नहीं हो सकते, ऐसी अवस्था में तृष्णा मनुष्य को अत्यन्त दुख देती है। पर ज्ञान की साधना करने वाला इस संसार की वास्तविकता को समझ कर जैसी भी परिस्थिति सामने आवे उसी में सन्तुष्ट रह सकता है। इसी प्रकार "भाव तीर्थ" की कथा में जब शिवजी ने राजा को वरदान मांगने को कहा था तो उसने यही याचना की कि इस तीर्थ में जो व्यक्ति महान रोग, महान विपत्ति से व्यथित होकर आयें वे सफल मनोरथ होकर जायें। "पशु तीर्थ" की कथा में सज्जन और दुष्ट व्यक्ति का अन्तर बहुत शिक्षाप्रद ढङ्ग से प्रकट किया गया है। धर्म-पक्ष के

समर्थन करने वाला मणिकुण्डल वैश्य यद्यपि अपने दुष्ट मित्र द्वारा बहुत सताया गया और ठगा गया, पर अन्त मे उसके सब कष्ट दूर हो गये और वह एक प्रसिद्ध तथा वैभव-शाली व्यक्ति बन गया।

जैसा हम कह चुके हैं कि "ब्रह्म पुराण" में वर्णित सभी तीर्थ एक प्रकार से नये ढङ्ग के हैं और उनका मुख्य उद्देश्य गौतमी- गङ्गा के महत्व का प्रतिपादन करना है। इस प्रकार की कथाओं मे ऐतिहासिक तथ्य अथवा वास्तविक घटनाओं को ढूंढना अनावश्यक है। उन्हें धर्म कथा या कहानी मानना ही ठीक है और जितना सदुपदेश उनसे प्राप्त हो सके उतना करना चाहिये।

## कलियुग वर्णन

अन्य पुराणों की तरह इस पुराण मे भी कलियुग का वर्णन काफी विस्तार से दिया गया है और वर्तमान दशा से उसका मिलान करके उसे हम बहुत कुछ ठीक भी कह सकते हैं। ऐसे वर्णनों में ज्योतिष शास्त्र द्वारा प्राप्त भविष्य-ज्ञान की विशेष आवश्यकता नही पड़ती। यह समय के चिह्नों को समझ सकने वाली मानव-बुद्धि से ही जाना जा सकता है जिन बातो के बीज आज समाज और व्यक्तियों में मौजूद हैं वे आगे चलकर पौधे और वृक्ष के रूप में प्रत्यक्ष होंगे ही, यह तथ्य स्वाभाविक और प्रकृति के अनुकूल ही है। इसी के आधार पर बुद्धिमान व्यक्ति कितने ही आगामी परिवर्तनो का अनुमान सही तौर पर कर लेते हैं। कलियुगी आचार विचारों की चर्चा करते हुये पुराणकार का कथन है—

"कलियुग में वर्णाश्रम- धर्म तथा आचार-विचार की प्रवृत्ति मनुष्यो में नही रहती। वह ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद के अनुकूल वैदिक आचरणों में भी श्रद्धा नहीं रखते। कलियुग में विवाह को राजधर्म क्रिया न मान कर उसका मुख्य उद्देश्य विलासता ही समझा जाता है। शिष्यगण गुरु की आज्ञा और अनुशासन में नहीं रहते। उस - समय 'अग्निहोत्रादि

क्रियाओं को भी नियम से करना रुक जाता है। वंश की श्रेष्ठता नष्ट होकर किसी भी कुल में उत्पन्न व्यक्ति जो शक्तिशाली होता है, वही सर्वोपरि बन जाता है। सभी वर्णों के व्यक्ति कन्योपजीवी बन जाते हैं। कलियुग के व्यक्ति चाहे जिससे किसी प्रकार दीक्षा लेकर ही दीक्षित बन जाते हैं। प्रत्येक क्रिया को प्रायश्चित्त के योग्य मान लिया जाता है। कलियुग में जो कुछ कहीं भी लिखा या कहा गया होता है उसी को 'शास्त्र' मान लिया जाता है। कलियुग में सभी देवता हैं और चाहे जो व्यक्ति इच्छानुसार किसी भी आश्रम का अनुयायी बन जाता है।"

"कलियुग में लोग उपवास और पर्व आदि मनाते हैं तथा धन व्यय भी करते हैं, पर यह सब कार्य शास्त्र विधि के बजाय अपनी रुचि के अनुसार ही किये जाते हैं। बहुत थोड़े धन से लोगों को धन-मद हो जाता है और स्त्रियाँ प्राय रूप का मद करती देखी जाती हैं, चाहे केश-प्रसाधन के अतिरिक्त उनके पास कोई अन्य साधन न हो। वे अपने पतियों को भी धन के आधार पर ही मान्यता देती हैं। इसी प्रकार जो अधिक धन दे सके वही दूसरों का स्वामी बन जाता है। इस समय में जो भी धन प्राप्त होगा वह भोगों में ही व्यय किया जायेगा और अन्याय से द्रव्योपार्जन में किसी को तनिक भी संकोच न होगा। किसी निजी सम्बन्धी अथवा मित्र के प्रार्थना करने पर भी कोई अपनी स्वार्थ हानि करके सहायता को प्रस्तुत न होगा। सब मनुष्य सदैव अपनी स्वार्थ सिद्धि की दृष्टि से उद्योग करेंगे। गौओं की मान्यता भी अधिक दूध देने की दृष्टि से होगी न कि धार्मिक विचार से। वर्षा का क्रम बिगड़ जाने से प्रजा सदैव अकाल से भयभीत रहा करेगी। लोग आलस्य और श्रम से बचने के कारण सदा ही अकाल का कष्ट भोगते रहेंगे। उस समय लोग बिना स्नान किये ही भोजन करेंगे और अग्निहोत्र, अतिथि-पूजन, पिण्डोदक आदि धर्मानुष्ठानों की तरफ किसी का ध्यान नहीं रहेगा।"

इसी प्रकार चारों वर्ण आश्रम तथा स्त्रियों का वर्णन करते हुये बताया गया है कि उस समय सभी विषयों में लोग धर्म-शास्त्रों के

नियमों की परवाह न करके स्वेच्छा व्यवहार करने वाले बन जायेंगे। यद्यपि वर्तमान समय मे हम इस प्रकार के व्यवहार को उन्नति का चिन्ह मानते हैं और उसे विचार स्वातंत्र्य का नाम देते हैं पर समाज-कल्याण की दृष्टि से यह प्रशसनीय नही कहा जा सकता। हम यह नही कहते कि प्राचीन काल के सब नियम उपयोगी अथवा सब कालों में लाभकारी हैं। अग्निहोत्र पिण्डोदक और अतिथि पूजा के जो नियम शास्त्रो में वर्णन किये गये हैं वे समाज-सगठन और आर्थिक-व्यवस्था में अनावश्यक भी हो सकते हैं पर समाज मे अनुशासन और मर्यादा-पालन की प्रवृत्ति सदैव उचित और आवश्यक है। समस्त समाज के हित-अनहित के कार्यों मे मनमाना व्यवहार किसी काल में उचित नही कहा जा सकता। यही दोष वर्तमान समय में विशेष बढ गया है और इसी से सर्वत्र एक हलचल फैली हुई है। इस समय मनुष्यों का मुख्य लक्ष्य अधिक से अधिक धन कमाना हो गया है चाहे उसके कारण अन्य व्यक्तियो अथवा समस्त समाज की कितनी भी हानि क्यों न होती हो। हम इसी स्वार्थ पूर्ण प्रवृत्ति को वास्तविक कलियुगी भावना कहते हैं और पुराणकार के वर्णन से भी यही ध्वनि निकलती है। इस कलियुगी-भावना को दूर करना हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है।

## योगाभ्यास को वास्तविकता—

योग, साख्य, वेदान्त, जैसे ज्ञानमार्गीय विषयो का सक्षिप्त वर्णन अनेक पुराणो मे पाया जाता है और अधिकाश विद्वान् इन्ही को मुक्ति का हेतु स्वीकार करते हैं। यद्यपि पुराणों का मुख्य उद्देश्य किसी न किसी देव की भक्ति और उपासना का निरूपण और उसी के द्वारा सब कामनाओ की सिद्धि प्रतिपादन करना है, फिर भी पुराण-कारों ने 'ज्ञान मार्ग" के महत्त्व को स्वीकार किया है। "भगवद्गीता" मे कृष्ण भगवान् ने कहा कि जो व्यक्ति मेरा भक्त बनकर अपने सब कर्मों को मुझे समर्पित कर देता है वह मुझे सब से अधिक प्रिय है। पर इसके साथ उन्होंने यह भी बतलाया है कि "इस संसार मे ज्ञान से बढ़कर पवित्र अन्य कोई

तथ्य या शक्ति नहीं है।" इसलिये "ब्रह्मपुराणकार" ने भी अति संक्षेप मे योग का वर्णन किया है और हमे स्वीकार करना पड़ता है कि उनका विवेचन अन्य कितने ही पुराणो से उच्च कोटि का है। जहाँ अन्य लेखकों ने प्रायः आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि अष्टांगो का पचड़ा ही सुनाया है "ब्रह्मपुराण" में योग का मूल मन की एकाग्रता बतलाया है, जैसा की "पातंजल योग-दर्शन" का भी अभिमत है। उसने लिखा है–

"जिस योगाभ्यासी का मन वशीभूत हो जाता है और वह उस मन को परमात्मा में भली प्रकार संलग्न कर देता है और विषयो से बचे रहने का सदैव पूर्ण प्रयत्न करता रहता है, वही योग की सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। जिस समय चित्त विषयो से छूटकर परब्रह्म में लीन हो जाता है उस समय समाधि बहुत सहज ही में लग जाती है। जब योगी का मन किसी कर्म मे आसक्त नहीं रहता तभी वह आनन्द प्राप्त करके निर्वाण-पद का अधिकारी बन जाता है। योग-बल से योगी आध्यात्मि क्षेत्र के तीनो दर्जों से भी ऊपर उठकर उस तुर्यावस्था को पा जाता है, जिसमें परमात्मा का सान्निध्य निश्चित हो जाता। जो योगी सभी इच्छाओ से रहित होकर संसार के प्रत्येक पदार्थ मे अनित्य-भावना रखता है। साथ ही सब से शुद्ध प्रेम की भावना को त्याग नहीं करता, वह जन्म, जरा, मृत्यु से अवश्य छुटकारा पाकर मुक्त हो जाता है, इसमे संशय नहीं। अन्य कोई मार्ग छुटकारा पाने का नहीं है। योग मार्ग वाले को भूलकर भी इन्द्रियो का सेवन नहीं करना चाहिये और वैराग्य धारण करके ही रहना चाहिये। यदि कोई केवल पद्मासन लगाकर और नासिका के अग्रभाग का निरीक्षण करते रह कर योग मे पूर्णता पाने की आशा करे, तो यह उसकी भूल है। इन्द्रियो और मन के संयोग को मिटा देना या नियंत्रण में रखना ही योग का सच्चा स्वरूप है।"

## सांख्य-योग से आत्मा की एकता–

आगे चल कर सांख्य-योग के अनुसार मुक्ति-प्राप्ति का मार्ग दर्शन करते हुये कहा है—

"समस्त प्राणियों में जब एक ही परमात्मा विराजमान है और उस परमात्म-तत्व की दृष्टि से किसी में कुछ अन्तर नहीं है तो हमको सब प्राणियों में अपनी आत्मा ही देखनी चाहिये। जब ऐसा सच्चा दृष्टिकोण प्राप्त हो जाता है तो मनुष्य स्वयं ही "ब्रह्म" के समान हो जाता है। वह जितना ही अधिक आत्मा को जानता है उतना ही पराई आत्मा में भी अपनी आत्मा को देखने लगता है। इस प्रकार की भावना निरन्तर बनी रहने से मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है। जिस तरह पक्षियों की गति अन्तरिक्ष में होती है और मत्स्यों की जल में हुआ करती है उसी प्रकार उपर्युक्त ज्ञानवेत्ताओं की गति ऐसी सूक्ष्म होती है जो एकाएक दिखलाई नहीं पड़ती। आत्मा के द्वारा आत्मा को यह काल ग्रसता और पचन करता रहता है पर उस काल के विषय में सभी सांसारिक व्यक्ति अनभिज्ञ रहा करते हैं। ये सभी लोक उस काल के भीतर ही रहा करते हैं, उससे बाहर कुछ भी नहीं है।"

उपर्युक्त आत्म-भावना किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है इसका विवेचन करते हुये पुराणकार ने कहा है कि "आत्मा की सर्व व्यापकता का ज्ञान मनुष्य के अपने प्रशान्त, दमनशील और आत्म प्रेमी स्वभाव द्वारा प्राप्त हो सकता है। इस सम्बन्ध में विद्वानों ने पाँच दोष ऐसे बतलाये हैं कि जिनका मूलोच्छेदन करने से आत्मज्ञान प्रबुद्ध हो सकता है। वे दोष हैं--काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न। योगी क्रोध को क्षम के द्वारा जीतता है, काम को सङ्कल्पों को वर्जित करने से दबाया जाता है, सत्व के अभ्यास से निद्रा का उच्छेद किया जाता है। धैर्य से शिश्न और उदर की रक्षा करनी चाहिये। श्रोत्र तथा चक्षु की मन के द्वारा और वाणी की कर्म के द्वारा सुरक्षा करे। प्रमाद का त्याग कर देने से भय भी जाता रहता है और सत्पुरुषों की सेवा करने से दम्भ दूर हो सकता है।"

## ज्ञान योग की प्रशंसा—

अभ्यास-योग और सांख्य योग का वर्णन करके लेखक ने ज्ञान-योग का परिचय दिया है इसके लिये उन्होंने मनुष्यों की प्रवृत्ति को मुख्यतः

दो भागों में बाँटा है—कर्म और विद्या। कर्म से मनुष्य सुख और दुःख प्राप्त करता है और विद्या द्वारा संसार-सागर को पार करके मुक्ति का अधिकारी बनता है। इन कर्ममय तथा विद्या से परिपूर्ण दो प्रकार के व्यक्तियों में बड़ा अन्तर होता है। "सूक्ष्म कला से युक्त होकर चन्द्रमा के समान सुखद स्पर्श वाला विद्या से युक्त हुआ करता है वह वस्त्र में धागे के तन्तु के समान देखा जा सकता है, किन्तु बतलाया नहीं जा सकता। प्रकृति के प्रभाव से मनुष्य का जीवात्मा सत्, रज, तम के गुण वाला होता है, अन्य दृष्टि से उसे परमात्मा के गुण वाला कहा जाता है। सांसारिक रूप में जीव का गुण चेष्टा करना होता है और उस अवस्था में वह 'क्षेत्रज्ञ' कहा जाता है। इससे ऊपर ज्ञान की दृष्टि से वह "क्षेत्रविद्" कहा जाता है और सातों भुवनों की जानकारी रखने वाला होता है। जिस प्रकार योग्य सारथी उत्तम श्रेणी के अश्वों को स्ववश में रखते हुए रथ को इच्छानुसार चलाता है, वैसे ही सुयोग्य मन भी इन्द्रियों का संचालन करता है। इन्द्रियों से ऊपर अर्थ (विषय) होते हैं, उनसे ऊपर मन होता है, मन से ऊपर बुद्धि और उससे भी ऊपर महान आत्मा होता है। "महत्" से ऊपर "अव्यक्त" और उससे भी ऊपर "अमृत" अर्थात् आदि-अनन्त, अविनाशी होता है। इस अमृत पद को प्राप्त कर लेना ही जीव का अन्तिम और सर्वोच्च लक्ष्य होता है।"

इस प्रकार ज्ञान-योग का उपासक समस्त विश्व के गूढ़ तत्व को करतलगत करके भी उसे प्रकट नहीं करता। जैसा भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है सांसारिक मनुष्यों में बुद्धि भेद उत्पन्न करने के उद्देश्य से वह बाह्य दृष्टि से समाज के सामान्य नियमानुसार चलता रहता है। फिर भी अन्य बुद्धिमान व्यक्तियों में उसकी परम सूक्ष्म बुद्धि अनुभव द्वारा जानी जा सकती है। वह आत्मज्ञान से अधिष्ठित होकर बुद्धि, मन, और विषयों सहित इन्द्रियों को संचालित करता है और उनको पूर्णतः स्ववश रखता है। "इस प्रकार विद्या-मार्ग वाला साधक संसार में

रहता हुआ भी परम पद में स्थित होकर "अमृत" स्थान को प्राप्त करता है। इसके विपरीत कर्म-मार्ग वाला मनुष्य सांसारिक कार्यों और उपलब्धियों को ही मुख्य उद्देश्य मान कर जीवन का संचालन करता है, इस लिये वह मृत्यु को प्राप्त होता है और आवगमन चक्र में पड़ा सुख-दुखः भोगता रहता है।'

इस प्रकार पुराणकार ने कर्म-योग, सांख्य-योग और ज्ञान-योग के मार्गों का परिचय दिया है, जिनको एक से बढ़ कर एक समझ लेना चाहिये। इनमें "ज्ञान-योग" सर्व श्रेष्ठ कहा गया है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य गेरुआ वस्त्र धारण करके अथवा नग्न होकर सांसारिक कार्यों को छोड़ कर संन्यासी अथवा अवधूत बन जाय, और स्वयं उपार्जन न करके दूसरों से भिक्षा मांग कर या दान ग्रहण करके पेट भरने लगे। ऐसा व्यक्ति तो सब से निम्न श्रेणी का और सबसे अधिक "अज्ञानी" होता है। अथवा उसे ढोंगी या पाखण्डी कहा जा सकता है, क्यों कि वह स्वयं परिश्रम और उत्तरदायित्व से बच कर दूसरो के परिश्रम के फल को अपहरण करना और चैन का जीवन व्यतीत करना चहता है। हमे खेद से कहना पड़ता है कि आजकल हमारे देश के अधिकांश "ज्ञान मार्गी" कहलाने वाले "संत" 'महात्मा' "महन्त" "स्वामी" "साधु" आदि इसी श्रेणी में आते हैं। वे अपनी स्वार्थपरता और ठग विद्या को ढकने के लिये "ज्ञानी" होने का दावा तो करते हैं, पर भीतर से न तो उनका हृदय शुद्ध होता है और न वे स्वयं "अमृत" पद को प्राप्त करने के लिये सचेष्ट होते हैं। वे तो अन्य मनुष्यों को भुलावे में डालकर सांसारिक भोगों का उपभोग करने में ही प्रयत्नशील रहते हैं। वे दूसरों को आत्म-ज्ञान का उपदेश क्या देंगे जब स्वयं उनका ही आचरण और उद्देश्य उससे विपरीत होता है।

इसलिये "अमृतत्व" के अभिलाषी व्यक्ति के लिये सर्वोत्तम और सच्चा मार्ग वही है जिसे भगवान कृष्ण ने "गीता" में बहुत स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। अपने जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक सामान्य कर्मों का

कभी त्याग न करो और कभी किसी अन्य के आश्रित बन कर न रहो। ज्ञान की ऊँची से ऊँची स्थिति तक पहुँच कर भी उसके आधार पर कोई ऐसा व्यवहार न करो जिससे सामान्य जनता में बुद्धि भेद उत्पन्न हो और वे अपने उचित कर्तव्यों को त्याग कर अनुचित मार्ग को ग्रहण करने लगें। इसलिये सच्चा "ज्ञानी" अथवा 'विद्या-मार्ग' का पथिक वही कहा जा सकता है जो सांसारिक दृष्टि से आदर्श जीवन व्यतीत करता हुआ समाज के अन्य व्यक्तियों के सम्मुख उच्च उदाहरण उपस्थित करता है और हर तरह से उन्हे नीचे स्तर से ऊँचे स्तर पर जाने का मार्ग प्रदर्शन करता है। और इन सब व्यवहारों को करते हुये भी वह सांसारिक मोह, लोभ, माया आदि में तनिक भी लिप्त नहीं होता और अपना आन्तरिक लक्ष्य सदा आत्मा और परमात्मा मे ही रखता है।

"ब्रह्मपुराण" के रचयिता ने भी अन्त में यही निष्कर्ष निकाला है। उसका कथन यह है कि "जिस प्रकार जल में संचरण करने वाला पक्षी जल में लिप्त नहीं हुआ करता वैसे ही आत्मजयी योगी त्रिगुणात्मक सृष्टि मे रहता हुआ भी उसके दोषों मे कभी लिप्त नहीं होता। ऐसा योगमुक्त मनुष्य चाहे प्रकट में विषयों और वैभव में रहता जान पड़े पर वह उनसे सदा अलिप्त ही रहता है। ( जैसा उदाहरण महाराज विदेह जनक का बतलाया जाता है )। इस प्रकार आत्मा "त्रिगुणों" को जानता है और उनको उत्पन्न भी करता है, पर "त्रिगुण" आत्मा को नहीं जानते और न ज्ञानी की आत्मा को वशीभूत कर सकने मे समर्थ हो सकते हैं।"

हमने इस जनोपयोगी संस्करण मे यही प्रयत्न किया है कि सभी श्रेणी के व्यक्ति इससे लाभ उठा सकें। आशा है कि पुराण-पाठकों के लिए यह सब प्रकार से कल्याणकारी सिद्ध होगा और वे धर्ममार्ग मे निरन्तर प्रगति करते हुए अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

# ब्रह्मपुराण

## प्रथम खण्ड

## विषय सूची

—:०:—

# ब्रह्मपुराण

# प्रथम खण्ड

—※—

## १—नैमिषारण्य वर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

यस्मात् सर्व्वमिदं प्रपञ्चरचितं मायाजगज्जायते,
यस्मिंस्तिष्ठति याति चास्तसमये कल्पानुकल्पे पुनः ।
यं ध्यात्वा मुनयः प्रपञ्चरहितं विन्दन्ति मोक्षं ध्रुवं,
तं वन्दे पुरुषोत्तमाख्यममलं नित्यं विभुं निश्चलम् ॥१

यं ध्यायन्ति बुधाः समाधिसमये शुद्धं वियत्सन्निभं,
नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलं सर्व्वेश्वरं निर्गुणम् ।
व्यक्ताव्यक्तपरं प्रपञ्चरहितं ध्यानैकगम्यं विभुं,
तं संसारविनाशहेतुमजरं वन्दे हरिं मुक्तिदम् ॥२

सुपुण्ये नैमिषारण्ये पवित्रे सुमनोहरे ।
नानामुनिजनाकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ॥३
सरलैः कर्णिकारैश्च पनसैरधवखादिरैः ।
आम्रजम्बूकपित्थैश्च न्यग्रोधैर्देवदारुभिः ॥४

अश्वत्थैः पारिजातैश्च चन्दनागुरुपाटलैः ।
बकुलैः सप्तपर्णैश्च पुन्नागैर्नागकेशरैः ॥५

शालैस्तालैस्तमालैश्च नारिकेलैस्तथार्ज्जुनैः ।
अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैश्चम्पकाद्यैश्च शोभिते ॥६

नानापक्षिगणाकीर्णे नानामृगगणैर्युते।
नानाजलाशयैः पुण्यैर्दीर्घिकाद्यैरलङ्कृते ॥७

प्रथमाध्याय के आदि में नैमिषारण्य का वर्णन है—सर्व प्रथम नमस्कारात्मक मंगलाचरण किया जाता है—भगवान् नारायण को सेवा मे तथा नरों मे उत्तम नर को और देवी सरस्वती के चरणो मे प्रणाम करके इसके अनन्तर "जय" शब्द का उच्चारण करना चाहिए। जिनसे प्रपञ्च के द्वारा रचना किया हुआ यह सम्पूर्ण माया जगत् समुत्पन्न हुआ करता है, जिसमें यह सम्पूर्ण विश्व स्थित रहा करता है और अस्त के समय मे पुनः कल्प-अनुकल्प में गमन किया करता है, जिस प्रपञ्च से रहित विशुद्ध स्वरूप वाले भगवान् का ध्यान करके मुनिगण अटल मोक्ष पद को प्राप्त किया करते हैं मैं उन्हीं नित्य-विमु-निश्चल और अमल पुरुषोत्तम नाम वाले भगवान् की वन्दना करता हूँ ॥१॥ जिसका बुध पुरुष समाधि के समय मे अन्तरिक्ष के तुल्य शुद्ध स्वरूप का ध्यान किया करते हैं, जो नित्य और आनन्द मय है, जिसका स्वरूप परम प्रसन्न, अमल है और सबका ईश्वर एवं निर्गुण है, जो व्यक्त और अव्यक्त से भी परे है एवं प्रपञ्च से रहित तथा ध्यान के ही द्वारा जानने के योग्य है और विभु (व्यापक) है उन्हीं इस ससार के विनाश के हेतु तथा जरा से रहित और मुक्ति के प्रदान करने वाले भगवान् श्रीहरि को मैं वन्दना करता हु ॥२॥ नैमिषारण्य परम पुण्यमय-सुमनोहर एवं पवित्रतम स्थल है जो अनेक मुनिगणों से घिरा हुआ और विविध भांति के पुष्पो से शोभायमान है ॥३॥ जिस नैमि-षारण्य मे सरल-कर्णिकार-पनस-धव-खादिर-आम्र-जम्बुन-कपित्थ-वट और देवदारु के वृक्षों से शोभित है तथा अश्वत्थ-पारिजात-चन्दन-अगुरु-पाटल-बकुल-सप्तपर्ण-पुन्नाग-नागकेशर-शाल-ताल-तमाल-नारि-यल और अर्जुन के द्रुमों से एवं अन्य चम्पक आदि बहुत प्रकार के वृक्षों से परम शोभा सम्पन्न है ॥४-६॥ उस नैमिषारण्य में विविध भांति के पक्षियों का समूह निवास किया करता है और अनेक तरह के वन्य पशुओं का समुदाय वहीं विचरण किया करता है जिनसे उस

विपिन की अत्यधिक शोभा होती है। उसमें बहुत-से जलाशय हैं और पुण्यमय तीर्थ का आदि से वह परम विभूषित रहा करता है ॥७॥

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः।
वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ॥८
सम्पन्नैर्गोकुलैश्चैव सर्वत्र समलंकृते।
यवगोधूमचणकैर्माषमुद्गतिलेक्षुभिः ॥९
चीनकाद्यैस्तथा मेध्यैःशस्यैश्चान्यैश्च शोभिते।
तत्र दीप्ते हुतावहे हूयमाने महामखे ॥१०
यजतां नैमिषेयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके।
आजग्मुस्तत्र मुनयस्तथाऽन्येऽपि द्विजातयः ॥११
तानागतान् द्विजांस्ते तु पूजांचक्रुर्यथोचिताम्।
तेषु तत्रोपविष्टेषु ऋत्विग्भिः सहितेषु च ॥१२
तत्राजगाम सूतस्तुमतिमाँल्लोमहर्षणः।
तं दृष्ट्वा ते मुनिवराः पूजां चक्रुर्मुदान्विताः ॥१३
सोऽपि तान् प्रतिपूज्यैव सविवेश वरासने।
कथां चक्रुस्तदान्योन्यं सूतेन सहिता द्विजाः ॥१४
कथान्ते व्यासशिष्यं ते पप्रच्छुः सशयं मुदा।
ऋत्विग्भिः सहिताः सर्व्वे सदस्यैः सह दीक्षिताः ॥१५

उस नैमिषारण्य में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र तथा अन्य जातियाँ भी तपश्चर्या के लिये निवास किया करते हैं। वहाँ पर सभी आश्रमों मे स्थित रहने वाले मनुष्य रहते हैं ब्रह्मचारी-गृहस्थ-वानप्रस्थ और सन्यासी लोग अपनार व्रतानुष्ठान किया करते हैं यह विपिन सुसम्पन्न गायों के कुलों से परम अलंकृत रहता है। उस अरण्य में सभी प्रकार के धान्यों की उत्पत्ति होती है-यव-गोधूम-चना-उर्द-मूंग-तिल-ईख और चीनक आदि एवं परम पवित्र शस्यों एवं धान्यों की उपज होने के कारण उस नैमिषारण्य की अनुपम शोभा होती है। उस वन मे अग्नि के प्रदीप्त होने पर जब महामख में आहुतियाँ दी जाया करती हैं तो वहाँ की अद्भुत शोभा हुआ करती है। एक बार वहाँ पर बारह वर्ष

तक होने वाला एक सत्र का आरम्भ हुआ था जिसमे नैमिषेय लोग यजन कर रहे थे। उसी समय में वहाँ पर कुछ मुनिगण एवं अन्य द्विजातीय लोग समागत हुए थे। वहाँ पर निवास कर तप करने वालों ने उन सम्प्राप्त द्विजगणों को देख कर उनकी सविधि समुचित पूजा-अर्चना की थी। वे सब ऋत्विजों के साथ ही वहाँ पर एक स्थान पर बैठ गये थे ॥८—१२॥ उसी समय मे वहाँ पर महा मतिमान् लोमहर्षण श्रीसूतजी आगये थे। सब लोगो ने उन महा मनीषी सूतजी को समागत हुए देख कर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ उन समस्त मुनिवरों ने श्रीसूतजी का स्वागत-सत्कार एवं अर्चन किया था ॥१३॥ सूतजी ने भी उन सबकी प्रति पूजा की और इसके अनन्तर वे एक परम श्रेष्ठ आसन पर उपविष्ट हो गये थे। उस समय मे सभी द्विजों ने श्रीसूतजी के साथ परस्पर में कथा-वार्त्ता की थी इस प्रकार से बहुत समय पर्यन्त कथा प्रसंग चलता रहा था ॥१४॥ कथा खत्म होने पर जोभी सदस्यों सहित दीक्षित थे तथा ऋत्विजों के साथमे स्थित थे, सभी ने व्यासजी के शिष्य श्रीसूतजी से हृद्गत संशयो के विषय में प्रसन्नता के साथ प्रश्न किये थे ॥१५॥

पुराणागमशास्त्राणिसेतिहासानि सत्तम।
जानासि देवदैत्यानां चरितं जन्म कर्म्मच ॥१६
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्वेदे शास्त्रे च भारते।
पुराणे मोक्ष शास्त्रे च सर्व्वज्ञोऽसि महामते ॥१७
यथापूर्व्वमिदं सर्व्वमुत्पन्न सचराचरम्।
ससुरासुरगन्धर्व्वं सयक्षोरगराक्षसम् ॥१८
श्रोतुमिच्छामहे सूत ब्रूहि सर्व्वं यथा जगत्।
बभूव भूतश्च यथा महाभाग भविष्यति ॥१९
यतश्चैव जगत् सूत यतश्चैव चराचरम्॥
लीनमासीत्तथा यत्र लयमेष्यति यत्र च॥२०

मुनिगण ने कहा—हे श्रेष्ठ वर! आप तो इतिहास के सहित सम्पूर्ण पुराण-आगम और शास्त्रों को भली भाँति जानते हैं और समस्त देवगणों तथा दैत्यों का चरित्र-जन्म और कर्म भी जानते हैं। आप तो

ऐसे महा मनीषी हैं कि आप से कुछ भी छिपा हुआ नहीं है ॥१६॥ वेदों में और शास्त्रों में तथा महाभारत में जो कुछ भी लिखा एवं बताया गया है वह कुछ भी आप से अविदित नहीं है। आप तो महती मति रखने वाले विद्वान् महानुभाव हैं पुराणों में और मोक्ष शास्त्रों में आप सर्वज्ञ हैं अर्थात् पूर्णतया इनके ज्ञाता है ॥१७॥ यह सभी कुछ जैसा पहिले था और चराचर सम्पूर्ण जिस प्रकार से यह विश्व उत्पन्न हुआ जिसमें सुर-असुर-गन्धर्व-यक्ष-उरग और राक्षस सभी उत्पन्न हुए हैं ॥१८॥ हे श्रीसूतजी ! हम यह सम्पूर्ण कथा श्रवण करने की उत्कट अभिलाषा रखते हैं। आप कृपा करके यह सभी हमारे समक्ष में बतलाने की उदारता कीजिए। जिस प्रकार से यह सम्पूर्ण जगत् रचा गया था और हे महाभाग ! पुनः जिन तरह से होगा-यह सभी वर्णन कीजिए ॥१९॥ हे सूतजी ! जिससे यह स्थावर और जंगम सम्पूर्ण जगत् रचा गया है और जैसे यह लीन हुआ था, भविष्य में भी जिसमे जाकर यह चराचर समस्त जगत् को प्राप्त होगा यहभी कृपया सब बतलाइये ॥२०॥

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्व्वजिष्णवे ॥ २१
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकर्म्मणे ॥ २२
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः।
अव्यक्ताभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥ २३
स्वर्गस्थितिविनाशाय जगतो योऽजरामरः।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥ २४
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम्।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥२५
ज्ञानस्वरूपमत्यन्तं निर्म्मलं परमार्थतः
तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥ २६
विष्णुं ग्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितौ स्वर्गे तथा प्रभुम्।
सर्व्वेशं जगतामीशमजमक्षयमव्ययम् ॥ २७

आद्यं सुसूक्ष्मं विश्वेशं ब्रह्मादीन् प्रणिपत्य च ।
इतिहासपुराणज्ञं वेदवेदांगपारगम् । दग ।।२८
सर्व्वं शास्त्रार्थतत्त्वज्ञं पराशरसुतं प्रभुम् ।
गुरु प्रणाम्य वक्ष्यामि पुराणं वेदसम्मितम् ।। २९

महा महर्षि श्रीलोमहर्षणजी ने कहा—जो विकारों से रहित हैं—परम शुद्ध स्वरूप वाले हैं—नित्य एवं परमात्मा हैं और जो सदा ही एक ही रूप वाले हैं तथा सबको जीत लेने के शील स्वभाव वाले हैं उन भगवान् विष्णु के लिये प्रणाम है ।।२१।। हिरण्य गर्भ—श्रीहरि और भगवान् शंकर के लिये तथा वासुदेव तार और संसार की उत्पत्ति-परिपालन एवं जगत् के अवसान के कर्मों के करने वाले प्रभु हैं उनके लिये शतशः प्रणाम हैं ।।२२।। जो एक ही होते हुए भी अनेकों स्वरूप धारण करने वाले हैं तथा स्थूल और सूक्ष्म आत्मा वाले हैं उनके लिये नमस्कार है । जो अव्यक्ता व्यक्त रूप वाले तथा संसार में बारम्बार वाले जन्म मरण के आवागमन रूपी बन्धन से छुटकारा दिलाने के हेतु हैं उन भगवान् श्रीविष्णुदेव के लिये नमस्कार है ।।२३।। इस जगत् की सृष्टि स्थिति और विनाश करने वाले हैं और स्वयं जो अजर एवं अमर हैं तथा मूलभूत हैं उन परमात्मा भगवान् विष्णु के लिये प्रणाम है ।।२४।। जो सम्पूर्ण विश्व का आधार भूत हैं अर्थात् यह पूर्ण विश्व जिसके आश्रय को प्राप्त कर टिका हुआ है और जो सूक्ष्मो मे भी परम सूक्ष्म स्वरूप वाले हैं जिनमे समस्त भूत स्थित रहा करते हैं उन भगवान् पुरुषोत्तम अच्युत को प्रमाण करता हू ।।२५।। जो प्रभु ज्ञान के ही स्वरूप वाले हैं और परमार्थ रूप से अत्यन्त निर्मल हैं वही अर्थ स्वरूप से स्थित रहते हैं—ऐसी भ्रान्ति से दर्शन उनका हुआ करता है ।।२६।। जो इस विश्व की स्थिति मे विष्णु तथा ग्रसिष्णु हैं तथा जो स्वर्ग में प्रभु हैं । जो सर्वज्ञ हैं—जगतो के जो ईश हैं जो अजन्मा है—अक्षय है और अव्यय स्वरूप वाले हैं ।।२७।। उन सब के आदि मे स्थित रहने वाले-परम सूक्ष्म विश्व के स्वामी को और ब्रह्मा आदि को प्रणिपात करके उसके अनन्तर समस्त शास्त्रों के अर्थ के तत्व के पूर्ण ज्ञाता-इतिहास

और पुराणों के अच्छे ज्ञान रखने वाले-समस्त वेदों और वेदों के छै अङ्ग शास्त्रों के पारगामी विद्वान् प्रभु पराशर मुनि के पुत्र अपने योगुरुदेव वेदव्यास जी के चरणों में प्रणाम करके जो वेदों का सम्मित पुराण है उस ब्रह्मपुराण का मैं वर्णन करूंगा। तात्पर्य यह है-कि यह पुराण वेदानुकूल है॥२८-२९॥

कथयामि यथापूर्व्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः।
पृष्टः प्रोवाच भगवान् जयानिः पितामहः॥३०
शृणुध्वं सम्प्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशिनीम्।
कथ्यमाना मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिविस्तराम्॥३१
यस्त्विमां धारयेन्नित्य शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः।
स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते॥३२
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं पुरुषस्तस्मान्निर्ममे विश्वमीश्वरः॥३३
तं बुध्यध्व मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माणममितौजसम्।
स्रष्टारं सर्व्वभूतानां नारायणपरायणम्॥३४
अहंकारस्तु महतस्तस्माद्भूतानि जज्ञिरे।
भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः सनातनः॥३५

दक्ष आदि परम श्रेष्ठ मुनियों ने अजयोनि पितामह भगवान् से पुछा था उस समय जो भी उन्होंने वर्णन किया था वही यथा पूर्व में अब आप लोगों के समक्ष में वर्णन करता हूं॥३०॥ अब आप लोग सब परम समाहित मन वाले होकर श्रवण कीजिए मैं वर्णन करूंगा। यह कथा सभी प्रकार के पाप-शापों का विनाश कर देने वाली है और मेरे द्वारा कही जाने वाली यह कथा अतीव अद्भुत-बहुत विशेष अर्थ से भरी हुई और श्रुति के विस्तार से समन्वित है॥३१॥ जो पुरुष इस कथा को नित्य ही धारण किया करता है अथवा बारम्बार इस का श्रवण किया करता है वह अपने वंश को धारण करके स्वर्ग लोक में निवास करने की प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है॥३२॥ जो सत् और असत् स्वरूप वाला-नित्य कारण अव्यक्त है वह प्रधान है परम पुरुष प्रभु जो सर्वेश्वर हैं उसी से इस विश्व का निर्माण उन्होंने किया था

॥३३॥ हे परम श्रेष्ठ मुनिगणो ! अपरिमित ओज से युक्त-नारायण परायण उसी ब्रह्म को समस्त भूतों का सृजन करने वाला समझलो ॥३४॥ उस प्रधान अव्यक्त से यह तत्व और महत् से अहङ्कार और अहंकार से सब भूत और उन भूतो से भूतों के भेद-इन सबको इस उक्त क्रम से उत्पन्न किया था—यही सर्वदा से चले आने वाला सनातन सर्ग होता है ॥३५॥

विस्तरावयवं चैव यथाप्रज्ञं यथाश्रुति ।
कीर्त्यमानं शृणुध्वं वः सर्व्वेषां कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥३६
कीर्त्तितं स्थिरकीर्त्तीनां सर्व्वेषां पुण्यवर्द्धनम् ।
ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥३७
अप एव ससंर्ज्जादौ तासु वीर्य्यंमथासृजत् ।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥३८
अयनं तस्य ताः पूर्व्वं तेन नारायणः स्मृतः ।
हिरण्यवर्णमभवत्तदन्तमुदकेशयम् ॥३९
तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम् ।
हिरण्यवर्णो भगवानुसित्वा परिवत्सरम् ॥४०
तदन्तमकरोद्द्वैधं दिवं भुवमथापि च ।
तयोः शकलयोर्म्मध्य आकाशमकरोत्प्रभुः ॥४१
अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे ।
तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम् ॥४२

इस सर्ग का विस्तार जिन अवयवों से होता है उसको भी जैसा मैंने श्रवण किया है और जैसी भी मेरी प्रज्ञा है उसी के अनुसार मेरे द्वारा कीर्तित किया जारहा है। इस का श्रवण करिए। यह श्रवण करना आप सबकी कीर्ति की वृद्धि करने वाला है ॥३६॥ जिनकी कीर्ति सदा स्थित रहा करती है ऐसे उन सबके चरित का कीर्तन करना भी महान् पुण्य का वर्धन करने वाला ही होता है। रचना करके प्रजा का सृजन करने की इच्छा वाले होगये थे। ॥३७॥ सबके आदि में जल की ही सृष्टि की थी और उन्हीं जलों में वीर्य का सृजन किया था।

ये जल 'नार"-इस नाम से कहे गये हैं और ये जल नर की सन्तति हैं। ये ही जल सबसे पूर्व उस परम पुरुष नर के निवास का स्थल था और इसी कारण से उनका नाम नारायण होगया है। उनके अन्दर जल में शयन करने वाले हिरण्य वर्ण हुए थे ॥३८-३९॥ वहीं पर स्वयं ब्रह्मा जी ने जन्म ग्रहण किया था जिनको स्वयम्भू-यह नाम से हम लोगों ने सुना या जाना है यह स्वयं ही समुत्पन्न हुए थे अतएव स्वयम्भू नाम अन्वर्थ है। हिरण्य वर्ण भगवान् कितने ही वर्षों तक वहां पर निवास करते रहे थे ॥४०॥ इसके अन्त मे दो प्रकार की रचना की थी। एक तो दिव लोक बनाया और भूलोक बनाया था। उन दोनों खण्डों के मध्य मे प्रभु ने आकाश की रचना की थी ॥४१॥ यह पृथ्वी जल मे पारिप्लवित हो रही थी अर्थात् डूबी हुई थी। उसी दशों दिशाओं को निर्मित किया था। वहीं पर फिर काल-मन-वाणी काम-क्रोध और रति का सृजन किया था ॥४२॥

ससर्ज सृष्टि तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन् प्रजापतीन्।  
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥४३  
वसिष्ठं च महातेजाः सोऽसृजत्सप्त मानसान्।  
सप्त ब्राह्मण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥४४

नारायणात्मकानां तु सप्ताना ब्रह्मजन्मनाम्।  
ततोऽसृजत् पुरा ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसम्भवम् ॥४५  
सनत्कुमारं च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम्।  
सप्तस्वेता अजायन्त प्रजा रुद्राश्च भो द्विजाः ॥४६

स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः।  
तेषां सप्त महावंशाः दिव्या देवगणान्विताः ॥४७  
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृता।  
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥ ४८

वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यश्च ससर्ज ह।  
ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ॥ ४९

प्रजापतियों की सृष्टि करने की इच्छा वाले प्रभु ने सद्रूपा ही सृष्टि का सृजन किया था। मरीचि-अत्रि-अङ्गिरा-पुलस्त्य-पुलह-क्रतु और वसिष्ठ की महान् तेज वाले परमेष्ठी ने इन सात मानस पुत्रों का सृजन किया था। ये सातों ब्रह्माजी के मन से ही समुत्पन्न हुए थे अतएव मानस पुत्र कहे जाते हैं। ये सात ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं ऐसा पुराण में निश्चय को प्राप्त हुए थे ॥४३-४४॥ ये सातों ब्रह्माजी से जन्म ग्रहण करने वाले हैं और साक्षात् नारायण के ही स्वरूप वाले हैं। इसके अनन्तर पहिले ब्रह्माजी ने रोष के स्वरूप से जन्म लेने वाले भगवान् रुद्रदेव का सृजन किया था। ॥४५॥ पूर्व में होने वाले में भी सब से पूर्व में समुत्पत्ति प्राप्त करने वाले विप्र सनत्कुमार की सृष्टि की थी। हे द्विजगण! इन्हीं सातों में यह सम्पूर्ण प्रजा और रुद्र गण उत्पन्न हुए थे ॥४६॥ तेज को संक्षिप्त करके सनत्कुमार और स्कन्द स्थित हुए थे। उनके ही दिव्य देवगणों से समन्वित सन्त महान् वंश हुए थे। ॥४७॥ ये महावंश सब क्रियाओं वाले प्रजाओं से युक्त और महर्षियों से समलङ्कृत हुये थे। फिर विद्युत-वज्र-मेघ-रोहितेन्द्र धनुष-पतोगण और पर्जन्य इन सबका आदि काल में सृजन किया था। इसके उपरान्त यज्ञ कर्मों को सुसम्पादित करके सिद्धि प्राप्त करने के लिये ऋग्वेद-यजुर्वेद और सामवेद की ऋचाओं का सृजन तथा निर्माण किया था ॥४८-४९॥

साध्यानजनयद्देवानित्येवमनुसञ्जगुः।
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥५०
आपवस्य प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः।
सृज्यमाना प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा ॥५१
द्विधाकृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां तु सोऽसृजद्विविधाः प्रजाः ॥५२
दिवञ्च पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य तिष्ठति।
विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत् पुरुषं विराट् ॥५३
पुरुषं तं मनुं विद्यात्तस्य मन्वन्तरं स्मृतम्।
द्वितीयं मानसस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते। ५४

स वैराजः प्रजासर्गं ससर्ज पुरुषः प्रभुः ।
नारायणविसर्गस्य प्रजास्तस्याप्ययोनिजाः ॥५५
आयुष्मान् कीर्त्तिमान् तूर्णप्रज्ञावांश्च भवेन्नरः ।
आदिसर्गं विदित्वेमं यथेष्टां चाप्नुयाद्गतिम् ॥५६

इसके अनन्तर साध्य देवों को जन्म दिया था जो इस प्रकार से नित्य ही भली भाँति अनुगमन किया करते थे । उन ब्रह्माजी के अंगों से उच्चावच अर्थात् ऊँचे-नीचे भूतों ने जन्म ग्रहण किया था ॥५०॥ आपवं प्रजाओं के सृजन करने वाले प्रजापति की ये सब सृष्ट हुई प्रजा थी किन्तु जब देखा कि वह प्रजा बढ़ती हुई नहीं है तो प्रजा की पुष्कल वृद्धि का ध्यान हुआ था ॥५१॥ अयोनिज प्रजा से विशेष वृद्ध होती हुई न देख कर अदयोनि से जन्म ग्रहण करने वाली प्रजा के लिये ब्रह्माजी ने अपने शरीर के दो भाग निर्मित किये थे आधे शरीर के भाग से वे पुरुष हुए थे और आधे वामांग से नारी का स्वरूप निर्मित किया था । उसी नारी मे फिर उन्होंने विविध भाँति की प्रजा की सृष्टि की थी जो दिव लोक और पृथ्वी में व्याप्त होकर महिमा से समवस्थित है । भगवान् विष्णु ने विराट् का सृजन किया था और उस विराट् ने पुरुष का सृजन किया था ॥५२-५३॥ उस पुरुष को मनु समझलो । उसका मन्वन्तर भी कहा गया है । मानस का यह द्वितीय मन्वन्तर कहा जाता है ॥५४॥ उस प्रभु पुरुष वैराज ने प्रजा के सर्ग का सृजन किया था । उस नारायण विसर्ग की समस्त प्रजा भी अयोनिज ही थी । इस आदि सर्ग का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य आयुष्मान्—कीर्त्तिमान् और पूर्ण प्रज्ञावान् हो जाया करता है तथा अपनी अभीष्ट गति को भी प्राप्त कर लेता है ॥५५-५६॥

---

## २—स्वयम्भुव मनु वंश वर्णन

स सृष्ट्वा तु प्रजास्त्वेवमापवो वै प्रजापतिः ।
लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥१

आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः ।
धर्मेणैव मुनिश्रेष्ठाः शतरूपा व्यजायत ॥२
सा तु वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।
भर्त्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥३
सा वै स्वायम्भुवो विप्राः पुरुषो मनुरुच्यते ।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥४
वैराजात् पुरुषाद्वीरं शतरूपा व्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात् काम्या व्यजायत ॥५
काम्या नाम सुता श्रेष्ठा कर्दमस्य प्रजापतेः ।
काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट् कुक्षिर्विराट् प्रभुः ॥६
उत्तानपाद जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः ।
उत्तानपादाच्चतुरः सूनृता सुषुवे सुतान् ॥७

श्री लोमहर्षण मुनि ने कहा—उन आपव प्रजापति ने इस प्रकार से प्रजाओं का सृजन किया था। उस पुरुष ने अर्थात् स्वायम्भू मनु ने जोकि प्रजापति के दक्षिणार्ध अंग से समुत्पन्न हुआ था अयोनिजा शतरूपा पत्नी को प्राप्त किया था ॥१॥ आपव की महिमा से वे दिव को आवृत करके ही स्थित थे। हे श्रेष्ठ मुनियो ! धर्म से ही शतरूपा समुत्पन्न हुई थी ॥२॥ उस शतरूपा ने दश हजार वर्ष पर्यन्त तपश्चर्या की थी और परम दुश्चर तप किया था इस तप के प्रभाव से ही उस शतरूपा ने प्रदीप्त तप वाले पुरुष स्वायम्भू मनु को अपना भर्त्ता प्राप्त किया था ॥३॥ हे विप्रो ! वही स्वायम्भुव पुरुष मनु कहा जाता है उस स्वायम्भुव मनु का कार्य काल इकहत्तर युगों की चौकड़ियाँ होती हैं जो एक मन्वन्तर कहा जाया करता है ॥४॥ यहीं से योनिज सृष्टि का समारम्भ होता है जो पुरुष के साथ नारी सम्भोग का सुख प्राप्त करती हुई गर्भ धारण किया करती है और अपनी योनि द्वार से प्रसव काल समुपस्थित होने पर सन्तति को जन्म ग्रहण कराया करती है। मनु के द्वारा उत्पन्न होने ही से मनुष्य कहलाये जाते हैं। उस शतरूपा नारी ने वैराज पुरुष के साथ सहवास करके उसके वीर्य से वीर को

उत्पन्न किया था। उस वीर की पत्नी काम्या थी उस काम्या ने वीर धीर के साथ सहवास करके उसके वीर्य से प्रिय व्रत और उत्तानपाद को उत्पन्न किया था ॥५॥ यह काम्या प्रजापति कर्दम की परम श्रेष्ठ सुता थी। इस काम्या से सम्राट्-कुक्षि विराट् और प्रभु ये चारपुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥६॥ प्रजापति अत्रि ने उत्तानपाद को पुत्र ग्रहण कर लिया था। उस उत्तानपाद के साथ संग कर उसकी वीर्य से सुन्दर श्रोणी तट वाली परम विश्रुत सूनृता ने चार पुत्रों को प्रसूत किया था ॥७॥

धर्म्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता।
उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा। ८
ध्रुवञ्च कीर्त्तिमन्तञ्च आयुष्मन्तं वसुं तथा।
उत्तानपादोऽजनयत् सूनतायां प्रजापतिः ॥९
ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भो द्विजाः।
तपस्तेपे महाभागः प्रार्थयन् सुमहद्यशः ॥१०
तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमात्मसमं प्रभुः।
अचलञ्चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः ॥११
तस्याभिमानमृद्धिञ्च महिमानं निरीक्ष्य च।
देवासुराणामाचार्य्यः श्लोक प्रागुशना जगौ ॥१२
अहोऽस्य तपसो वीर्य्यमहो श्रुतमहोऽद्भुतम्।
यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥१३
तस्माच्छ्लिष्टि च भव्य च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत।
श्लिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रनकल्मषान् ॥१४

सूनृता नाम से विख्यात सुन्दर श्रोणी वाली कन्या धर्म की पुत्री थी। यह परम भक्त ध्रुव की माता जो अतीव-शुभ थी वाजिमेध यज्ञ के द्वारा समुत्पन्न हुई थी ॥८॥ प्रजापति राजा उत्तानपाद ने अपनी प्रिय पत्नी सूनृता के कार्य से ध्रुव-कीर्त्तिमान्-आयुष्मान् और वसु नामों वाले पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥९॥ हे द्विजवरो! महान् भाग वाले ध्रुव ने पाँच वर्ष की कुमार अवस्था ही में सुमहान् यश की

इच्छा रखते हुए तीन सहस्र दिव्य वर्षों तक परम दुश्चर तप किया था ॥१०॥ प्रभु ब्रह्माजी ने उसको परम प्रसन्न होकर अपने ही समान स्थान प्रदान किया था जो बहुत ही अमल स्थान था। प्रजापति ने महर्षियों के समक्ष में वह स्थान प्रदान किया था ॥११॥ उस कुमार ध्रुव के स्वाभिमान-महिमा और समृद्धि को देख कर देवासुरों के आचार्यवर उशना (शुक्राचार्य) ने इस श्लोक का गान किया था ॥१२॥ ओ हो! इस कुमार के तप का वीर्य और श्रुत कितना अद्भुत है जिस ध्रुव को अपने आगे स्थित करके सप्तर्षिगण विराजमान रहते हैं ॥१३॥ उस ध्रुव से शम्भु ने श्लिष्टि और भव्य को उत्पन्न किया था। उस श्लिष्टि के साथ सहवास करके उसके वीर्य से सुच्छाया नामक उसकी प्रिय पत्नी ने कल्मष रहित पाँच पुत्रों को प्रसूत किया था ॥१४॥

रिपुं रिपुञ्जयं वीरं वृकलं वृकतेजसम्।
रिपोराधत्त बृहती चक्षुष सर्व्वतेजसम् ॥१५
अजीजनत् पुष्करिण्यां वैरण्यां चाक्षुषं मनुम्।
प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः ॥१६
मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः।
कन्यायां मुनिशार्दूला वैराजस्य प्रजापतेः ॥१७
कुत्सः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कविः।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥१८
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलाया महौजसः।
पुरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान् ॥१९
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम्।
अङ्गात् सुनीथापत्यं वै वेनमेकं व्यजायत ॥२०
अपचारेण वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत्।
प्रजार्थमृषयो यस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् ॥२१

उन पाँचों पुत्र के शुभ नाम ये थे—रिपु-रिपुञ्जय-वीर-वृकल और वृकतेजा। बृहती ने सर्व तेजस चक्षुष को रिपु से धारण किया था

।।१५।। महान् आत्मा वाले प्रजापति वीरण की आत्मजा में जो पुष्क-रिणी वीरिणी थी उसमें चाक्षुप मनु को समुत्पन्न किया था ।।१६।। हे मुनि शार्दूलो ! प्रजा पति वैराज की कन्या नंवला में मनु से महान ओजवाले दश पुत्रों की समुत्पत्ति हुई थी ।।१७।। उनके नाम ये हैं—कुत्स-पुरु-शतद्युम्न-तपस्वी-सत्यवाक्-कवि-अतिष्टुत्-अतिरात्र और सुद्युम्न ये नौ हैं ।।१८।। अभिमन्यु दशम पुत्र था। ये नड्वला में महान् ओज वाले हुए थे। पुरु के वीर्य से आग्नेयी ने महती प्रभावाले छै पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ।।१९।। उन छैं पुत्रों के नाम ये हैं—अंग-सुमनस-ख्याति-क्रतु-अंगिरा-गम। अंग के वीर्य से सुनीथा नाम वाली भार्या ने एक ही सन्तति उत्पन्न की थी जिसका नाम वेन था ।।२०।। वेन बहुत ही अय नारी था जिसके बुरे अपचार से ऋषियों का बहुत भारी प्रकोप हो गया था। प्रजा के लिये ऋषिगणों ने जिसके दक्षिण कर का मन्थन किया था ।।२१।।

वेनस्य मथिते पाणौ स बभूव महान्नृपः।
तं दृष्ट्वा मुनयः प्राहुरेष वै मुदिताः प्रजाः ।।२२
करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत्।
स धन्वी कवची जातो जलज्ज्वलनसन्निभः ।।२३

पृथुर्वैन्यस्तथा चेमां ररक्ष क्षत्रपूर्व्वजः।
राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः सा वसुधाधिपः ।।२४
तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ।
तेनैवं गौम्मुंनिश्रेष्ठा दुग्धा शस्यानि भूभृता ।।२५

प्रजानां वृत्तिकामेन देवैः सर्षिगणैः सह।
पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैरप्सरोगणैः ।।२६
सर्पैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्व्वतैस्तथा।
तेषु तेषु च च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ।।२७

प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधारयन्।
पृथोस्तु पुत्रौ धर्म्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्धिपातिनौ ।।२८

राजा वेन के हाथ का मन्थन करने पर एक महान् नृप उत्पन्न हुआ था। उसको देखकर समस्त मुनियों ने कहा था—यह महान् तेज वाला राजा अपनी सब प्रजा को परम प्रसन्न करेगा और संसार में बहुत ही अधिक यश की प्राप्ति भी करेगा। वह धनुषधारी तथा कवच पहिने हुए उत्पन्न हुआ था और प्रदीप्त अग्नि के समान ही तेजस्वी था ॥२२-२३॥ यह क्षत्रियों में सबसे प्रथम उत्पन्न होने वाला पृथुवैन्य नामधारी था और उसने इस भूमि की पूर्णतया रक्षा की थी। राजसूय नामक यज्ञ के द्वारा जो अभिषिक्त राजा हुए हैं उनमें यह सबसे प्रथम वसुधा का स्वामी हुआ था ॥२४॥ हे मुनियों में परम श्रेष्ठो! उसी नृप से परम निपुण सूत तथा मागध उत्पन्न हुए थे। उसी राजा ने इस प्रकार से इस भूमि रूपिणी गौ को दोहन किया था जिससे सभी प्रकार के सस्य समुत्पन्न होने लगे थे ॥२५॥ अपनी समस्त प्रजाजनों की वृत्ति की कामना वाले उस नृप ने देवगण-ऋषियों का समुदाय-पितृगण-दानव-गन्धर्व-अप्सराओं के समूह-सर्प पुण्यजल-वीरुध-और पर्वतों के साथ उन-उन पात्रों में यह वसुन्धरा दुह्यमान की थी अर्थात् भूमि का दोहन किया था ॥२६-२७॥ इस भूमि ने यथोप्सित क्षीरफल प्रदान किया था। उसके द्वारा प्राणों को धारण न करते हुए ही दिया था। राजा पृथु के धर्म के पूर्ण ज्ञाता थे और अन्तर्धिपाती समुत्पन्न हुए थे ॥२८॥

शिखण्डिनो हविर्धानमन्तर्धानाद् व्याजायत ।
हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान् ॥२९
प्राचीनबर्हिषं शुक्रं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ।
प्राचीनबर्हिर्भगवान्महानासीत्प्रजापतिः ॥३०
हविर्धानान्मुनिश्रेष्ठा येन संवर्द्धिताः प्रजाः ।
प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां द्विजसत्तमाः ।
प्राचीनबर्हिर्भगवान् पृथिवीतलचारिणीः ॥३१
समुद्रतनयायां तु कृतदारोऽभवत् प्रभुः ।
महतस्तपसः पारे सवर्णायां प्रजापतिः ॥३२

सवर्णायत्त सामुद्री दश प्राचीनवर्हिषः ।
सर्व्वान् प्राचेतसो नाम धनुर्व्वेदस्य पारगान् ॥३३
अपृथग्धर्म्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ।
दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥३४
तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतःसु महीरुहाः ।
अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥३५

अन्तर्धान के वीर्य से शिखण्डिनी ने हविर्धान को जन्म दिया था। आग्नेयी धिषणा नाम धारिणी पत्नी ने हविर्धान के साथ सहवास करके उसके वीर्य से छै सुतों को प्रसव दिया था ॥२९॥ उन छै पुत्रों के नाम ये हैं—प्राचीन बर्हि-शुक्र-गय-कृष्ण-व्रज और अजिन। भगवान् प्राचीन बर्हि महान् प्रजापति हुए थे ॥३०॥ हे मुनि श्रेष्ठो! जिसने हविर्धान से अपनी प्रजाजनों को भली भाँति वर्धित किया था। हे द्विज श्रेष्ठो! उसके पृथिवी मे पृथ्वीतल पर चरण करने वाली प्राचीनाग्र कुशा हुए थे ॥३१॥ प्राचीन बर्हि भगवान् समुद्र की तनया में दारा को ग्रहण करने वाले प्रभु हुए थे। महान् तप से सवर्णा मे प्रजापति हुए ॥३२॥ सामुद्री सवर्णा ने दश प्राचीन बर्हीं धारण किये थे। उन सबके प्राचेतस नाम थे और वे सब धनुर्वेद के पारगामी विद्वान थे ॥३३॥ अपृथक् धर्म के चरण करने वाले उन्होंने महान् तपश्चर्या की थी। दश हजार वर्ष पर्यन्त उन्होंने समुद्र के जल मे ही शयन किया था ॥३४॥ प्रचेताओं के तप करने पर महीरुह अरक्ष्यमाण पृथिवी से बोले—प्रजाक्षय होगया था ॥३५॥

नाशकन्मारुतो वातुं वृतं खमभवद्द्रुमैः ।
दश वर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ॥३६
तदुपश्रुत्य तपसा युक्ताः सर्व्वे प्रचेतसः ।
मुखेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्जातमन्यवः ॥३७
उन्मूलानथ वृक्षांस्तु कृत्वा वायुरशोषयत् ।
तानग्निरदहद्घोर एवमासीद्द्रुमक्षयः ॥३८

क्रमक्षयमथो बुद्ध्वा किञ्चिच्छिष्टे षु शाखिषु ।
उपगम्याब्रवीदेतांस्तदा सोमः प्रजापतीन् ॥३९
कोपं यच्छत राजानः सर्व्वे प्राचीनबर्हिषः ।
वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमारुतौ ॥४०
रत्नभूता च कन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी ।
भविष्यं जानता तात धृता गर्भेण वै मया ॥४१
मारिषा नाम नाम्नैषा वृक्षाणामिति निर्म्मिता ।
भार्य्या वोऽस्तु महाभागा सोमवंशविवर्द्धिनी ॥४२

वायु वहन नहीं कर सका था और आकाश द्रुमों से समावृत हो गया था। दश हजार वर्ष तक प्रजा कुछ भी चेष्टा न कर सकी थी ॥३६॥ यह श्रवण करके भय से मुक्त सब प्रचेतस बहुत क्रोधित होगये थे और मुखों से उन्होंने वायु की और अग्नि की सृष्टि की थी ॥३७॥ वायु ने समस्त वृक्षों को उखाड़ कर सुखा दिया था और घोर अग्नि ने उनको दग्ध कर दिया था। इस प्रकार से द्रुमों का क्षय हो गया था ॥३८॥ इनके इस क्रम से क्षय का ज्ञान प्राप्त करके जबकि कुछ थोड़े से ही शाखी अर्थात् वृक्ष शेष रह गये थे उस समय में सोम ने वहाँ उपस्थित होकर इन प्रजापतियों से कहा था—आप सभी प्राचीन बर्हि राजा लोगो ! कोप को शान्त करो। इस पृथिवी को वृक्षों से शून्य कर दिया है अब अग्नि और वायु का शमन करो ॥३९-४०॥ यह वर वर्णिनी वृक्षों की रत्न स्वरूप कन्या है। हे तात ! भविष्य का ज्ञान रखने वाले मैंने गर्भ के द्वारा इसको धारण किया था ॥४१॥ नाम से यह मारिषा है और यह वृक्षों की है—इसीलिये निर्मित की थी। यह महान् भाग वाली सोमवंश का विवर्धन करने वाली आपकी भार्या होगी ॥४२॥

युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः ।
अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापतिः ॥४३
स इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन च ।
अग्निनाग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्द्धयिष्यति ॥४४

ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः ।
संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीं धर्म्मेण मारिषाम् ॥४५
दशभ्यस्त प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ।
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन भो द्विजाः ॥४६
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः ।
स सृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः ॥४७
ददौ दश स धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
शिष्टाः सोमाय राज्ञे च नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः ॥४८
तासु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः ।
गन्धर्व्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥४९
ततः प्रभृति विप्रेन्द्राः प्रजा मैथुनसंभवाः ।
सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्व्वेषां प्रोच्यते प्रजाः ॥५०

आपके आधे तेज से और मेरे आधे तेज से इसमे दक्ष नाम धारी एक प्रजापति की उत्पत्ति होगी ॥४३॥ वह प्रायः दग्ध हुई इसको आपके तेजोमय अग्नि से अग्नि के ही समान पुनः प्रजाओ का सम्वर्धन करेगा ॥४४॥ इसके अनन्तर सोम के वचन से उन्होने प्रचेताओ ने इसको स्वीकार कर लिया था । कोप को हटाकर जो कि वृक्षों पर था मारिषा पत्नी को धर्म विधि के साथ ग्रहण किया था ॥४५॥ उन दशं प्रचेताओं से उस मारिषा मे वह महान् तेजस्वी हे द्विजगण ! सोम के अंश से प्रजापति दक्ष ने जन्म ग्रहण किया था ॥४६॥ उस दक्ष ने चर और अचर, द्विपद और चतुष्पद इन सबका सृजन करके फिर पीछे मन से उसने स्त्रियों की सृष्टि की थी ॥४७॥ उन सृजन की हुई कन्याओ मे से दश तो उस प्रभु ने धर्म को समर्पित की थी—तेरह कश्यप ऋषि को प्रदान की और नक्षत्र नाम वाली कन्याओ को सोम के लिये प्रदान किया था ॥४८॥ उन्ही कन्याओ के गर्भों से समस्त देवता-खग-गौएँ-नाग-दैत्य-दानव-गन्धर्व-अप्सराएँ और अन्य सब जातियाँ उत्पन्न हुए थे ॥४९॥ हे विप्रेन्द्रो ! तभी से आरम्भ करके ये सम्पूर्ण प्रजा मैथुन के द्वारा जन्म ग्रहण करने वाली हुई थी । इससे पूर्वकाल मे तो केवल

मानसिक संकल्प से--दर्शन मात्र से--स्पर्श कर लेने भर से प्रजा पूर्वजों को हुई थी और यह सब अयोनिज थी ॥५०॥

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम् ।
सम्भवस्तु श्रुतोऽस्माभिर्दक्षस्य च महात्मनः ।।५१
अंगुष्ठाद्ब्रह्मणो जज्ञे दक्षः किल शुभव्रतः ।
वामांगुष्ठात्तथा चैवं तस्य पत्नी व्यजायत ।।५२
कथं प्राचेतसत्वं स पुनर्लेभे महातपाः ।
एत न्न संशय सूत व्याख्यातुं त्वमिहार्हसि ।
दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ।।५३
उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भतेषु भोद्विजाः ।
ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये जनाः ।।५४
युगे युगे भवन्त्येते पुनर्दक्षादयो नृपाः ।
पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति ।।५५
ज्यैष्ठं कानिष्ठ्यमप्येषांपूर्व्वंनासीद्द्विजोत्तमाः ।
तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ।।५६
इमां विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम् ।
प्रजावानायुरुत्तीर्ण. स्वर्गलोके महीयते ।।५७

शौनकादि मुनियो ने कहा—हे सूतजी ! देवो का-दानवों का-गन्धर्व-उरग और राक्षसो का जन्म जिस प्रकार से और जिनसे हुआ—यह तो हमने श्रवण कर लिया और महात्मा दक्ष की उत्पत्ति भी सुन ली है कि यह दक्ष प्रजापति जो परम शुभ व्रत वाला था ब्रह्माजी के अंगुष्ठ से समुत्पन्न हुआ था और प्रजापति दक्ष की पत्नी उन्हीं के बाये अंगूठे से समुत्पन्न हुई थी ।।५१-५२।। किन्तु यहाँ पर यह सन्देह होता है कि वह महा तपस्वी प्राचेत सत्व को पुनः कैसे प्राप्त होगया था। हे सूतजी ! हमारे हृदय मे यह बड़ा संशय हो रहा है। अब आप इसका स्पष्ट करण करते हुए व्याख्या करने की कृपा कीजिए। यह महानुभाव तो सोम का धेवता था फिर यह श्वशुर कैसे बन गया

था ? ॥५३॥ श्रीलोमहर्षणजी ने कहा—हे द्विजगणो ! प्राणियो मे उत्पत्ति और निरोध नित्य ही हुआ करता है । जो महापुरुष विद्वान् है तथा जो ऋषिगण हैं वे इस विषय मे मोह को प्राप्त नहीं होते हैं क्योंकि उनको ज्ञान होता है और जो ज्ञानी है वह कभी मोह को प्राप्त नही करता है मोह तो अज्ञान से ही होता है ॥५४॥ युग-युग मे ये दक्ष आदि नृप पुनः पुनः उत्पन्न हुआ करते हैं और फिर-फिर इनका निरोध भी हुआ करता है । जो विद्वान् हैं वे उस विषय मे मोह को प्राप्त नही होते हैं ॥५५॥ हे द्विजोत्तमो ! पूर्व मे इनकी ज्येष्ठता और कनिष्ठता नही थी केवल तप ही बड़ा होता था और उसका प्रभाव छोटे-बड़े होने का कारण था ॥५६॥ जो मनुष्य इस चर और अचर से युक्त दक्ष प्रजापति की विशेष सृष्टि का ज्ञान प्राप्त कर लेता है वह प्रजा वाला और आयु में उत्तीर्ण होकर अन्त मे स्वर्ग लोक मे प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥५७॥

---

## ३—देवादानवोत्पत्ति वर्णन

देवानां दानवानां च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम् ।
उत्पत्ति विस्तरेणैव लोमहर्षण कीर्त्तय ॥१

प्रजाः सृजति व्यादिष्टः पूर्व्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणुत भो द्विजाः ॥२

मानसान्येव भूतानि पूर्व्वमेवासृजत् प्रभुः ।
ऋषीन् देवान्सगन्धर्व्वानसुरान्यक्षराक्षसान् ॥३

यदास्य मानसी विप्रा न व्यवर्द्धन्त वै प्रजाः ।
तदा सञ्चिन्त्य धर्म्मात्मा प्रजाहेतोः प्रजापतिः ॥४

स मैथुनेन धर्म्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
असिक्नीमावहत् पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः ॥५

सुतां सुतपसा युक्तां महतीं लोकधारिणीम् ।
अथ पुत्रसहस्राणि वैरण्यां पञ्च वीर्य्यवान् ॥६

असिक्न्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः ।
तास्तु दृष्ट्वा महाभागानुसविवर्द्धयिषून् प्रजाः ॥७

मुनिगणों ने कहा—हे लोमहर्षणजी ! अब आप कृपा करके देवों की–दानवों की और गन्धर्व, उरग तथा राक्षसों की उत्पत्ति का वर्णन विस्तार पूर्वक करिये ॥१॥ भगवान् लोमहर्षणजी ने कहा—हे द्विजगणो ! सबसे पूर्व में स्वयम्भू ने दक्ष प्रजा पति को विशेष रूप से आज्ञा प्रदान की और वह ही प्रजा का सृजन करता है। उसने जिस प्रकार से भूतों का सृजन किया उनका मैं वर्णन करता हूँ आप लोग श्रवण करो ॥२॥ सबसे प्रथम तो प्रभु ने मानसी सृष्टि की रचना की और समस्त भूतों को–ऋषियों को-देवों को-गन्धर्वों को- असुरों को–रक्षों को और राक्षसों को बनाया अर्थात् इन सबका सृजन मन से ही किया ॥३॥ किन्तु जब उन्होंने देखा कि वह मानसी सृष्टि जो हुई उससे प्रजा में कोई वृद्धि न हुई उस समय में धर्मात्मा प्रजापति ने सोच-विचार करके प्रजा की वृद्धि के लिये उसने विविध प्रकार की प्रजा के सृष्टि की इच्छा रखते हुए मैथुन के द्वारा रचना करने की बात सोची और वीरण प्रजापति की असिक्नी नाम वाली पत्नी हुई ॥४-५॥ वह सुता सुन्दर तप से समन्वित महती और लोकों को धारण करने वाली थी। बल वीर्य वाले प्रजापति दक्ष ने उस असिक्नी के गर्भ से जो वैरिणी थी, पाँच सहस्र पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया। देवर्षि श्रीनारदजी ने उन प्रजाओं के संवर्धन करने की इच्छा वाले महाभागों को देखा ॥६-७॥

देवर्षिः प्रियसंवादो नारदः प्राब्रवीदिदम् ।
नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा ॥८
यं कश्यपः मुनिवरं परमेष्ठी त्वजीजनत् ।
दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः ॥९
पूर्वं स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः ।
असिक्न्यामथ वैरण्यां भूयो देवर्षिसत्तमः ॥१०
स भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम् ।
तेन दक्षस्य वै पुत्रा हर्यश्वा इति विश्रुताः ॥११

निर्म्मथ्य नाशिताः सर्व्वे विधिना च न संशयः ।
तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रमः ॥१२
ब्रह्मर्षीन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना ।
ततोऽभिसन्धिश्चक्रे वै दक्षस्य परमेष्ठिना ॥१३
कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति ।
ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने ।
स तस्यां नारदो जज्ञे भूयः शापभयादृषिः ॥१४

परम प्रिय सम्वाद वाले देवर्षि नारदजी ने उनको देखकर यह वचन कहा । उनका वह वचन नाश के लिये तथा अपने आपके शाप के लिये था ॥८॥ दक्ष की दुहिता में दक्ष के शाप के भय से परमेष्ठी कश्यप मुनि ने जिस पुत्र को समुत्पन्न किया था ॥९॥ वह पूर्व में परमेष्ठी के नारद समुत्पन्न हुआ । फिर वैरिणी वसिक्नी में परम श्रेष्ठ देवर्षि हुआ ॥१०॥ पिता के ही समान पुनः उस मुनियों में श्रेष्ठ को जन्म ग्रहण कराया गया । इसी कारण दक्ष के पुत्र 'हर्यश्व'—इस नाम से प्रसिद्ध हुए ॥११॥ विधाता ने निर्मथन करके सबका नाश कर दिया था—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । उस समय अपरिमित बल विक्रम शाली दक्ष उसके विनाश करने के लिए उद्यत होगया ॥१२॥ ब्रह्मर्षियों को आगे करके परमेष्ठी के द्वारा याचना की गयी । इसके अनन्तर, परमेष्ठी ने दक्ष की अभिसन्धि की थी ॥१३॥ मेरे लिये नारद कन्या में तेरा पुत्र होवेगा, यह अभिसन्धि थी । इसके अनन्तर दक्ष ने प्रिय कन्या को परमेष्ठी के लिए अर्पित कर दिया । उस ऋषि ने पुनः शाप के भय से उसमें नारद होकर जन्म लिया था ॥१४॥

कथं प्रणाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा ।
प्रजापतेः सूतवर्य्य श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥१५
दक्षस्य पुत्रा हर्य्यश्वा विवर्द्धयिषवः प्रजाः ।
समागता महावीर्य्या नारदस्तानुवाच ह ॥१६
बालिशा वत यूयं वै नास्या जानीत वै भुवः ।
प्रमाण स्रष्टुकामा वै प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ॥१७

अन्तरूद्ध्वंमधश्चैव कथं सृजथ वै प्रजाः ।
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्व्वतो दिशः ॥१८
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ।
हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः ॥१९
वैरण्यामथ पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ।
विवर्द्धयिषयस्ते तु शबलाश्वास्तथा प्रजाः ॥२०
पूर्व्वोक्तं वचनं ते तु नारदेन प्रचोदिताः ।
अन्योन्यमूचुस्ते सर्व्वे सम्यगाह महानृषिः ॥२१

शौनकादि मुनियों ने कहा—हे सूतजी ! महर्षि नारदजी ने प्रजापति के पुत्रों का क्यों नाश किया था ? हम लोग इसका कारण तात्विक रूप से श्रवण करना चाहते हैं। आप कृपया इसका वर्णन कीजिए ॥१५॥ श्री लोमहर्षण जी ने कहा—प्रजापति दक्ष के वो पुत्र हर्यश्व नाम वाले थे वे सब प्रजा की वृद्धि करने की इच्छा वाले थे और महान् वीर्य वाले समागत हुए थे। उनसे श्री नारदजी ने कहा था। श्री नारदजी बोले—बड़े खेद की बात है कि तुम सब बड़े मूर्ख हो और इस भूमि के विषय में कुछ भी नहीं जानते हो कि इसका क्या प्रमाण है और प्राचेतसात्मज प्रजा का सृजन करने की इच्छा वाले होगये हो ॥१६-१७॥ अन्दर ऊपर-नीचे कैसे प्रजा का सृजन करें। वे उनके वचन का श्रवण करके सभी दिशाओं की ओर प्रयाण कर गये थे ॥१८॥ समुद्र को प्राप्त करके जैसे फिर नदियाँ वापिस नहीं होती हैं वे आज तक निवृत्त नहीं हो रहे हैं। इस तरह हर्यश्वों के नष्ट हो जाने पर प्राचेतस प्रभु दक्ष प्रजापति ने वैरिणी में एक सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया था तथा वे सब शबलाश्व प्रजाओं के वर्धन करने की इच्छा वाले थे ॥१९-२०॥ देवर्षि नारदजी के द्वारा प्रेरित हुए उन्होंने परस्पर में पूर्वोक्त वचन कहा था कि महान ऋषि ने ठीक ही कहा है ॥२१॥

भ्रातृणां पदवी ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र संशयः ।
ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः ॥२२

तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्व्वतो दिशम् ।
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥२३
तदा प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे द्विजाः ।
प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्य्यं विपश्चिता ॥२४
तांश्चैव नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः ।
षष्टिं ततोऽसृजत् कन्या वैरण्यामिति नः श्रुतम् ॥ ५
तास्तदा प्रतिजग्राह भार्य्यार्थं कश्यपः प्रभुः ।
सोमो धर्म्मश्च भो विप्रास्तथैवान्ये महर्षयः ॥२६
ददौ स दश धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशतिः सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥२७
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ॥२८

अपने भाइयों के मार्ग का ज्ञान प्राप्त करने के लिये जाना चाहिए—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। पृथ्वी के सूक्ष्म प्रमाण का ज्ञान प्राप्त करके प्रजा का सृजन करेंगे ॥२२॥ वे सब भी उसी मार्ग से सभी दिशाओं में चले गये थे और आज तक भी सागर में गई हुई सरिताओं के समान आज तक भी वापिस नहीं लौट रहे हैं ॥२३॥ हे द्विजगणो ! तब से लेकर भाई भाई के अन्वेषण में गया और शीघ्र नष्ट हो जाता है अतः यह कार्य विद्वान् पुरुष को नहीं करना चाहिए ॥२४॥ प्रजापति दक्ष ने उन पुत्रों को विनष्ट हुए जान कर फिर उस वैरिणी के गर्भ से साठ कन्याओं को जन्म ग्रहण कराया था—ऐसा हमने सुना है ॥२५॥ उस समय में प्रभु कश्यप ने उन सबको अपनी भार्या बनाने के लिये ग्रहण किया था। हे विप्रो ! सोम ने, धर्म ने तथा अन्य महर्षियों ने ग्रहण की थीं ॥२६॥ उन कन्याओं में से दश तो धर्म को दी थीं और तेरह कश्यप ऋषि को समर्पित की थीं—सत्ताईस सोम को दीं और चार अरिष्टनेमि को प्रदान की थीं। दो बहुपुत्र के लिये तथा दो अंगिरा ऋषि को दी थीं। दो कृशाश्व को दी थीं जो परम विद्वान् थे। अब उन सबके नामों का श्रवण करिए ॥२७-२८॥

अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती ।
सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भो द्विजाः ॥२९
धर्म्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि बोधत ।
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् व्यजायत ॥३०
मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः सुताः ।
भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्त्तास्तु मुहूर्त्तजाः ॥३१
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी च यामिजा ।
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत ॥३२
सङ्कल्पायास्तु विश्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि ।
नागवीथ्याश्च यामिन्या वृषलश्च व्यजायत ॥३३
परा याः सोमपत्नीश्च दक्षः प्राचेतसो ददौ ।
सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्त्तिताः ॥३४
ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिष्पुरोगमाः ।
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥३५

हे द्विजगणो ! अरुन्धती-वसु-यामी-लम्बा-भानु-मरुत्वती-संकल्पा-साध्या और विश्वा तथा मुहूर्त्ता—ये दश धर्म की पत्नियों के नाम थे। अब उनके गर्भों से जो सन्तति समुत्पन्न हुई उनका भी ज्ञान प्राप्त कर लो। जो विश्वेदेवा हैं वे विश्वा धर्म की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। साध्या नाम वाली पत्नी ने साध्यों को जन्म दिया था ॥२९-३०॥ मरुत्वती के गर्भ से मरुत्वान् उत्पन्न हुए तथा वसु से वसुगण प्रसूत हुए थे। भानु के भानुगण सुत हुए और मुहूर्त्ता ने मुहूर्त्तओं को जन्म दिया था ॥३१॥ लम्बा ने घोष को उत्पन्न किया और नागवीथी ने यामियों को जन्म दिया था। पृथिवी का विषय सब अरुन्धती में समुत्पन्न हुआ था ॥३२॥ संकल्पा के गर्भ से विश्वात्मा संकल्प ने जन्म ग्रहण किया था। नागवीथी और यामिनी से वृषल समुत्पन्न हुआ था ॥३३॥ दूसरी जो सोम की पत्नियाँ थीं जिनको कि प्रजापति प्राचेतस दक्ष ने सोम को समर्पित किया था वे सब नक्षत्रों के नाम वाली थीं जोकि ज्योतिष शास्त्र में वर्णित की गयी हैं ॥३४॥ जो परम ख्याति वाले

ज्योतिष शास्त्र के पुरोगम हैं वे देव आठ वसुगण हैं और इसी नाम से प्रसिद्ध हैं। अब मैं उन सबका विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूँ ॥३५॥

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धवश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥३६
आपस्य पुत्रो वैतण्डः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालोलोकप्रकालनः ॥३७
सोमस्य भगवान् वर्च्चा वर्च्चस्वी येन जायते।
धवस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ॥३८
मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा।
अनिलस्य शिवा भार्य्या तस्याः पुत्रो मनोजवः।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य च ॥३९
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रिया वृतः।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजः ॥४०
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः।
प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्नाथ देवलम् ॥४१
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ।
बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मवादिनी ॥४२

आप-ध्रुव-सोम-धव-अनिल-अनल-प्रत्यूष और प्रभास ये सब वसु नाम से कहे गये हैं ॥३६॥ आप का पुत्र वैतण्ड, श्रम, शान्त तथा मुनि थे। ध्रुव का पुत्र भगवान् काल है जो लोक का प्रकालन करने वाला है ॥३७॥ सोम का भगवान् वर्च्चा था जिससे वर्चस्वी उत्पन्न होता है। धव का आत्मज द्रविण तथा हुतहव्य रहा था ॥३८॥ मनोहरा का पुत्र शिशिर-प्राण तथा रमण थे। अनिल की भार्या शिवा थी। उसका पुत्र मनोजव हुआ था। और दूसरा अविज्ञातगति था। इस तरह से अनल के दो पुत्र हुए थे ॥३९॥ अग्निपुत्र कुमार शर को तन्वेश्री ने वरण किया। उसके शाख-विशाख और नैगमेय पृष्ठज हुए थे ॥४०॥ कृत्तिकाओं की सन्तति कार्तिकेय-इस नाम से विश्रुत कहा गया है। प्रत्यूष

का पुत्र देवल ऋषि के नाम वाला था ॥४१॥ देवल के भी क्षमावान् मनीषी हुए थे। बृहस्पति की भगिनी ब्रह्मवादिनी वरस्त्री थी ॥४२॥

योगसिद्धा जगत् कृत्स्नमसक्ता विचचार ह।
प्रभासस्य तु सा भार्य्या वसूनामष्टमस्य तु ॥४३
विश्वकर्म्मा महाभागो यस्या जज्ञे प्रजापतिः।
कर्त्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानाञ्च वार्द्ध किः ॥४४
भूषणानाञ्च सर्व्वेषां कर्त्ता शिल्पवतां वरः।
यः सर्व्वेषा विमानानि दैवतानां चकार ह ॥४५
मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः।
सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादश विनिर्म्ममे ॥४६
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती।
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्य्यवान् ॥४७
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः।
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्द्दी रैवतस्तथा ॥४८
मृगव्याधश्च शर्व्वश्च कपाली च द्विजोत्तमाः।
एकादशैते विख्याता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥४९

सम्पूर्ण जगत् में असक्त योगसिद्धा विचरण किया करती थी। वसु-गण में जो आठवां वसु प्रभास था, उसकी वह भार्या थी ॥४३॥ वसुगणों में जो अष्टम वसु प्रभास था उसकी वह भार्या थी जिसके गर्भ से महान् भाग वाला विश्वकर्मा प्रजापति समुत्पन्न हुआ। वह विश्व-कर्मा सहस्रों प्रकार के शिल्पों की रचना वाले थे और देव गणों के वार्द्धकि अर्थात् भवनादि निर्माण कराने वाले थे ॥४४॥ विश्वकर्मा सहस्रों प्रकार के भूषणों के निर्माण करने वाले तथा शिल्प के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ थे। जिसने सब देवों के लिये विमानों की रचना की थी ॥४५॥ जिस महान् आत्मा के रचने वाले के शिल्प के द्वारा मनुष्य उपजीवित रहा करते हैं। सुरभी ने कश्यप ऋषि से एकादश रुद्रों की रचना की ॥४६॥ महादेवजी के प्रसाद से तप के द्वारा वह सती होगई थी। एकादश रुद्रों के नाम बताये जाते हैं—अजैकपाद-अहिर्बुध्न्य-त्वष्टा

वीर्यवान् रुद्र-हर-बहुरूप-त्र्यम्बक-अपराजित-वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी-रैवत मृगव्याध शर्व कपाली हे द्विजोत्तमो ! ये एकादश रुद्र त्रिभुवन के ईश्वर विख्यात हुए हैं ॥४७-४६॥

शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम् ।
पुराणे मुनिशार्दूला यैर्व्याप्तं सचराचरम् ॥५०
दारानृशृणुध्वं विप्रेन्द्राः कश्यपस्य प्रजापतेः ।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खसा ॥५१
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इला ।
कद्रुर्मुनिश्च भो विप्रास्तास्वपत्यानि बोधत ॥५२
पूर्व्वमन्वतरे श्रेष्ठाद्वादशासन् सुरोत्तमाः ।
तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥५३
उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
हितार्थं सर्व्वलोकानां समागम्य परस्परम् ॥५४
आगच्छत द्रुतं देवा अदिति सम्प्रविश्य वं ।
मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्नःश्रेयो भविष्यति ॥५५
एवमुक्ता तु ते सर्व्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
मारीचात् कश्यपाज्जाजास्त्वदित्या दक्षकन्यया ॥५६

हे मुनिशार्दूलो ! इस प्रकार से अमित ओज वाले रुद्रों के शत समाख्यात किये गये हैं अर्थात् बताये गये हैं। जिसकी पुराण मे चर्चा है और जिनके द्वारा यह समस्त चराचर व्याप्त हो रहा है ॥५०॥ हे विप्रेन्द्रो ! अब प्रजापति कश्यप की पत्नियों के विषय मे आप लोग श्रवण करिए। उनके नाम ये हैं—अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इला, कद्रू और मुनि ये इतनी कश्यप मुनि की दाराएँ थी। हे विप्रो ! उन सब पत्नियों में जो सन्तानें हुई थी उनको भी जान लो ॥५१-५२। पूर्व मन्वन्तर मे परम श्रेष्ठ द्वादश सुरोत्तम थे। वैवस्वत मन्वन्तर मे वे परस्पर में 'तुषिता'—इस नाम से कहा करते थे ॥५३॥ चाक्षुष मनु के अन्तर में जब यह उपस्थित हुआ तो अति यशस कहे जाते थे। समस्त लोकों के हित सम्पा-

दन करने के लिये सब देवगण परस्पर में समागत होकर बहुत शीघ्र ही अदिति के समीप आगये थे और अदिति में प्रवेश कर गये थे और उन्होंने कहा था—हम मन्वन्तर में प्रसूत होंगे उससे हमारा श्रेय होगा ॥५४-५५॥ इस प्रकार से कहे गये वे सब चाक्षुष मनु के अन्तर में मारीच कश्यप के वीर्य से दक्ष की कन्या अदिति के गर्भ से समुत्पन्न हुए थे ॥५६॥

तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि ।
अर्य्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ॥५७
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥५८
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्व्वमासंस्ते तुषिताः सुराः ।
वैवस्वतेऽन्तरे ते वा आदित्या द्वादश स्मृताः ।
सप्तविंशति ताः प्रोक्ताः सोमपत्न्यो महाव्रताः ।
तासामपत्यान्यभवन् दीप्तान्यमिततेजसः ॥५९
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोड़श ।
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृता ॥६०
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्व्वं ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः ।
कृशाश्वस्य च देवर्षेर्देवप्रहरणाः स्मृताः ॥६१
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ।
सर्व्वं देवगणाश्चात्र त्रयस्त्रिंशत्तु कामजा, ॥६२
तेषामपि च भो विप्रा निरोधोत्पत्तिरुच्यते ।
यथा सूर्य्यस्य गगने उदयास्तमयाविह ॥६३

उसमें विष्णु-इन्द्र-पुनः समुत्पन्न हुए थे । अर्य्यमा-धाता-त्वष्टा-पूषा-विवस्वान् सविता-मित्र-वरुण-अंश-भग और अतितेजा ये द्वादश आदित्य कहे गये हैं ॥५७-५८॥ ये चाक्षुष के अन्तर में पहिले तुषितासुर थे । वैवस्वत मन्वन्तर में ये द्वादश आदित्य कहे गये हैं । सोम की पत्नियाँ सताईस महान् व्रत वाली कही गयी हैं । उनकी सन्तान अमित तेज वाली परम दीप्त हुई थी ॥५९॥ अरिष्टनेमि की पत्नियों की सन्तति

सोलह हुई थी। बहुपुत्र विद्वान् के चार विद्युत् कही गयी हैं ॥६०॥ चाक्षुषमनु के अन्तर मे पूर्व ऋचाऐं ब्रह्मर्षियों के द्वारा सत्कृत थी। देवर्षि कृशाश्व की देव प्रहरण नाम से कही गयी हैं ॥६१॥ ये सब एक सहस्र युगों के अन्त में पुनः उत्पन्न हुआ करते हैं समस्त देवगण कामज यहाँ पर तैंतीस हैं ॥६२॥ हे विप्रो ! उनकी भी निरोधोत्पत्ति कही जाती है। जिस तरह से गगन मे सूर्यदेव का यहाँ पर उदय और अस्त दोनो ही हुआ करते हैं ॥६३॥

एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे।
दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥६४
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्य्यवान्।
सिंहिकाचाभवत् कन्या विप्रचित्तेःपरिग्रहा ॥६५
सैंहिकेया इति ख्याता तस्याः पुत्रा महाबलाः।
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः ॥६६
ह्लादश्च अनुह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्य्यवान्।
सह्लादश्च चतुर्थोऽभूद्ह्लादपुत्रो ह्लदस्तथा ॥६७
ह्लदस्य पुत्रौ द्वौ वीरौ शिवः कालस्तथैव च।
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्बलिजज्ञे विरोचनात् ॥६८
बलेः पुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं तपोधनाः।
धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्चचन्द्रमाश्चन्द्रतापनः ॥६९
कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः।
बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ॥७०

इसी प्रकार से देवो के निकाय अर्थात् समुदाय युग-युग मे उत्पन्न हुआ करते है। दिति के गर्भ से कश्यप महर्षि के वीर्य से दो पुत्र हुए थे—ऐसा ही हमने सुना है ॥६४॥ एक का नाम हिरण्यकशिपु था और दूसरा महान् बल वीर्य वाला हिरण्याक्ष था। एक सिंहिका नाम वाली कन्या थी जो विप्रचित्ति का परिग्रह थी ॥६५॥ उनके महान् बल वाले पुत्र "सैंहिकेय"—इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे। हिरण्यकशिपु के प्रथित ओज वाले चार पुत्र हुए थे ॥६६॥ ह्लाद-अनुह्लाद और वीर्यवान् प्रह्लाद

था चौथा पुत्र संह्लाद था ह्लाद का पुत्र ह्रद हुआ था ॥६७॥ ह्रद के दो महान् और पुत्र समुत्पन्न हुए थे उनके नाम शिव और काल ये दो थे। प्राह्लादि विरोचन उत्पन्न हुआ और विरोचन से बलि ने जन्म ग्रहण किया था ॥६८॥ राजा बलि के एक सौ पुत्रों ने जन्म लिया था। हे तपोधनो! उन सब में बाण सबसे बड़ा पुत्र था। अन्य पुत्रों के नाम भी धृतराष्ट्र-सूर्य-चन्द्रमा-चन्द्रतापन-कुम्भनाभ-गर्दभाक्ष और कुक्षि इत्यादि थे। उन सब में बाण अत्यन्त बलवान् और ज्येष्ठ था जो कि भगवान् पशुपति का अत्यन्त प्रिय भक्त था ॥६९-७०॥

पुरा कल्पे तु बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम् ।
पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं याचितो वरः ॥७१
हिरण्याक्षसुताश्चैव विद्वांसश्च महाबलाः ।
उर्ज्जरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥७२
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च ।
अभवन् दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः ॥७३
तपस्विनो महावीर्याः प्राधान्येन ब्रवीमि तान् ।
द्विमूर्द्धा शङ्कुकर्णश्च तथा हयशिरा विभुः ॥७४
अयोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा ।
मारीचिर्मघवाश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा ॥७५
विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्य्यशतह्रदौ ।
इन्द्रजित्सर्व्वजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ॥७६
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः ।
वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहाशिराः ॥७७
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च विप्रचित्तिश्च वीर्य्यवान् ।
सर्व्वं एते दनोः पुत्राः कश्यपादभिजज्ञिरे ॥७८

पहिले कल्प में बाण ने उमापति प्रभु को प्रसन्न करके पार्श्व भाग में विहार करूँगा—यह वरदान माँगा था ॥७१॥ हिरण्याक्ष के पुत्र भी महान् बलवान और परम विद्वान् थे। उर्ज्जर-शकुनि-भूत सन्तापन महानाभ विक्रान्त और कालनाभ आदि इनके परम तीव्र पराक्रम वाले

एक सौ पुत्र हुए थे। ये बड़े तपस्वी महान वीर्य वाले थे। उनमें जो विशेष प्रधान थे उनके नाम इस समय में मैं बतलाता हूं। द्विमूर्धा-शंकुकर्ण, हयशिरा, विभु, अयोमुख, शम्बर, कपिल, वामन, मारीचि, मघवान् इल्वल, स्रसृम थे तथा विक्षोभण, केतु, केतुवीर्य, शतहृद, इन्द्रजित्, सर्वजित् वज्रनाभ, एकचक्र, महाबाहु महाव्रत, तारक वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण महाशिरा, स्वर्भानु, वृषपर्वा, वीर्यवान् विप्रचित्ति ये सब दनु के ही पुत्र थे जो महर्षि कश्यपजी के वीर्य से दनु के गर्भ से समुत्पन्न हुए थे ॥७२-७८॥

विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः सुमहाबलाः ।
एतेषां पुत्रपौत्रन्तु न तच्छक्यं द्विजोत्तमाः ॥७९
असंख्यातु बहुत्वाच्च पुत्रपौत्रमनन्तकम् ।
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची सुता ॥८०
उपदानवी हयशिराः शर्मिष्ठा वार्षपर्व्वणी ।
पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ।
बह्वपत्ये महापत्ये मारीचेस्तु परिग्रहः ॥८१
तयोः पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवनन्दनाः ।
चतुर्दशशतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः ।
मारीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः ॥८२
पौलोमाः कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः ।
अवध्या देवतानां हि हिरण्यपुरवासिनः ॥८३
पितामहप्रसादेन ये हताः सव्यसाचिना ।
ततोऽपरे महावीर्य्या दानवास्त्वतिदारुणाः ॥८४

विप्रचित्ति जिनमें परम प्रमुख था ऐसे ये सब दानव महान बलवान् थे। हे द्विजोत्तमो! इनके पुत्रों और पौत्रों की संख्या तो इतनी अधिक थी कि उनकी संख्या नहीं की जा सकती है क्योंकि इतने ज्यादा थे तथा अनन्त थे कि गणना हो ही नहीं सकती है। स्वर्भानु की कन्या प्रभा नाम वाली थी और शची पुलोमा की पुत्री थी ॥७९-८०॥ उपदानवी हयशिरा, शर्मिष्ठा, वार्षपर्वणी और पुलोमा कालिका ये दोनों

वैश्वानर की पुत्रियाँ थीं। बहुत सन्तति वाली और महान् सन्तान वाली मारीचि का परिग्रह था ॥८१॥ उन दोनों में महान् तपस्या से युक्त मारीचि ने साठ हजार दानव नन्दन, पुत्र और चौदह सौ अन्य हिरण्यपुर वासी लोगों को जन्मग्रहण कराया था ॥८२॥ वे हिरण्यपुर के निवास करने वाले पौलोम कालकेय और महान् बलवान् दानव जो देवों के द्वारा भी वध करने के योग्य नहीं थे उत्पन्न हुए थे ॥८३॥ पितामह के प्रसाद से ही ये ऐसे हुए थे किन्तु ये मध्यपायी के द्वारा हत हुए थे। इसके अनन्तर महान् वीर्यशाले अत्यन्त दारुण दूसरे दानव भी हुए थे ॥८४॥

सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तथा ।
दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः ॥८५
सैंहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः ।
वंशः शल्यश्च बलिनो नलश्चैव तथा बलः ॥८६
वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा ।
अञ्जिको नरकश्चैव कालनामस्तथैव च ॥८७
सरमाणस्तथा चैव स्वरकल्पश्च वीर्य्यवान् ॥८८
मुकश्चैव तुहुण्डश्च ह्रदपुत्रौ बभूवतुः ।
मारीचः सुन्दपुत्रश्च प्रस्तुतायां व्यजायत ॥८९
एते वै दानवाः श्रेष्ठा दनोर्वंशविवर्द्धनाः ।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥९०
संह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले ।
समुत्पन्नाः सुमहता तपसा भावितात्मनः ॥९१

ये सब दानव विप्रचित्ति के सुत सिंहिका में उत्पन्न हुए थे और दैत्यों तथा दानवों के संयोग से ये सब बहुत ही तीव्र पराक्रम वाले हुए थे ॥८५॥ ये तेरह महान् बल वाले सैंहिकेय इस नाम से विख्यात हुए थे। बलवान् वंश और शल्य नल तथा बल-वातापि, नमुचि, इल्वल, खसृम-अञ्जिक, नरक, कालनाम, सरमाण और वीर्यवान् स्वरकल्प मुक और तुहुण्ड दोनों ह्रद के पुत्र थे। मारीच और सुन्दपुत्र प्रस्तुता में समुत्पन्न हुए थे

॥८६-८६॥ ये परम श्रेष्ठ और दनु के वंश का वर्धन करने वाले हुए थे। उनके पुत्र पौत्र सैंकड़ों तथा सहस्रों ही हुए थे ॥६०॥ संह्लाद दैत्य के कुल में निवात कवच सुमहान् तप से भावित आत्मा वाले समुत्पन्न हुए थे ॥६१॥

तिस्रः कोटयः सुतास्तेषामनिवत्यां निवासिनः।
अवध्यास्तेऽपि देवानामर्ज्जुनेन निपातिताः।
षट् सुताः सुमहाभागास्ताम्रायाः परिकीर्त्तिताः ॥६२
क्रौञ्ची श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृध्रिका।
क्रौञ्ची तु जनयामास उलूकप्रत्यलूककान् ॥६३
श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृध्रांश्च गृध्र्यपि।
शुचिरौदकान्पक्षिगणान्सुग्रीवी तु द्विजोत्तमाः ॥६४
अश्वानुष्ट्रान् गर्द्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्त्तितः।
विनतायास्तु द्वौ पुत्रौ विख्यातौ गरुड़ारुणौ ॥६५
गरुड़ः पतता श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्म्मणा।
सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाममितौजसाम् ॥६६
अनेकशिरसां विप्राः खचराणां महात्मनाम्।
काद्रवेयास्तु बलिनः सहस्रममितौजसः ॥६७
सुपर्णवशगा नागा जज्ञिरे नैकमस्तकाः।
येषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः ॥६८

उसके तीन करोड़ पुत्र थे जो अनिवती में निवास करने वाले थे। वे सभी देवों के द्वारा अवध्य थे तथा अर्जुन ने उनको मार गिराया था। छै पुत्र महान् भाग वाले ताम्रा के बताये गये हैं ॥६२॥ श्येनीने श्येनों को, भासी ने भासों को, गृध्युपि ने गृध्रों को, शुचि ने जल में रहने वालों को तथा हे द्विजोत्तमो ! सुग्रीवी ने पक्षिगणों को उत्पन्न किया था तथा अश्वों को- उष्ट्रों को और गर्दभों को जन्म दिया था। यह ताम्र वंश वर्णन किया गया है। विनता नाम वाली कश्यप मुनि की पत्नी के दो पुत्र हुए थे। एक का नाम गरुड़ था और दूसरा अरुण था ॥६३-६५॥ गरुड़ पक्षियों में परम श्रेष्ठ था तथा महान् दारुण अपने कर्म से

था । सुरसा नाम की भार्या से अपरिमित ओज वाले सर्पों के एक सहस्र पुत्र हुए थे ॥९६॥ हे विप्रगणो ! अनेक शिर वाले महात्मा खचरों के अमित ओज वाले एक सहस्र महान् बलवान् काद्रवेय हुए थे ॥९७॥ अनेक मस्तकों वाले सुपर्ण वशग नाग उत्पन्न हुए थे जिनमे निरन्तर शेष-वासुकि और तक्षक ये तीनों प्रमुख थे ॥९८॥

ऐरावतो महापद्मः कम्वलाश्वतरावुभौ ।
एलापत्रश्च शङ्खश्च कर्कोटकधनञ्जयौ ॥९९
महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रबलाहकौ ।
कुहरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्म्मुखः सुमुखस्तथा ॥१००
शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो वामनस्तथा ।
नहुषः शङ्खरोमाच मनिरित्येवमादयः ॥१०१
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
चतुर्दशसहस्राणि क्रूराणामनिलाशिनाम् ॥१०२
गणं क्रोधवशं विप्रास्तस्य सर्व्वे च दंष्ट्रिणः ।
स्थलजाः पक्षिणोऽजाश्च धरायाः प्रसवाः स्मृताः ॥१०३
गास्तु च जनयामास सुरभिर्महिषीस्तथा ।
इरा वृक्षलता वल्लीस्तृणजातीश्च सर्व्वशः ॥१०४
खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ।
अरिष्टा तु महासिद्धा गंधर्व्वानमितौजसः ॥१०५

ऐरावत-महापद्म-दोनों कम्बल और अश्वतर-एलापत्र-शङ्ख-कर्कोटक धनञ्जय-महानील-महाकर्ण-धृतराष्ट्र-बलाहक-कुहर-पुष्पदंष्ट्र-दुर्मुख सुमुख शंख-शंखपाल-कपिल-वामन-नहुष-शङ्ख रोमा और मनि इत्यादि उनके पुत्र तथा पौत्र सैकड़ों एवं सहस्रों ही थे । इन अनिल ( वायु ) के अशन करने वालों के जो बहुत ही क्रूर हैं चौदह सहस्र भेद प्रभेद हैं ॥९९-१०२॥ हे विप्रो ! उसका गण क्रोध के वशीभूत था और उसके समस्त दंष्ट्रा वाले हुए हैं । स्थल मे उत्पन्न पक्षी और अज ये सब धरा की सन्तति कही गयी हैं ॥१०३॥ गायों को सुरभि महिषियों का जन्म दिया था । इरा वृक्ष लता, वल्ली और सब तृण जातीयों को उत्पन्न

किया था ॥१०४॥ खसा नाम वाली कश्यपजी की पत्नी ने यक्षों और राक्षसों को जन्म ग्रहण कराया था तथा मुनि ने अप्सराओं को समुत्पन्न किया था। अरिष्टा महासिद्धा थी। उसने अमित ओज वाले गन्धर्वों को उत्पन्न किया था ॥१०५॥

एते कश्यपदायादाः कीर्त्तिताः स्थाणुजङ्गमाः।
येषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०६
एष मन्वन्तरे विप्राः सर्गः स्वारोचिषे स्मृतः।
वैवस्वतेऽतिमहति वारुणे वितते क्रतौ ॥१०७
जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते।
पूर्व्वं यत्र समुत्पन्नान्ब्रह्मर्षीन्सप्त मानसान् ॥१०८
पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः।
ततो विरोधे देवानां दानवानां च भो द्विजाः ॥१०९
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम्।
कश्यपस्तु प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया ॥११०
वरेण छन्दयामास सा च वव्रे वरं तदा।
पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ॥१११
स च तस्मै वरं प्रादात् प्रार्थितः सुमहातपाः।
दत्वा च वरमत्युग्रो मारीचः समभाषत ॥११२
इन्द्रं पुत्रो निहन्ता ते गर्भं वै शरदां शतम्।
यदि धारयसे शौचतत्परा व्रतमास्थिता ॥११३
तथेत्यभिहितो भर्त्ता तया देव्या महातपाः।
धारयामास गर्भं तु शुचिः सा मुनिसत्तमाः ॥११४

ये सब कश्यप मुनि के दायाद थे जो भी स्थाणु और जंगम बतलाये गये हैं। जिनके पुत्र और पौत्र सैकड़ों तथा सहस्रों की संख्या वाले हुए हैं ॥१०६॥ हे विप्रो! यह सर्ग अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति स्वारोचिष मन्वन्तर में बताई गयी है। अति महान् वैवस्वत मन्वन्तर में वारुण क्रतु के वितत होने पर आहुतियाँ देने वाले ब्रह्माजी का जो प्रजा का सृजन हुआ था वह सब यहाँ पर बतलाया जाता है ॥१०७॥ जहाँ

पर पूर्व मे सात मानस ब्रह्मर्षियो के उत्पन्न होने पर स्वयं ही पितामह ने उनको अपना पुत्र मान लिया था। इसके पश्चात् हे द्विजगणो ! देवों और दानवों का विरोध उत्पन्न होगया था ॥१०८-१०९॥ जिसके पुत्र युद्ध मे नष्ट हो गये थे ऐसी उस दिति ने कश्यप जी को सन्तुष्ट अर्थात् प्रसन्न किया था। उन प्रसन्न आत्मा वाले कश्यप जी की उस दिति ने भली भांति आराधना की थी ॥११०॥ जब कश्यपजी ने उसे वरदान मांगने की आज्ञा दी थी उस समय मे उसने कश्यप जी से यही वरदान मांगा था कि मुझे इन्द्र के वध करने के लिये शक्ति शाली एवं अपरिमित ओज वाला पुत्र प्रदान कीजिए ॥१११॥ वह महान् तपस्वी कश्यप महर्षि से जब ऐसी प्रार्थना की तो उन्होंने उसको वही वरदान दे दिया था। अत्यन्त उग्र मारीच ने वरदान देकर उससे यह कहा था ॥११२॥ इन्द्र के मारने वाला पुत्र तो होगा किन्तु उसको यदि तू सौ वर्ष तक गर्भ मे परम शौच व्रत मे परायण होकर धारण कर लेगी। सौ वर्ष पर्यन्त पूरा व्रत रखना होगा ॥११३॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उस देवी दिति ने ऐसा ही करूंगी—यह कहकर अपने स्वामी कश्यप जी को सन्तुष्ट कर दिया था। फिर महा तपस्वी से उस देवी ने परम शुचि होकर गर्भधारण कर लिया था ॥११४॥

ततोऽभ्युपागमद्दित्यां गर्भमाधाय कश्यपः।
रोचयन् वै गणं श्रेष्ठं देवनाममितौजसम् ॥११५

तेजः संहृत्य दुर्धर्षमवध्यममरैरपि।
जगाम पर्वतायैव तपसे संशितव्रतः ॥११६

तस्याश्चैवान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः।
जाते वर्षशते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः ॥११७

अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत्।
निद्रां चाहारयामास तस्याः कुक्षिं प्रविश्य सः ॥११८

वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं न्यकृन्तयत्।

इसके अनन्तर कश्यप मुनि आप स्वयं दिति में गर्भ धारण कराकर वहां से चले गये थे और देवों का जो परम श्रेष्ठ गण था जिसका ओज अमित था उसका रोचन करने वाला तथा देवों के द्वारा भी अवध्य अपना दुर्धर्ष तेज उसमें डालकर वे चले गये थे। फिर व्रतधारिणी दिति भी तप के लिये पर्वत पर चली गयी थी ॥११५-११६॥ इन्द्र उस दिति के उदर में गमन करने की इच्छा वाला हो गया था। एक सौवां वर्ष जब व्रत का चल रहा था उस समय में इन्द्र ने उस तपोव्रत में अन्तर देखा था कि अपने पैरों को न धोकर ही बिना शौच किये दिति अपनी शय्या पर शयन करने को चली गयी थी और निद्रा लेने लग गयी थी। उसी व्रत के विरुद्ध होने के समय में इन्द्र देव ने उस दिति की कुक्षि में प्रवेश किया था ॥११७-११८॥ वज्रपाणि इन्द्र ने दिति के गर्भ को वज्र से काटकर सात टुकड़े कर दिये थे। वज्र के द्वारा जब गर्भ के टुकड़े किये गये थे उस समय में वह गर्भ रुदन करने लगा था ॥११९॥

मा रोदीरिति तं शक्रः पुनःपुनरथाब्रवीत् ।
सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रुषितः पुनः ॥१२०
एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणैवारिकर्षणः ।
मरुतो नाम ते देवा बभूवु द्विजसत्तमाः ॥१२१
यथोक्तं वै मघवता तथैव मरुतोऽभवन् ।
देवाश्चैकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः ॥१२२
तेषामेवं प्रवृत्ताना भूताना द्विजसत्तमाः ।
रोचयन् वै गणश्रेष्ठान् देवानाममितौजसाम् ॥१२३
निकायेषु निकायेषु हरिः प्रादात् प्रजापतीन् ।
क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वाणि भो द्विजाः ॥१२४
स हरिः पुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः ।
पर्जन्यस्तपनोऽनन्तस्तस्य सर्व्वमिदं जगत् ॥१२५
भूतसर्गमिमं सम्यग्जानतो द्विजसत्तमाः ।
नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः ॥१२६

उस समय में इन्द्र ने बारम्बार उस गर्भस्थ बालक से कहा था—'तू रुदन मत करे'। वह गर्भ सात टुकड़ों में जब होगया था तो इन्द्र ने फिर उसके एक-एक टुकड़े के भी सात-सात खण्ड कर दिये थे क्योंकि इन्द्रदेव तो शत्रु के कर्षण करने के लिये ही उदर में प्रविष्ट हुए थे। हे द्विजश्रेष्ठो ! वे सब मरुद्गण नाम वाले देव हुए थे ॥१२०-१२१॥ मघवान् ने जैसा भी कहा था वैसे ही मरुत हुए थे। ये उनचास देवगण इन्द्र के सहायक ही हुए थे ॥१२२॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! अपरिमित ओज वाले देवों के जो समस्त भूतों में प्रवृत्त हैं उन्हीं गण श्रेष्ठों को वे देव रोचित किया करते हैं। इन्द्रदेव ने प्रजापतियों को उनके निकायों में उनको दे दिया था। हे द्विजो ! उनको क्रम से पृथु पूर्व राज्य प्रदान कर दिये थे। वह हरि वीर पुरुष है तथा कृष्ण जपन शील और प्रजाओं का स्वामी है। वही पार्जन्य है—तपन है—और अनन्त है तथा उसी का यह सम्पूर्ण जगत् है ॥१२३-१२५॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! इस प्रकार से इन भूतों के सृजन को जो जानता है और भली प्रकार से ज्ञान रखता है उसको पुनर्जन्म ग्रहण करने का भय तो होता ही नहीं है फिर परलोक का भय भी कैसे होसकता है ॥१२६॥

---

## ४—सूर्यवंश वर्णन (१)

मनोर्वैवस्वतस्यासन् पुत्रा वै नव तत्समाः।
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च ॥१

नरिष्यन्तश्च षष्ठो वै प्रांशू रिष्टश्च सप्तमः।
करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मुनिसत्तमाः ॥२

अकरोत् पुत्रकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः।
मित्रावरुणयोर्विप्राः पूर्वमेव महामतिः ॥३

अनुत्पन्नेषु बहुषु पुत्रेष्वेतेषु भो द्विजाः।
तस्यां च वर्तमानायामिष्ट्यां च द्विजसत्तमाः ॥४

मित्रावरुणयोरंशे मनुराहुतिमावहत् ।
तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ॥५
दिव्यसंहनना चैव इला जज्ञ इति श्रुतिः ।
त मिलेत्येव होवाच मनुर्दण्ड धरस्तदा ॥६
अनुगच्छस्व मां भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह ।
धर्म्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥७

श्री लोमहर्षण जी ने कहा—वैवस्वत मनु के उन्हीं के समान परम श्रेष्ठ नौ पुत्र समुत्पन्न हुए थे। उनके नाम ये हैं—इक्ष्वाकु-नाभाग-धृष्ट-शर्याति-नरिष्यन्त और छटवां प्रांशु-सातवां रिष्ट-करुष-पृषघ्न ये नौ पुत्र थे ॥१-२॥ पुत्र की कामना वाले प्रजापति मनु ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया था हे विप्रो ! उस महती मति वाले मनु ने पहिले ही मित्रावरुणों की इष्टि की थी जब तक इसके बहुत से पुत्र समुत्पन्न नहीं हुए थे। हे द्विज-श्रेष्ठो ! उस वर्त्तमान इष्टि में अर्थात् यज्ञ में मनु ने मित्रावरुणों के अंश मे आहूतियां दी थीं। उसमें परम दिव्य वस्त्रों के धारण करने वाली तथा दिव्य आभरणों से विभूषित और दिव्य संहनन वाली इला समुत्पन्न हुई थी—ऐसी श्रुति है। उस अवस्था मे दण्डधारी मनु ने उस इला से यह कहा था ॥३-६॥ हे भद्रे ! मेरे पीछे आगमन करो। उस समय में उस मनु से इला ने जोकि धर्म से युक्त और पुत्र की कामना करने वाला प्रजापति था, यह कहा था ॥७॥

मित्रावरुणयोरंशे जातास्मि वदतांवर ।
तयोः सकाशं यास्यामि न मां धर्म्महतां कुरु ॥८
सेवमुक्त्वा मनुं देवं मित्रावरुणयोरिला ।
गत्वान्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥९
अंशेऽस्मि युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम् ।
मनुना चाहमुक्ता वा अनुगच्छस्व मामिति ॥१०
तौ तथावादिनीं साध्वीमिलां धर्म्मपरायणाम् ।
मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुस्तां द्विजोत्तमाः ॥११

अनेन तव धर्म्मेण प्रश्रयेण दमेन च ।
सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवर्णिनि ॥१२
आवयोस्त्वं महाभागे ख्याति कन्येति यास्यसि ।
मनोर्व्वंशकरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि ॥१३
सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु शोभने ।
जगत्प्रियो धर्म्मशीलो मनोर्व्वंशविवर्द्धनः ॥१४

इला ने कहा—हे बोलने वालो में परम श्रेष्ठ ! मित्रावरुणो के अंश मे मैं समुत्पन्न हुई हूँ । मैं उन्ही के समीप मे जाऊँगी । मुझको धर्म से हत मत करो ॥८॥ यह मित्रावरुण की इला देव मनु से इस प्रकार से कहकर फिर वह वरारोहा उनके समीप मे जाकर दोनों हाथ जोड़कर यह कहने लगी थी ॥९॥ इला ने कहा—हे देवो ! मैं तो आप दोनो के ही अंश से उत्पन्न हुई हूँ । मैं आप दोनों के लिये क्या करूँ मनु ने मुझ से कहा है कि तुम मेरे पीछे गमन करो ॥१०॥ धर्म मे परायण उस प्रकार से प्रार्थना करने वाली उस परम साध्वी इला से मित्र और वरुण दोनों ही यह बोले ॥११॥ मित्रावरुणो ने कहा—हे वरवर्णिनी ! तुम्हारे इस धर्म-प्रश्रय-दम और सत्य से हम दोनों हे सुश्रोणी ! परम प्रसन्न हुए हैं ॥१२॥ हे महाभागे ! तुम हम दोनों की कन्या हो—इसी प्रसिद्धि को प्राप्त करोगी और इन वैवस्वत मनु के वंश के करने वाला तुमही पुत्र हो जाओगे ॥१३॥ हे शोभने ! तीनो लोकों में सुद्युम्न-इस नाम से विख्यात होगा । वह सम्पूर्ण जगत् का प्यारा धर्म में शील स्वभाव रखने वाला और मनु के वंश का बढ़ाने वाला होगा ॥१४॥

निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिकात् ॥१५
बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता ।
सोमपुत्राद्बुधाद्विप्रास्तस्यां जज्ञे पुरूरवाः ॥१६
जनयित्वा ततः सा तमिला सुद्युम्नतां गता ।
सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्म्मिकाः ॥१७

उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च भो द्विजाः।
उत्कलस्योत्कला विप्रा विनताश्वस्य पश्चिमा॥१८
दिक् पूर्व्वा मुनिशार्दूला गयस्य तु गया स्मृता।
प्रविष्टेषु तु मनौ विप्रा दिवाकरमरिन्दमम्॥१९
दशधा तत्पुनः क्षत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम्।
इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान्॥२०
कन्याभावात्तु सुद्युम्नो नैतद्राज्यमवाप्तवान्।
वसिष्ठवचनात्त्वासीत् प्रतिष्ठाने महात्मनः॥२१

यह सुनकर वह इला अपने पिता के समीप से लौट कर वापिस जारही थी कि इसी बीच मे बुध ने उसको मैथुन के लिये बुला लिया था। हे विप्रो! सोम के पुत्र बुध के वीर्य से उस इला के गर्भ से पुरूरवा उत्पन्न हुआ था॥१५-१६॥ उस इला ने उस पुरुरवा को जन्म देकर फिर वह सुद्युम्न होगई थी। उस सुद्युम्न के तीन दायाद् अर्थात् पुत्र परम धार्म्मिक उत्पन्न हुए थे॥१७॥ उनके नाम ये थे—हे विप्रो! उत्कल-गय और विनिताश्व ये तीन पुत्र हुए थे। उत्कल की राजधानी उत्कला थी और विनिताश्व की पश्चिमा थी। गय की पूर्व दिशा में गया राजधानी हुई थी। मनु के अरिन्दम दिवाकर में प्रविष्ट हो जाने पर फिर इस पृथ्वी के दश भाग किये थे। इक्ष्वाकु सबसे बड़ा पुत्र था उसने मध्य देश को प्राप्त किया था। वसिष्ठजी के वचन से महात्मा के प्रतिष्ठान में था॥१८-२१॥

प्रतिष्ठा धर्म्मराजस्य सुद्युम्नस्य द्विजोत्तमाः।
तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः॥२२
मानवेयो मुनिश्रेष्ठाः स्त्रीपुंसोल क्षणैयुंताः।
धृतवांस्तामिलेत्येवं सुद्युम्नेति च विश्रुतः॥२३
नरिष्यन्ताः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भो द्विजाः।
अम्बरीषोऽभवत् पुत्रा पार्थिवर्षभसत्तमः॥२४
धृष्टस्य धार्ष्टकं क्षत्रं रणदृप्तं बभूव ह।
करूपस्य च कारूपाः क्षत्रिया युद्धदुर्म्मदाः॥२५

नाभागधृष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यतां गताः ।
प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजापतिरिति स्मृत: ॥२६
नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दन्तधरो यमः ।
शर्यातिर्मिथुनं त्वासीदानर्त्तो नाम विश्रुतः ॥२७

पुत्रः कन्या सुकन्या च या पत्नी च्यवनस्य ह ।
आनर्त्तस्य तु दायादो रैवो नाम महाद्युतिः ॥२८

हे सत्तम द्विजगण ! धर्मराज सुद्युम्न की प्रतिष्ठा यह थी कि महान् यश वाले में प्राप्त करके वह सम्पूर्ण राज्य पुरूरवा को दे दिया था ॥२२॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! यह मानवेय स्त्री और पुरुष दोनों के लक्षणों से युक्त था। स्त्री के लक्षणों से उसका नाम इला-यही था और वह सुद्युम्ना-इस नाम से भी विश्रुत हुआ था ॥२३॥ नरिष्यन्त शक पुत्र थे और राजा नाभाग का पुत्र राजाओं में परम श्रेष्ठ अम्बरीष हुआ था ॥२४॥ धृष्ट का पुत्र धार्मिक क्षत्रिय था जो रण के बहुत अधिक दर्प वाला था। करूप के कारूष रण दुर्मद क्षत्रिय हुए थे ॥२५॥ नाभाग धृष्ट के पुत्र क्षत्रिय होते हुए भी वैश्य भाव को प्राप्त हो गये थे। प्रांशु का एक ही पुत्र था जो प्रजापति-इस नाम से कहा गया है ॥२६॥ नरिष्यन्त का दायाद (पुत्र) राजा दन्तधरयम था। शर्याति राजा के एक पुत्र और पुत्री का जोड़ा था। पुत्र का नाम आनर्त्त प्रसिद्ध था और सुकन्या नाम वाली पुत्री थी जो च्यवन ऋषि की पत्नी हुई थी। आनर्त्त के पुत्र का नाम रैव हुआ था जो महती द्युति से सम्पन्न था ॥२७-२८॥

आनर्त्तविषयश्चैव पुरी चास्य कुशस्थली ।
रैवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्म्मिकः ॥२९
ज्येष्ठः पुत्रः स तस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम् ।
स कन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्व्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥३०

मुहूर्त्तभूतं देवस्य तस्यौ बहुयुगं द्विजाः ।
आजगाम स चैवाथ स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ॥३१

कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम् ।
भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वसुदेवपुरोगमैः ॥३२
तच्छ्रुत्वा रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्वं द्विजोत्तमाः ।
कन्यां तां बलदेवाय सुभद्रां नाम रेवतीम् ॥३३
दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ।
रेमे रामोऽपि धर्म्मात्मा रेवत्या सहितः सुखी ॥३४

आनर्त्त का विषय (देश) और इसकी पुरी कुशस्थली थी। रैव का पुत्र रैवत था ककुद्मी परम धार्मिक एवं उसका ज्येष्ठ पुत्र था। वह कुशस्थली के राज्य को पाकर अपनी कन्या के सहित गान्धर्व नगर को सुनकर ब्रह्माजी के समीप पहुँच गया। वह वहाँ परदेश की सन्निधि में एक मुहूर्त्त मात्र ही ठहरा था किन्तु बहुत से युग व्यतीत होगये थे। वहाँ से जब फिर वह वापिस आया तो उसने अपनी पुरी को यादवों से घिरी हुई देखा था जो द्वारवती नाम से प्रसिद्ध हुई थी। उसमें बहुत से द्वार थे और बहुत ही सुन्दर थी। भोज और वृष्णि तथा अन्धक जाति वाले यादव क्षत्रियों के द्वारा वह सुरक्षित थी जिनमें वसुदेव प्रमुख थे ॥२६-३२॥ हे द्विजोत्तमो! वहाँ पर ही रैवत ने यथा तत्व का ज्ञान प्राप्त करके उसने सुभद्रा नाम वाली रेवती कन्या को बलदेवजी को दे दिया था और अपनी कन्या का अर्पण कर के फिर वह मेरु पर्वत पर चला गया था और तप में संस्थित हो गया था। बलरामजी भी परम धर्मात्मा थे और उस रेवती नाम वाली अपनी पत्नी के साथ परम सुखी होकर रमण किया करते थे ॥३३-३४॥

कथं बहुयुगे काले समतीते महामते ।
न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं च ककुद्मिनम् ॥३५
मेरुं गतस्य वा तस्य शर्यातेः सन्ततिः कथम् ।
स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥३६
न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्मुनिसत्तमाः ।
ऋतुचक्रं प्रभवति ब्रह्मलोके सदानघाः ।
ककुद्मिनः स्वर्लोकं तु रैवतस्य गतस्य ह ॥३७

हृता पुण्यजनैर्विप्रा राक्षसैः सा कुशस्थली ।
तस्य भ्रातृशतं त्वासीद्धार्म्मिकस्य महात्मनः । ३८

तद्वध्यमान रक्षोभिर्दिशः प्राक्रामदच्युताः ।
विद्रुतस्य च विप्रेन्द्रास्तस्य भ्रातृशतस्य वै ॥३९

अन्ववायस्तु सुमहांस्तत्र तत्र द्विजोत्तमाः ।
तेषां ह्येते मुनिश्रेष्ठाः शर्य्याता इति विश्रुताः ॥४०

क्षत्रिया गुणसम्पन्ना दिक्षु सर्व्वासु विश्रुताः ।
सर्व्वशः सर्व्वगहन प्रविष्टास्ते महोजसः ।।४१

नाभागरिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ ।
करूपस्य तु कारूपाः क्षत्रिया युद्धदुर्म्मदाः ।।४२

मुनिगण ने कहा—हे महामते ! बहुत से युगों के काल के व्यतीत हो जाने पर भी उस रेवती को तथा उस ककुद्मी रैवत को बुढ़ापा कैसे नहीं हुआ था ॥३१॥ जब वह स्वयं मेरु पर्वत पर तप करने चला गया था तो उस शर्याति राजा की सन्तति आज तक भी इस पृथिवी पर कैसे स्थित हुई थी—इस को हम सब लोग ठीक२ सुनना चाहते हैं ॥३६॥ श्री लोमहर्षणजी ने कहा—हे मुनिगणो ! ब्रह्म लोक का प्रभाव ही ऐसा अद्भुत होता है कि वहां पर न तो वृद्धावस्था होती है और न भूख तथा प्यास ही सताया करती है । ऋतुओं का भी वहां यह कुछ प्रभाव नहीं होता है । ब्रह्म लोक में तो सब सर्वदा अजय ही रहा करते हैं । जब ककुद्मी रैवत स्वर्लोक में चला गया था तो हे विप्रगण ! उसकी जो कुशस्थली पुरी थी उसको पुण्य जन राक्षसों ने हरण कर लिया था । उस महात्मा परम धार्मिक रैवत के सौ भाई थे राक्षसों के द्वारा वे बध्यमान होकर इधर-उधर अन्य दिशाओं में भाग गये थे । हे विप्रेन्द्रो ! भागे हुए उन सौ भाइयों का वंश बहुत बड़ा था जो जहां-तहां पर स्थित हो गया था हे मुनिगणो ! उन्हीं के ये शर्यात नाम से प्रसिद्ध लोग हैं ॥३७-४०॥ ये क्षत्रिय गुणों से सुसम्पन्न हैं और सभी ओर से सभी वनों में ये महान् ओज वाले प्रविष्ट होगये थे ॥४१॥

नाभागारिष्ट के दो पुत्र जो वैश्य थे ब्राह्मणता को प्राप्त होगये थे। करुष के कारुष क्षत्रिय थे जो युद्ध में बहुत ही दुर्मद थे ॥४२॥

पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां द्विजसत्तमाः।
शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवैते परिकीर्त्तिताः ॥४३
वैवस्वतस्य तनया मुनेर्व्वै मुनिसत्तमाः।
क्षुवतस्तु मनोर्विप्रा इक्ष्वाकुरभवत् सुतः ॥४४
तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम्।
तेषां विकुक्षिर्ज्येष्टस्तु विकुक्षित्वादयोधताम् ॥४५
प्राप्तः परमधर्म्मज्ञः सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः।
शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चशतं स्मृताः ॥४६
उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महाबलाः।
चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि ॥४७
वशातिप्रमुखाश्चान्ते रक्षितारो द्विजोत्तमाः।
इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिवा अष्टकायामथादिशत् ॥४८
मांसमानय श्राद्धार्थं मृगान् हत्वा महाबलः।
श्राद्धकर्म्मणि चोद्दिष्टे अकृते श्राद्धकर्म्मणि ॥४९

हे द्विज श्रेष्ठो ! पृषध्र ने अपने ही गुरुदेव की गाय की हिंसा की थी अतएव वह शूद्रत्व को प्राप्त हो गया था। इस प्रकार से ये नौ पुत्रों का वर्णन किया गया है ॥४३॥ हे मुनिसत्तमो! वैवस्वत मनु के ये पुत्र हुए हैं। हे विप्रगण ! क्षुवत मनु का इक्ष्वाकु पुत्र हुआ था ॥४४॥ उस इक्ष्वाकु राजा के बहुत दक्षिणा वाले एक सौ पुत्र हुये थे। उन सब में विकुक्षि नाम वाला पुत्र सब में ज्येष्ठ था। वह विकुक्षित्व होने के कारण अमोघता को प्राप्त होगया था ॥४५॥ यह बहुत ही अधिक धर्म का ज्ञाता था और यही अयोध्या का पति प्रभु हुआ था। उस राजा के पाँच सौ पुत्र हुए थे जिन में शकुनि प्रमुख था। ये सब उत्तरापथ के रक्षा करने वाले महान् बलवान् हुए थे। इनमें से अट्ठावन दक्षिण दिशा में रक्षा करने वाले थे। हे द्विजोत्तमो ! वशा जिनमें प्रमुख थे और अन्य भी रक्षा करने वाले हुए थे। अष्टका के समय में इक्ष्वाकु ने विकुक्षि

को यह आदेश दिया था कि श्राद्ध के लिये माँस लाओ। उस महान् बलवान् ने श्राद्ध कर्म के उद्दिष्ट होने पर मृगों का हनन करके शश का भक्षण करके वह शश को खाने वाला शिकार करने को चला गया था और श्राद्ध का कर्म पूर्ण नहीं हुआ था ॥४६-४६॥

भक्षयित्वा शशं विप्रा शशादो मृगयां गतः ।
इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात् प्रभुः ॥५०
इक्ष्वाकौ संस्थिते विप्राः शशादस्तु नृपोऽभवत् ।
शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्य्यवान् ॥५१
अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुश्चानेनसः स्मृतः ।
विष्टराश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादार्द्रस्त्वजायत ॥५२
आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तत्सुतो द्विजाः ।
जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्म्मिता ॥५३
श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महीपतिः ।
कुवलाश्वः सुतस्तस्य राजा परमधार्म्मिकः ॥५४
यः स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागतः ॥५५

महर्षि वसिष्ठ के वचन से राजा इक्ष्वाकु ने उसका परित्याग कर दिया था ॥५०॥ इक्ष्वाकु के संस्थित रहने पर ही हे विप्रगण ! शशाद राजा होगया था। उस शशाद का पुत्र महान् बल वीर्य वाला ककुत्स्थ हुआ था ॥५१॥ इस ककुत्स्थ का पुत्र अनेना हुआ था और अनेना का पुत्र पृथु कहा गया है। उस पृथु के पुत्र का नाम विष्टराश्व था और फिर उस विष्टराश्व से आर्द्र समुत्पन्न हुआ ॥५२॥ आर्द्र का पुत्र युवनाश्व समुत्पन्न हुआ। हे द्विजगण ! इस युवनाश्व के पुत्र का नाम श्राव था। यही श्रावस्तक राजा हुआ जिसने श्रावस्ती पुरी का निर्माण किया ॥५३॥ इस श्रावस्त का दायाद राजा बृहदश्व हुआ। बृहदश्व का पुत्र कुवलाश्व नाम वाला परम धार्मिक राजा हुआ। यह वही राजा था जिसने धुन्धु का वध किया था और धुन्धुमारत्व को प्राप्त हो गया ॥५४-५५॥

धुन्धोर्व्वधं महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छाम तत्वतः ।
यद्वधात्कुवलाश्वोऽसौ धुन्धुमारत्वमागतः ॥५६
कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।
सर्व्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः ॥५७
बभूवुर्धार्म्मिकाः सर्व्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः ।
कुवलाश्वं पिता राज्ये बृहदश्वो न्ययोजयत् ॥५८
पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वन राजा विवेश ह ।
तमुत्तङ्कोऽथ विप्रर्षिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत् ॥५९
भवता रक्षणं कार्य्यं तच्च कर्त्तुं त्वमर्हसि ।
निरुद्विग्नस्तपश्चर्तुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥६०
ममाश्रमसमीपे वै समेषु मरुधन्वसु ।
समुद्रो बालुकापूर्ण उद्दालक इति स्मृतः ॥६१
देवतानामवध्यश्च महाकायो महाबलः ।
अन्तर्भूमिगतस्तत्र बालुकान्तर्हितो महान् ॥६२
राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुन्धुर्नाम महासुरः ।
शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥६३

मुनिगण ने कहा—हे महान् प्रज्ञा वाले ! हम लोग सब इन धुन्धु के वध को तात्विक रूप से अर्थात् ठीक-ठीक श्रवण करना चाहते हैं जिसके वध कर देने पर यह कुवलयाश्व भी धुन्धु मारत्व को प्राप्त होगया था ॥५६॥ श्री लोमहर्षणजी ने कहा—उस कुवलयाश्व के एक सौ पुत्र थे जो उत्तम धनुष धारी थे, वे सभी समस्त विद्याओं में परम कुशल थे—महान् बलशाली थे और शत्रुओं के द्वारा दुरासद भी थे अर्थात् ऐसे थे कि शत्रु इनको जीतने में असमर्थ हो जाते थे ॥५७॥ ये सभी यजन करने वाले—अधिक दक्षिणा देने वाले तथा अत्यधिक धार्मिक थे। बृहदश्व पिता ने कुवलाश्व को राज्यासन पर नियोजित कर दिया था ॥५८॥ अपने पुत्र को सम्पूर्ण राज्य श्री सौंप कर फिर वह राजा वन में तपश्चर्या करने के लिये चला गया था। जब वह राजा वन को जा रहा था उस समय में उत्तंक नाम धारी विप्रर्षि ने गमन करने वाले

उसको दारित किया था ॥५६॥ उत्तंक ने कहा—हे राजन् ! आपको अपने राज्य की रक्षा का कर्म करना चाहिए क्योंकि आप रक्षा करने के योग्य हैं। मैं उद्वेग से रहित होकर तप नहीं कर सकता हूं ॥६०॥ मेरे आश्रय के समीप में सम मरुधन्वाओं मे बालु का पूर्ण समुद्र है जो उद्दालक कहा गया है ॥६१॥ यह देवों के द्वारा भी अवध्य हैं अर्थात् इसको देवगण भी नहीं मार सकते हैं। यह महान् काया वाला और महान् बलशाली है। वहाँ पर यह भूमि के अन्तर्गत रहता है तथा बालुकाओं मे छिपा रहा करता है ॥६२॥ यह मधु नामक राक्षस का पुत्र है और इस महान् असुर का नाम धुन्धु है। परम दारुण तप मे समास्थित होकर लोकों के विनाश करने के लिये ही शयन किया करता है ॥६३॥

संवत्सरस्य पर्य्यन्ते स निश्वासं विमुञ्चति ।
यदा तदा मही तत्र चलति स्म नराधिप ॥६४
तस्य निःश्वासवातेन रज उद्धयते महत् ।
आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ॥६५
सविस्फुलिङ्गं साङ्गारं सधुममतिदारुणम् ।
तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्व आश्रमे ॥६६
तं मारय महाकायं लोकनां हितकाम्यया ।
लोकाः स्वस्था भवन्त्यद्य तस्मिन् विनिहते त्वया ॥६७
त्वं हि तस्य वधायैकः समर्थः पृथिवीपते ।
विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूर्व्वयुगे नृप ॥६८
यस्त महासुरं रौद्रं हनिष्यति महाबलम् ।
तस्य त्वं वरदानेन तेजश्चाप्याययिष्यसि ॥६६
न हि धुन्धुर्महातेजास्तेजसाल्पेन शक्यते ।
निर्दग्धुं पृथिवीपाल चिरं युगशतैरपि ॥७०
वीर्य्यञ्च सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम् ।
स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना ।
कुवलाश्वं सुतं प्रादात्तस्मै धुन्धुनिबर्हणे ॥७१

वह सम्वत्सर के पर्यन्त मे अपना निश्वास छोड़ता है जिस समय में वह निश्वास छोड़ता है उस समय में हे नराधिप ! यह सम्पूर्ण भूमि चलायमान होजाती थी ॥६४॥ उसके निश्वास की वायु से बहुत अधिक रज उड़ा करती है और वह रज सूर्य के मार्ग को रोककर एक सप्ताह तक भूमि का कम्पन कर दिया करती है ॥६५॥ वह मधु विस्फुलिङ्गों से युक्त तथा अंगारो वाला परम दारुण है। हे तात ! इसके कारण से उस अपने आश्रम में मैं स्थिर नही रह सकता हूँ ॥६६॥ अतएव सभी लोगो के हित की कामना से आप उसको मारिए जो कि महान् शरीर वाला दारुण राक्षस है। आपके द्वारा उसके मारे जाने पर सभी लोक आज स्वस्थ हो जायेगे ॥६७॥ हे राजन् ! आप ही एक ऐसे है जो उसके मार देने की शक्ति रखते हैं। हे नृप ! पूर्व युग में भगवान् विष्णु ने मुझे वरदान दिया था। जो उस महान् बलवान् और रौद्र महासुर को मार डालेगा उसके वरदान से तुम तेज को आप्यायित करोगे ॥६८-६९॥ हे पृथ्वीपाल ! धुन्धु बड़ा महान् तेज वाला है और किसी भी अल्प तेज वाले के द्वारा चिरकाल तक और सैकड़ो युगों में भी निर्दग्ध नही किया जा सकता है ॥७०॥ उसका बल वीर्य बहुत ही अधिक है जिसको देवगण भी नही सहन कर सकते हैं। उत्तंक महात्मा के द्वारा वह राजर्षि इस प्रकार से कहा गया था। उस धुन्धु के निबर्हण करने के कार्य में उसने अपने पुत्र कुवलाश्व को उसके सुपुर्द कर दिया था ॥७१॥

भगवन्न्यस्तशस्त्रोऽहमय तु तनयो मम।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः ॥७२

स तं व्यादिश्य तनयं राजर्षिर्धुन्धुमारणे।
जगाम पर्व्वतायैव नृपतिः संशितव्रतः ॥७३

कुवलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह भो द्विजाः।
प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य निबर्हणे ॥७४

तमाविशत्तदा विष्णुस्तेजसा भगवान् प्रभुः।
उत्तङ्कस्य नियोगाद्वै लोकानां हितकाम्यया ॥७५

तस्मिन् प्रयाते दुर्द्धर्ष दिवि शब्दो महानभूत् ।
एष श्रीमानवध्योऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति ।।७६
दिव्यैर्गन्धैश्च माल्यैश्च तं देवाः समवाकिरन् ।
देवदुन्दुभयश्चैव प्रणेदुर्द्विजसत्तमाः ।।७७

बृहदश्व ने कहा—हे भगवन् ! मैं तो शस्त्रों का त्याग कर देने वाला होगया हूँ । हे द्विजश्रेष्ठ ! यह मेरा पुत्र धुन्धु के मार देने वाला होगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । श्री लोमहर्षणजी ने कहा—वह राजर्षि अपने पुत्र को उस धुन्धु के मारने के कार्य के लिये आज्ञा देकर स्वयं तो सशित-व्रत नृपति पर्वत को ही चला गया था ।।७२-७३।। हे द्विजगणो ! वह कुवलाश्व अपने सौ पुत्रों के सहित उत्तंक को साथ में लेकर उस धुन्धु दैत्य के मारने के लिये वहाँ से रवाना होगया था ।।७४।। उस समय में प्रभु भगवान् विष्णु उत्तंक के नियोग से लोकों के हित की कामना से तेज के द्वारा उसमें आविष्ट होगये थे ।।७५।। उस दुर्द्धर्ष के प्रयाण करने पर दिवलोक में महान् शब्द हुआ था कि आज यह श्रीमान् धुन्धुमार अवध्य होगा ।।७६। देवगण ने दिव्यगन्ध और माल्यों से उस पर वृष्टि की थी । हे द्विजसत्तमो ! देव दुन्दुभियाँ उस समय में बजने लग गयी थीं ।।७७।।

स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैः सह वीर्य्यवान् ।
समुद्रं खानयामास वालुकान्तरमव्ययम् ।।७८
तस्य पुत्रैः खनद्भिश्च वालुकान्तर्हितस्तदा ।
धुन्धुरासादितो विप्रा दिशमावृत्य पश्चिमाम् ।। ७९
मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकानुद्वर्त्तयन्निव ।
वारि सुस्राव वेगेन महोदधिरिवोदये ।।८०
सोमस्य मुनिशार्दूला वरोर्म्मिकलिलो महान् ।
तस्य पुत्रशतं दग्धं त्रिभिरूनन्तु रक्षसा ।।८१
ततः स राजा द्युतिमान् राक्षसं तं महाबलम् ।
आससाद महातेजा धुन्धुं धुन्धुविनाशनः ।।८२

तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः ।
योगी योगेन वह्निञ्च शमयामास वारिणा ॥८३
निहत्य तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम् ।
उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्म्मा नराधिपः ॥८४

वह श्रेष्ठ वीर्यवान् अपने पुत्रों के साथ वहाँ पर जाकर विजय प्राप्त करे। उस अव्यय बालुकान्तर समुद्र को खनन किया था ॥७८॥ उसके पुत्रों ने जब समुद्र का खनन किया तो उन्होंने उस समय में बालुका में छिपे हुए उसको प्राप्त किया था। वह धुन्धु पश्चिम दिशा में आवृत्त होकर वहाँ पर स्थित प्राप्त होगया था ॥७६॥ उसने क्रोध से मुख में उत्पन्न अग्नि के द्वारा लोकों को उद्भासित करते हुए बड़े वेग से उदय काल में समुद्र के समान जल का स्रवण किया था ॥८०॥ हे मुनि शार्दूलो! सोम के उदय में श्रेष्ठ ऊर्मियों से कलिल और महान् वह होगया था उस राक्षस ने तीन कम उसके सौ पुत्रों को दग्ध कर दिया था ॥८१॥ इसके अनन्तर उस धुन्धु के विनाश करने वाले राजा ने जो बहुत द्युतिमान् था उस महान् बलशाली राक्षस को प्राप्त किया था क्योंकि वह नृप भी महान तेजस्वी था ॥८२॥ उसके वारिमय वेग को पान करके उस नराधिप ने जो योगी था, योग के द्वारा जल से उसकी फैलाई हुई अग्नि को शान्त कर दिया ॥८३॥ कृतवर्मा नराधिप ने अपने बल से उस उदक राक्षस को जो महान् शरीर वाला था मारकर उस उत्तङ्क को दिखा दिया था ॥८४॥

उत्तङ्कस्य वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने ।
ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजितम् ॥८५
धर्म्मे रतिञ्च सततं स्वर्गे वासं तथाक्षयम् ।
पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकान् स्वर्गे ये रक्षसा हताः ॥८६
तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढ़ाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।
चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कनीयांसौ कुमारकौ ॥८७
धौन्धुमारेर्दृढ़ाश्वस्य हर्य्यश्वश्चात्मजः स्मृतः ।
हर्य्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्म्मरतः सदा ॥८८

संहताश्वो निकुम्भस्य सुतो रणविशारदः ।
अकृशाश्वकृशाश्वौ तु संहताश्वसुतौ द्विजाः ॥८९

तस्य हैमवती कन्या स तां मत्वा दृषद्वती ।
विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्याः प्रसेनजित् ॥९०
लेभे प्रसेनजिद्भार्यां गौरीं नाम पतिव्रताम् ।
अभिशस्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाभवत् ॥९१

उस महान् आत्मा वाले राजा को उत्तंक ने वरदान दिया था। उसको अक्षय धन दिया था और शत्रुओं के द्वारा अपराजित होने का भी वरदान दिया था ॥८५॥ धर्म मे निरन्तर रति तथा स्वर्ग में अक्षय निवास और जो उस राक्षस के द्वारा पुत्र मार डाले गये थे उनको स्वर्ग मे अक्षय लोको की प्राप्ति का वरदान दिया था ॥८६॥ अब उस राजा के उन सौ पुत्रो में से केवल तीन ही बचे थे। उन तीनों मे दृढाश्व सबसे बड़ा पुत्र था। चन्द्राश्व और कपिलाश्व ये दो छोटे कुमार थे ॥८७॥ धौन्धुमारि का जो दृढाश्व पुत्र था उसका पुत्र हर्यश्व कहा गया है। हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ नाम वाला उत्पन्न हुआ था जो सदा क्षत्रियो के धर्म मे रति रखने वाला था ॥८८॥ निकुम्भ का पुत्र संहताश्व हुआ था जो रण करने की विद्या का बहुत बड़ा पण्डित था। हे द्विजो ! उस संहताश्व के अकृशाश्व और कृशाश्व दो पुत्र हुए थे ॥८९॥ उसकी हैमवती नाम वाली एक कन्या थी वह उसको दृषद्वती मानता था और इसी नाम से वह तीनों लोको मे विख्यात हुई थी। उसके पुत्र का नाम प्रसेनजित् था ॥९०॥ उस प्रसेनजित् ने गौरी नाम वाली परम पतिव्रता भार्या प्राप्त की थी। वह भर्ता के द्वारा अभिशस्त होगई थी और बाहुदा नाम की नदी होगई थी ॥९१॥

तस्य पुत्रो महानासीद्युवनाश्वो नराधिपः ।
मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः ॥९२
तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दोः सुताभवत् ।
साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥९३

पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातॄणामयुतस्य वै ।
तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ द्विजाः ।।८४

पुरुकुत्सञ्च धर्म्मज्ञं मुचुकुन्दञ्च पार्थिवम् ।
पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत्त्रसदस्युर्महीपतिः ।।८५
नर्म्मदायामथोत्पन्नः सम्भूतस्तस्य चात्मजः ।
सम्भूतस्य तु दायादस्त्रिधन्वा रिपुमर्द्दनः ।।८६

राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासीद्विद्वांस्त्रय्यारुणः प्रभुः ।
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः ।।८७
परिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्म्मतिः ।
येन भार्य्या कृतोद्वाहा हृता चैव परस्य ह ।।८८

उस प्रसेनजित का पुत्र युवनाश्व महान् नराधिप हुआ था । उस युवनाश्व के पुत्र मान्धाता हुआ था जो तीनों लोकों का विजय करने वाला बड़ा प्रतापी राजा हुआ है ।।८२।। उसकी भार्या चैत्ररथी शशबिन्दु की पुत्री हुई थी । यह बिन्दुमती नाम वाली भूलोक में रूप लावण्य में अनुपम थी और परम साध्वी थी ।।८३।। यह पतिव्रता थी और दश हजार अपने भाइयों मे सबसे बड़ी थी । हे द्विजगण ! मान्धाता ने उस अपनी पत्नी के गर्भ से दो पुत्रों को उत्पन्न किया था ।।८४।। एक परम धर्मज्ञ पुरुकुत्स था और दूसरा मुचुकुन्द राजा था । इस पुरुकुत्स के पुत्र का नाम त्रसद्दस्यु महीपति था ।।८५।। इस त्रसद्दस्यु के पुत्र का नाम सम्भूत था जो नर्मदा नाम वाली रानी के गर्भ से समुत्पन्न हुआ था और इस सम्भूत का सुत त्रिधन्वा था जो शत्रुओं का मर्दन करने वाला हुआ था ।।८६।। उसका पुत्र विद्वान् त्रय्यारुण प्रभु हुआ था । इसके जो कुमार हुआ था वह सत्यव्रत नाम वाला और महान् बलवान् हुआ था ।।८७ । इस सुदुर्मति ने परिग्रहण मन्त्रों का विघ्न किया था जिसने दूसरे की विवाहिता स्त्री का हरण किया था ।।८८।।

बाल्यात् कामाच्च मोहाच्च साहसाच्चापलेन च ।
जहार कन्यां कामार्त्तः कस्यचित् पुरवासिनः ।।८९

अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवान्तःपुरं मुनिः ।
याज्योपाध्यायसंयोगाद्वसिष्ठः पर्य्यरक्षत ॥४
सत्यव्रतस्तु बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ।
वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास नित्यशः ॥५
पित्रा हि तं तदा राष्ट्रात्त्यज्यमानं प्रियं सुतम् ।
निवारयामास मुनिर्बहुना कारणेन च ॥६
पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे ॥७

श्री लोमहर्षणजी ने कहा—सत्यव्रत ने भक्ति से-कृपा से और प्रतिज्ञा से विनय में स्थित होकर विश्वामित्रजी की कलत्र का भरण किया था ॥१॥ मृगों को-वराहों को-महिषों को और वनचरों को मार कर विश्वामित्र के आश्रम के समीप में मांस को वृक्ष में बाँध दिया था ॥२॥ उपांशु व्रत में समास्थित होकर बारह वर्ष की दीक्षा लेकर उस नृप के वन में चले जाने पर पिता की आज्ञा से उसमें ही निवास किया था ॥३॥ अयोध्या-सम्पूर्ण राज्य तथा अन्तःपुर को वसिष्ठ मुनि ने याज्योपाध्याय के संयोग से परिरक्षित किया था ॥४॥ सत्यव्रत बचपन से और भावी अर्थ के बल से वसिष्ठ मुनि में नित्य ही अधिक मन्यु अर्थात् क्रोध को धारण करता था ॥५॥ उस समय में पिता के द्वारा त्यागे हुए उस प्रिय पुत्र को बहुत कारण से मुनि ने निवारण किया था ॥६॥ पाणिग्रहण मन्त्रों की निष्ठा सप्तम पद में होती है ॥७॥

न च सत्यव्रतस्तस्माद्धृतवान् सप्तमे पदे ।
जानन् धर्मंवसिष्ठस्तु न मां त्रातीति भो द्विजाः ।
सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाकरोत् ॥८
गुणबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठः कृतवांस्तथा ।
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥९
तस्मिन्नपरितोषश्च पितुरासीन्महात्मनः ।
तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत् पाकशासनः ॥१०
तेन त्विदानीं विहितां दीक्षां तां दुर्वहां भुवि ।
कुलस्य निष्कृतिर्विप्राः कृता सा वै भवेदिति ॥११

न तं वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् ।
अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवंमतिर्मुनिः ॥१२

स तु द्वादश वर्षाणि तां दीक्षामवहद्बली ।
अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥१३
सर्व्वकामदुघां दोग्ध्रीं स ददर्श नृपात्मजः ।
तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वितः ॥१४

सत्यव्रत ने इस कारण से सप्तम पद में हनन नहीं किया था। वसिष्ठमुनि धर्म्म को जानते हुए हे द्विजगण ! मेरी रक्षा नहीं करते हैं। उसी समय में सत्यव्रत ने मन से वसिष्ठ मुनि के विषय में रोष किया था ॥८॥ गुणों की बुद्धि से भगवान् वसिष्ठ ने वैसा किया था और सत्य-व्रत ने उनके उस उपांशु को नहीं समझा था ॥९॥ किन्तु उसमे पिता का जो एक महान् आत्मा वाले थे बहुत ही परितोष हुआ था इसी कारण से बारह वर्ष तक महेन्द्र ने वर्षा नहीं की थी ॥१०॥ इसी कारण से इस समय में भूलोक में अत्यन्त दुर्वह उस दीक्षा को किया था। हे विप्रो ! वह की हुई दीक्षा कुल की निष्कृति हो जावेगी ॥११॥ भगवान् वसिष्ठ ने उसको निवारित नहीं किया था क्योंकि मुनि का ऐसा विचार था कि मैं इसके पुत्र का अभिषेक कर दूंगा ॥१२॥ उस बलवान् ने बारह वर्ष तक उस दीक्षा का वहन किया था। मांस के विद्यमान न रहने पर उस नृप के पुत्र ने महात्मा वसिष्ठ की समस्त कामनाओं को देने वाली दोग्ध्री धेनु को देखा था। हे मुनिश्रेष्ठो ! उस धेनु को क्रोध से–मोह से और श्रम के कारण से भूख से अन्वित होकर मार डाला था ॥१३-१४॥

देशधर्म्मगतो राजा जघान मुनिसत्तमाः ।
तन्मांसं स स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् ॥१५
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे ॥१६

पातयेयमहं क्रूर तव शंकुमसंशयम् ।
यदि ते द्वाविमौ शङ्कू न स्यातां वै कृतौ पुनः ॥१७

पितुश्चापरितोषेण गुरुदोग्ध्रीवधेन च ।
अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥१८
एवं त्रीण्यस्य शङ्कूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः ।
त्रिशंकुरिति होवाच त्रिशंकुस्तेन स स्मृतः ॥१९
विश्वामित्रस्य दाराणामनेन भरणं कृतम् ।
तेन तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशङ्कवे ॥२०
छन्द्यमानो वरेणाथ वरं वव्रे नृपात्मजः ।
सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो वरः ॥२१

देश धर्म में आने वाले उस राजा ने उस धेनु का हनन कर दिया था और उसके मांस को स्वयं तथा विश्वामित्र के पुत्रों को खिला दिया था। यह श्रवण करके वसिष्ठ मुनि भी इस पर अत्यन्त कुपित होगये थे ॥१५-१६॥ वसिष्ठजी ने कहा—मैं बिना किसी संशय के निश्चित रूप से तेरे इस शंकु को गिरा देता यदि पुनः कृत मे तेरे ये दो शङ्कु न होते ॥१७॥ पिताजी के अपरितोष से और गुरु की दोग्ध्री का वध कर डालने से तथा अप्रोक्षितोप के योग से तेरा तीन प्रकार का व्यतिक्रम है ॥१८॥ इस प्रकार से उस महान् तपस्वी ने इसके उन तीन शङ्कुओं को देख कर उसको त्रिशंकु—इस नाम से कहा था। इस कारण से वह त्रिशंकु ही कहा गया है ॥१९॥ इसने विश्वामित्र की दाराओं का भरण किया है इस कारण से मुनि ने प्रसन्न होकर उस त्रिशंकु के लिये वरदान प्रदान किया था ॥२०॥ जब उनसे वरदान को याचना करने की आज्ञा दी तो उन नृपात्मज ने यही वरदान माँगा था कि मैं इसी शरीर को लेकर स्वर्गलोक में गमन करूँ ॥२१॥

अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके ।
पित्र्ये राज्येऽभिषिच्याथ याजयामास पार्थिवम् ॥२२
मिषतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः ।
दिवमारोपयामास सशरीरं महातपाः ॥२३
तस्य सत्यरथा नाम पत्नी कैकेयवंशजा ।
कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥२४

स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति स्मृतः ।
आहर्त्ता राजसूयस्य सम्राडिति ह विश्रुतः ॥२५
हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम पार्थिवः ।
हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारित उच्यते ॥२६
विजयश्च मुनिश्रेष्ठाश्चञ्चोः पुत्रो बभूव ह ।
जेता स सर्व्वपृथिवीं विजयस्तेन स स्मृतः ॥२७
रुरुकस्तनयस्तस्य राजा धर्म्मार्थकोविदः ।
रुरुकस्य वृकः पुत्रो वृकाद्बाहुस्तु जज्ञिवान् ॥२८

उस बारह वर्ष के अनावृष्टि के भय के व्यतीत हो जाने पर पिता के राज्य पर अभिषेक करके उस पार्थिव को यजन कराया था ॥२२॥ महा तपस्वी कौशिक ने सब देवताओं के और वसिष्ठ मुनि के देखते हुए उसको शरीर के सहित दिवलोक में आरोपित कर दिया था ॥२३॥ उसकी सत्यरथा नाम वाली कैकेय के वंश में समुत्पन्न पत्नी थी जिसने कल्मष रहित हरिश्चन्द्र नाम वाले कुमार को जन्म दिया था जो राज-सूय यज्ञ का आहर्त्ता था और सम्राट्—इस नाम से लोक में विश्रुत हुआ था ॥२४-२५॥ उस सम्राट् हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित नाम वाला राजा हुआ था । रोहित का दायाद हरि तथा जो चञ्चुर्हारित कहा जाया करता है ॥२६॥ हे मुनिगणो ! उस चञ्चु के पुत्र का नाम विजय था । वह सम्पूर्ण पृथ्वी का जीतने वाला था अतएव "विजय"—इस नाम से कहा गया है ॥२७॥ उसका पुत्र रुरुक हुआ था जो कि राजा धर्म और अर्थ का महान् पण्डित था । रुरुक के पुत्र का नाम वृक था तथा वृक के वीर्य से बाहु नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥२८॥

हैहयास्तालजंघाश्च निरस्यन्ति स्म तं नृपम् ।
तत्पत्नी गर्भमादाय ऊर्व्वस्याश्रममाविशत् ॥२९
नात्यर्थं धार्म्मिकश्चैव स हि धर्म्मयुगेऽभवत् ।
सगरस्तु सुतो बाहोर्यज्ञे सह गरेण वै ॥३०
ऊर्व्वस्याश्रममासाद्य भार्गवेणाभिरक्षितः ।
आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात् सगरो नृपः ॥३१

जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान् सहैहयान् ।
शकानां पह्लवानां च धर्म्मं निरसदच्युतः ।
क्षत्रियाणां मुनिश्रेष्ठाः पारदानां च धर्म्मवित् ॥३२
कथं स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युतः ।
किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम् ॥३३
धर्म्मान्कुलोचितान् राजा क्रुद्धो निरसदच्युतः ।
एतन्नः सर्व्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥३४

हैहय और तालजंघों ने उस राजा को निरस्त कर दिया था। उसकी पत्नी जो थी वह गर्भ लेकर ऊर्व के आश्रम मे प्रवेश कर गयी थी ॥२६॥ वह उस धर्म के युग में भी अत्यधिक धार्मिक नहीं हुआ था। बाहु का पुत्र सगर था जो गर मे गर के साथ समुत्पन्न हुआ था ॥३०॥ ऊर्व के आश्रम को प्राप्त कर वह भार्गव के द्वारा अभिरक्षित हुआ था। उन सगर नृप ने भार्गव से आग्नेय अस्त्र की उपलब्धि की थी ॥३१॥ फिर उस सगर ने तालजंघों हैहयों के सहित मारकर सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लिया था। उस धर्म के वेत्ता ने, हे मुनिगणो ! शकों का—पह्लवानों का और पारद क्षत्रियों का धर्म निरस्त कर दिया था ॥३२॥ मुनिगण ने कहा—वह सगर परम अच्युत गर के साथ किस प्रकार से समुत्पन्न हुआ था ? और क्या कारण था कि उस राजा ने क्रुद्ध होकर महान् ओजस्वी शकादि क्षत्रियों को, जो धर्मानुकूल उचित थे निरस्त कर दिया था ? हे महामते ! यह समस्त हाल कृपा करके विस्तार के साथ हमारे सामने वर्णन करने की उदारता करिए ॥३३-३४॥

बाहोर्व्यसनिनः पूर्व्वं हृतं राज्यमभूत् किल ।
हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्द्धं द्विजोत्तमाः ॥३५
यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्नवास्तथा ।
एते ह्यपि गणाः पञ्च हैहयार्थे पराक्रमम् ॥३६
हृतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वनं ययौ ।
पत्न्या चानुगतो दुःखी तत्र प्राणानवासृजत् ॥३७

पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् ।
सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्तः पूर्वं किलानघा ॥३८
सा तु भर्त्तुश्चितां कृत्वा वने तामभ्यरोहत ।
ऊर्व्वस्तां भार्गवो विप्रः कारुण्यात् समवारयत् ॥३९
तस्याश्रमे च गर्भः स गरेणैव सहाच्युतः ।
व्यजायत महाबाहुः सगरो नाम पार्थिवः ॥४०
ऊर्व्वस्तु जातकर्म्मादीस्तस्य कृत्वा महात्मनः ।
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥४१
आग्नेयं तु महाभागो अमरैरपि दुःसहम् ।
स तेनास्त्रबलेनाजौ बलेन च समन्वितः ॥४२

श्री लोमहर्षण जी ने कहा—हे द्विजगणो ! यह बाहु राजा पहिले बहुत ही व्यसन शील था । इसी लिये शकों के साथ हैहय और तालजंघों ने इसका राज्य छीन लिया था ॥३५॥ यवन-पारद-काम्बोज-पह्लव ये भी पाँच गण थे जो हैहयों के लिये अपना पराक्रम दिखाया करते थे ॥३६॥ जब राज्य छीन लिया गया था तो वह बाहु राजा वन मे चला गया था । उसकी पत्नी उसके पीछे गयी थी किन्तु वह राज्य के हरण होने के कारण अत्यन्त दुःखित होगया था और वहीं पर उसने प्राणों को त्याग दिया था ॥३७॥ उसकी यादवी पत्नी गर्भवती थी और अपने पति के साथ ही पीछे से गयी थी । हे अनघो ! उसकी सपत्नी ने पहिले ही उसको गर ( विष ) दे दिया था ॥३८॥ अपने स्वामी के मर जाने पर उसने चिता बनाकर वन में वह भी उस चिता पर सती होने के लिये प्रस्तुत होरही थी । उसी समय में भार्गव ऊर्व्व ने दया करके उसे सती होने से रोक दिया था ॥३९॥ फिर वह वहीं पर आश्रम में निवास करने लग गई थी । वहीं पर वह अच्युत गर्भ गर के साथ उत्पन्न हुआ महाबाहु राजा सगर था ॥४०॥ ऊर्व्व मुनि ने ही उसके जात कर्म आदि समस्त संस्कार कराये थे और उस महान् आत्मा वाले को वेद शास्त्र सब पढ़ाकर इसके पश्चात् उसे अस्त्र दिया था ॥४१॥ जो आग्नेय अस्त्र उस सगर राजा को दिया वह इतना उग्र था

कि देवगणभी उसे सहन नहीं कर सकते थे वह सगर उसी अग्नि के बल से और अपने बल विक्रम से युद्ध मे समन्वित ,होकर गया था ॥४२॥

हैहयान् विजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ।
आजहार च लोकेषु कीर्त्ति कीर्त्तिमतां वरः ॥४३
ततः शकांश्च यवनान् काम्बोजान् पारदांस्तथा ।
पह्नवाश्चैव निःशेषान् कर्त्तुं व्यवसितो नृपः ॥४४
ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ।
वसिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् ॥४५
वसिष्ठस्त्वथतान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः ।
सगरं वारयामास तेषां दत्वाभयं तदा ॥४६
सगरः स्वां प्रतिज्ञां तु गुरोर्वाक्यं निशम्य च ।
धर्म्मं जघान तेषां वै वेशानन्यांश्चकार ह ॥४७
अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् ।
यवनानां शिरः सर्व्वं काम्बोजानां तथैव च ॥४८
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्नवाः श्मश्रुधारिणः ।
निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥४९

कीर्तिमानों मे परम श्रेष्ठ उस सगर राजा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर जैसे कुपित रुद्र पशुओ का हनन किया करते हैं उसी भाँति समस्त हैहयो का हनन कर दिया था और लोको मे परम कीर्ति को प्राप्त किया ॥४३॥ इसके अनन्तर उस नृप ने समस्त शक-यवन-काम्बोज-पारद और पह्नवों को निःशेष करने का निश्चय कर लिया था ॥४४॥ महात्मा वीर सगर के द्वारा वध्यमान होकर सबके सब महामनीषी वसिष्ठ ऋषि की शरण मे जाकर प्रणिपात करने लगे थे ॥४५॥ महान् द्युति सम्पन्न वसिष्ठ मुनि ने उन सबको शरण मे समागत देखकर समय (समझौता) के द्वारा उन सबको अभय दान देकर सगर को मारने से रोक दिया था ॥४६॥ राजा सगर ने अपनी की हुई प्रतिज्ञा और गुरुदेव वसिष्ठ जी के वचनों का श्रवण कर उनका हनन तो नहीं किया किन्तु उनके धर्म को नष्ट कर दिया तथा अन्य वेश वाले उनको कर,

दिया था ॥४७॥ अर्ध शकों का सिर मुंडवा कर उनको छोड़ दिया था। यवनों का तथा काम्बोजो का पूरा माथा मुंडवा कर छोड़ दिया था। पारद मुक्त केशों वाले और पह्लव श्मश्रुधारी बना दिये थे। स्वाध्याय और वषट्कार से रहित उस महात्मा ने उन सबको कर दिया था ॥४९॥

शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च द्विजोत्तमाः ।
कोणिसर्पा माहिषका दर्व्वाश्चोलाः सकेरलाः ॥५०
सर्व्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्म्मस्तेषां निराकृतः ।
वसिष्ठवचनाद्राज्ञा सगरेण महात्मना ॥५१
स धर्म्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम् ।
अश्व प्रचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ॥५२
तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्व्वदक्षिणे ।
वेलासमीपेऽपहृतो भूमि चैव प्रवेशितः ॥५३
स त देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः ।
आसेदुस्तु तदा तस खन्यमाने महार्णवे ॥५४
तमादिपुरुषं देव हरिं कृष्णं प्रजापतिम् ।
विष्णुं कपिलरूपेण स्वपन्तं पुरुषं तदा ॥५५
तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यतः ।
दग्धाः सर्व्वे मुनिश्रेष्ठ श्चत्वारस्त्ववशेषिताः ॥५६

शक-यवन-काम्बोज-पारद-कोणिसर्प-माहिषिक-दर्व्व-चोल-केरल ये हे विप्रो ! क्षत्रिय ही रहे, केवल इनका धर्म निराकृत कर दिया गया था और क्यो कि ये सभी अपने प्राणों की रक्षा के लिये वसिष्ठजी की शरण मे चले गये थे अतएव श्रीगुरुदेव के वचनों से महात्मा सगर ने इनको फिर मारा नही था केवल इनके धर्म को परिवर्त्तित कराकर क्षत्रिय ही बना रहने दिया था ॥५०-५१॥ वह सगर धर्म का विजयी राजा हुआ था और उसने इस सम्पूर्ण वसुन्धरा को जीत कर अश्वमेध यज्ञ करने के लिये दीक्षित होकर उस यज्ञ के अश्व को वाजिमेध के सम्पूर्ण होने के लिये समस्त भूमि पर प्रचारित किया था ॥५२॥ चरण कराने वाले

के वह अश्वमेध का अश्व पूर्व दक्षिण समुद्र मे वेला के समीप मे अपहृत हुआ भूमि में प्रवेशित कर दिया गया था ।।५३।। उस समय मे उसके पुत्रो के द्वारा उस राजा ने उस देश को खुदवाया था । उस समय मे उस महार्णव खनन किये जाने पर वहाँ पर उन सगर के पुत्रो ने देखा था कि वहाँ पर आदिपुरुष प्रजापति कृष्ण हरि देव विष्णु कपिल मुनि के स्वरूप में शयन कर रहे थे ।।५४-५५।। जब जाग्रत हुए तो उनके चक्षुओं से निकले हुए तेज से हे मुनिगण ! वे सब सगर के पुत्र दग्ध होकर राख के ढेरी हो गये थे केवल चार अवशिष्ट रहे थे ।।५६।।

बर्हिकेतुः सुकेतुश्च तथा धर्म्मरथो नृपः ।
शूरः पञ्चनदश्चैव तस्य वंशकराः नृपाः ।।५७
प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरम् ।
अक्षयं वंशमिक्ष्वाकोः कीर्ति चाप्यनिवर्त्तिनीम् ।।५८
पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गे वासं तथाक्षयम् ।
समुद्रश्चार्घ्यमादाय ववन्दे त महीपतिम् ।।५९
सागरत्वं च लेभे स कर्म्मणा तेन तस्य ह ।
स्वञ्चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान् ।।६०
आजहाराश्वमेधानां शतं स सुमहातपाः ।
पुत्राणां च सहस्राणि षष्टिस्तस्येति नः श्रुतम् ।।६१
सगरास्यात्मजा वीराः कथं जाता महाबलाः ।
विक्रान्ताः षष्टिसाहस्राः विधिना केन सत्तम ।।६२

बर्हिकेतु-सुकेतु-धर्मरथ नृप-शूर और पञ्चनद ये ही नृप उसके वंश के करने वाले शेष बचे थे ।।५७।। भगवान् हरि नारायण ने उसको वरदान दिया था कि राजा इक्ष्वाकु का वंश क्षय रहित होगा और कभी निवृत्त न होने वाली कीर्ति लोक मे रहेगी ।।५८।। विभु ने पुत्र समुद्र को तथा अक्षय स्वर्गलोक का निवास प्रदान किया था । समुद्र ने अर्घ्य लेकर उस महीपति की वन्दना की थी ।।५९।। उसने उसके उस कर्म से सागरत्व को प्राप्त किया और वह तू उस अश्वमेध यज्ञ के अश्व को समुद्र से प्राप्त करने वाला हुआ था ।।६०।। उस सुन्दर महान् तप

के करने वाले ने एक सौ अश्वमेध यज्ञों का यजन किया था। उसके साठ हजार पुत्र थे—ऐसा हमने सुना है ॥६१॥ मुनिगण ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! उस राजा सगर के किस विधि से महान् बलशाली परम वीर और विक्रान्त साठ हजार पुत्र समुत्पन्न हुए थे ? ॥६२॥

द्वे भार्य्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे ।
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम नामतः ॥६३
कनीयसी तु महती पत्नी परमधर्म्मिणी ।
अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥६४
ऊर्व्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तद्बुध्यध्वं द्विजोत्तमाः ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका नितम्बिनी ॥६५
एकं वंशधरं त्वेका यथेष्टं वरयत्विति ।
तत्रैका जगृहे पुत्रान् षष्टिसाहस्रसम्मितान् ॥६६
एकं वंशधरं त्वेका तथेत्याह ततो मुनिः ।
राजा पञ्चजनो नाम बभूव स महाद्युतिः ॥६७
इतरा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः ।
तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः ॥६८
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे ततः ॥६९
धात्रीश्चैकैकशः प्रादात्तावतीः पोषणे नृपः ।
ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथाक्रमम् ॥७०

श्रीलोमहर्षण मुनि ने कहा—उस राजा सगर के दो भार्याऐं थीं जो तपश्चर्या के द्वारा किल्विषों को दग्ध कर देने वाली थीं। जो सबसे बड़ी रानी थी वह विदर्भ की पुत्री थी और उसका नाम केशिनी था ॥६३॥ छोटी रानी जो थी वह भी परम धर्म वाली पत्नी थी। यह अरिष्टनेमि की पुत्री थी और भूमण्डल में अपने रूप लावण्य में अनुपम था ॥६४॥ हे द्विजोत्तमो ! ऊर्व्व ने उन दोनों को वरदान प्रदान किया। उसका अब आप लोग श्रवण करो। उन दोनों में एक नितम्बिनी साठ हजार पुत्रों को ग्रहण करे ॥६५॥ और उनमें केवल एक वंश चलाने वाला पुत्र प्राप्त करेगी। जो भी इन दोनों वरों में से

जिसको भी चाहे अपनी इच्छानुसार ग्रहण कर लेवे। उनमें से एक ने तो साठ हजार पुत्रों का प्राप्त करना ही वर प्राप्त कर लिया। और एक ने केवल एक वंशधर पुत्र की प्राप्ति का वरदान प्राप्त किया। तब मुनि ने कहा—ऐसा ही होगा। वह महती द्युति वाला पञ्चजन नाम वाला राजा हुआ ॥६६-६७॥ दूसरी पत्नी ने एक बीजों से भरी हुई तुम्बी का प्रसव किया—ऐसा ही सुना जाता है। उसमें तिलों के समान साठ सहस्र गर्भ वे थे ॥६८॥ फिर यह किया गया कि घृत से भरे हुए कलशों में उन गर्भों को डाल दिया गया। राजा ने एक-एक गर्भ के लिये एक-एक धाय पोषण कार्य के लिये दे दी थीं। इसके पश्चात् दश मासों में वे यथा क्रम समुत्थित हो गये थे ॥६९-७०॥

कुमारास्ते यथाकालं सगरप्रीतिवर्द्धनाः।
षष्टिपुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् द्विजाः ॥७१
गर्भादलाबुमध्याद्वै जातानि पृथिवीपतेः।
तेषां नारायण तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम् ॥७२
एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह।
शूरः पञ्चजनस्यासीदंशुमान्नाम वीर्य्यवान् ॥७३
दिलीपस्तस्य तनयः खट्वाङ्ग इति विश्रुतः।
येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम् ॥७४
त्रयोऽभिसन्धिता लोका बुद्ध्या सत्येन चानघाः।
दिलीपस्य तु दायादो महाराजो भगीरथः ॥७५
यः स गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभुः।
समुद्रमानयच्चैनां दुहितृत्वेऽप्यकल्पयत् ॥७६
तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशचिन्तकैः।
भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुतः ॥७७

वे समस्त कुमार काल के अनुसार महाराज सगर की प्रीति को वर्धित करने वाले हो गये थे। हे द्विजगण! इस प्रकार से साठ हजार उस राजा के पुत्र हुए थे ॥७१॥ उस राजा के गर्भ दलाबु मध्य से वे सब पुत्र समुत्पन्न हुए थे। वे सब महात्मा नारायण के तेज में प्रविष्ट

हुए थे ॥७२॥ एक जो पञ्चजन नाम वाला पुत्र दूसरी पत्नी के हुआ वह राजा हुआ। उस पञ्चजन का महान् वीर्य वाला शूर अंशुमान् पुत्र हुआ। उसका पुत्र दिलीप था जो खट्वाङ्ग इस नाम से लोक में विश्रुत हुआ था जिसने स्वर्ग से यहाँ आकर एक मुहूर्त मात्र (दो घड़ी का समय) जीवित प्राप्त किया ॥७३-७४॥ इसने हे अनघो ! अपनी बुद्धि से और सत्य से तीनों लोकों को अभिसन्धित कर लिया। दिलीप का पुत्र महाराज भगीरथ हुए थे ॥७५॥ जिन प्रभु ने सरिताओं में परम श्रेष्ठ गंगा का अवतारण किया था और इसको समुद्र में ले आये थे तथा दुहितृत्व में कल्पित कर दिया ॥७६॥ इसी कारण से वंश के चिन्तन करने वालों के द्वारा यह भागीरथी गङ्गा कही जाया करती हैं। उन महाराज भगीरथ का पुत्र श्रुत इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥७७॥

नाभागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्रः परमधार्म्मिकः ।
अम्बरीषस्तु नाभागिः सिन्धुद्वीपपिताभवत् ॥७८
अयुताजित्तु दायादः सिन्धुद्वीपस्य वीर्य्यवान् ।
अयुताजित्सुतस्त्वासीदृतुपर्णो महायशाः ॥७९
दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली ।
ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदार्त्तपर्णिर्महायशाः ॥८०
सुदासस्तस्य तनयो राजा इन्द्रसखोऽभवत् ।
सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः ॥८१
ख्यातः कल्मापपादो वै राजा मित्रसहोऽभवत् ।
कल्माषपादस्य सुतः सर्व्वकर्म्मेति विश्रुतः ॥८२
अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुतः सर्व्वकर्म्मणः ।
अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नौतौ द्वौ बभूवतुः ॥८३
अनमित्रो रघुश्चैव पार्थिवर्षभसत्तमौ ।
अनमित्रसुतो राजा विद्वान् दुलिदुहोऽभवत् ॥८४

श्रुत का पुत्र नाभाग हुआ जो परम धर्मात्मा था। नाभाग का पुत्र राजा अम्बरीष हुआ और यह अम्बरीष सिन्धुद्वीप नामक पुत्र के पिता थे ॥७८॥ सिन्धुद्वीप का पुत्र बड़ा ही वीर्य वाला अयुताजित्

हुआ। इस अयुताजित् के पुत्र का नाम ऋतुपर्ण था जो महान् यशस्वी हुआ ॥७९॥ यह दिव्य अक्षों (पाशों) के हृदय का ज्ञाता था तथा बली बली और राजा नल का सखा हुआ। इस ऋतुपर्ण का पुत्र बहुत अधिक यश वाला आर्त्तपर्णि हुआ ॥८०॥ इसका पुत्र राजा सुदास समुत्पन्न हुआ जो कि देवराज इन्द्र का सखा था। इस सुदास का सुत सौदास नाम वाला राजा हुआ ॥८१॥ कल्माष पाद के नाम से विख्यात वह राजा मित्रसह हुआ। उस कल्माषपाद का सुत सर्व कर्मा-इस नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥८२॥ सर्वकर्मा का आत्मज अनरण्य हुआ। अनरण्य का पुत्र निघ्न नाम वाला उत्पन्न हुआ। उस निघ्न के दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥८३॥ ये दोनों पार्थिवों में परम श्रेष्ठ अनमित्र और रघु नाम वाले थे। अनमित्र का सुत परम विद्वान् राजा दुलिविह हुआ ॥८४॥

दिलीपस्तनयस्तस्य रामस्य प्रपितामहः।
दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्ना सुतोऽभवत् ॥८५
अयोध्यायां महाराजो यः पुरासीन्महाबलः।
अजस्तु राघवो जज्ञे तथा दशरथोऽप्यजात् ॥८६
रामो दशरथाज्जज्ञे धर्म्मात्मा सुमहायशाः।
रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिसंज्ञितः ॥८७
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे धर्म्मात्मा सुमहायशाः।
अतिथेरत्वभवत्पुत्रो निषधो नाम वीर्य्यवान् ॥८८
निषधस्य नल. पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु।
नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ॥८९
क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद्देवानीकः प्रतापवान्।
आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः ॥९०
अहीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः।
सुधन्वनः सुतश्चापि ततो जज्ञे ,शलो नृपः ॥९१

उस दुलिविह का पुत्र राजा दिलीप उत्पन्न हुआ जो श्रीराम का पितामह (बाबा) था। राजा दिलीप का पुत्र दीर्घ बाहुओं वाला रघु

उत्पन्न हुआ ॥८५॥ जो अयोध्यापुरी मे महान् बलवान् पहिले महाराज हुए थे। महाराज प्रतापी रघु के सुत का नाम अज था और उस अज के वीर्य से महाराज दशरथ की उत्पत्ति हुई ॥८६॥ श्रीराम ने दशरथ से जन्म ग्रहण किया जो परम धर्मात्मा और महान् यशस्वी हुए थे। श्रीराम के पुत्र का नाम कुश हुआ ॥८७॥ श्रीरामचन्द्र के सुत कुश से अतिथि नाम वाले पुत्र की समुत्पत्ति हुई। यह अतिथि बहुत ही धर्मात्मा और बहुत अधिक यश वाले हुए थे। इस अतिथि के वीर्य से निषध नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया। यह निषध महान् बल-विक्रम वाला राजा हुआ ॥८८॥ निषध से नल नामक पुत्र ने जन्म लिया और नल का पुत्र नभ हुआ। नभ के पुण्डरीक सुत ने जन्म लिया तथा पुण्डरीक के क्षेमधन्वा सुत उत्पन्न हुआ ॥८९॥ क्षेमधन्वा का पुत्र देवानीक था जो बहुत ही प्रताप वाला था। इस देवानीक से अहीनगु नामक पुत्र ने जन्मग्रहण किया। अहीनगु का दायाद (पुत्र) सुधन्वा नाम वाला राजा हुआ। सुधन्वा के वीर्य से शल नाम धारी पुत्र ने प्रसव प्राप्त किया ॥९०-९१॥

उक्थो नाम स धर्म्मात्मा शलपुत्रो बभूव ह।
वज्रनाभः सुतस्तस्य नलस्तस्य महात्मनः ॥९२
नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणे मुनिसत्तमाः।
वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः ॥९३
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्त्तिताः।
एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः ॥९४
पठन् सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः।
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजाना पुष्टिदस्य च।
प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः ॥९५

उक्थ नाम वाला परम धार्मिक राजा शल का सुत समुत्पन्न हुआ। इसका पुत्र वज्रनाभ और उस महात्मा वज्रनाभ का सुत नल हुआ ॥९२॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! पुराण में दो ही नल विख्यात हुए हैं। राजा वीरसेन का पुत्र जो इक्ष्वाकु के कुल का उद्वहन करने वाला था ॥९३॥

यहाँ पर प्रधान रूप से उन्हीं नृपों का वर्णन किया गया है जो इक्ष्वाकु के वंश में समुत्पन्न हुए हैं। ये विवस्वान् के वंश में बहुत अधिक तेज वाले नृप हुए हैं ॥६४॥ जो इस विवस्वान् आदित्य की सृष्टि को और प्रजाओं को पुष्टि के देने वाले श्राद्ध देव की सृष्टि को पढ़ता है वह प्रजावान् और विवस्वान् आदित्य के सायुज्य को प्राप्त होता है ॥६५॥

---

## ६—सोमोत्पत्ति वर्णन

पिता सोमस्य भो विप्रा जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः।
ब्रह्मणो मानसात्पूर्वं प्रजासर्गं विधित्सतः ॥१
अनुत्तरं नाम तपो येन तप्तं हि तत्पुरा।
त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम् ॥२
ऊर्द्ध्वमाचक्रमे तस्य रेतः सोमत्वमीयिवान्।
नेत्राभ्यां वारि सुस्राव दशधा द्योतयन् दिशः ॥३
तं गर्भं विधिनादिष्टो दश देव्यो दधुस्ततः।
समेत्य धारयामासुर्न च ताः समशक्नुवन् ॥४
यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता दिशः।
ततस्ताभिः स त्यक्तस्तु निपपात वसुन्धराम् ॥५
पतितं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः।
रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया ॥६
तस्मिन्निपतिते देवाः पुत्रेऽत्रेः परमात्मनि।
तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रास्तथान्ये मुनिसत्तमाः ॥७

लोमहर्षणजी ने कहा—हे विप्रो ! प्रजा के सर्ग के करने की इच्छा वाले ब्रह्माजी के मन से पूर्व में भगवान् अत्रि ऋषि उत्पन्न हुए थे ॥१॥ जिसने पहिले समय अनुत्तर नाम वाला तप तीन हजार दिव्य वर्ष तक तपा था ऐसा हमने सुना है ॥२॥ उनका रेतस् ऊर्ध्व भाग में आक्रान्त हो गया और वह सोमत्व को प्राप्त हो गया। दशों दिशाओं

को द्योतित करता हुआ उनके नेत्रों से जल का स्रवण हुआ ।।३।। विधि ने उस गर्भ को आज्ञा दी थी और फिर दश देवियाँ दी थीं। उनने एकत्रित होकर धारण किया किन्तु वे समर्थ नहीं हुई थीं ।।४।। अब वे दशों दिशाऐं उस गर्भ को धारण करने में समर्थ न हुई थीं तो इसके अनन्तर उन्होंने उसका परित्याग कर दिया और वह वसुन्धरा पर गिर गया ।।५।। लोकों के पितामह श्रीब्रह्माजी ने सोम को गिरता हुआ देखा तो उन्होने लोकों के हित की कामना से उसको एक रथपर समारोपित कर दिया ।।६।। देवगणों ने अत्रि के पुत्र परमात्मा के निपतित हो जाने पर तब ब्रह्माजी के पुत्र तथा अन्यों ने हे मुनिश्रेष्ठो ! स्तवन किया ।।७।

तस्य संस्तूयमानस्य तेज. सोमस्य भास्वतः ।
आप्यायनाय लोकानां भावयामास सर्व्वतः ।।८
स तेन रथमुख्येन सागरान्तां वसुन्धराम् ।
त्रिःसप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणाम् ।।९
तस्य यच्चरितं तेजः पृथिवीमन्वपद्यत ।
ओषध्यस्ताः समुद्भूता याभिः सन्धार्यते जगत् ।।१०
स लब्धतेजा भगवान् संस्तवैश्च स्वकर्म्मभिः ।
तपस्तेपे महाभागः पद्मानां दर्शनाय सः ।।११
ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः ।
बीजौषधीनां विप्राणामपां च मुनिसत्तमाः ।।१२
स तत्प्राप्य महाराज्यं सोमः सौम्यव्रतांवरः ।
समाजह्रे राजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ।।१३
दक्षिणामददात् सोमस्त्रींल्लोकानिति नः श्रुतम् ।
तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च भो द्विजाः ।।१४

उस भली भाँति संस्तुत और भासमान सोम का तेज लोकों को अप्यायित करने के लिये सभी ओर भावित हुआ ।।८।। उस सोम ने अपने प्रमुख रथ के द्वारा सागर की समाप्ति पर्य्यंन्त - सम्पूर्ण -वसुन्धरा का अत्यधिक यश वाले ने इक्कीस बार भूमि की प्रदक्षिणा की ।।९।।

उसका जो तेज इस पृथ्वी पर आया और चारों ओर भ्रमण किया तो उससे ये समस्त ओषधियाँ समुत्पन्न हुई थीं जिनके द्वारा यह जगत् सधारण किया जाता है ॥१०॥ उस तेज को प्राप्त कर लेने वाले भगवान् ने संस्तवों तथा स्वकर्मों के द्वारा महाभाग उसने पद्मों के दर्शन के लिये तपश्चर्या की थी ॥११॥ हे मुनिगणो ! इसके अनन्तर श्रीब्रह्मा जी ने जो वेदों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ थे फिर उस सोमदेव को बीजौषधियों का—विप्रों का और जलों का राज्य प्रदान कर दिया ॥१२॥ सौम्यता रखने वालों में परमोत्तम उस सोम ने उस महान् राज्य को प्राप्त करके सहस्रशत दक्षिणा वाले राजसूय यज्ञ का यजन किया ॥१३॥ उस यज्ञ में हमने ऐसा ही सुना है कि सोम ने तीनों लोकों को दक्षिणा में दे दिया। हे द्विजगणो ! वह दक्षिणा उन्हीं ब्रह्मर्षियों में प्रमुखों और सदस्यों को दी गयी ॥१४॥

हिरण्यगर्भो ब्रह्माग्निर्भृगुश्च ऋत्विजोऽभवत् ।
सदस्योऽभूद्धरिस्तत्र मुनिभिर्बहुभिर्वृता ॥१५
त सिनीच कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिःप्रभा वसुः ।
कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे ॥१६
प्राप्यावभृथमव्यग्रः सर्वदेवर्षिपूजितः ।
विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन् दिशः ॥१७
तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमैश्वर्यमृषिसत्कृतम् ।
विबभ्राम मतिस्तातविनयादनयाहृता ॥१८
बृहस्पतेः स वै भार्यामैश्वर्यमदमोहितः ।
जहार तरसा सोमो विमत्याङ्गिरसः सुतम् ॥१९
स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिर्मुहुः ।
नैव व्यसर्जयत्तारां तस्मा आङ्गिरसे तदा ॥२०
उशना तस्य जग्राह पार्ष्णिमाङ्गिरसस्तथा ।
रुद्रश्च पार्ष्णि जग्राह गृहीत्वाजगवं धनुः ॥२१

उस सोमदेव के द्वारा किये हुए राजसूय यज्ञ में हिरण्य गर्भ ब्रह्मा-अग्नि और भृगु ऋत्विज हुए थे और उसमें सदस्य बहुत-से मुनियों के मण्डल

से युक्त श्रीहरि हुए थे ॥१५॥ उसका सेवन सिनी–कुहू–द्युति पुष्टि-प्रभा-वसु-कीर्ति-धृति-और लक्ष्मी नौ देवियों ने किया ॥१६॥ समस्त देवर्षियों के द्वारा पूजित वह अधिराजेन्द्र अत्युत्तम अवभृथ को प्राप्त कर दश प्रकार से दिशाओं को भासित करता हुआ शोभित हुए थे ॥१७॥ ऋषियों के द्वारा सत्कृत–दुष्प्राप्य उस ऐश्वर्य को प्राप्त करके अविनय से आहृत उसकी मति हे तात ! विभ्रमित हो गई थी ॥१८॥ उस ऐश्वर्य के मद से मोहित होते हुए उसने अंगिरा के पुत्र बृहस्पति का अपमान करके सोमदेव ने वेग के साथ बृहस्पति की भार्या का हरण कर लिया ॥१९॥ उस समय में सब देवगणों ने और देवर्षियों ने उस सोम से बारम्बार याचना की थी सो भी उस समय में उस सोम ने बृहस्पति की पत्नी तारा को उसके लिये नहीं दिया था ॥२०॥ उशना (शुक्राचार्य) ने उस अंगिरा के पुत्र बृहस्पति की पार्ष्णि का ग्रहण किया था अर्थात् बृहस्पति की सहायता की थी तथा रुद्रदेव ने भी अपना अजगव धनुष ग्रहण करके बृहस्पति की सहायता की थी ॥२१॥

तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना ।
उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः ॥२२
तत्र तद्युद्धमभवत् प्रख्यातं तारकामयम् ।
देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकरं महत् ॥२३
तत्र शिष्टाश्च ये देवास्तुषिताश्चैव ये द्विजाः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम् ॥२४
तदा निवार्य्योशनसं तं वै रुद्रञ्च शङ्करम् ।
ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥२५
तामन्तःप्रसवां दृष्ट्वा क्रुद्धः प्राह बृहस्पतिः ।
मदीयायां न ते योनौ गर्भो धार्य्यः कथञ्चन ॥२६
इषीकास्तम्बमासाद्य गर्भं सा चोत्ससर्ज्ज ह ।
जातमात्रः स भगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः ॥२७
ततः संशयमापन्नास्तारामूचुः सुरोत्तमाः ।
सत्यं ब्रूहि सुता कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः ॥२८

उस महात्मा ने भी ब्रह्मशिर नाम वाला परमास्त्र को देवों का उद्देश्य करके छोड़ दिया जिससे उसका यश नष्ट हो गया ॥२२॥ वहाँ पर बड़ा युद्ध हुआ था जो तारकामय युद्ध के नाम से प्रसिद्ध हो गया यह ऐसा भयानक युद्ध हुआ जो देवों और दानवों का लोकों का क्षय करने वाला बहुत बड़ा था ॥२३॥ वहाँ पर जो परम शिष्ट देवगण थे तथा तुषित द्विजगण थे वे सब आदि देव सनातन ब्रह्माजी की शरण में प्राप्त हो गये थे ॥२४॥ उस समय में पितामह ने स्वयं वहाँ उपस्थित होकर उशना को तथा शंकर भगवान् रुद्र को निवारित किया और उस तारा बृहस्पति की पत्नी को उनको देदिया ॥२५॥ उस अपनी पत्नी तारा को गर्भिणी देखकर बृहस्पतिजी को बहुत अधिक क्रोध आया और उन्होने कहा—मेरी योनि में तुमको किसी भी प्रकार से गर्भ नहीं धारण करना चाहिए था ॥२६॥ उसने फिर इषीका स्तम्ब पर जाकर अपने उस गर्भ का उत्सर्ग कर दिया। वह उत्पन्न होते ही भगवान् ने अपने वपु को देवों के मध्य में आदिष्ट किया था ॥२७॥ उस समय में बहुत अधिक संशय को प्राप्त हुए देवों ने उसी समय में सुरोत्तमो ने उस तारा से पूछा था—तू यह सत्य बात हमको बतला दे कि यह गर्भ किसका है सोमदेव के वीर्य से हुआ है अथवा बृहस्पति का है ॥२८॥

पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नाह सा विबुधान् किल ।
तदा तां शप्तुमारब्धा कुमारो दस्युहन्तमः । २९
स निवार्य ततो ब्रह्मा तारां पप्रच्छ संशयम् ।
यदत्र तथ्य तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ।.३०
उवाच प्राञ्जलिः सा तं सोमस्येति पितामहम् ।
तदा स मूर्ध्निचाघ्राय सोमो राजा सुतप्रति ॥३१
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य बालस्य धीमतः ।
प्रतिकूलञ्च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः ॥३२
उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिकाम् ।
तस्यापत्य महातेजा बभूवैलः पुरूरवाः ॥३३

उर्वश्यां जज्ञिरे यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः ।
एतत् सोमस्य वो जन्म कीर्तितं कीर्तिवर्द्धनम् ॥३४

वंशमस्य मुनिश्रेष्ठाः कीर्त्यमानं निबोधत ।
धन्यमायुष्यमारोग्यं पुण्यं सङ्कल्पसाधनम् ॥
सोमस्य जन्म श्रुत्वैव पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥३५

इस प्रकार से जब वह तारा देवों के द्वारा बहुत पूछी भी गयी तो भी उसने देवों को यह नहीं बताया कि यह गर्भ सोम का था। उस समय मे दस्युओं के हनन करने वाले कुमार उसको शाप देने के लिये उद्यत हो गये थे। उसी समय में उनको ब्रह्माजी ने रोक दिया और स्वयं उन्होंने उस तारा से उस संशय के बाबत पूछा था—हे तारा! इस विषय में जो भी कुछ सत्य बात हो वही तू बतलादे कि यह पुत्र तेरे गर्भ में किसका आया था ॥२६-३०॥ उस समय मे वह तारा हाथ जोड़कर पितामह से बोली कि यह गर्भ सोमदेव के वीर्य से ही मेरे उदर में हुआ। उसी समय मे राजा सोम ने उस सुत के मस्तक का घ्राण किया ॥३१॥ फिर सोमदेव ने उसका नाम बुध रख दिया क्योंकि वह बालक बहुत बुद्धिमान् था। बुध गगन मे प्रतिकूल समुत्थित हुआ करता है ॥३२॥ उस समय मे उसने पुत्र और राज पुत्रिका को उत्पन्न किया था। उसकी सन्तति महान् तेजस्वी पुरूरवा ऐल हुआ था ॥३३॥ जिस महात्मा के उर्वशी मे सात पुत्र समुत्पन्न हुए थे। यह सोमदेव की उत्पत्ति का वर्णन हमने आपको सुना दिया है जो कीर्ति को बढ़ाने वाला है ॥३४॥ हे मुनिगणो! इसके वंश का कीर्तन करना परम धन्य—आयु के बढ़ाने वाला—आरोग्यप्रद तथा परम पुण्य प्रदान करने वाला और मन के मनोरथों का पूर्ण करने वाला होता है। इस सोमदेव के जन्म की कथा का श्रवण मात्र करने ही से मनुष्य पापों से छूट जाया करता है ॥३५॥

## ७—सोमवंशवर्णन

बुधस्य तु मुनिश्रेष्ठा विद्वान् पुत्रः पुरूरवाः ॥
तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिणः ॥१
ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्द्दमः ।
आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानाञ्च महीपतिः ॥२
सत्यवादी पुण्यमतिः सम्यक् संवृतमैथुनः ।
अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाप्रतिमः सदा ॥३
तं ब्रह्मवादिनं शान्तं धर्म्मज्ञं सत्यवादिनम् ।
उर्व्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी ॥४
तया सहावसद्राजा दश वर्षाणि पञ्च च ।
पट्पञ्च सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च भो द्विजाः ॥५
वनं चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे ।
अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे ॥६
उत्तरान् स कुरून् प्राप्य मनोरमफलद्रुमान् ।
गन्धमादनपादेषु मेरुशृङ्गे तथोत्तरे ॥७

श्रीलोमहर्षण जी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! बुध का पुत्र पुरूरवा बहुत विद्वान् था—तेजस्वी-दान देने के स्वभाव वाला—यजन करने वाला—विपुल दक्षिणा देने वाला-ब्रह्मवादी-दुर्दम तथा युद्ध में शत्रुओं के द्वारा पराक्रान्त-अग्निहोत्र करने वाला तथा यह महीपति यज्ञों के करने वाला हुआ ॥१-२॥ राजा पुरूरवा सदा सत्य भाषण करने वाला पुण्यमय मति से युक्त—भली-भाँति मैथुन करने वाला था और भूमण्डल में सदा तीनों लोकों में अनुपम यश से युक्त हुआ ॥३॥ परम यशस्विनी उर्वशी ने उस ब्रह्मवादी-परम शान्त स्वभाव वाले—धर्म के ज्ञाता और सत्यवादी नृप पुरूरवा को अपना मान त्याग कर वरण कर लिया था ॥४॥ हे द्विजगण ! उस उर्वशी के साथ उस राजा ने १८७५६५१० वर्ष तक निवास किया। चैत्ररथ अति सुन्दर वन में मन्दाकिनी के तट पर-विशाल अलकापुरी में और परम उत्तम नन्दन वन में उर्वशी के साथ रमण किया। उसने सुन्दर फलों से युक्त द्रुमों वाले उत्तर कुरु

देशों को प्राप्त कर लिया । गन्धमादन पर्वत के प्रान्तों में तथा उत्तर मेरु पर्वत के शिखर पर भी उसने उर्वशी के साथ आनन्द विहार किया था ॥५-७॥

एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च ।
उर्व्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा ॥८
देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते ।
राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः ॥९
एवम्प्रभावो राजासीदैलस्तु नरसत्तमः ।।१०
ऐलपुत्रा वभूवुस्ते सप्त देवसुतोत्तमाः ।
गन्धर्व्वलोके विदिता आयुर्धीमानमावसुः ।।११
विश्वायुश्चैव धर्म्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः ।
दृढ़ायुश्च वनायुश्च बह्वायुश्चोर्व्वशीसुताः ।।१२
अमावसोस्तु दायादो भीमो राजाथ राजराट् ।
श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रभः ।।१३
विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः ।
सुहोत्रस्याभवज्जह्नुः केशिन्या गर्भसम्भवः ।।१४

इन उपर्युक्त प्रमुख वनो में जहाँ पर देवगण विहार किया करते हैं अत्यधिक आनन्द के साथ उस राजा ने उस उर्वशी अप्सरा के साथ रमण किया ॥८॥ उस पृथिवीपति ने अपनी राजधानी महान् पुण्यतम और बड़े२ महर्षियो के द्वारा अभिष्टुत प्रयाग में बनायी थी ॥९॥ राजा ऐल मनुष्यों मे परम श्रेष्ठ इस प्रकार के प्रभाव से सम्पन्न हुआ ॥१० ॥ श्री महर्षि लोमहर्षणजी ने कहा—उस ऐल के यहाँ देवों के पुत्रो के समान सात सुतो ने जन्म लिया । ये सब गन्धर्व लोक मे प्रख्यात थे इनके नाम आयु-धीमान्-अमावसु-विश्वायु धर्मात्मा श्रुतायु-दृढ़ायु और वनायु तथा बह्वायु ये सात उर्वशी से समुत्पन्न पुत्र थे ॥११-१२॥ राजाओं का राजा भीम राजा अमावसु का सुत हुआ था तथा उस राजा भीम का दायाद काञ्चनप्रभ नाम वाला उत्पन्न हुआ ॥१३॥ उस

काञ्चनप्रभ का पुत्र महान् बल वाला सुहोत्र हुआ था। इस सुहोत्र का आत्मज जह्नु हुआ जो केशिनी के गर्भ से समुत्पन्न हुआ था ॥१४॥

आजह्रे यो महत् सत्रं सर्पमेध महामखम् ।
पतिलोभेन यं गङ्गा पतित्वेन ससार ह ॥१५
नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गा तदा सदः ।
स तथा प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः ॥१६
सौहोत्रिरशपद्गङ्गां क्रुद्धो राजा द्विजोत्तमाः ।
एष ते विफलं यत्नं पिबन्नम्भः करोम्यहम् ॥१७
अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ।
जह्नुराजर्षिणा पीतां गङ्गां दृष्ट्वा महर्षयः ॥१८
उपनिन्युर्महाभागां दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ।
युवनाश्वस्य पुत्री तु कावेरीं जह्नुरावहत् ॥१९
युवनाश्वस्य शापेन गङ्गार्द्धेन विनिर्गता ।
कावेरीं सरितां श्रेष्ठां जह्नोर्भार्यामनिन्दिताम् ॥२०
जह्नुस्तु दयितं पुत्रं सुनद्यं नाम धार्म्मिकम् ।
कावेर्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मजः ॥२१

यह ऐसा प्रतापी जह्नु राजा था जिसने महान् सर्पमेध नामक महामख सत्र किया और जिसको गंगा देवी ने अपना पति वरण करने के लोभ से इसके समीप में गमन किया ॥१५॥ इच्छा न रखने वाले उस राजा की सभा को उस समय में गंगा ने प्लावित कर दिया। उस समय में उस गंगा के द्वारा चारों ओर से प्लावित उस अपने यज्ञवाट को देखकर हे द्विजगण ! उस सौहोत्रि राजा ने अत्यन्त कुपित होकर उस समय में गंगा को शाप दे दिया था और कहा था कि यह तेरा यत्न विफल है। मैं तेरे सम्पूर्ण जल का पान किये लेता हूँ। हे गंगे ! तू इस तेरे अभिमान का बहुत ही शीघ्र फल प्राप्त करेगी। जब राजा जह्नु के द्वारा सम्पूर्ण गंगा के जल का पान करने वाला देखा तो समस्त महर्षियों ने उस महाभागा गंगा को बेटी बना कर जाह्नवी उपनीत किया। युवनाश्व की पुत्री कावेरी को जह्नु ने वहन किया था

॥१६-१९॥ यह युवनाश्व के शाप से गंगा के अर्ध भाग से विनिर्मल हुई थी समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ कावेरी सरिता जह्नु की अनिन्दित भार्या थी। उस कावेरी में जह्नु ने परम धार्मिक महानघ नामक पुत्र को समुत्पन्न किया और इसके पुत्र का नाम अजक हुआ था ॥२०-२१॥

अजकस्य तु दायादो वलाकाश्वो महीपतिः।
बभूव मृगयाशीलः कुशस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥२२
कुशपुत्रा बभूवुर्हि चत्वारो देववर्चसः।
कुशिकः कुशनाभश्च कुशाम्बो मूर्त्तिमांस्तथा ॥२३
वल्लवैः सह सवृद्धो राजा वनचरः सदा।
कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमं प्रभुः ॥२४
लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान्।
पूर्णे वरसहस्रे वै ततः शक्रो ह्यपश्यत ॥२५
अत्युग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरन्दरः।
समर्थः पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वतः ॥२६
पुत्रार्थं कल्पयामास देवेन्द्रः सुरसत्तमः।
स गाधिरभवद्राजा मघवान् कौशिकः स्वयम् ॥२७
पौरकुत्सभवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत।
गाधेः कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा ॥२८

राजा अजक दायाद बलाकाश्व नाम वाला महीपति हुआ था। यह बहुत ही अधिक मृगया करने के स्वभाव वाला था। इसके यहाँ कुश नाम वाले पुत्र ने जन्म धारण किया ॥२२॥ इस कुश के वीर्य से चार देवों के समान वर्चस वाले पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया। उनके नाम कुशिक-कुशनाम-कुशाम्ब और मूर्तिमान ये हुए थे ॥२३॥ वलव के साथ संवर्धन पाने वाला राजा सदा वनचर ही रहा। कुशिक ने बड़ा घोर तप किया था कि मैं इन्द्र के समान पुत्र की प्राप्ति करूं। इसके पश्चात् त्रास से इन्द्र ने उसके समीप आकर स्वयं ही जन्म ग्रहण किया। एक सहस्र वर्षों के पूर्ण होजाने पर फिर इन्द्र ने उसको देखा था। पुत्र के जनन में समर्थ उसने स्वयं ही पुत्र के लिये अपने आपको

कल्पित किया और सुर श्रेष्ठ देवेन्द्र ही स्वयं पुत्र रूप से समुत्पन्न हुआ था। वह राजा गाधि नाम वाला हुआ और वह कौशिक स्वयं ही मघवान् था ॥२४–२७॥ उसकी भार्या पौरुकुत्सा थी। उससे ही गाधि ने जन्म लिया। उस गाधि राजा की कन्या महाभागा परम शुभ सत्यवती नाम वाली हुई थी ॥२८॥

ता गाधिः काव्यपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभुः।
तस्याः प्रीतः स वै भर्त्ता भार्गवो भृगुनन्दनः ॥२९
पुत्रार्थं साधयामास चरुं गाधेस्तथैव च।
उवाचाहूय तां भार्य्यामृचीको भार्गवस्तदा ॥३०
उपयोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा त्वयं शुभे।
तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियर्षभः ॥३१
अजेयः क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदनः।
तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं तपोधनम् ॥३२
शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति।
एवमुक्त्वा तु तां भार्य्यामृचीको भृगुनन्दनः ॥३३
तपस्यभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह।
गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकाश्रममभ्यगात् ॥३४
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुतां द्रष्टुं नरेश्वरः।
चरुद्वयं गृहीत्वा सा ऋषेः सत्यवती तदा ॥३५
चरुमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत्।
माता तु तस्या दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ ॥३६

राजा गाधि ने उस अपनी कन्या को काव्य के पुत्र ऋचीक के लिये समर्पित कर दिया। उसके भर्त्ता भृगुनन्दन भार्गव ने परम प्रसन्न होकर गाधि के पुत्र समुत्पन्न होने के लिये चरु का साधन किया। उस समय में भार्गव ऋचीक ने उस भार्या को बुलाकर कहा—हे शुभे ! तुमें और तुम्हारी माता को स्वयं इस चरु का उपयोग करना चाहिए। उससे क्षत्रियों में परम श्रेष्ठ—दीप्तिमान् पुत्र समुत्पन्न होगा ॥२९-३१॥ यह लोक में क्षत्रियों के द्वारा अजेय और स्वयं क्षत्रियों में परम श्रेष्ठ होगा

तथा बड़े२ वीर क्षत्रियों का सूदन करने वाला होगा। हे कल्याणि! यह चरु जो तुझे दिया जा रहा है वह तुझको भी परम तपस्वी-धृतिमान्-शम स्वरूप-द्विजों में श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करेगा। इस प्रकार से कह और अपनी भार्या को भली-भाँति दोनों चरुओं के विषय में समझा कर भृगुनन्दन ऋचीक नित्य ही तपश्चर्या में अभिरत होते हुए वन में प्रवेश कर गये थे। उसी समय में गाधि राजा अपनी पत्नी के सहित ऋचीक मुनि के आश्रम में प्राप्त हो गये थे ॥३२-३४॥ वह नरेश्वर तीर्थ यात्रा के प्रसंग से वहाँ पर अपनी पुत्री को देखने के लिये समागत हो गये थे। उस समय में वह सत्यवती ऋषि के दोनों चरुओं को ग्रहण कर वहाँ उपस्थित हो गई। उसने बड़े ही यत्न पूर्वक चरु को लेकर माताजी को दे दिया। माता ने दैव बलात् उस अपनी पुत्री को अपना चरु दे दिया ॥३५-३६॥

तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मसंस्थं चकार ह।
अथ सत्यवती सर्वं क्षत्रियान्तकरं तदा ॥३७
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना।
तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्युपसृत्य च ॥३८
ततोऽब्रवीद्द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्यां वरवर्णिनीम्।
मात्रासि वञ्चिता भद्रे चरुव्यत्ययासहेतुना ॥३९
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिदारुणः।
भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधनः ॥४०
विश्वं हि ब्रह्म तपसा मया तस्मिन् समर्पितम्।
एवमुक्ता महाभाग भर्त्रा सत्यवती तदा ॥४१
प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत्।
ब्राह्मणापसदस्त्वत्त इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥४२

इसके अनन्तर अज्ञान से उसने अपनी माता का चरु आत्म संस्थ कर लिया था। इसके पश्चात् उस समय में समस्त क्षत्रियों के अन्त कर देने वाले गर्भ को सत्यवती ने धारण किया और दीप्त वपु से परम घोर दर्शन वाली हो गई थी। इसके उपरान्त समीप में आकर ऋचीक ऋषि

ने चरु के द्वारा दिया था । इसके अनन्तर वह द्विजश्रेष्ठ अपनी धर्म-पत्नी से बोले—हे भद्रे ! चरु के व्यत्यास कर देने के कारण से अपनी माता के द्वारा तुमको वंचित कर दिया गया है ॥३७-३८॥ तू अब क्रूर कर्मों के करने वाला परम दारुण पुत्र को जन्म देगी और तेरा भाई ब्रह्मभूत परम तपस्वी अनुसरण होगा ॥४०॥ मैंने सम्पूर्ण ब्रह्म तेज के साथ उसमें सन्निहित कर दिया । इस प्रकार से जब वह महान् भाग्यशाली अपने स्वामी के द्वारा कही गयी थी तो उस सत्यवती ने अपने पति को प्रसन्न किया कि मेरा पुत्र इस प्रकार का न होवे । आप से ब्राह्मणों में नीच पुत्र नहीं होना चाहिए । जब इस तरह से पत्नी के द्वारा बहुत अधिक प्रार्थना की गयी तो मुनि ने कहा—॥४१-४२॥

नैष सङ्कल्पितः कामो मया भद्रे तथास्त्विति ।
उग्रकर्मा भवेत् पुत्रः पितुर्मातुश्च कारणात् ॥४३
पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्ता ब्रवीदिदम् ।
इच्छँल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम् ॥४४
शमात्मकमृजुं त्वं मे पुत्रं दातुमिहार्हसि ।
काममेवंविधः पौत्रो मम स्यात्तव च प्रभो ॥४५
यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्त्तुमेतद्द्विजोत्तम ।
ततः प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो बलात् ॥४६
पुत्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि ।
त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति ॥४७
ततः सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम् ।
तपस्यभिरतं दान्तं जमदग्निं शमात्मकम् ॥४८
भृगोर्जगत्या वंशेऽस्मिञ्जमदग्निरजायत ।
सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्मपरायणा ॥४९

ऋचीक मुनि ने कहा—हे भद्रे ! मैंने कभी भी मन में ऐसा संकल्प नहीं किया कि ऐसा होवे । पिता और माता के कारण से तेरा पुत्र उग्र कर्मों के करने वाला होवेगा ॥४३॥ फिर सत्यवती ने इस प्रकार से वाक्य को कह कर यह कहा—हे मुनिवर ! लोकों को चाहते हुए

भी आप फिर क्यो पुत्र का सृजन करते हैं। आप मे तो ऐसी सामर्थ्य है कि आप परम सीधा शम स्वरूप पुत्र प्रदान करने के योग्य हैं। हे प्रभो! हे द्विजोत्तम! यदि यह अन्यथा नही किया जा सकता है तो यह तो आप कर सकते हैं कि भले ही मेरा और आपका पौत्र इस प्रकार का हो जावे। इसके उपरान्त उस ऋषि न अपने तप के बल से उस पर प्रसन्नता की थी ॥४४-४६॥ हे वर वर्णिनि! मेरे पुत्र में अथवा पौत्र मे विशेषता नही होगी। तुमने जैसा भी कहा है हे भद्रे! वैसा ही होगा ॥४७॥ इसके अनन्तर उस सत्यवती ने भार्गव पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था। जो तप मे अभिरत था—परम दमन शील था और शम-स्वरूप जमदग्नि नाम वाला हुआ ॥४८॥ जगत् मे भृगु के वंश में जमदग्नि ने जन्म लिया था। वह सत्यव्रती परम पुण्यमयी और सत्य तथा धर्म मे परायण हुई थी ॥४९॥

कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेय महानदी।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिपः ॥५०
तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका।
रेणुक यां तु कामल्यां तपोविद्यासमन्वितः ॥५१
आर्चीको जनयामासजामदग्न्य सुदारुणम्।
सर्व्वविद्यान्तग श्रेष्ठ धनुर्वेदस्य पारगम् ॥५२
राम क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम्।
और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महायशाः ॥५३
जमदग्निस्तपोवीर्य्याज्जज्ञे ब्रह्मविदांवरः।
मध्यमश्च शुनःशेपःशुन पुच्छः कनिष्ठकः ॥५४
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः।
जनयामास पुत्र तु तपोविद्याशमात्मकम् ॥५५
प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योऽयं ब्रह्मर्षितां गतः।
विश्वामित्र-तु धर्म्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः ॥५६

यह कौशिकी नाम से समाख्यात हुई थी तथा यह महान ही प्रवृत्त हुई थी। इक्ष्वाकु राजा के वंश मे समुत्पन्न होने वाला एक रेणु नामक

गण बतला दिया है। अब इससे आगे महात्मा आयु के वंश को बतलाऊंगा ॥६७-६८॥

---

## ८—सोमवंश मे आयुवंशवर्णन

आयोः पुत्राश्च वै पञ्च सर्व्वे वीरा महारथाः ।
स्वर्भानुतनयायां च प्रभायां जज्ञिरे नृपाः ॥१
नहुषः प्रथमं जज्ञे वृद्धशर्म्मा ततः परम् ।
रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥२
रजिः पुत्रशतानीह जनयामास पञ्च वै ।
राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम् ॥३
यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे ।
देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाब्रुवन् ॥४
आवयोर्भगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति ।
ब्रूहि नः सर्व्वभूतेश श्रोतुमिच्छाम सत्त्वतः ॥५
येषामर्थाय संग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः ।
योत्स्यते ते विजेष्यन्ति त्रींल्लोकान्नात्र संशयः ॥६
यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः ।
यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्म्मस्तत्र जयस्तथा ॥७

श्री लोमहर्षण महामुनि ने कहा—आयु के पाँच पुत्र थे और वे सब वीर एवं महारथ हुए थे। स्वर्भानु की पुत्री के गर्भ से जिसका नाम प्रभा था ये सब नृप समुत्पन्न हुए थे ॥१॥ सबसे प्रथम नहुष समुत्पन्न हुआ, इसके पश्चात् वृद्ध शर्मा हुआ था। रम्भ-रजि और अनेन ये तीनों लोकों में विश्रुत हुए हैं ॥२॥ रजि ने एक सौ पाँच पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था। यह वंश "राजेय"—इस नाम से विख्यात हुआ जो इन्द्रदेव को भी भय देने वाला था ॥३॥ जिस समय में परम दारुण देवों और असुरों का युद्ध समुत्पन्न हो गया, उस समय में देव और असुर पितामह श्री ब्रह्माजी से जाकर कहने लगे थे ॥४॥ देवासुरों ने

कहा—हे भगवन् ! हम दोनों दलों का युद्ध होने वाला है। कृपा कर आप हमको यह बतला दीजिए कि इनमें कौन विजेता होगा। हे समस्त प्राणियों के स्वामिन् ! यह आप हमको बता दीजिए। हम तात्विक रूप से यह श्रवण करना चाहते हैं ॥५॥ परमेष्ठी श्री ब्रह्माजी ने कहा—जिनके लिये परम समर्थ शक्तिशाली रजि आयुध ग्रहण करने वाला होकर युद्ध करेगा उनके ही हाथ मे तीनो लोकों की विजय श्री होगी—इनमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥६॥ जहां पर रजि है वहीं पर धृति है और जहां धृति है वही पर श्री होती है तथा धृति और श्री दोनों जहां पर है वहीं पर धर्म तथा जय रहा करती है ॥७॥

ते देवा दानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजिंतदा ।
अभ्ययुर्जयमिच्छन्तो वृण्वानास्तं नरर्षभम् ॥८
स हि स्वर्भानुदौहित्रः प्रभायां समपद्यत ।
राजा परमतेजस्वी सोमवंशविवर्द्धनः ॥९
ते हृष्टमनसः सर्व्वे रजिं वै देवदानवाः ।
ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्म्मुकम् ॥१०
अथोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदैत्ययोः ।
अर्थज्ञः स्वार्थमुद्दिश्य यशः स्वं च प्रकाशयन् ॥११
यदि दैत्यगणान् सर्व्वान् जित्वा वीर्य्येण वासवाः ।
इन्द्रो भवामि धर्म्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे ॥१२
देवाः प्रथमतो विप्राः प्रतीयुर्हृष्टमानसाः ।
एवं यथेष्टं नृपते कामः सम्पद्यतां तव ॥१३
श्रुत्वा सुरगणानान्तु वाक्यं राजा रजिस्तदा ।
पप्रच्छासुरमुख्यांस्तु यथा देवानपृच्छत ॥१४
दानवा दर्पसम्पूर्णाः स्वार्थमेवावगम्य ह ।
प्रत्यूचुस्तं नृपवरं साभिमानमिदं वचः ॥ १५

जब इस प्रकार से देवेश्वर के द्वारा सब तथा दानवों से कहा गया था तब वे सब परम प्रसन्न होकर उस समय मे रजि के समीप में गये थे। दोनों ही दल उस नरश्रेष्ठ को अपनी २ ओर वरण करना

चाहते थे ।।८।। वह रजि स्वर्भानु का धेवता था और प्रभा के गर्भ से समुत्पन्न हुआ था । यह राजा अत्यधिक तेजस्वी तथा सोम के वंश का विवर्धन करने वाला था । वे समस्त देव और दानव रजि को देखकर परम प्रसन्न हुए थे और उन दोनों ने ही उनसे प्रार्थना की थी कि आप हमारी विजय होने के लिये अपने श्रेष्ठ धनुष को ग्रहण कीजिए ।।९-१०।। इसके अनन्तर वह राजा रजि अर्थ के जानने वाला तथा स्वार्थ का उद्देश्य लेकर अपने यश का प्रकाश करते हुए उन दोनों देवो तथा दैत्यो से बोला ।।११।। रजि नृप ने कहा—यदि समस्त दैत्य गणो को अपने बल-विक्रम से युद्ध मे जीत कर धर्म से मैं वासव इन्द्र हो जाऊं तो सग्राम युद्ध करूगा ।।१२।। हे विप्रो ! देव गण ने प्रथम ही प्रसन्न मन वाले होकर विश्वास कर लिया और कहा था—हे नृप ! इस प्रकार से आपकी कामना पूरी हो जायेगी ।।१३।। उस समय मे राजा रजि ने सुरगणो के वाक्य सुनकर जिस तरह देवगणो से पूछा था वैसे ही असुरगणो से भी पूछा था ।।१४।। दानवगण तो दर्प से भरे हुए थे और अपने स्वार्थ को ही समझ कर बड़े अभिमान के साथ उस श्रेष्ठ राजा से यह वचन बोले थे ।।१५।।

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यार्थे विजयामहे ।
अस्मिस्तु समरे राजस्तिष्ठ त्वं राजसत्तम ।।१६
स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यतिचोदितः ।
भविष्यसीन्द्रो जित्वैनदेवैरुक्तस्तु पार्थिवः ।।१७
जघान दानवान् सर्व्वान् येऽवध्या वज्रपाणिनः ।
स विप्रनष्टां देवानां परामश्रीः श्रियं वशी ।।१८
निहत्य दानवान् सर्व्वानाजहार रजिः प्रभुः ।
ततो रजिं महावीर्य्यं देवैः सह शतक्रतुः ।।१९
रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः ।
इन्द्रोऽसि तात देवानां सर्व्वेषां नात्र संशयः ।।२०
यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि कर्म्मभिः ।
स तु शक्रवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया ।।२१

दानवों ने कहा—हम लोगों का तो इन्द्र महाराज प्रह्लाद हैं जिनके लिये हम विजय करते हैं। हे राजाओं मे परम श्रेष्ठ ! आप इस संग्राम में स्थित हो जाइए ॥१६॥ वह ऐसा ही होगा—यह कहने लगा था और देवों के द्वारा अत्यधिक प्रेरित किया गया था। देवगण ने उस राजा से कहा था कि आप इसको जीतकर इन्द्र हो जाँयगे ॥१७॥ उस वशी और परम श्री राजा रजि ने समस्त दानवों को मार दिया था जो कि हाथ मे वज्र धारण करने वाले अवध्य थे, अथवा जो इन्द्र के वध करने के योग्य नही थे अर्थात् इन्द्र जिनके हनन करने में असमर्थ थे। देवों की विनष्ट हुई श्री को समस्त दानवों को मार कर स्वयं हरण कर लिया था। इसके अनन्तर उस इन्द्र ने देवों के साथ उस महान् वीर्य वाले रजि से "मैं रजि का पुत्र हूँ" यह कहकर पुनः यह वचन बोला था। हे तात ! आप समस्त देवों के इन्द्र हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१८-२०॥ जिसका आपका मैं इन्द्र पुत्र हूँ—इस ख्याति को कर्मों के द्वारा प्राप्त हो जाऊंगा। वह तो शत्रु का वचन सुनकर उसके द्वारा माया से वञ्चित हो गया था ॥२१॥

तथेत्यब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम्।
तस्मिस्तु देवैः सदृशे दिव प्राप्ते महीपतौ ॥२२
दायाद्यमिन्द्रादाजह्रु राज्यं तत्तनया रजेः।
पञ्च पुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः ॥२३
समाक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम्।
ते यदा तु स्वसम्मूढा रागोन्मत्ता विधर्मिणः ॥२४
ब्रह्मद्विपश्च संवृत्ता हतवीर्य्यपराक्रमाः।
ततो लेभे स्वमैश्वर्य्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम् ॥२५
हत्वा रजिसुतान् सर्वान् कामक्रोधपरायणान्।
य इदं च्यावनं स्थानात्प्रतिष्ठानं शतक्रतोः।
शृणुयाद्धारयेद्वापि न स दौर्गत्यमाप्नुयात् ॥२६
रम्भोऽनपत्यस्त्वासीच्च वंशं वक्ष्याम्यनेनसः।
अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो महायशाः ॥२७

प्रतिक्षत्रसुतश्चासीत् सञ्जयो नाम विश्रुतः ।
सञ्जयस्य जया पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः ॥२८

उस राजा ने प्रसन्न होते हुए ऐसा ही हो—यह इन्द्र से कहा था। देवों के समान उस राजा के दिवलोक मे प्राप्त होने पर रजि के पुत्रो ने उसके दायाद राज्य का हरण कर लिया था। इसके पाँच सौ पुत्रो ने शतक्रतु ( इन्द्र ) के उस स्थान को बहुधा त्रिविष्टप स्वर्ग लोक को समाक्रान्त कर लिया था। वे जिस समय मे स्वयं महान् सम्मूढ होकर राग मे उन्मत्त और विधर्मी हो गये तथा ब्रह्मद्विट् बन गये तो हत वीर्य तथा पराक्रम से हीन हो गये थे। तब तो इन्द्र ने स्वयं ही अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्य को तथा उस उत्तम स्थान को उनसे प्राप्त कर लिया था ॥२२-२५॥ फिर उस इन्द्रदेव ने उन सब रजि के पुत्रो का हनन करके नष्ट कर दिया था क्योंकि वे सभी काम और क्रोध मे परायण हो गये थे। जो कोई पुरुष इस शतक्रतु के अपने स्थान से च्युत होने एवं प्रतिष्ठान की कथा का श्रवण किया करता है अथवा धारण करता है वह कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥२६॥ श्री महा मुनीन्द्र लोमहर्षण जी ने कहा—रम्भ तो सन्तति हीन था अब हम अनेना के वंश का वर्णन करेंगे। उस अनेना का पुत्र महान् यश वाला राजा प्रतिक्षत्र हुआ था ॥२७॥ उस प्रतिक्षत्र के यहाँ सञ्जय नाम वाले पुत्र ने जन्म लिया था जो बहुत ही प्रसिद्ध हुआ था। सञ्जय का सुत जय नाम वाला हुआ था और उस जय का पुत्र विजय हुआ था ॥२८॥

विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्य्यश्वनः सुत. ।
हर्य्यश्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान् । २९
सहदेवस्य धर्म्मात्मा नदीन इति विश्रुतः ।
नदीनस्य जयत्सेनो जयत्सेनस्य सङ्कृतिः ॥३०
सङ्कृतेरपि धर्म्मात्मा क्षत्रवृद्धो महायशाः ।
अनेनसः समाख्याताः क्षत्रवृद्धस्य चापरः ॥३१
क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशाः ।
सुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परधार्म्मिकाः ॥३२

काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः ।
पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः ॥३३
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च ।
शलात्मज आर्ष्टिसेनस्तनयस्तस्य काश्यपः ॥३४
काशस्य काशिपो राजा पुत्रो दीर्घतपास्तथा ।
धनुस्तु दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः ॥३५

विजय का पुत्र कृति और कृति का पुत्र हर्यंश्वत हुआ था । हर्यंश्वत का पुत्र महान् प्रतापी सहदेव समुत्पन्न हुआ । इस राजा सहदेव का आत्मज परम धार्मिक नदीन नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ था । नदीन का दायाद जयत्सेन और जयत्सेन का संकृति नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२९-३०॥ इस संकृति के यहाँ भी महान् यश से सम्पन्न-परम धार्मिक क्षत्र वृद्ध ने जन्म ग्रहण किया था । ये सब अनेनस वर्णित कर दिये गये हैं । उस क्षत्रवृद्ध का पुत्र महा यशस्वी सुनहोत्र हुआ । इस सुनहोत्र के परम धार्मिक तीन पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥३१-३२॥ उन तीनों में काश और शल दो तो ये थे तथा तीसरा गृत्समद् प्रभु हुआ था । इस गृत्समद् का पुत्र शुहक नाम वाला हुआ था जिसका शौनक हुआ था । ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्र हुए थे । शल का पुत्र आर्ष्टिसेन उत्पन्न हुआ था और उसका आत्मज काश्यप हुआ था ॥३३-३४॥ काश का दायाद काशिप नृप हुआ तथा उसका पुत्र दीर्घतपा उत्पन्न हुआ था । दीर्घतपा के वीर्य से धनु ने जन्म लिया था और फिर इसका सुत परम विद्वान् धन्वन्तरि हुआ था ॥३५॥

तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमतः ।
पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जन्मनि ॥३६
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा ।
काशिराजो महाराजः सर्व्वरोगप्रणाशनः ॥३७
आयुर्व्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह स भिषक्क्रियः ।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥३८

धन्वन्तरेस्तु तनय. केतुमानिति विश्रुतः ।
अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथः स्मृतः ।।३९
पुत्रो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः ।
दिवोदासस्तु धर्मात्मा वाराणस्यधिपोऽभवत् ।।४०

एतस्मिनेव काले तु पुरी वाराणसी द्विजाः ।
शून्या निवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः ।।४१
शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना ।
शून्या वर्षसहस्रं वै भविश्री तु न संशयः ।।४२

वृद्ध धीमान् के महान् तप के अन्त में पुनः इस जन्म में मनुष्यों में धन्वन्तरि देव समुत्पन्न हुए थे ।।३६।। उनके घर में उस समय में देव धन्वन्तरि ने जन्म ग्रहण किया था । महाराज काशिराज समस्त रोगों के नाश करने वाले थे ।।३७।। यहाँ पर भिषक् की क्रिया वाले वह भरद्वाज से आयुर्वेद शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने वाले हुए थे । इन्होंने उसको आठ भागों में विभक्त करके शिष्यों को प्रदान किया था ।।३८।। उन महाराज धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् इस नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसके अनन्तर केतुमान् का पुत्र परम वीर भीमरथ हुआ था ।।३९।। भीमरथ का पुत्र प्रजेश्वर दिवोदास उत्पन्न हुआ था वह परम धर्मात्मा दिवोदास वाराणसी का स्वामी हुआ था ।।४०।। इसी अवसर पर हे द्विजगण ! क्षेमक नाम वाले राक्षस ने वाराणसी पुरी को शून्य निवेशित कर दिया ।।४१।। महान् मतिमान् निकुम्भ के द्वारा वह पुरी शाप वाली हो गई थी क्योंकि वह निकुम्भ महान् आत्मा वाला था । उसने वाराणसी पुरी को यह शाप दिया था कि सहस्र वर्ष पर्यन्त यह एकदम शून्य रहेगी—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।४२।।

तस्यां हि शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः ।
विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत् ।।४३

भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरी वाराणसी ह्यभूत् ।
भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।।४४

हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः ।
भद्रश्रेण्यस्य तद्राज्यं हृतं येन वलीयसा ॥४५
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः ।
दिवोदासेन बालेति घृणया स विसर्जितः ॥४६

हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् वै महीपतिः ।
आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं वलात् ॥४७
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना ।
वैरस्यान्तो महाभागा। कृतश्चाऽमीयतेजसा ॥४८

दिवोदासाद्दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः ।
तेन बालेन पुत्रेण प्रहृतं तु पुनर्बलम् ॥४९

प्रजेश्वर दिवोदास ने शाप दी हुई उस पुरी मे विषयान्त मे गोमती मे परम सुरम्य पुरी को सन्निवेशित किया था ॥४३॥ पूर्व मे यह वाराणसी पुरी भद्रश्रेण्य की थी । इस भद्रश्रेण्य के परमोत्तम धनुर्धारी एक सौ पुत्र थे ॥४४॥ दिवोदास नृप ने उन सबका हनन करके इस पुरी को निवेशित किया था । इस महान् बलवान् नृप ने उस भद्रश्रेण्य के सम्पूर्ण राज्य को छीन लिया था ॥४५॥ इस भद्रश्रेण्य का पुत्र दुर्दम नाम स प्रसिद्ध हुआ । दिवोदास ने उस दुर्दम को बालक है—यह कहकर नहीं मारा था और दया से उसको छोड़ दिया था ॥४६॥ उस राजा ने हैहय के दायाद का हरण कर लिया था । दिवोदास के द्वारा जो अपने पिता के दायाद का हरण कर लिया गया था और बलपूर्वक छीन लिया था फिर इस भद्रश्रेण्य के पुत्र ने दुर्मद ने वापिस छीन लिया था । हे महाभागो ! अपने ही तेज के द्वारा इस दुर्मद ने वैर का अन्त कर दिया ॥४७-४८॥ इस राजा दिवोदास के वीर्य से दृषद्वती में महान् वीर प्रतर्दन ने जन्म लिया । उस बालक पुत्र ने पुनः बल का प्रहरण किया था ॥४९॥

प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सभर्गौ सुविश्रुतौ ।
वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः ॥५०

अलर्कस्तस्य पुत्रस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ।
अलर्कं प्रति राजर्षि श्लोको गीतः पुरातनैः ॥५१
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
युवा रूपेण सम्पन्नः प्रागासीच्च कुलोद्वहः ॥५२
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप्तवान् ।
तस्यासीत् सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः ॥५३
शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् ।
रम्या निवेशयामास पुरी वाराणसी पुनः ॥५४
सन्नतेरपि दायादः सुनीथो नाम धार्मिकः ।
सुनीथस्य तु दायादः क्षेमो नाम महायशाः ॥५५
क्षेमस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः ।
सुकेतोस्तनयश्चापि धर्म्मकेतुरिति स्मृतः ॥५६

उस प्रतर्दन के वत्सभर्ग के नाम से प्रसिद्ध दो पुत्र हुए थे । उसके वीर्य से वत्स पुत्र अलर्क और सन्नति आत्मज हुए थे ॥५०॥ उसका पुत्र अलर्क ब्रह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणों की रक्षा करने वाला और सत्य संकर अर्थात् संग्राम करने वाला हुआ था । उस राजर्षि अलर्क के विषय में पुरातन लोगों ने यह श्लोक गाया था ॥५१॥ वह साठ हजार साठ सौ वर्ष पर्यन्त प्रथम समय में रूप लावण्य से सुसम्पन्न कुल का उद्वहन करने वाला युवा था ॥५२॥ लोपामुद्रा देवी के प्रसाद से उसने परम आयु प्राप्त की थी । रूप और यौवन वाले उसका राज्य भी महान् था ॥५३॥ शाप के अन्त में उन महाबाहु ने क्षेमक राक्षस का हनन करके पुनः परम रम्य वाराणसी पुरी को निवेशित किया था ॥५४॥ सनति का पुत्र सुनीथ परम धार्मिक था और इस सुनीथ का पुत्र महान् यश वाला क्षेम नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥५५॥ इन क्षेम का आत्मज केतुमान् हुआ था तथा इसका पुत्र सुकेतु ने जन्म लिया था । सुकेतु का पुत्र धर्मकेतु नाम से कहा गया था ॥५६॥

धर्म्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः ।
सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥५७

आनर्त्तस्तु विभोः पुत्र सुकुमारश्च तत्सुतः ।
सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः सुधार्मिकः ॥५८
धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः ।
वेणुहोत्रसुतश्चापि भार्गो नाम प्रजेश्वरः ॥५९
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गजः ।
एते त्वङ्गिरसः पुत्र जाता वंशेऽथ भार्गव ॥६०
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयः पुत्राः सहस्रशः ।
इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता नहुषस्य निबोधत ॥६१

धर्मकेतु का दायाद महारथी सत्यकेतु हुआ था । सत्यकेतु का पुत्र विभु नामक प्रजेश्वर हुआ था । ॥५७॥ उस विभु के वीर्य से आनर्त्त पुत्र समुत्पन्न हुआ था, उसका पुत्र सुकुमार उत्पन्न हुआ था । सुकुमार के यहाँ परम धर्मात्मा धृष्ट केतु ने जन्म ग्रहण किया था ॥५८॥ इस धृष्ट केतु का दायाद प्रजेश्वर वेणु होत्र हुआ था और वेणु होत्र का सुत राजा भार्ग हुआ था ॥५९॥ भार्ग से जन्म लेने वाला भार्गभूमि था तथा वत्स का पुत्र वत्सभूमि हुआ था । हे भार्गव ! ये वंश में अङ्गिरा के पुत्र हुए थे ॥६०॥ ब्राह्मण—क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों सहस्रों की संख्या में पुत्र थे । ये सब काश्यप बतलाये गये हैं । अब नहुष के पुत्रों को समझलो ॥६१॥

—※—

## ९—ययातिचरित्रवर्णन

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः ।
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः ॥१
यतिर्ययातिः सयातिरायातिर्यातिरेव च ।
सुयातिः षष्ठस्तेषां वै ययातिः पार्थिवोऽभवत् ॥२
ककुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे परमधार्म्मिकः ।
यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः ॥३

तेषां ययातिः पञ्चानां विजित्य वसुधामिमाम् ।
देवयानीमुशनसः सुतां भार्य्यामवाप सः ॥४
शर्म्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्व्वणः ।
यदुञ्च तुर्व्वसुञ्चैव देवयानी व्यजायत ॥५
द्रुह्यं चानुं च पूरुं च शर्म्मिष्ठा वार्षपर्व्वणी ।
तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथं परमभास्वरम् ॥६
असङ्गं काञ्चनं दिव्यं दिव्यैः परमवाजिभिः ।
युक्तं मनोजवैः शुभ्रैर्येन कार्य्यं समुद्वहन् ॥७

श्री लोमहर्षणजी ने कहा—पितृ कन्या विरजा में महान् ओज वाले इन्द्र के समान तेज से युक्त राजा नहुष के छः पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥१॥ उनके नाम ये हैं—यति—ययाति—सयाति—आयाति—याति और छटवाँ सुयाति था ॥२॥ इस परम धार्मिक राजा ने ककुत्स्थ की कन्या के साथ विवाह किया था। जो यति नाम वाला पुत्र था वह तो मोक्ष मार्ग में समास्थित होकर ब्रह्मभूत मुनि हो गया था ॥३॥ शेष पाँचों में इस ययाति ने इस सम्पूर्ण वसुधा को जीत कर उशना की पुत्री देवयानी को अपनी पत्नी बनाया था ॥४॥ तथा वृषपर्वा की पुत्री असुरी शर्म्मिष्ठा को भी अपनी पत्नी बना लिया था। उस देवयानी ने यदु और तुर्वसु नाम वाले पुत्रों को जन्म दिया था ॥५॥ वार्षपर्वणी ने द्रुह्य—अनु और पूरु को जन्म ग्रहण कराया था जिसका नाम शर्म्मिष्ठा था। इन्द्र देव ने परम प्रसन्न होकर उसको एक अधिक भास्वर रथ प्रदान कर दिया था ॥६॥ यह रथ सुवर्ण का परम दिव्य-असङ्ग और उत्तम अश्वों से युक्त था जिनका वेग मन के ही समान था और इनका वर्ण परम शुभ्र था। जिसके द्वारा वह समुद्वहन का कार्य्य किया करता था ॥७॥

स तेन रथमुख्येन षड्रात्रेणाजयन्महीम् ।
ययातिर्युधि दुर्द्धर्षस्तथा देवान् सदानवान् ॥८
स रथः कौरवाणां तु सर्व्वेषामभवत्तदा ।
संवर्त्तवसुनामस्तु कौरवाज्जनमेजयात् ॥९

कुरोः पुत्रस्य राजेन्द्रराज्ञः पारिक्षितस्य ह ।
जगाम स रथो नाशं शापाद्गर्गस्य धीमतः ॥१०
गर्गस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः ।
कालेन हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः ॥११
स लोहगन्धो राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः ।
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म्म कर्हिचित् ॥१२
ततः स दुःखसन्तप्तो नालभत्संविदं क्वचित् ।
विप्रेन्द्रं शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत ॥१३
याजयामास च ज्ञानी शौनको जनमेजयम् ।
अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमाः ॥१४

उस राजा ययाति ने उस परम प्रमुख रथ के द्वारा छै ही रात्रियों में समस्त भूमि को जीत लिया था। राजा ययाति दोनों तथा दानवों के द्वारा बहुत दुर्धर्ष था और युद्ध में उसे कोई भी जीत नही सकता था ऐसा महान् बलवान् था ॥८॥ वह रथ उस समय समस्त कौरवों का हो गया था। कौरव जनमेजय से संवर्त्त वसु नाम वाला उत्पन्न हुआ था। राजेन्द्रो का राजा कुरु के पुत्र पारिक्षित वृहद्रथ परम धीमान् गर्ग के शाप से नाश को प्राप्त हो गया था ॥९-१०॥ उस राजा जानमेजय ने गर्ग के बालक पुत्र को मार दिया था और वह फिर ब्रह्महत्या को प्राप्त हो गया था ॥११॥ वह लोहगन्ध राजर्षि इधर उधर भागता हुआ पुरवासी और देशवासियो के द्वारा त्याग दिया गया था तथा उस महती ब्रह्महत्या के कारण से उसने कही पर भी शान्ति प्राप्त नही की थी ॥१२॥ इसके पश्चात् परम दुःख से सतप्त उस राजा ने कही पर भी सुस्थिरता का लाभ प्राप्त नही किया था और विप्रेन्द्र शौनक जी के समीप मे पहुंच शरण ग्रहण की थी ॥१३॥ उस परम ज्ञानी शौनक ने उस जनमेजय से यजन कराया था। हे द्विजोत्तमो ! उस राजा को पावन बनाने के लिये उससे अश्वमेध यज्ञ का यजन कराया था ॥१४॥

स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावभृथमेत्य ह ।
स च दिव्यरथो राज्ञो वशश्चे दिपतेस्तदा ॥१५

दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः ।
बृहद्रथात्क्रमेणैव गतो बार्हद्रथं नृपम् ॥१६

ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम् ।
प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ॥१७
सप्तद्वीपा ययातिस्तु जित्वा पृथ्वी ससागराम् ।
विभज्य पञ्चधा राज्य पुत्राणा नाहुषस्तदा ॥१८

ययातिर्दिशि पूर्व्वस्या यदु ज्येष्ठ न्ययोजयत् ।
मध्ये पूरु च राजानमभ्यषिञ्चत् स नाहुषः ॥१९

दिशि दक्षिणपूर्व्वस्या तुर्व्वसु मतिमान्नृपः ।
तैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ॥२०
यथाप्रदेशमद्यापि धर्म्मेण प्रतिपाल्यते ।
प्रजास्तेषा पुरस्तात्तु वक्ष्यामि मुनिसत्तमा ॥२१

उसके अवभृथ का प्राप्त करके उसका वह लोहगन्ध विनष्ट हुआ था और वह दिव्य रथ उस समय मे चेदिपति के अधीनता मे था ॥१५॥ प्रसन्न होकर इन्द्रदेव ने दिया था और उससे बृहद्रथ ने प्राप्त किया था । क्रम से बृहद्रथ से बार्हद्रथ नृपति को प्राप्त हुआ था ॥१६॥ इसके अनन्तर भीम ने राजा जरासन्ध का हनन करके उस अत्युत्तम रथ को कौरव नन्दन ने प्रीति के साथ भगवान् वासुदेवजी को समर्पित कर दिया था ॥१७॥ उस नहुष के पुत्र राजा ययाति ने सातो द्वीपो वाली सागरो के सहित पृथ्वी को जीतकर अपने पाँचो पुत्रो के लिये पाँच भागो मे उसका विभाजन कर दिया था ॥१८॥ राजा ययाति ने पूर्व दिशा मे अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु को नियोजित किया था । उस नहुष के पुत्र राजा ययाति ने मध्य देश मे पूरु को अभिषिक्त कर दिया था ॥१९॥ मतिमान् नृप ने दक्षिण पूर्व दिशा मे तुर्वसु नामक पुत्र को नियोजित कर दिया था । उन सबके द्वारा उस सातो द्वीपो वाली पत्तनो के सहित समस्त पृथ्वी को यथा प्रदेश के अनुसार धर्म पूर्वक पालन किया जाता था । हे मुनिश्रेष्ठो ! अब पहिले उनकी प्रजाओ के विषय मे वर्णन करेगे ॥२०–२१॥

धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च पञ्चभिः पुरुषर्षभैः ।
जरावानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु ॥२२
निक्षिप्तशस्त्रः पृथिवी चचार पृथिवीपतिः ।
प्रीतिमानभवद्राजा ययातिरपराजितः ॥२३
एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमब्रवीत् ।
जरा मे प्रतिगृह्णीष्व पुत्र कृत्यान्तरेण वै ॥२४
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम् ।
जरां त्वयि समाधाय तं यदुः प्रत्युवाच ह ॥२५
अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ।
अनपाकृत्य तां राजन्न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥२६
जराया बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः ।
तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥२७
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप ।
प्रतिग्रहीतुं धर्म्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥२८
स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्हयन् सुतम् ॥२९

पाँच श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा समस्त भार ग्रहण कर लेने पर उस राजा ने धनुष को पृषत्कों को न्यस्त कर दिया था। बन्धुओं पर भार को रखकर राजा जरा वाला अर्थात् वृद्ध हो गया था ॥२२॥ अस्त्रों के निक्षिप्त करने वाला वह राजा समस्त पृथ्वी पर विचरण किया करता था। वह अपराजित राजा ययाति परम प्रीति वाला हो गया ॥२३॥ इस प्रकार से समस्त पृथिवी का विभाजन करके राजा ययाति अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु से बोला था—हे पुत्र ! कुछ समय के लिये तुम मेरी वृद्धावस्था को ग्रहण कर लो क्यों कि मुझे कुछ कृत्य अभी करना है अतएव अपना यौवन मुझे देदो ॥२४॥ हे पुत्र ! तुम्हारे इस तरुण रूप को ग्रहण कर मैं इस पृथिवी पर विचरण करूंगा—ऐसी मेरी इच्छा है। इस अपनी वृद्धावस्था को तुमको देदेना चाहता हूँ। यह पिता का वचन सुनकर यदु ने इसका उत्तर दिया ॥२५॥ यदु ने कहा—मैंने भिक्षा

निर्दिष्ट नही की है जो कि ब्राह्मण की प्रतिश्रुत कर दी है। हे राजन्! उसको अपाकृत न करके मैं आपकी इस जरावस्था को ग्रहण नही करूँगा ॥२६॥ इस जरा ( वृद्धावस्था ) मे तो खान-पान सम्बन्धी बहुत से दोष हुआ करते हैं इस कारण से हे राजन्! मैं आपकी इस वृद्धता को लेने का उत्साह ही नही करता हूँ ॥२७॥ हे नृप! आपके तो मुझसे भी अधिक प्यारे बहुत से पुत्र हैं। हे धर्म के ज्ञाता राजन्! इस जरा को ग्रहण करने के लिये किसी अन्य पुत्र का वरण करिए ॥२८॥ जब उस यदु नामक पुत्र के द्वारा राजा से इस प्रकार से कहा गया था तो वह राजा क्रोध से युक्त होकर बोलने वालो मे श्रेष्ठ राजा ययाति अपने पुत्र की निन्दा करते हुए बोले—॥२९॥

क आश्रमस्तवान्योऽस्ति को वा धर्म्मो विधीयते।
मामनादृत्य दुर्ब्बुद्धे यदहं तव देशिकः ॥३०
एवमुक्तो यदुं विप्राः शशापैनं स मन्युमान्।
अराज्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति न संशयः ॥३१
द्रुह्युं च तुर्व्वसुं चैवाप्यनुं च द्विजसत्तमाः।
एवमेवाब्रवीद्राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि ॥३२
शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः।
यथावत् कथितं सर्व्वं मयास्य द्विजसत्तमाः ॥३३
एवं शप्त्वा सुतान् सर्व्वांश्चतुरः पूरुपूर्व्वजान्।
तदेव वचनं राजा पूरुमप्याह भो द्विजाः ॥३४
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्।
जरां त्वयि समाधाय त्वं पूरो यदि मन्यसे ॥३५

ययाति ने कहा—हे दुष्ट बुद्धि वाले! तेरा अन्य कौन-सा आश्रय है अथवा कौन सा धर्म तेरे द्वारा किया जाता है जिससे तू मेरा अनादर कर रहा है क्योंकि मैं तेरा आचार्य हूँ। तात्पर्य यह है कि मुझ आचार्य का अनादर करके कोई भी आश्रम और धर्म्म नही किया जा सकता है ॥३०॥ हे विप्रगण! इस तरह से यदु को कह कर उसने उसको शाप दे दिया क्योंकि वह बहुत ही कुपित हो गया था—हे मूढ! तेरी प्रजा

—

राज्य हीन होगी—इसमे कुछ भी संशय नहीं है ॥३१॥ हे सत्तमो ! इसके पश्चात् उस राजा ययाति ने अपने पुत्र द्रुह्यु, तुर्व्वसु और अनु से भी इसी तरह से जाकर अपनी जरा लेकर यौवन देने की बात कही और उन सबने भी राजा के वचनों का खण्डन कर दिया अर्थात् किसी ने भी इस प्रस्ताव को स्वीकृत नहीं किया ॥३२॥ उस अपराजित राजा ययाति ने अत्यधिक क्रोधित होकर उन सबको भी शाप दे दिया। हे द्विज सत्तमो ! इसके विषय मे मैंने यथावत् सब कह दिया है ॥३३॥ इस तरह पूरु से पहिले समुत्पन्न हुए अर्थात् बड़े भाइयो को सभी पुत्रों को चारों को राजा ने शाप दे दिया क्योंकि उन चारों ने अपने पिता के वचनो को, शिरोधार्य न कर बुरी तरह से ठुकरा दिया था। इसके अनन्तर वही वचन राजा ने अपने सुत पूरु से भी आकर कहा ॥३४॥ वह वचन यही था कि मैं तरुण होकर और तेरे इस तारुण्य के रूप को ग्रहण करके अब समस्त पृथ्वी पर विचरण करना चाहता हूँ और मैं अपनी इस वृद्धता को तुझको देकर ऐसा विहार करूँगा यदि हे पूरो ! तुझे यह मेरी जरा को ग्रहण करना स्वीकार हो ॥३५॥

स जरां प्रतिजग्राह पितुः पूरुः प्रतापवान् ।
ययातिरपि रूपेण पूरोः पर्य्यचरन् महीम् ॥३६

स मार्गमाणः कामानामन्तं नृपतिसत्तमः ।
विश्वाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथे प्रभुः ॥३७

यदा स तृप्तः कामेषु भोगेषु च नराधिपः ।
तदा पूरोः सकाशाद्वै स्वां जरां प्रत्यपद्यत ॥३८

यत्र गाथा मुनिश्रेष्ठा गीताः किल ययातिना ।
याभिः प्रत्याहरेत् कामान् सर्व्वं ह्यङ्गानि कूर्म्मवत् ॥३९

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥४०

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य तत्सर्व्वमिति कृत्वा न मुह्यति ॥४१

यदा भावं न कुरुते सर्व्वभूतेषु पापकम् ।
कर्म्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४२

उस प्रतापवान् पुरु ने अपने पिता ययाति की उस जरा को ग्रहण कर लिया और फिर राजा ययाति भी पुरु के रूप को लेकर पृथ्वी पर परिचरण करने लग गया ॥३६॥ सब नृपो मे श्रेष्ठ वह राजा अपनी काम वासनाओ की समाप्ति की खोज करता हुआ वह चैत्ररथ वन में विश्वाची अप्सरा के साथ खूब रमण किया करता रहा । जिस समय मे काम वासनाओ मे और भोगो के उपभोग करने मे वह राजा तृप्त हो गया तो फिर आकर उसने अपने पुत्र पुरु से अपनी वृद्धावस्था को वापिस ले लिया ॥३७–३८॥ हे मुनिगणो ! राजा ययाति ने जहां पर यह गाया गायी थी, जिनके द्वारा कामो को प्रत्याहृत करना चाहिए । और सब लोग जैसे कछुआ अपने सब अंगों को सिकोड़ कर अन्दर लेलिया करता है वैसे ही काम वासनाओ को भी सकुचित किया करें । कामो के अधिकाधिक उपभोग करने से काम वासनाऐं कभी भी शान्त नहीं हुआ करती है प्रत्युत अधिक बढ जाया करती हैं जिस तरह हवि के जलने से अग्नि विशेष प्रदीप्त हो जाती है ॥३९–४०॥ इस पृथ्वी मे जितने भी व्रीहियव-हिरण्य-पशु और स्त्रियां हैं वे सब एक की भी काम-वासनाओ को पूर्ण करने मे समर्थ नही हैं—यह समझ कर मोह को प्राप्त नही होना चाहिए ॥४१॥ जब समस्त प्राणियो मे पाप की भावना नही करता है और कर्म-वचन तथा मन से किसी भी तरह से पाप की भावना को त्याग देता है तभी यह प्राणी ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त किया करता है ॥४२॥

यदा तेभ्यो न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति ।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४३
या दुस्त्यजा दुर्म्मतिभिर्या न जीर्य्यति जीर्य्यतः ।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥४४
जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः ।
धनाशा जीविताशा च जीर्य्यतोऽपि न जीर्य्यति ॥४५

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्य महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हन्ति षोड़शी कलाम् ॥४६
एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम् ।
कालेन महता चायं चचार विपुलं तपः ॥४७
भृगुतुङ्गे गति प्राप तपसोऽन्ते महायशाः ।
अनश्नन् देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥४८
तस्य वंशे मुनिश्रेष्ठाः पञ्च राजर्षिसत्तमाः ।
यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्व्वा सूर्य्यस्येव गभस्तिभिः ॥४९
यदोस्तु वंशं वक्ष्यामि शृणुध्वं राजसत्कृतम् ।
यत्र नारायणो जज्ञे हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥५०
सुस्थः प्रजावानायुष्मान् कीर्त्तिमांश्च भवेन्नरः ।
ययातिचरितं नित्यमिदं शृण्वन् द्विजोत्तमाः ॥५१

जब उससे यह भयभीत नही होता है और इससे भी कोई भय प्राप्त नही किया करता है । और जब यह कुछ भी इच्छा नही रखता है और न किसी से द्वेष किया करता है तभी ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त हुआ करता है ॥४३॥ जो बुरी बुद्धि वालो के द्वारा परम दुस्त्यज है और जो जराजीर्ण होने पर भी कभी जीर्ण नही हुआ करती है तथा जो ऐसा एक महान् भयानक रोग है कि प्राणो के अन्त तक लगा ही रहता है तथा प्राणों का अन्त ही कर दिया करता है उस तृष्णा को त्याग देने वाले ही को सुख मिला करता है । जरा से जीर्ण होने वाले पुरुष के केश भी श्वेत होकर जीर्ण हो जाया करते हैं तथा दात भी जीर्ण होकर उखड़ जाते हैं किन्तु ये सब तो जीवन के साथी पक कर नष्ट हो जाते हैं मगर धन की आशा और जीवित बने रहने की आशाएं दोनो ऐसी प्रबल हैं कि जरा जीर्ण हो जाने पर जीर्ण नही हुआ करती हैं ॥४४-४५॥ जो इस लोक में कामो के उपभोग करने में सुख का अनुभव होता है और जो दिव्य स्वर्गादि लोको के निवास करने का महान् सुख होता है ये सब तृष्णा के क्षय के हो जाने से जो सुख प्राप्त होता है उस सुख का सोलहवां भी भाग नहीं होता है ॥४६॥ इस प्रकार से तृष्णा के त्याग

का महत्त्व बतला कर उस राजा ययाति ने स्त्री के सहित वन में प्रवेश कर लिया और बहुत समय पर्यन्त इसने परम दारुण तप किया ॥४ ॥ उस महान् यशस्वी राजा ने तपश्चर्या के अन्त मे भृगु तुङ्ग मे सुगति को प्राप्त किया। अशन का त्याग करके अपने देह का त्याग कर दिया तथा अपनी दारा के साथ ही उसने स्वर्ग को प्राप्त कर लिया ॥४८॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! उस राजा ययाति के वंश मे पाँच राजर्षियो मे श्रेष्ठ हुए थे। उन सबने सूर्य देव की किरणो के जाल के ही समान समस्त पृथ्वी को व्याप्त कर लिया ॥४६॥ अब मैं यदु के वंश का वर्णन करूँगा जो राजाओ के द्वारा सत्कार किया गया था। उसका आप लोग श्रवण करो जिसमे वृष्णि कुल के उद्वहन करने वाले भगवान् हरि नारायण ने स्वयं जन्म ग्रहण किया ॥५०॥ इस राजा ययाति के चरित्र का नित्य ही श्रवण किया करता है हे द्विजगणो ! वह मनुष्य परम सुस्य-प्रजा वाला-आयु से युक्त और कीर्त्तिमान् हुआ करता है ॥५१॥

---

## १० —पूरुवंशवर्णन

पूरोर्वंशं वय सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ।
द्रुह्यस्यानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च पृथक् पृथक् ॥१
शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः पूरोर्वंशं महात्मनः ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथमं वदतो मम ॥२
पूरो पुत्रः सुवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः ।
राजा चाभयदो नाम मनस्योरभवत् सुतः ॥३
तथैवाभयदस्यासीत् सुधन्वा नाम पार्थिवः ।
सुधन्वनः सुवाहुश्च रौद्राश्वस्तस्य चात्मजः ॥४
रौद्राश्वस्य दशार्णेयुः कृकणेयुस्तथैव च ।
कक्षेयुस्थण्डिलेयुश्च सन्नतेयुस्तथैव च ॥५
ऋचेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्च महाबलः ।
धनेयुश्च वनेयुश्च पुत्रकाश्च दश स्त्रियः ॥६

भद्रा शूद्राच मद्राच शलदामलदा तथा ।
खलदा च ततो विप्रा नलदा सुरसापि च ॥७

ब्राह्मणो ने कहा—हे सूतजी ! हम सब लोग अब राजा पुरु के वंश का वर्णन तात्त्विक रूप से श्रवण करना चाहते हैं तथा द्रुह्यु-अनु-यदु और तुर्वसु के वंश को पृथक२ श्रवण करना चाहते हैं ॥१॥ श्री लोम हर्षण जी ने कहा—हे मुनि शार्दूलो ! अब आप लोग महात्मा पूरु के वंश को सुनिए । मैं सब से प्रथम आनुपूर्वी के साथ विस्तार पूर्वक उसका वर्णन कर रहा हूं ॥२॥ राजा पूरु के वीर्य से सुवीर पुत्र ने जन्म लिया और इस सुवीर का सुत मनस्यु हुआ । अभयद नाम वाला राजा मनस्यु का पुत्र हुआ ॥३॥ इस अभयद का दायाद सुधन्वा नाम वाला नृप हुआ । सुधन्वा के पुत्र का नाम सुबाहु था तथा इसका आत्मज रौद्राश्व उत्पन्न हुआ ॥४॥ रौद्राश्व के कई पुत्र समुत्पन्न हुए । उनके नाम ये हैं—दशार्णेयु-कृकणेयु-कक्षेयु स्थण्डिलेयु-सन्नतेयु-ऋचेयु-जलेयु-महाबलवान् स्थलेयुणधनेयु और वनेयु ये सब पुत्र उत्पन्न हुए थे । तथा दश स्त्रियाँ थीं—भद्रा-शूद्रा-मद्रा-शलहा मलदा-हे विप्रो ! खलदा-नलदा और सुरसा ये सब थी ॥५—७॥

तथा गोचपला च स्त्रीरत्नकूटा च ता दश ।
ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे च तासां भर्त्ता प्रभाकरः ॥८
भद्रायां जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम् ।
स्वर्भानुना हृते सूर्य्ये पतमाने दिवो महीम् ॥९
तमोभिभूते लोके च प्रभा येन प्रवर्त्तिता ।
स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्त्वा वै पतमानो दिवाकरः ॥१०
वचनात्तस्य विप्रर्षेर्न पपात दिवो महीम् ।
अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः ॥११
यज्ञेष्वत्रेर्बलञ्चैव देवैर्यस्य प्रतिष्ठितम् ।
स तासु जनयामास पुत्रिकास्वात्मकामजान् ॥१२
दश पुत्रान् महासत्त्वांस्तपस्युग्रे रतांस्तथा ।
ते तु गोत्रकरा विप्रा ऋषयो वेदपारगाः ॥१३

स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता किन्च त्रिधनवर्जिताः ।
कक्षेयोस्तनयास्त्वासस्त्रय एव महारथाः ॥१४

इसी प्रकार से गो चपला और स्त्री रत्न कूटा थी । ये कुल सब दश संख्या मे थी । अत्रि के वंश मे ऋषि सुत समुत्पन्न हुआ । उन सबका भर्ता प्रभाकर था ॥८॥ भद्रा नाम वाली पत्नी मे परम यशस्वी सोम सुत को जन्म ग्रहण कराया । स्वर्भानु के द्वारा सूर्य देव के हनन किये जाने पर तथा दिवलोक से भूमि पर गिर जाने पर समस्त लोक मे अन्धकार से आवृत हो जाने पर जिसने प्रभा को प्रवर्तित किया । जब दिवाकर का पतन हुआ तो गिरते हुए दिवाकर मे यह कहा कि तेरा कल्याण होवे ॥६–१०॥ उस विप्रर्षि के वचन के प्रभाव से वह दिवलोक से मही पर नही गिरा । जिस महान् तपस्वी ने अत्रि श्रेष्ठ गोत्रो को कर दिया ॥११॥ जिस अत्रि के यज्ञो मे देवो के द्वारा बल को प्रतिष्ठित किया गया, उन पुत्रिकाओ मे उसने आत्मजो को जन्म ग्रहण कराया ॥१२॥ इस तरह से दश पुत्रो को जन्म दिया जो परम उग्र तपश्चर्या मे निरत थे । हे विप्रो ! वेदो के पारगामी ऋषिगण गोत्र करने वाले थे ॥१३॥ ये सब "स्वस्त्यात्रेय" इस नाम से विख्यात हुए किन्च त्रिधन से ये वर्जित थे । कक्षेयु के तनय बडे महारथी तीन ही हुए थे ॥१४॥

सभानरश्चाक्षुपश्च परमन्युस्तथैव च ।
सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः ॥१५
कालानलस्य धर्म्मज्ञः सृञ्जयो नाम वै सुतः ।
सृन्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः ॥१६
जनमेजयो मुनिश्रेष्ठाः पुरन्जयसुतोऽभवत् ।
जनमेजयस्य राजर्षेमहाशालोऽभवत् सुत. ॥१७
देवेषु स परिज्ञातः प्रतिष्ठितयशा भुवि ।
महामना नाम सुतो महाशालस्य विश्रुतः ॥१८
जज्ञे वीरः सुरगणैः पूजितः सुमहामनाः ।
महामनास्तु पुत्रो द्वौ जनयामास भो द्विजाः ॥१९

उशीनरञ्च धर्म्मज्ञं तितिक्षुञ्च महाबलम् ।
उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः ॥२०
नृगा कृमिर्नवा दर्व्वा पञ्चमी च दृषद्वती ।
उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः ॥२१

उन तीनों के शुभ नाम समानर-चाक्षुप और परमन्यु ये थे। समानर का पुत्र परम विद्वान् कालानल नृप हुआ ॥१५॥ कालानल का सुत धर्म का ज्ञाता सृञ्जय नाम वाला उत्पन्न हुआ। इस सृञ्जय के वीर्य से परम वीर पुरञ्जय नाम वाले राजा ने जन्म प्राप्त किया ॥१६॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! राजा पुरञ्जय का दामाद जनमेजय समुत्पन्न हुआ। उस राजर्षि जनमेजय का आत्मज महाशाल हुआ ॥१६-१७॥ महाशाल के पुत्र का नाम महामना था जो देवगणों में भी ज्ञान था और भूलोक में अपने यश को प्रतिष्ठापित करने वाला परम विश्रुत हुआ ॥१८॥ सुरगणों के द्वारा वन्दित महामना ने जन्म धारण करके हे द्विजगणो! अपने वीर्य से दो पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया ॥१६॥ उनमें एक का नाम उशी नर था जो बहुत बड़ा धर्म का ज्ञाता हुआ था और दूसरा तितिक्षु नाम वाला था जो परम महान् बलवान् था। उशीनर की पांच राजर्षियों के वंश में समुत्पन्न पत्नियाँ थीं। उनके शुभ नाम ये थे=मृगा-कृमि-नवा-दर्वा और पाँचवी दृषद्वती थी। उन पाँचों पत्नियों के गर्भों से उस राजा उशीनर के पांच कुल के उद्वहन करने वाले सत्पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥२०-२१॥

तपसा चैव महता जाता वृद्धस्य चात्मजाः ।
नृगायास्तु नृगः पुत्र. कृम्या कृमिरजायत ॥२२
नवायास्तु नव. पुत्रो दर्व्वायाः सुव्रतोऽभवत् ।
दृषद्वत्यास्तु सञ्जज्ञे शिविरौशीनरो नृपः ॥२३
शिवेस्तु शिवयो विप्रा यौधेयास्तु नृगस्य ह ।
नवस्य नवराष्ट्रन्तु कृमेस्तु कृमिला पुरी ॥२४
सुव्रस्तस्य तथाम्बष्ठाः शिविपुत्रान्निवाधत ।
शिवेस्तु शिवयः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥२५

वृपदर्भः सुवीरश्च केकयो मद्रकस्तथा ।
तेपा जनपदाः स्फीता केकया मद्रकास्तथा ॥२६
वृपदर्भाः सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजास्त्विमाः ।
तितिक्षुरभवद्राजा पूर्व्वस्या दिशि भो द्विजाः ॥२७
उपद्रथो महावीर्य्यः फेनस्तस्य सुतोऽभवत् ।
फेनस्य सुतपा जज्ञे ततः सुतपसो बलिः ॥२८

इसने जब महान् तपस्या की तब वृद्ध होने पर ही ये पुत्र उत्पन्न हुए थे । नृगा पत्नी के गर्भ से नृग नामधारी पुत्र हुआ कृमि से कृमि उत्पन्न हुआ ॥२२॥ नवा के पुत्र का नाम भी नव तथा दर्वा के पुत्र का नाम सुव्रत हुआ । दृषद्वती पत्नी ने शिवि औशीनर समुत्पन्न किये ॥२३॥ हे विप्रगण ! राजा शिवि के पुत्र शिविय और नृग के पुत्र यौधेय कहलाये गये । नव का नवराष्ट्र तथा कृमि की कृमिजा पुरी राजधानी थी ॥२४॥ राजा सुव्रत के अम्बष्ठ हुए । अब राजा शिवि के पुत्रो के विषय मे समझ लो । राजा शिवि के जो शिवय नामधारी चार पुत्र हुए ये लोकों मे परम प्रसिद्ध थे ॥२५॥ वृपदर्भ-सुवीर केकय और मद्रक ये उन चारो के नाम थे । उनके जो जनपद थे वे बहुत विस्तृत और केकय तथा मद्रक नाम वाले थे ॥ ६॥ राजा तितिक्षु की प्रजा वृपदर्भ और सुवीर थी । हे द्विजो ! तितिक्षु पूर्व दिशा मे राजा हुआ । महान् वीर्य उपद्रथ फेन उसका पुत्र हुआ । इस फेन से यहाँ सुतपा ने जन्म लिया और फिर सुतपा से बलि उत्पन्न हुआ ॥२८॥

जातो मानुपयोनौ तु स राजा काञ्चनेपुधिः ।
महायोगी स तु बलिर्बभूव नृपतिः पुरा ॥२९
पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वंशकरान् भुवि ।
अङ्गः प्रथमतो जज्ञे वङ्गः सुह्मस्तथैव च ॥३०
पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा बालेयं क्षत्रमुच्यते ।
बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा भुवि ॥३१
बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन भो द्विजाः ।
महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणतः ॥३२

बले चाप्रतिमत्वं वै धर्म्मतत्त्वार्थदर्शनम् ।
संग्रामे चाप्यजेयत्व धर्म्मे चैव प्रधानताम् ॥३३

त्रैलोक्यदर्शनञ्चापि प्राधान्यं प्रसवे तथा ।
चतुरो नियतान् वर्णास्त्वञ्च स्थापयितेति च ॥३४

इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्ति परां ययौ ।
कालेन महता विप्राः स्वञ्च स्थानमुपागमत् ॥३५

सुवर्ण का धनुष बाण धारण करने वाला उस बलि ने मानुष योनि मे ही जन्म ग्रहण किया राजा बलि मे वंश के बढाने वाले भूलोक में पाँच पुत्रों को जन्म दिया। सबसे प्रथम अङ्ग ने जन्म लिया फिर सुह्म समुत्पन्न हुआ और वङ्ग हुआ इसी प्रकार से पुण्ड्र और कलिग उत्पन्न हुए। यह बालेय क्षत्र नाम से कहा जाया करता है। भूलोक मे बालेय और ब्राह्मण उसके वंश चलाने वाले हुए हैं। हे द्विजगण! ब्रह्माजी ने परम प्रसन्न होकर ही बलि को वरदान दिया। श्री ब्रह्माजी ने यह कहा कि तुम में महायोगित्व होगा और एक कल्प के परिमाण पर्यन्त तुम्हारी आयु होगी ॥३०-३२॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे बले! तुम अनुपम होओगे अर्थात् ससार मे तुम्हारी समानता रखने वाला अन्य कोई भी नहीं होगा। तुम्हारे हृदय मे धर्म के तत्व का सही अर्थ दर्शन होगा—सग्राम मे अजेयता होगी तया धर्म मे प्रधानता होगी ॥३३॥ प्रसव मे ही यह प्रधानता होगी कि त्रैलोक्य का दर्शन होगा। तुम ऐसे प्रभाव वाले होओगे कि चार नियत वर्णों को स्थापित करोगे ॥३४॥ जब इस प्रकार से परमेष्ठी के द्वारा उस राजा बलि से कहा गया था तो बलि ने परमाधिक शान्ति प्राप्त की और फिर बहुत काल के पश्चात् वह अपने निवास स्थान पर वापिस आ गये ॥३५॥

तेषां जनपदाः पञ्च अङ्गा वङ्गाः ससुह्मकाः ।
कालिङ्गाः पुण्ड्राकाश्चैव प्रजास्त्वङ्गस्य साम्प्रतम् ॥३६

अङ्गपुत्रो महानासीद्राजेन्द्रो दधिवाहनः ।
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथोऽभवत् ॥३७

ऋचेयोस्तनयो राजा मतिनारो महीपतिः ।
मतिनारसुतास्त्वासंस्त्रयः परमधार्म्मिकाः ॥५१
वसुरोधः प्रतिरथः सुबाहुश्चैव धार्म्मिकः ।
सर्व्वे वेदविदश्चैव ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥५२
इला नाम तु यस्यासीत् कन्या वै मुनिसत्तमाः ।
ब्रह्मवादिन्यधिस्त्री सा तसुस्तामभ्यगच्छत ॥५३
तसोः सुतोऽथ राजर्षिधर्म्मनेत्रः प्रतापवान् ।
ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्य्योपदानवी ॥५४
उपदानवी ततः पुत्रांश्चतुरोऽजनयच्छुभान् ।
दुष्यन्तमथ सुष्मन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥५५
दुष्यन्तस्य तु दायादो भरतो नाम वीर्य्यवान् ।
स सर्व्वदमनो नाम नागायुतबलो महान् ॥५६

हे मुनिगणो ! रौद्राश्व के तनय का ऋचेय था । हे द्विजगण ! उस राजा के वंश का मैं वर्णन करता हूँ अब आप लोग समाहित होकर श्रवण करिए ॥५०॥ ऋचेय का पुत्र राजा मतिनार हुआ, उसके वीर्य से तीन सुत परम धार्मिक उत्पन्न हुए ॥५१॥ उनके नाम सुरोध प्रतिरथ और सुबाहु थे । ये सब परम धार्मिक वेदों के ज्ञाता और सत्यवादी एवं ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले थे ॥५२॥ हे मुनिगण ! जिसकी इला नाम वाली एक कन्या थी वह ब्रह्मवादिनी अधिस्त्री थी । तसु ने उसके साथ विवाह किया था ॥५ ॥ इस तसु का आत्मज बड़े ही प्रताप वाला राजर्षि धर्मनेत्र हुआ । यह बड़ा ब्रह्मवादी और पराक्रान्त था तथा इसकी भार्या दानवी थी । उस उप दानवी ने अपने गर्भ से परम शुभ चार पुत्रों को जन्म दिया । उन चारों सुतों के नाम दुष्यन्त सुष्मन्त प्रवीर और अनघ ये थे ॥५४-५५॥ इसी दुष्यन्त का पुत्र महान् वीर्य वाला भरत नाम वाला हुआ जिसके नाम से इस देश का नाम भारत हुआ है । यह भरत सर्वदमन था अर्थात् सबका दमन करने वाला हुआ और यह महान तथा दस हजार नागों के समान बल वाला हुआ ॥५६॥

चक्रवर्त्ती सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः ।
शकुन्तलाया भरतो यस्य नाम्ना तु भारताः ॥५७
भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः ।
मातृणां तु प्रकोपेण मया तत्कथितं पुरा ॥५८
बृहस्पतेरङ्गिरसः पुत्रो विप्रो महामुनिः ।
अयाजयद्भरद्वाजो महद्भिः क्रतुभिर्विभुः ॥५९
पूर्व्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि ।
ततोऽथ वितथो नाम भरद्वाजात्सुतोऽभवत् ॥६०
ततोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिवं ययौ ।
वितथं चाभिषिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ ॥६१
स चापि वितथः पुत्रान् जनयामास पञ्च वै ।
सुहोत्रञ्च सुहोतारं गयं गर्गं तथैव च ॥६२
कपिलञ्च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम् ।
काशिकञ्च महासत्यं तथा गृत्समतिं नृपम् ॥६३

महात्मा दुष्यन्त के वीर्य से चक्रवर्त्ती पुत्र ने जन्म ग्रहण किया । यह भरत शकुन्तला के उदर से समुत्पन्न हुआ जिसके शुभ नाम से भारत नाम पड़ा ॥५७॥ राजा भरत के पुत्रों के विनष्ट हो जाने पर माताओं का प्रकोप हो गया । यह वर्णन हम पहिले ही कर चुके हैं ॥५८॥ आङ्गिरस वृहस्पति का पुत्र विप्र महामुनि था । उस विभु भरद्वाज ने महान् क्रतुओ के द्वारा यजन किया ॥५९॥ पूर्व मे उसके पुत्र जन्म के वितथ करने पर इसके पश्चात् वितथ नाम वाला भरद्वाज मुनि का पुत्र हुआ ॥६१॥ इसके अनन्तर वितथ के समुत्पन्न होने पर भरत राजा दिवलोक वासी हो गये । भरद्वाज मुनि ने राज्यासन पर वितथ को अभिषिक्त करके वह फिर वन मे चले गये ॥६१॥ उस वितथ ने भी पाँच पुत्रो को जन्म दिया । उनके नाम सुहोत्र-सुहोता-गय-गर्ग और कपिल थे । कपिल बहुत बड़े महात्मा थे । इसके पश्चात् सुहोत्र ने भी दो पुत्रो को उत्पादित किया । महासत्य काशिक तथा गृत्समिति नृप ये उन दोनों पुत्रो के शुभ नाम थे ॥६२-६३॥

तथा गृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ।
काशिकस्य तु काशेयः पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥६४

बभूव दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिः सुतः ।
धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ॥६५

तथा केतुमतः पुत्रो विद्वान् भीमरथः स्मृतः ।
पुत्रो भीमरथस्यापि वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥६६
दिवोदास इति ख्यातः सर्वशत्रुप्रणाशनः ।
दिवोदासस्य पुत्रस्तु वीरो राजा प्रतर्द्दनः ॥६७

प्रतर्द्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सो भार्गव एव च ।
अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्मतिमान् भुवि ॥६८
हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् वै महीपतिः ।
आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ।
दिवोदासेन बालेति घृणयासौ विसर्जितः ॥७०

गृत्समिति के पुत्र ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य थे । काशिक का काशेय दीर्घतपा नाम वाला सुत समुत्पन्न हुआ ॥६४॥ इस दीर्घतपा का दायाद परम विद्वान् धन्वन्तरि उत्पन्न हुआ । इस धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् के नाम से प्रख्यात हुआ ॥६५॥ उस केतुमान् तनय बड़ा विद्वान् भीम रथ कहा गया था । भीमरथ का भी पुत्र वाराणसी का स्वामी हुआ था ॥६६॥ दिवोदास इस नाम से प्रख्यात हुआ । यह समस्त शत्रुओं का विनाश कर देने वाला था । इस राजा दिवोदास का आत्मज परम वीर राजा प्रतर्द्दन नामधारी उत्पन्न हुआ ॥६७॥ राजा प्रतर्द्दन के वत्स तथा भार्गव नाम वाले दो पुत्रों ने जन्म लिया । अलर्क राजपुत्र भूमि पर अच्छी मति वाला राजा था ॥६८॥ इस महीपति ने हैहय के दायाद को बलपूर्वक हरण कर लिया और अपने पिता के दायाद का भी आहरण कर लिया जो कि दिवोदास के द्वारा बल से हृत किया था ॥६९॥ भद्रश्रेण्य के पुत्र महात्मा-दुर्दम दिवोदास ने 'यह बच्चा है'—यह विचार करके दया से इसको छोड़ दिया ॥७०॥

अष्टारथो नाम नृपः सुतो भीमरथस्य वै ।
तेन पुत्रेणबालस्य प्रहृत तस्य भो द्विजाः ॥७१
वैरस्यान्तं मुनिश्रेष्ठाः क्षत्रियेण विधित्सता ।
अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥७२

षष्टि वर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
युवा रूपेण सम्पन्न आसीत्काशिकुलोद्वहः ॥७३
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः ।
वयसोऽन्ते मुनिश्रेष्ठा हत्वा क्षेमकराक्षसम् ॥७४

रम्या निवेशयामास पुरीं वाराणसी नृपः ।
अलर्कस्य तु दायादः क्षेमको नाम पार्थिवः ॥७५
क्षेमकस्य तु पुत्रो वै वर्षकेतुस्ततोऽभवत् ।
वर्षकेतोश्च दायदो विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥७६

आनर्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्ततोऽभवत् ।
सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथः ॥७७

अष्टारथ नाम वाला राजा भीमरथ का पुत्र था । हे द्विजगणो ! उस पुत्र के द्वारा उस बालक का जो भी कुछ प्रहृत था उसको हे मुनिगणो ! और उस क्षत्रिय ने वैर का अन्त कर देने की इच्छा की । काशीराज जो अलर्क था वह ब्राह्मणों की रक्षा करने वाला और सत्यसङ्गर था ॥७१-७२॥ वह काशिकुलोद्वह साठ सौ साठ हजार वर्ष तक रूप से सुसम्पन्न युवा था ॥७३॥ उसने लोपामुद्रा की कृपा से परम आयु प्राप्त की थी । हे मुनिगणो ! अपनी अवस्था के अन्त में उसने क्षेमक राक्षस का हनन कर दिया ॥७४॥ उस नृप ने वाराणसी पुरी को परम रम्य निवेशित किया । अलर्क का पुत्र क्षेमक नाम वाला पार्थिव हुआ ॥७५॥ क्षेमक के सुत का नाम वर्ष केतु था । इस वर्षकेतु का दायाद विभु नामधारी प्रजेश्वर था ॥७६॥ विभु का पुत्र आनर्त उत्पन्न हुआ । उस से फिर सुकुमार हुआ । इस सुकुमार का सुत महारथ सत्यकेतु ने जन्म ग्रहण किया ॥७७॥

सुतोऽभवन्महातेजा राजा परमधार्म्मिकः ।
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भर्गभूमिस्तु भार्गवात् ॥७८
एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः ॥७६
आजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां द्विजसत्तमाः ।
सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रयः ॥८०
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्य्यवान् ।
अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रो वै यशसान्विताः ॥८१
नीली च केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गनाः ।
अजमीढस्य केशिन्या जज्ञे जह्नुः प्रतापवान् ॥८२
आजह्रे यो महासत्रं सर्व्वमेधमखं विभुम् ।
पतिलोभेन यं गङ्गा विनीतेव ससार ह ॥८३
नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गा च तत्सदः ।
तत्तया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः ॥८४

यह पुत्र महान् तेजस्वी राजा परम धार्मिक था वत्स का पुत्र वत्स भूमि और भार्गव से भर्ग भूमि ने जन्म प्राप्त किया ॥७८॥ ये सब अङ्गिरा ऋषि के पुत्र भार्गव वंश मे समुत्पन्न हुए थे । हे मुनिगणो ! ये ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र थे ॥७६॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! आजमीढ दूसरा वंश था उसका भी श्रवण कर लो। सुहोत्र का पुत्र बृहत्पुत्र हुआ और बृहत् के तीन आत्मज हुए ॥८०॥ वे तीनो अजमीढ़-द्विमीढ़ और वीर्यवान् पुरुमीढ़ हुए । राजा अजमीढ़ की तीन पत्नियाँ बहुत यशस्विनी थी ॥८१॥ उनके शुभ नाम नीली केशिनी और वराङ्गना धूमिनी थे । उस राजा अजमीढ़ की जो पत्नी केशिनी थी उसके गर्भ से परम प्रतापी राजा जह्नु ने जन्म प्राप्त किया ॥८२॥ जिस राजा ने सर्वमेध मख-विभु महा-सत्र का आहरण किया और जिसको अपना पति बना लेने के लोभ से गङ्गा ने विनीता के समान सरण किया ॥८३॥ जब उसने इसकी इच्छा नहीं प्रकट की तो उसकी सभा को गङ्गा ने प्लावित कर दिया ।

इस प्रकार से राजा जह्नु ने चारों ओर से यज्ञवाट को स्वयं उस गङ्गा के द्वारा प्लावित होते हुए देखा था ।८४॥

जह्नुरप्यब्रवीद्गङ्गां क्रुद्धो विप्रास्तदा नृप।
एष ते त्रिषु लोकेषु संक्षिप्यापः पिबाम्यहम् ॥८५
अस्य गङ्गावलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ।
ततः पीता महात्मानो दृष्ट्वा गङ्गां महर्षयः ॥८६
उपनिन्युर्महाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ।
युवनाश्वस्य पुत्री तु कावेरी जह्नुरावहत् ॥८७
गङ्गाशापेन देहार्द्धं यस्याः पश्चान्नदीकृतम् ॥
जह्नोस्तु दयितः पुत्रो अजको नाम वीर्य्यवान् ।
अजकस्य तु दायदो बलाकाश्वो महीपतिः ॥८८
बभूव मृगयाशीलः कुशिकस्तस्य चात्मजः ।
पह्नवैः सह संवृद्धो राजा वनचरैः सह ॥८९
कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्र मन्द्रसमं विभुम् ।
लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान् ॥९०
स गाधिरभवद्राजा मघवा कौशिकः स्वयम् ।
विश्वामित्रस्तु गाधेयो विश्वामित्रात्तथाष्टकः ॥९१

उस समय में हे विप्रो ! नृप जह्नु को बड़ा क्रोध होगया और उसने गङ्गा से कहा—इस तुम्हारे सम्पूर्ण जल को संक्षिप्त करके मैं पी लेता हूँ ॥८५॥ हे गंगे ! यह जो तुझे अपने प्रवाह से प्लावित कर देने का अभिमान हो रहा है उसका फल तू प्राप्त कर ले ॥८६॥ उस महा-भागा गंगा दुहिता के स्वरूप मे उसने ग्रहण किया और तभी से इसका नाम जाह्नवी पड़ गया । उस राजा जह्नु ने युवनाश्व की पुत्री कावेरी के साथ विवाह किया ॥८७॥ पीछे गंगा के शाप से जिसका आधा देह नदी के रूप मे कर दिया गया । उस राजा जह्नु का पुत्र महान् वीर्य वाला अजक हुआ था । इस अजक का पुत्र बलाकाश्व मही पति हुआ ॥८८॥ इसका आत्मज कुशिक बहुत अधिक शिकार खेलने के स्वभाव वाला हुआ और वह राजा वनचर पह्लवों के साथ ही सम्बन्धित

हुआ ॥८९॥ उस राजा कुशिक ने बड़ा उग्र तप किया कि मैं इन्द्र के सहस्र विभु पुत्र प्राप्त करूँ ॥९०॥ वह इन्द्र स्वयं कौशिक गाधि राजा हुआ। इस गाधि का सुत विश्वामित्र गाधेय हुए तथा विश्वामित्र से अष्टक हुआ ॥९१॥

अष्टकस्य सुतो लौहि प्रोक्तोजह्नुगणो मया ।
आजमीढोऽपरो वंश श्रूयतां मुनिसत्तमाः ॥९२
अजमीढात्तु नील्यां वै सुशान्तिरुदपद्यत ।
पुरुजातिः सुशान्तेश्च वाह्याश्वः पुरुजातितः ॥९३
वाह्याश्वतनयाः पञ्च स्फीता जनपदावृताः ।
मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा ॥९४
यवीनरश्च विक्रान्तः कृमिलाश्वश्च पञ्चमः ।
पञ्चैते रक्षणायाल देशानामिति विश्रुताः ॥९५
पञ्चाना ते तु पञ्चालाः स्फीता जनपदावृताः ।
अल सरक्षणे तेषा पञ्चाला इति विश्रुताः ॥९६
मुद्गलस्य तु दायादो मौद्गल्यः सुमहायशाः ।
इन्द्रसेना यतो गर्भ वध्न्यश्च प्रत्यपद्यत ॥९७
आसीत् पञ्चजनः पुत्रः सृञ्जयस्य महात्मनः ।
सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः ॥९८

इन अष्टक का सुत लौहि उत्पन्न हुआ जिसको मैंने जह्नुगण बतलाया था। अब हे मुनिगणो ! दूसरा आजमीढ वंश का श्रवण करो ॥९२॥ उस राजा आजमीढ के वीर्य से नीली नामधारिणी पत्नी से सुशान्ति ने जन्म लिया। उस सुशान्ति का सुत पुरुजाति हुआ तथा फिर पुरुजाति के वीर्य से वाह्याश्व ने जन्म प्राप्त किया ॥९३॥ इस वाह्याश्व के पाँच पुत्र हुए, जो बहुत विस्तृत जनपदों से समावृत थे। मुद्गल-सृञ्जय-राजा बृहदिषु-परम विक्रान्त यवीनर तथा पाँचवा कृमिलाश्व हुआ। ये पाँचों सम्पूर्ण देशों की रक्षा करने के लिये परम समर्थ थे—इस प्रकार से ये पाँचों प्रख्यात हुए ॥९४-९५॥ इन पाँचों के पञ्चाल स्फीत जनपदों से समावृत थे। उन विस्तृत देशों की सुरक्षा के लिये पञ्चाल परम

विश्रुत हुए ॥९६॥ राजा मुद्गल का दायाद मौद्गल्य था जो सुमहान् यश वाला हुआ। जिसके वीर्य से इन्द्रसेना ने गर्भ धारण किया और वुघ्नश्व नामक पुत्र की प्राप्ति की ॥९७॥ महात्मा सृञ्जय का पुत्र पञ्चजन हुआ और पञ्चजन के सुत का नाम महीपति सोमदत्त ने जन्म लिया था ॥९८॥

सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशाः।
सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम विश्रुतः ॥९९
अजमीढसुतो जातः क्षीणे वंशे तु सोमकः।
सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्त पुत्रशत वभौ ॥१००
तेषां यवीयान् पृषतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः।
आजमीढा. स्मृताश्चैते महात्मानस्तु सोमकाः ॥१०१
महिषी त्वजमीढस्य धूमिना पुत्रगृद्धिनी।
पतिव्रता महाभागा कुलजा मुनिसत्तमाः ॥१०२
सा च पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्य्यसमन्विता।
ततो वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥१०३
हुत्वाग्नि विधिवत् सा तु पवित्रा मितभोजना।
अग्निहोत्रकुशेष्वेव सुष्वाप मुनिसत्तमाः ॥१०४
धूमिन्या स तया देव्या त्वजमीढ. समीयिवान्।
ऋक्ष सञ्जनयामास धूम्रवर्णं सुदर्शनम् ॥१०५

इस सोमदत्त का दायाद सहदेव था जो महान् यश से सम्पन्न था। तथा सहदेव का पुत्र सोमक नाम वाला प्रख्यात हुआ ॥९९॥ वंश के क्षीण हो जाने पर अजमीढ का पुत्र सोमक समुत्पन्न हुआ। इस सोमक के पुत्र का नाम जन्तु था जिसने एक सौ पुत्र इस भूमण्डल मे शोभित हुए ॥१००॥ उनमे यवीयान् पृषत था जो प्रभु द्रुपद का पिता था। ये सब आजमीढ कहे गये हैं। ये सब महान् आत्माओं वाले सोमक थे ॥१०१॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! अजमीढ की महिषी अर्थात् महाभिषिक्ता रानी पुत्र गृद्धिनी धूमिनी थी जो सत्कुलोत्पन्ना महान् भागवाली पतिव्रता थी ॥१०२॥ यह पुत्र को चाहने वाली देवी ब्रह्मचर्य व्रत से युक्त होकर

दश हजार वर्ष तक उसने अत्यन्त कठिन तपस्या की ॥१०३॥ यह विधि पूर्वक अग्नि मे हवन करके परम पवित्र रहा करती और परिमित भोजन किया करती थी। हे श्रेष्ठ मुनिगणो! यह अग्निहोत्र के कुशाओ पर ही सो गई ॥१०४॥ उस देवी धूमिनी के साथ अजमीढ ने सहवास किया था। तब धूम्रवर्ण वाले सुदर्शन ऋक्ष को उसने जन्म दिया था ॥१०५॥

ऋक्षात् सम्वरणो जज्ञ कुरु. सम्वरणात्तथा।
य. प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्र चकार ह ॥१०६
पुण्य च रमणीय च पुण्यकृद्भिर्निपेवितम्।
तस्यान्ववाय. सुमहान् यस्य नाम्नाथ कौरवा: ॥१०७
कुरोश्च पुत्राश्चत्वार: सुधन्वा सुधनुस्तथा।
परीक्षिच्च महाबाहु: प्रवरश्चारिमेजय: ॥१०८
परीक्षितस्तु दायादो धार्म्मिको जनमेजय:।
श्रुतसेनोऽग्रसेनश्च भीमसेनश्च नामत: ॥१०९
एते सर्व्वे महाभागा विक्रान्ता वलशालिन:।
जनमेजयस्य पुत्रस्तु सुरथो मतिमास्तथा ॥ १०
सुरथस्य तु विक्रान्त: पुत्रो जज्ञे विदूरथ:।
विदूरथस्य दायाद ऋक्ष एव महारथ. ॥१११
द्वितीयस्तु भरद्वाजान्नाम्ना तेनैव विश्रुत:।
द्वावृक्षौ सोमवंशेऽस्मिन् द्वावेव च परीक्षितौ ॥ ११२

उस ऋक्ष से सम्वरण ने जन्म प्राप्त किया तथा फिर सम्वरण से कुरु समुत्पन्न हुआ। जिसने प्रयाग से अतिक्रमण करके कुरुक्षेत्र को किया ॥१०६॥ यह कुरुक्षेत्र परम पुण्य स्थान और अधिक रमणीय था जो कि पुण्यात्मा पुरुषो के द्वारा सेवित था। उस कुरु का वंश बहुत विशाल था जिसके नाम से कौरव प्रसिद्ध हुए थे ॥१०७॥ उस महाराज कुरु के चार पुत्र हुए। सुधन्वा, सुधनु-महाबाहु परीक्षित और प्रवर अरिमेजय ये उन चारो के शुभ नाम थे ॥१०८॥ राजा परीक्षित का पुत्र परम धार्मिक जनमेजय उत्पन्न हुआ। श्रुतसेन-अग्रसेन और भीम-

सेन इन नामों वाले सभी परम विक्रान्त एवं बलशाली थे। तथा जन-मेजय का पुत्र मतिमान् सुरथ समुत्पन्न हुआ था ॥१०६-११०॥ सुरथ के वीर्य से परम विक्रान्त विदूरथ ने पुत्र रूप मे जन्म लिया। इस विदू-रथ का दायाद महारथी ऋक्ष ही हुआ ॥१११॥ दूसरा भरद्वाज से उसी नाम से विश्रुत हुआ। इस सोम के वंश मे दो ऋक्ष हुए हैं और दो ही परीक्षित भी हुए हैं ॥११२॥

भीमसेनाख्ययो विप्रा द्वौ चापि जनमेजयौ।
ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः ॥११३
प्रपीपो भीमसेनात्तु प्रतीपस्य तु शान्तनुः।
देवापिर्वाह्लिकश्चैव त्रय एव महारथाः ॥११४
शान्तनोस्त्वभवद्भीष्मस्तस्मिन् वंशे द्विजोत्तमाः।
वाह्लिकस्य तु राजर्षेर्वंशं शृणुत भो द्विजाः ॥११५
वाह्लिकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः।
जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥११६
उपाध्यायस्तु देवाना देवापिरभवन्मुनिः।
च्यवनपुत्रः कृतक इष्ट आसीन्महात्मनः ॥११७
शान्तनुस्त्वभवद्राजा कौरवाणा धुरन्धरः।
शान्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि वंशं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥११८
गाङ्गं देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभुः।
स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवाना पितामहः ॥११९

हे विप्रगण ! भीमसेन तीन हुए हैं और जनमेजय भी दो हुए हैं। द्वितीय ऋक्ष का पुत्र भीमसेन हुआ ॥११३॥ उस भीमसेन के वीर्य से प्रतीप नामक सुत समुत्पन्न हुआ तथा प्रदीप का पुत्र शान्तनु हुआ। देवापि और वाह्लिक ये तीनो ही महारथ थे ॥११४॥ हे द्विजोत्तमो ! उस महाराज शान्तनु का पुत्र भीष्म हुआ और उस वंश मे यह उत्पन्न हुए थे। अब हे द्विजो ! आप लोग वाह्लिक के विषय मे श्रवण करो ॥११५॥ उस वाह्लिक का दायाद महान् यश वाला सोमदत्त समुत्पन्न हुआ। उस सोमदत्त के वीर्य से भूरि भूरिश्रवा और शल इनने जन्म

लिया। देवो का उपाध्याय देवापि मुनि हुआ। महात्मा च्यवन का पुत्र कृतक इष्ट था ॥११७॥ समस्त कौरवो का परम धुरन्धर शान्तनु राजा हुआ। अब हम राजा शान्तनु के तीनो लोको मे प्रसिद्ध वंश का वर्णन करेंगे ॥११८॥ उस प्रभु शान्तनु ने गाङ्ग देवव्रत ना। वाले पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था। वही "भीष्म" इस नाम से विख्यात हुए थे जो कि समस्त पाण्डवो के पितामह थे ॥११६॥

काली विचित्रवीर्य्यं तु जनयामास भो द्विजाः।
शान्तनोर्दयित पुत्र धर्म्मात्मानमकल्मषम् ॥१२०
कृष्णद्वैपायनाच्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्य्यके।
धृतराष्ट्र च पाण्डु च विदुर चाप्यजीजनत् ॥१२१
धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्य्यां पुत्रानुत्पादमञ्छतम्।
तेषां दुर्य्योधनः श्रेष्ठ. सर्व्वेषामपि स प्रभुः ॥१२२
पाण्डोर्धनञ्जयः पुत्रः सौभद्रस्तस्य चात्मज.।
अभिमन्योः परीक्षित्तु पिता पारीक्षितस्य ह ॥१२३
पारिक्षितस्य काश्याया द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः।
चन्द्रापीडस्तु नृपतिः सूर्य्यापीड़श्च मोक्षवित् ॥१२४
चन्द्रापीड़स्य पुत्राणा शतमुत्तमधन्विनाम्।
जानमेजयमित्येव क्षात्र भुवि परिश्रुतम् ॥१२५
तेषा ज्येष्ठस्तु तत्रासीत् पुरे वारणसाह्वये।
सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिण· ॥१२६

हे द्विजगण! काली ने विचित्र वीर्य को उत्पन्न किया था जो शान्तनु का परम प्रिय-धर्मात्मा और कल्मष रहित पुत्र था। कृष्ण द्वैपायन से विचित्रवीर्य के क्षेत्र मे अर्थात् उसकी पत्नी के उदर से धृतराष्ट्रपाण्डु तथा विदुर ने जन्म प्राप्त किया था ॥१२०-१२१॥ धृत-राष्ट्र ने गान्धारी नाम वाली पत्नी के गर्भ से एक सौ पुत्रों को उत्पन्न किया। उन सब मे दुर्योधन श्रेष्ठ था और वह सब का स्वामी बन गया था ॥१२२॥ पाण्डु का आत्मज धनञ्जय था और उसका पुत्र सौभद्र

हुआ। अभिमन्यु से परीक्षित पुत्र उत्पन्न हुआ जो पारीक्षित का पिता था ॥१२३॥ उस पारीक्षित के काशी मे दो तनय उत्पन्न हुए। उनमें चन्द्रापीड़ तो नृपति हो गया तथा दूसरा जो सूर्यापीड़ था वह मोक्ष का ज्ञाता था ॥१२४॥ चन्द्रापीड़ के उत्तम धनुर्धारी एक सौ पुत्र हुए थे। यह सब जानमेजय क्षात्र भूलोक मे विख्यात हुए ॥१२५॥ उस उन सब पुत्रों मे जो ज्येष्ठ था वह वारणस नामक नगर मे था और इसका शुभ नाम सत्यकर्ण था। यह महाबाहु और यजन करने वाला तथा बहुत अधिक दक्षिणा देने वाला हुआ ॥१२६॥

सत्यकर्णस्य दायादः श्वेतकर्णः प्रतापवान् ।
अपुत्रः स तु धर्म्मात्मा प्रविवेश तपोवनम् ॥१२७
तस्माद्वनगता गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत ।
सुचारोर्दुहिता सुभ्रूर्मालिनी ग्राहमालिनी ॥१२८
सम्भूते स च गर्भे च श्वेतकर्णः प्रजेश्वरः ।
अन्वगच्छत् कृत पूर्व्वं महाप्रस्थानमच्युतम् ॥१२९
सा तु दृष्ट्वा प्रिय त च मालिनी पृष्ठतोऽन्वगात् ।
सुचारोर्दुहिता साध्वी वने राजीवलोचना ॥१३०
पथि सा सुषुवे बाला सुकुमारं कुमारकम् ।
तमपास्याथ तत्रैव राजानं सान्वगच्छत ॥१३१
पतिव्रता महाभागा द्रौपदीव पुरा सती ।
कुमारः सुकुमारोऽसौ गिरिपृष्ठे रुरोद ह ॥१३२
दयार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन्महात्मनः ।
श्रविष्ठायास्तु पुत्रौ द्वौ पैप्पलादिश्च कौशिकः ॥१३३

इस सत्यकर्ण का जो सुत उत्पन्न हुआ उसका नाम श्वेतकर्ण था तथा यह बहुत प्रताप वाला था। इस धर्मात्मा के कोई भी पुत्र नहीं था अतएव इसने तपोवन मे प्रवेश कर लिया था ॥१२७॥ फिर उससे वन में गयी हुई यादवी ने गर्भ धारण किया। यह सुचारु की पुत्री सुभ्रू ग्राहमालिनी थी ॥१२८॥ उस गर्भ के सम्भूत हो जाने पर प्रजेश्वर श्वेत कर्ण पूर्वकृत अच्युत महा प्रस्थान को चला गया ॥१२९॥ उस मालिनी

ने जब अपने प्रिय स्वामी को गमन करते हुए देखा तो वह भी पीछे से चली गयी। वह सुबाहु की पुत्री राजीव कमल के समान सुन्दर नेत्र वाली परम साध्वी थी ॥१३०॥ उस बाला ने मार्ग मे ही परम सुकुमार कुमार को जन्म ग्रहण कराया। उसने उस कुमार को वहीं पर छोड़कर वह राजा के ही पीछे २ चली गयी। यह महाभागा पतिव्रता थी और जैसे पहिले सती द्रौपदी ने अपने स्वामी का अनुसरण किया था वैसा ही इसने भी किया। वह परम सुकुमार कुमार पर्वत के ऊपर पड़ा हुआ रुदन कर रहा था ॥१३१-१३२॥ उस महात्मा के ऊपर दया करके मेघ प्रादुर्भूत हो गये थे। श्रविष्ठा के दो पुत्र थे और पैप्पलादि तथा कौशिक थे ॥१३३॥

दृष्ट्वा कृपान्वितौ गृह्य तौ प्राक्षालयतां जले।
निघृष्टौ तस्य पार्श्वौ तु शिलायां रुधिरप्लुतौ ॥१३४
अजश्यामः स पार्श्वाभ्यां घृष्टाभ्यां सुसमाहितः।
अजश्यामौ तु तत्पार्श्वौ देवेन सम्बभूवतु ॥१३५
अथाजपार्श्व इति वै चक्राते नाम तस्य तौ।
स तु रेमकशालायां द्विजाभ्यामभिवर्द्धितः ॥१३६
रेमकस्य तु भार्य्या तमुद्वहद् पुत्रकारणात्।
रेमत्या स तु पुत्रोऽभूद्ब्राह्मणौ सचिवौ तु तौ ॥१३७
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्यजीविनः।
स एष पौरवो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम् ॥१३८
श्लोकोऽपि चात्र गीतोऽयं नाहुषेण ययातिना।
जरासंक्रमणे पूर्वं तदा प्रीतेन धीमता ॥१३९
अचन्द्रार्कग्रहा भूमिर्भवेदियमसंशयम।
अपौरवा मही नैव भविष्यति कदाचन ॥१४०

इन्होंने जिस समय में इस कुमार को देखा तो उसको उन्होंने ग्रहण कर लिया। उन्होंने उसको जल में प्रक्षालित किया था। उसके दोनों पार्श्वभाग शिला में निघृष्ट होकर रुधिर से प्लुत हो गये ॥१३४॥ वह घृष्ट पार्श्वभागों से सुसमाहित होकर अज के समान श्याम हो गया।

देव के द्वारा उसके दोनो पार्श्वभाग अज श्याम हो गये ॥१३५॥ इसके अनन्तर उन दोनो ने उस कुमार का नाम अज पार्श्व कर दिया। फिर वह कुमार रेमकशाला मे द्विजो के द्वारा सम्वन्धित किया गया ॥१३६॥ रेमक की भार्या ने पुत्र होने के कारण से उसका उद्वहन किया। वह अब रेमनी का पुत्र होगया और वे दोनो ब्राह्मण सचिव हो गये ॥१३६॥ उनके पुत्र और पौत्र एक साथ तुल्यजीवी थे। वह यही महात्मा पाण्डवो का पौरव वश है ॥१३८॥ इनके विषय मे नहुष के पुत्र ययाति ने एक श्लोक का गान किया। उस राजा ययाति ने जो कि परम धीमान् एव प्रसन्न होते हुए इस श्लोक का गान जरा ( वृद्धावस्था ) के सक्रमण के पूर्व मे ही किया था ॥१३८॥ उसने कहा—यह भूमि विना किसी संशय के बिना चन्द्र सूर्य और ग्रहो वाली हो सकती है किन्तु पौरव वश इतना विशाल है कि यह भूमि पौरवो से रहित कभी भी नही होगी ॥१४०॥

एष वः पौरवो वंशो विख्यातः कथितो मया।
तुर्व्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रुह्योश्चानोर्यदोस्तथा ॥१४१

तुर्व्वसोऽस्तु सुतो वह्निर्गोभानुस्तस्य चात्मजः।
गोभानोस्तु सुतो राजा त्रैशानुरपराजितः ॥१४२

करन्धमस्तु त्रैशानेर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः।
अन्यस्त्वाक्षितो राजा मरुत्तः कथितो मया ॥१४३

अनपत्योऽभवद्राजा यज्वा विपुलदक्षिणः।
दुहिता सम्मता नाम तस्यासीत् पृथिवीपतेः ॥१४४

दक्षिणार्थ तु सा दत्ता सवर्त्ताय महात्मने।
दुष्यन्त पौरव चापि लेभे पुत्रमकल्मषम् ॥१४५

एव ययातिशापेन जरासक्रमणे तदा।
पौरव तुर्व्वसोर्वंश प्रविवेश द्विजोत्तमाः ॥१४६

दुष्यन्तस्य तु दायादः करुरोमः प्रजेश्वरः।
करूरोमादथाह्लीदश्चत्वारस्तस्य चात्मजाः ॥१४७

यह पौरव वश परम विख्यात है जिसका वर्णन मैंने कर दिया है। अब तुर्वसु-द्रुह्य -अनु और यदु के वश का वर्णन मैं करके आपको श्रवण

कराऊँगा ॥१४१॥ तुर्वसु का पुत्र वह्नि उत्पन्न हुआ था और उसका आत्मज गोभानु हुआ। इस गोभानु का सुत अपराजित राजा त्रैशानु हुआ ॥१४२॥ त्रैशानु का आत्मज करन्धम उत्पन्न हुआ तथा मरुत् इसका पुत्र हुआ। अन्य अविक्षित राजा था जो मरुत् से मैंने बतलाया था ॥१४३॥ यह राजा यजन करने वाला तथा विपुल दक्षिणा देने वाला था किन्तु यह सन्तति से हीन था। उस राजा की एक सम्मता नाम वाली पुत्री थी ॥१४४॥ उस पुत्री का समर्पण महात्मा सम्वर्त के लिये दक्षिणा के रूप में किया। उसने दुष्यन्त और अकल्मष पौरव पुत्र को प्राप्त किया ॥१४५॥ इस प्रकार से उस समय में जरा के संक्रमण में ययाति के शाप से हे द्विजगणो! पौरव तुर्वसु के वंश में प्रवेश कर गया ॥१४६॥ राजा दुष्यन्त का सुत प्रजेश्वर करुरोम हुआ। इस करुरोम से इसके पश्चात् आह्लाद सुत उत्पन्न हुआ और फिर इसके चार आत्मजों ने जन्मग्रहण किया ॥१४७॥

पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कोलश्चोलश्च पार्थिवः।
द्रुह्योश्च तनयो राजन् चक्रसेतुश्च पार्थिव. ॥१४८
अङ्गारसेनुस्तत्पुत्रो मरुतां पतिरुच्यते।
यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली ॥१४६

युद्ध सुमहदप्यासीन्मासान् परि चतुर्दश।
अङ्गारसेतुर्दायादो गान्धारो नाम पार्थिव. ॥१५०
ख्यायते यस्य नाम्ना वै गान्धारविषयो महान्।
गान्धारदेशजाश्चैव तुरगा वाजिनां वराः ॥१५१
अनोस्तु पुत्रो धर्म्मोऽभूद्घृतस्तस्यात्मजोऽभवत्।
घृतादनदुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः ॥१५२
प्रचेतस सुचेतास्तु कीर्त्तितास्त्वनवो मया।
बभूवुस्ते मदो. पुत्रा. पञ्च देवसुतोपमाः ॥१५३
सह्मादः पयोदश्च क्रोष्टा नीलोऽञ्जिकस्तथा।
सहस्रादस्य दायादास्त्रयः परमधार्म्मिकाः ॥१५४

उनके नाग पाण्ड्य-केरल-कोल और चोल पार्थिव थे। हे राजन्! द्रुह्यु का तनय वक्रसेतु राजा ने जन्म लिया। इस वक्रसेतु का पुत्र अङ्गारसेतु हुआ जो मरुतों का पति कहा जाता है। परम कृच्छ्र यौवनाश्व ने संग्राम में बली को निहत किया ॥१४८-१४९॥ यह महा भीषण युद्ध चौदह मास पर्यन्त हुआ। इस अङ्गार से युक्त सेतु के वीर्य से गान्धार नाम वाले पार्थिव पुत्र ने जन्म लिया ॥१५०॥ जिसके नाम से महान् गान्धार नाम वाला देश विख्यात होता है। इस गान्धार देश में उत्पन्न होने वाले तुरग अश्वों में परम श्रेष्ठ हुआ करते हैं ॥१५१॥ अनु के पुत्र का नाम धर्म था और धर्म का सुत घृत नाम वाला उत्पन्न हुआ। घृत से अनदुह ने जन्म प्राप्त किया और फिर प्रचेता इसका पुत्र हुआ ॥१५२॥ प्रचेता का सुचेता हुआ। इस तरह से मैंने आप लोगों के समक्ष अनुओं का वर्णन कर दिया है। वे सब पांच देव सुतों के समान यदु के पुत्र हुए। उन पाँचों के शुभ नाम सहस्राद-पयोद-क्रोष्ट-नील और आञ्जिक थे। इस सहस्राद के वीर्य से तीन परम धार्मिक पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया ॥१५३-१५४॥

हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयस्तथा।
हैहयस्याभवत् पुत्रोधर्म्मनेत्र इति श्रुतः ॥१५५

धर्म्मनेत्रस्य कार्त्तस्तु साहञ्जस्तस्य चात्मजः।
साहञ्जनी नाम पुरी तेन राज्ञा निवेशिता ॥१५६

आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान्।
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम विश्रुतः ॥१५७

दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम नामतः।
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥१५८

कृतवीर्य्यः कृतौजाश्च कृतधन्वा तथैव च।
कृताग्निस्तु चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्य्यादियार्ज्जुनः ॥१५९

योऽसौ बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत्।
जिगाय पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्च्चसा ॥१६०

स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।
दत्तमाराधयामास कार्त्तवीर्य्योऽत्रिसम्भवम् ॥१६१

उन तीनों के नाम हैहय-हय और राजा वेणुहय ये थे । हैहय के वीर्य से धर्मनेत्र सुत ने जन्म लिया ॥१५५॥ धर्मनेत्र का सुत कार्त्त हुआ तथा इस कार्त्त का पुत्र साहञ्ज समुत्पन्न हुआ । उस राजा ने अपने ही नाम से साहञ्जनी पुरी को निवेशित किया ॥१५६॥ महिष्मान् का पुत्र भद्रश्रेण्य का दायादवुर्दम नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१५ ॥ दुर्दम का पुत्र धीमान् कनक नाम वाला उत्पन्न हुआ और फिर इस कनक के लोको में परम प्रसिद्ध चार पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया ॥१५८॥ उन चारों के परम शुभ नाम कृतवीर्य-कृतोजा कृतधन्वा और चौथा कृताग्नि ये हुए थे । इस कृतवीर्य के वीर्य से अर्जुन समुत्पन्न हुआ ॥१५६॥ जो अर्जुन अपने एक सहस्र बाहुओ के द्वारा सातों द्वीपो का स्वामी हुआ । आदित्य के समान वर्चस वाले एक ही रथ म द्वारा इसने समस्त पृथ्वी को जीत लिया । ऐसा प्रतापी था ॥१६०॥ उस कार्त्तवीर्य ने दश हजार वर्ष पर्यन्त परम दुश्चर तपस्या करके अत्रि ऋषि से समुत्पन्न दत्त की आराधना की ॥१६१॥

तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः ।
पूर्व्वं बाहुसहस्र तु प्रार्थित सुमहद्वरम् ॥१६२
अधर्म्मेऽध्यायमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम् ।
उग्रेण पृथिवी जित्वा धर्म्मेणैवानुरञ्जनम् ॥१६३
सग्रामान् सुबहून् जित्वा हत्वा चारीन् सहस्रशः ।
सग्रामे वर्त्तमानस्य वध चाभ्यधिकाद्रणे ॥१६४
तस्य बाहुसहस्र तु युध्यतः किल भो द्विजाः ।
योगाद्योगीश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया ॥१६५
तेनेय पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
समासुद्रा सनगरा उग्रेण विधिना जिता ॥१६६
तेन सप्तसु द्वीपेसु सप्त यज्ञशतानि वै ।
प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते मुनिसत्तमाः ॥१६७

सर्व्वे यज्ञा मुनिश्रेष्ठाः सहस्रशतदक्षिणाः ।
सर्व्वे काञ्चनयूपाश्च सर्व्वे काञ्चनवेदयः ॥१६८

दत्त ने परम सन्तुष्ट होकर उसको बहुत अधिक तेज वाले चार वर-दान प्रदान किये । सबसे प्रथम उसने अपनी एक सहस्र बाहुओं के हो जाने पर सुमहान् वरदान पाने की प्रार्थना की ॥१६२॥ अधर्म में अधीयमान का वहाँ पर सत्पुरुषों के द्वारा निवारण था । अत्युग्र धर्म के द्वारा ही मनुरञ्जन था ॥१६३॥ उसने बहुत से संग्रामों में विजय प्राप्त करके और सहस्रों ही शत्रुओं को जीतकर अर्थात् उनका हनन किया । संग्राम में वर्तमान अधिक बलवान् रिपु का वध कर दिया ॥१६४॥ हे द्विजगणो ! युद्ध करते हुए योगीश्वर के ही समान योग से उसके माया के द्वारा एक सहस्र बाहु प्रादुर्भूत हो जाया करती थी ॥१६५॥ उस सहस्रार्जुन ने यह सातों द्वीपों वाली नगरों के तथा पत्तन और सागरों के सहित समस्त पृथिवी उग्र विधि के द्वारा जीत ली ॥१६६॥ हे मुनि-श्रेष्ठो ! ऐसा सुना जाता है कि उस महान् प्रतापी राजा सहस्रार्जुन ने सातों द्वीपों में सात सौ यज्ञ किये ॥१६७॥ ये सभी यज्ञ हे मुनिगणो ! सहस्र शत दक्षिणा वाले थे । इन सभी यज्ञों में सुवर्ण के यूप थे तथा सभी यज्ञों में कञ्चन की ही वेदियाँ निर्मित की गयी थीं । ऐसा विशाल वैभव का उपभोग सभी यज्ञों में सहस्रार्जुन ने किया था ॥१६८॥

सर्व्वे देवैर्म्मुनिश्रेष्ठा विमानस्थैरलङ्कृतैः ।
गन्धर्व्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ॥१६९
यस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्व्वो नारदस्तथा ।
वरीदासात्मजो विद्वान्महिम्ना तस्य विस्मितः ॥१७०
न नूनं कीर्त्तवीर्य्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च ॥१७१
स हि सप्तसु द्वीपेसु वर्मी खड्गी शरासनी ।
रथी द्वीपाननुचरन् योगी सदृश्यते नृभिः ॥१७२
अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः ।
प्रभावेण मया राज्ञः प्रजा धर्म्मेण रक्षतः ॥१७३

स सर्व्वरत्नभाक् सम्राट चक्रवर्ती बभूव ह ।
स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपालः स एव च ॥१७४

स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत् ।
स वे बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा ॥१७५

ये सभी यज्ञ ऐसे हुए कि हे मुनिगणो ! इनमे विमानों में बैठकर सब देवगण-गन्धर्व और अप्सराएँ नित्य ही वहाँ पर उपशोभित हुआ करते थे ॥१६६॥ जिस सहस्रार्जुन के यज्ञ मे गन्धर्व तथा नारद मुनि गाथा का गान करते । उसकी महिमा से परम विद्वान् बदरीदास का आत्मज अत्यन्त विस्मित होगये थे ॥१७ ॥ देवर्षि नारद जी ने कहा—इस लोक में कोई भी नृप निश्चय ही इस कार्त्तवीर्य की गति को प्राप्त नही होंगे । इसके ऐसे विशाल यज्ञ महान् दान अत्युग्र तप विक्रम और श्रुत हैं कि इसकी समानता कोई भी प्राप्त नही कर सकेगा ॥१७१॥ वह सहस्रार्जुन सातो द्वीपो मे वर्मी-खड्गी और शरासन के धारण करने वाला है । यह रथी द्वीपो मे अनुचरण करता हुआ मनुष्यो के द्वारा योगीराज ही विचरण कर रहा हो ॥१७ ॥ इस राजा मे विशेषता यह है कि इसका द्रव्य कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता है । इसको न कभी शोक और विभ्रम ही होना है । इसका प्रभाव ही ऐसा है कि यह राजा धर्म के साथ प्रजा की रक्षा किया करता है ॥१७३॥ वह समस्त प्रकार के रत्नों को प्राप्त करने वाला चक्रवर्ती सम्राट् हुआ था । वह ही पशुपाल तथा वही क्षेत्रपाल भी था ॥१७४॥ वह ही वृष्टि के द्वारा पर्जन्य हो गया था और योगी होने से अर्जुन हो गया था । वह ही ज्या (धनुष की डोरी) के घात से कठिन त्वचा वाली एक सहस्र बाहुओं से समन्वित था ॥१७५॥

भाति रश्मिसहस्रेण शारदीव च भास्करः ।
स हि नागान्मनुष्येषु महिष्मत्या महाद्युतिः ॥१७६

कर्कोटकसुतान् जित्वा पुर्य्यां तस्यां न्यवेशयत् ।
स वै वेग समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षणः ॥१७७

क्रीड़न्निव भुजोद्भिन्नं प्रतिस्रोतश्चकार ह ।
लुण्ठिता क्रीड़ता तेन नदी तद्ग्राममालिनी ॥१७८
चलदूर्म्मिसहस्रेण शङ्किताप्येति नर्म्मदा ।
तस्य बाहुसहस्रेण क्षिप्यमाणे महोदधौ ॥१७६
भयान्निलीना निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः ।
चूर्णीकृतमहावीचि चलन्मीनमहातिमिम् ॥ ८०
मारुताविद्धफेनौघमावर्त्तक्षोभसङ्कुलम् ॥
आवर्त्तयत्तदा राजा सहस्रेण च बाहुना ॥१८१
देवासुरसमाक्षिप्तः क्षीरोदमिव मन्दरः ।
मन्दरक्षोभचकिता अमृतोत्पादशङ्किनाः ॥१८२
सहसोत्पतिता भीता भीम दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ।
नता निश्चलमूर्द्धानो बभूवुस्ते महोरगाः ॥१८३

वह शरत्काल मे भास्कर के समान एक सहस्र किरणो से सुशोभित था। महान् द्युति वाले उस माहिष्मती ने मनुष्यो मे कर्कोटक के सुत नागो को जीतकर उस पुरी मे निवेशित कर दिया था। कमल के सदृश नेत्रो वाले उसने वर्षाकाल मे क्रीडा सी करते हुए ही समुद्र के वेग को प्रतिस्रोत भुजाओ से उद्भिन्न कर दिया था। उसने उस ग्राम की मालिनी नदी को क्रीडा करते हुए ही लुण्ठित कर दिया था ॥१७६-१७८॥ उस राजा के सहस्रबाहुओं के महोदधि मे क्षिप्यमाण करने पर चलती हुई सहस्र ऊर्मियो ( तरङ्गो ) से नर्मदा शङ्कित होकर गमन करती है ॥१७६॥ उस समय मे पाताल मे स्थित महान् असुर गण भी भय से निलीन हो गये थे और चेष्टा से रहित बन गये थे। महान् तरंगो को चूर्ण किये जाने वाले—मीन और महान् तिमियो को चलायमान किये जाने वाला—मारुत से आविद्ध फेनो के समूह वाले तथा आवर्त्तो (भवरो) के क्षोभ से सकुल समुद्र को उस राजा ने अपनी सहस्रबाहुओ से उस समय मे प्रवृत्त कराया था ॥१८०-१८१॥ देवो और असुरो के द्वारा समाक्षिप्त मन्दर क्षीर सागर की तरह मन्दराचल के क्षोभ से चकित तथा अमृत की उत्पत्ति मे शका वाले महोरग सहसा उत्पतित हो गये

थे और भीम उत्तन नृप को देखकर भयभीत हो गये थे। वे सभी महो-रग नत होकर निश्चल मस्तक वाले हो गये ॥१८२-१८३॥

सायाह्ने कदलाखण्डाः कम्पिता इव वायुना ।
स वै बद्ध्वा धनुर्ज्याभिरुत्सिक्तं पञ्चभिः शरैः ॥१८४
लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात् ।
निर्जित्य वशमानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम् ॥१८५
श्रुत्वा तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं त्वर्जुनेन च ।
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्जुनं ददृशे स्वयम् ॥१८६
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनाभियाचितः ।
यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः ॥१८७
युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव ।
अहो बत मुने वीर्य्यं भार्गवस्य यदच्छिनत् ॥१८८
राज्ञो बाहुसहस्रस्य हैमं तालवनं यथा ।
तृषितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना ॥१८९

सायाह्न के समय में जिस तरह से वायु के द्वारा कदलखण्ड कम्पित हो जाते हैं वैसे ही ये सब कम्पायमान हो गये थे। उस राजा सहस्रार्जुन ने पाँच शरों से उत्सिक्त धनुष की प्रत्यञ्चाओं से बद्ध करके बड़े भारी बल वाले लंका के राजा रावण को बलपूर्वक मोहित करके और उसे जीतकर वश में कर लिया था तथा माहिष्मती में लाकर उसको बाँध दिया था ॥१८४-१८५॥ जिस समय पुलस्त्य मुनि ने यह सुना था कि पौलस्त्य रावण को सहस्रार्जुन ने बाँध लिया है तो पुलस्त्य मुनि स्वयं उस सहस्रार्जुन के समीप में जाकर उससे मिले थे ॥१८६॥ जब पुलस्त्य महामुनि के द्वारा उससे याचना की गयी तो उस अर्जुन नृप ने उस पौलस्त्य राक्षस को मुक्त कर दिया था। जिस सहस्रार्जुन की एक सहस्र बाहुओं के ज्या तल की ध्वनि होती थी तो वह ऐसी प्रतीत होती थी मानों युगान्त के समय में वज्र का स्फोटन करने वाले मेघ की ध्वनि हो। ऐसी भीषण ध्वनि उसके धनुष की डोरी की हुआ करती थी। अहो ! भार्गव मुनि का कितना विनाश यत्न वीर्य था जिसने उस सह-

अर्जुन के एक सहस्र बाहुओं को हेम तालवन के समान ही काट दिया था। किसी समय मे तृषित चित्रभानु ने उससे भिक्षा की याचना की थी ॥१८७-१८९॥

स भिक्षामददद्वीरः सप्त द्वीपान् विभावसोः।
पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्वशः ॥१९०
जज्वाल तस्य सर्व्वाणि चित्रभानुर्दिदृक्षया।
स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः ॥१९१
ददाह कार्त्तवीर्य्यस्तु शैलांश्चैव वनानि च।
सशून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै ॥१९२
ददाह बलवद्भीतश्चित्रभानुः सहैहयः।
य लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम् ॥१९३
वशिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत।
तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानर्ज्जुनं विभुः ॥१९४
यस्मान्न वर्ज्जितमिदं वनं ते मम हैहय।
तस्मात्ते दुष्करं कर्म्म कृतमन्यो हनिष्यति ॥१९५
रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान्।
छित्त्वा बाहुसहस्रन्तेप्रमथ्य तरसा बली ॥१९६

उस वीर ने विभावसु को सात द्वीप भिक्षा में दे दिये और पुर-ग्राम-घोष और सभी विषयो ( देशो ) को दे दिया ॥१९०॥ देखने की इच्छा से चित्रभानु ने उसके सबो को जला दिया। उस महात्मा पुरुषेन्द्र के प्रभाव से कार्तवीर्य ने शैलो को और वनों को दग्ध कर दिया। वरुण आत्मज का सशून्य सुरम्य आश्रम को सहैहय चित्रभानु ने बलवान् से भीत होकर दग्ध कर दिया जिस उत्तम भास्वान् पुत्र को वरुण ने पहिले प्राप्त किया था ॥१९१-१९३॥ वह मुनि वसिष्ठ इस नाम वाला आपव इससे ख्यात थे। वहाँ पर विभु आपव ने क्रोध से उस अर्जुन को शाप दे दिया—हे हैहय ! क्योंकि तुमने मेरे इस वन को वर्जित नही किया है इसी कारण तुम्हारे इस दुष्कृत कर्म को कृतमन्य हनन कर देगा ॥१९४-१९५॥ जमदग्नि ऋषि का पुत्र महान् बाहुओ वाले महान् प्रतापी राम

( परशुराम ) बहुत बली है और वह वेग के साथ तेरी एक सहस्र भुजाओं को प्रमथन करके छेदन करेंगे ॥१९६॥

तपस्वी ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति स भार्गवः ।
अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्षिण: ॥१९७
प्रतापेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्म्मेण रक्षतः ।
प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुनेः ॥१९८
वरस्तथैव भो विप्राः स्वयमेव वृतः पुरा ।
तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च शेषा महात्मनः ॥१९९
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्म्मात्मानो यशस्विनः ।
शूरसेनश्च शूरश्च वृषणो मधुपध्वजः ॥२००
जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ।
कार्त्तवीर्य्यस्य तनया वीर्य्यवन्तो महाबलाः ॥२०१
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः ।
तस्य पुत्रशतं ख्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः ॥२०२
तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा हैहयानां महात्मनाम् ।
वीतिहोत्रा सुव्रताश्चभोजाश्चावन्तय:स्मृताः ॥२०३

वह परम तपस्वी ब्राह्मण भार्गव तेरा हनन करेगा। अमित्र कर्षी जिसकी अनष्ट द्रव्यता हुई थी ॥१९७॥ धर्म से प्रजा की रक्षा करने वाले उस नरेन्द्र के प्रताप से इसके अनन्तर महामुनीन्द्र के शाप से इसकी मृत्यु प्राप्त हुई थी ॥१९८॥ हे विप्रो ! उसने स्वयं ही एक वरदान भी प्राप्त किया। उस महात्मा के एक सौ पुत्र उनमें से पाँच शेष रहे थे ॥१९९॥ ये पाँचों अस्त्रधारी-बली-शूर-धर्मात्मा और यशस्वी थे। शूरसेन, शूर, वृषण, मधुपध्वज, और जयध्वज—इनके ये नाम थे और आवन्त्य महान् नृपति हुआ था। कार्त्तवीर्य के तनय महान् बल वाले वीर्यवान् हुए थे ॥२००-२०१॥ जयध्वज का आत्मज तालजङ्घ उत्पन्न हुआ जो महान् बलवान् था। उसके एक सौ पुत्र हुए जो सबके सब "तालजङ्घ"—इसी नाम से लोकों में प्रख्यात हुए ॥२०२॥ हे मुनि-

श्रेष्ठो ! महात्मा हैहयो के कुल मे वीतिहोत्र-सुव्रत-भोज और आवन्तय कहे गये थे ॥२०३॥

तौण्डिकेयाश्च विख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च ।
भरताश्च सुजाताश्च बहुत्वान्नानुकीर्त्तिताः ॥२०४
वृषप्रभृतयो विप्रा यादवाः पुण्यकर्म्मिणः ।
वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ॥२०५
मधोः पुत्रशतं त्वासीद्वृषस्तस्य वंशकृत् ।
वृषणाद्वृष्णयः सर्व्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः ॥२०६
यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हैहयाः ।
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः ॥२०७
कार्त्तवीर्य्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः ।
एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः ॥२०८
कीर्त्तिता लोकवीराणां ये लोकान् धारयन्ति वै ।
भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्थावरजङ्गमान् ॥२०९
श्रुत्वा पञ्च विसर्गास्तु राजा धर्म्मार्थकोविदः ।
वशी भवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ॥२१०

जिस प्रकार से तालजङ्घ विख्यात हुए वैसे ही तौण्डिकेय-भरत और सुजात भी प्रख्यात हुए । ये सब बहुत थे अतएव उनका वर्णन नहीं किया गया है ॥२०४॥ हे विप्रो ! वृष प्रभृति पुण्य कर्म वाले यादव थे । उनमे वृषवंशधर था और इस वृष का पुत्र मधु हुआ । इस मधु के भी सौ पुत्र हुए उसका वंशधर वृषण था । वृषण से समस्त वृष्णि हुए तथा मधु से होने वाले सब माधव कहे गये हैं ॥२०५-२०६॥ यदु के नाम से यादव हैहय कहे जाया करते हैं । उसके वित्त का नाश नहीं होता है और जो नष्ट भी हो गया है वह पुनः प्राप्त हो जाया करता है ॥२०७॥ जो नित्य प्रति इस कार्त्तवीर्य के जन्म की कथा को कहा करता है उसका धन विनष्ट नहीं होता है और विनष्ट भी प्राप्त हो जाया करता है । हे द्विजोत्तमो ! ये ययाति राजा के पाँच वंश हैं ॥२०८॥ इन लोक वीरों का वर्णन किया गया है जो लोकों को धारण करने वाले थे । हे मुनिश्रेष्ठो !

पाँच भूतों के समान स्थावर जंगमो का श्रवण करके धर्मार्थ का परम कोविद राजा पंच विसर्ग पाँच आत्मजों का ईश्वर वशी हो जाया करता है ।।२०६-२१०।।

लभेत् पञ्च वरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान् ।
आयुः कीर्त्ति तथा पुत्रानैश्वर्य्यं भूमिमेव च ।।२११

धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भो द्विजाः ।
क्रोष्टोर्व्वंश मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं गदतो मम ।।२१२

यदोर्व्वंशधरस्याथ यज्विनः पुण्यकर्म्मिणः ।
क्रोष्टोर्व्वंश हि श्रुत्वैव सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ।।२१३

यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ।।२१४

वह परम दुर्लभ लोक मे होने वाले पाँच वरो की भी प्राप्ति किया करता है । वे पाँच वरदान आयु-कीर्त्ति पुत्र-ऐश्वर्य और भूमि ये होते हैं ।।२११।। हे द्विजगण ! जो पञ्चवर्ग का श्रवण किया करता है तथा धारण करता है उसी को उपर्युक्त पाँच वरदान प्राप्त हुआ करते हैं । अब हम हे मुनिश्रेष्ठो ! क्रोष्टु के वंश का वर्णन करते हैं आप लोग मुझसे श्रवण करिये ।।२१२।। यदु के वंश का धारण करने वाला यज्वा और पुण्य कर्मों के करने वाले क्रोष्टु के वंश का केवल श्रवण करने भर से ही मनुष्य सब तरह के पापों से मुक्त हो जाया करता है ।।२१३।। जिसके वंश मे समुत्पन्न होने वाले वृष्णि कुल के उद्वहन करने वाले साक्षात् विष्णु श्री हरि थे ।।२१४।।

—:※:—

## ११—यदुपुत्र क्रोष्टुवंशवर्णन् ।

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्य्ये बभूवतुः ।
गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ।।१

माद्री युधाजितं पुत्रं ततोऽन्यं देवमीढुषम् ।
तेषां वंशस्त्रिधा भूतो वृष्णीनां कुलवर्द्धनः ॥२
माद्र्याः पुत्रौ तु जज्ञाते श्रुतौवृष्ण्यन्धकावुभे ।
जज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ॥३

श्वफल्कस्तु मुनिश्रेष्ठा धर्म्मात्मा यत्र वर्तते ।
नास्ति व्याधिभयं तत्र नावर्षस्तापमेव च ॥४
कदाचित् काशिराजस्य विषये मुनिसत्तमाः ।
त्रीणि वर्षाणि पूर्णानि नावर्षत् पाकशासनः ॥५

स तत्र चानयामास श्वफल्कं परमार्चितम् ।
श्वफल्कपरिवर्त्तेन ववर्ष हरिवाहनः ॥६
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्य्यामविन्दत ।
गान्दिनी नाम गां सा च ददौ विप्राय नित्यशः ॥७

महामुनि श्री लोम हर्षण जी ने कहा—इस क्रोष्टु की गान्धारी और माद्री दो भार्याएँ हुई थी। गान्धारी मे महान् बलवान् को अनमित्र को जन्म दिया ॥१॥ माद्री ने युधाजित पुत्र को तथा अन्य देवमीढुष को जन्म ग्रहण कराया। उनका वश तीन भागो मे था जो कि इन वृष्णियो के कुल की वृद्धि करने वाला था ॥२॥ माद्री के वृष्णि और अन्धक दो पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था। वृष्णि के भी श्वफल्क और चित्रक इन दो पुत्रो ने जन्म लिया ॥३॥ हे श्रेष्ठ मुनिगणो! जहाँ पर परम धर्मात्मा श्वफल्क रहता था वहाँ पर किसी भी व्याधि का कोई भय नही होता था और न अनावृष्टि होती थी तथा ताप भी नही हुआ करता था ॥४॥ हे मुनिसत्तमो! किसी समय मे काशिराज के देश मे पूरे तीन वर्ष तक इन्द्र देव ने वर्षा नही की थी ॥५॥ वहाँ पर उस राजा ने परमार्चित श्वफल्क बुलवाया था। श्वफल्क के वहाँ पर आगमन से ही हरिवाहन ने वर्षा की थी ॥६॥ श्वफल्क ने काशिराज की पुत्री को अपनी भार्या बनाया था। वह नित्य प्रति गान्दिनी नाम वाली गौ को विप्र के लिये दान किया करती थी ॥७॥

दाता यज्वा च वीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः ।
अक्रूरः सुषुवे तस्माच्छ्वफल्काद्भूरिदक्षिणः ॥८
उपमद्गुस्तथा मद्गुमदुरश्चारिमेजयः ।
आविक्षितस्तथाक्षेपः शत्रुघ्नश्चारिमर्द्दनः ॥९
धर्म्मधृग् यतिधर्म्मा च धर्म्मोक्षान्धकरुस्तथा ।
आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना ॥१०
अक्रूरेणोग्रसेनायां सुगात्र्यां द्विजसत्तमाः ।
प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्च्चसौ ॥११
चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च ।
अश्वग्रीवोऽश्ववाहुश्च स्वपार्श्वकगवेषणौ ॥१२
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्म्मभृत्तथा ।
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥१३
असिक्न्या जनयामास शूरं वै देवमीढुषम् ।
महिष्यां जज्ञिरे शूरा भोज्यायां पुरुषा दश ॥१४

उस रानी ने श्वफल्क के वीर्य से भूरिदक्षिणा देने वाला-दानशील-यजन करने वाला-वीर-श्रुतवान् और अतिथियों का प्यारा अक्रूर समुत्पन्न किया था ॥८॥ हे द्विजगणो ! उस अक्रूर ने सुन्दर गात्रों वाली उग्रसेना पत्नी के गर्भ से उपमद्गु-मद्गु-मदुर-अरिमेजय-अविक्षित-आक्षेप-शत्रुघ्न-अरिमर्दन-धर्मधृक्-यतिधर्मा-धर्मोक्ष-अन्धक-आवाह-प्रतिवाह और वरांगना सुन्दरी तथा देवों के समान वर्चस् वाले प्रसेन और उपदेव को जन्म दिया था ॥९-११॥ चित्रक के भी कई एक पुत्र उत्पन्न हुए थे उनके नाम पृथु-विपृथु-अश्वग्रीव- अश्वबाहु-स्वपार्श्वक-गवेषण-अरिष्टनेमि-अश्व-सुधर्मा धर्मभृत्-सुबाहु और बहुबाहु थे तथा श्रविष्ठा और श्रवण दो स्त्री थीं ॥१२-१३॥ असिक्नी ने शूरदेवमीढुष को जन्म ग्रहण कराया था तथा महिषी के गर्भ से शूरों को जन्म दिया था और भोज्या में दश पुरुषों को समुत्पन्न किया ॥१४॥

वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः ।
जज्ञिरस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्याः प्राणदन् दिवि ॥१५

आनकानां च सह्लादः सुमहानभवद्दिवि ।
पपात पुष्पवर्षश्च शूरस्य जनने महान् ॥१६
मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ।
यस्यासीत्पुरुषाग्र्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा ॥१७
देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः ।
अनाधृष्टिः कनवको वत्सवानथ गृञ्जमः ॥१८
श्यामः शमीको गण्डूषः पञ्च चास्य वराङ्गनाः ।
पृथुकीर्त्तिः पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवा ॥१९
राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः ।
श्रुतश्रवाया चैद्यस्तु शिशुपालोऽभवन्नृपः ॥२०
हिरण्यकशिपुर्योऽसौ दैत्यराजोऽभवत्पुरा ।
पृथुकीर्त्यां तु सञ्जज्ञे तनयो वृद्धशर्म्मणः ॥२१

पूर्व मे महाबाहु आनक दुन्दुभि वसुदेव ने जन्म ग्रहण किया था जिसकी उत्पत्ति होने के समय मे दिवलोक मे दुन्दुभियो का वादन हुआ था ॥१५॥ तथा स्वर्ग मे आनको की महान् ध्वनि भी हुई थी । शूर के जन्म लेने के समय मे बडी भारी पुष्पो की वर्षा भी हुई थी ॥१६॥ सम्पूर्ण मनुष्य लोक मे भूमण्डल मे रूप-लावण्य मे उसकी समानता रखने वाला कोई भी नही था जिस पुरुषो मे परम उत्तम की कान्ति चन्द्रमा के ही तुल्य थी ॥१७॥ फिर उससे देवभाग-देवश्रवा-अनाधृष्टि-कनवक-वत्सवान्-गृन्जम-श्याम-शमीक-गण्डूष ने जन्म ग्रहण किया था और इसके पाँच वराङ्गनाएँ थी । पृथुकीर्त्ति पृथा-श्रुतदेवा-श्रुतश्रवा और राजाधि देवी ये पाँच वीर माताएँ थी । श्रुतश्रवा मे चैद्य शिशुपाल नृप हुआ था ॥१८-२०॥ जो पहिले जन्म मे दैत्यराज हिरण्यकशिपु हुआ था । पृथु की कीर्त्ति मे वृद्धशर्मा का पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥२१॥

करूपाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रो महाबलः ।
पृथां दुहितरं चक्रे कुन्तिस्तां पाण्डुरावहत् ॥२२
यस्यां स धर्म्मविद्राजा धर्म्माज्जज्ञे युधिष्ठिरः ।
भीमसेनस्तथा वातादिन्द्राच्चैव धनञ्जयः ॥२३

लोकेऽप्रतिरथो वीरः शक्रतुल्यपराक्रमः ।
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात् ॥२४
शैनेयः सत्यकस्तस्माद्युयुधानश्च सात्यकिः ।
उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत् ॥२५
पण्डितानां परं प्राहुर्देवश्रवसमुत्तमम् ।
अश्मक्यं प्राप्तवान् पुत्रमनाधृष्टिर्यशस्विनम् ॥२६
निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं श्रुतदेवा त्वजायत ।
श्रुतदेवात्मजास्ते तु नैषादिर्यः परिश्रुतः ॥२७
एकलव्यो मुनिश्रेष्ठा निषादैः परिवर्द्धितः ।
वत्सवते त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान् ।
अद्भिर्ददौ सुतं वीरं शौरिः कौशिकमौरसम् ॥२८

करूषाधिपति महान् बलवान् वीर दन्तवक्र उत्पन्न हुआ था तथा पृथा पुत्री कुन्ती ने जन्म लिया था जिसका पाण्डु के साथ विवाह हुआ था ॥२२॥ जिसके गर्भ से धर्म का बच्चा धर्म स्वरूप राजा युधिष्ठिर ने जन्म लिया था। वायुदेव से भीम और इन्द्रदेव से धनञ्जय (अर्जुन) ने जन्म ग्रहण किया था। यह लोक में अप्रतिरथ वीर था जो इन्द्र के ही समान पराक्रम वाला हुआ था। अनमित्र से जो सबसे छोटा वृष्णि नन्दन था शिनि समुत्पन्न हुआ था। उस शिनि से सत्यक शैनेय और युयुधान सात्यकि उत्पन्न हुआ था। देवभाग का महान् भाग वाला उद्धव सुत समुत्पन्न हुआ था ॥२३-२५॥ उत्तम देवश्रवा को पण्डितों में परम श्रेष्ठ कहा जाता था। अनाधृष्टि ने परम यशस्वी अश्मक्य को पुत्र के रूप में प्राप्त किया था ॥२६॥ श्रुतदेवा ने ऐसे शत्रुओं के नाशक शत्रुघ्न को जन्म दिया था जिससे समस्त शत्रु ही समाप्त हो गये थे। वे सब श्रुतदेव के आत्मज थे जिसमें नैषादि परम परिश्रुत था ॥२७॥ हे मुनि श्रेष्ठो! एकलव्य निषादों के द्वारा परिवर्धित किया गया था। पुत्रहीन वत्सवान को प्रतापवाले वसुदेव ने जलों से वीर सुत दिया था। शौरि ने औरस कौशिक को दिया था ॥२८॥

गण्डूपाय ह्यपुत्राय विष्वक्सेनो ददौ सुतान् ।
चारुदेष्णं सुदेष्णञ्च पञ्चालं कृतलक्षणम् ॥२९

असङ्ग्रामेण यो वीरो नावर्त्तत कदाचन ।
रौक्मिणेयो महाबाहुः कनीयान् द्विजसत्तमाः ॥३०

वायसानां सहस्राणि यं यान्तं पृष्ठतोऽन्वयुः ।
चारुनद्योपभोक्ष्यामश्चारुदेष्णहतानिति ॥३१

तन्निजस्तन्निपालश्च सुतौ कनवकस्य तौ ।
वीरुश्चाश्वहनुश्चैव वीरौ तावथ गृञ्जिमौ ॥३२

श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत् ।
जुगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप सः ॥३३

अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः ।
वसुदेवसुतान् वीरान् कीर्त्तयिष्याम्यतःपरम् ॥३४

वृष्णेस्त्रिविधमेवन्तु बहुशाखं महौजसम् ।
धारयन् विपुलं वंशं नानर्थैरिह युज्यते ॥३५

अपुत्र अर्थात् पुत्रहीन गण्डूप के लिये विष्वक्सेन ने पुत्रों को दिया था । चारुदेष्ण-सुदेष्ण-पञ्चाल कृत लक्षण उनके नाम थे । पर ऐसा वीर था कि बिना सग्राम के कभी भी आवर्तित नहीं हुआ था । हे द्विजो ! महान् बाहुओं वाला रौक्मिणेय कनीयान् सबसे छोटा था । ॥२९-३०॥ गमन करने वाले जिसके पीछे-पीछे सहस्रों वायस (कौए) गमन किया करते थे कि युद्ध में चारुदेष्ण के द्वारा निहतों को चारु नदी से उपभोक्ष करेंगे इसी प्रकार वायस पीछे-पीछे जाया करते थे ॥३१॥ कनवक के तान्निज और तन्निपाल दो सुत समुत्पन्न हुए थे । वीरु और अश्व हनु ये दो गृञ्जिम धीर थे ॥३२॥ श्याम का पुत्र शमीक हुआ था और इस शमीक ने ही राज्य को वहन किया था । उसने जुगुप्समान होते हुए भोजत्व होने से राजसूय को प्राप्त किया था ॥३ ॥ उसका पुत्र शत्रुओं का विनाश करने वाला अजात शत्रु हुआ था । इससे आगे हम वसुदेव के वीर सुतों का कीर्तन करेंगे ॥३४॥ वृष्णि का तीन प्रकार का बहुत सी

शाखाओं वाला महान् ओज से युक्त विपुल वंश को धारण करने वाला था जो यहाँ पर अनर्थों से युक्त नहीं होता है ॥३५॥

या: पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्दश वराङ्गनाः ।
पौरवी रोहिणी नाम मतिरादिस्तथापरा ॥३६
वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी ।
सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवी देवरक्षिता ॥३७
वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी ।
सुतनुर्वडवा चैव द्वे एते परिचारिके ॥३८
पौरवी रोहिणी नाम वाह्लिकस्यात्मजाभवत् ।
ज्येष्ठा पत्नी मुनिश्रेष्ठा दयितानकदुन्दुभेः ॥३९
लेभे ज्येष्ठ सुत राम शरण्य शठमेव च ।
दुर्दम दमन शुभ्र पिण्डारकमुशीनरम् ॥४०
चित्रा नाम कुमारी च रोहिणीतनया नव ।
चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता मुनिसत्तमाः ॥४१
वसुदेवाच्च देवक्या जज्ञे शौरिर्महायशाः ।
रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्या दयित. सुतः ॥४२

वसुदेव की जो पत्नियाँ थी वे वराङ्गनाएँ थी और संख्या में चौदह थी। उनके नाम पौरवी-रोहिणी-मतिरादि-वैशाखी-सुनाम्नी भद्रा पाँचवी थी। सहदेवा-शान्तिदेवा-श्रीदेवी-देवरक्षिता-वृकदेवी-उपदेवी और सातवी देवकी थी। सुतनु और वडवा ये दोनो परिचारिकायें थी ॥३६-३८॥ पौरवी रोहिणी नाम वाली जो वसुदेवजी की पत्नी थी वह वाह्लिक की आत्मजा थी। हे मुनिश्रेष्ठो ! यह आनकदुन्दुभि की परम प्रिया ज्येष्ठ पत्नी थी। इसने सबसे बडा पुत्र बलराम प्राप्त किया था जो शरण्य था अर्थात् शरण मे समागतो की रक्षा करने वाला था। शठ-दुर्दम-दमन-शुभ्र-पिण्डारक उशीनर नामक पुत्र थ ॥३९-४०॥ और चित्रा नाम वाली कुमारी थी। रोहिणी की नौ तनयाएँ थी। हे मुनिश्रेष्ठो ! यह चित्रा सुभद्रा इस नाम से विख्यात हुई थी ॥४१॥ वसुदेव के वीर्य से

देवकी के गर्भ मे महान् यश वाले शौरि ने जन्म ग्रहण किया था। रम्य से रेवती में प्रिय पुत्र निशठ ने जन्म धारण किया था ॥४२॥

सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत ।
अक्रूरात्काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत ॥४३
वसुदेवस्य भार्य्यासु महाभागासु सप्तसु ।
ये पुत्रा जज्ञिरे शूराः समस्तांस्तान्निबोधत ॥४४
भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुतावुभौ ।
वृकदेवः सुनामायां गदश्चास्तां सुतावुभौ ॥४५
अगावहं महात्मानं वृकदेवी व्यजायत ।
कन्या त्रिगर्त्तराजस्य भार्य्या वै शिशिरायणेः ॥४६
जिज्ञासां पौरुपे चक्रे न चस्कन्देच पौरुपम् ।
कृष्णायससमप्ररया वर्षे द्वादशमे तथा ॥४७
मिथ्याभिशस्तो गार्ग्यस्तु मन्युनातिसमीरितः ।
घोपकन्यामुपादाय मैथुनायोपचक्रमे ॥४८
गोपाली चाप्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेशधारिणी ।
धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्द्धरमच्युतम् ॥४९

उस सुभद्रा के गर्भ से पार्थ अर्जुन के वीर्य से रथी अभिमन्यु ने जन्म लिया था। अक्रूर से काशि की कन्या मे सत्यकेतु समुत्पन्न हुआ था ॥४३॥ वसुदेवजी की महान् भाग वाली सात भार्याओ के गर्भोंसे जिन पुत्रों ने जन्म लिया था वे सभी बड़े शूर-वीर थे। अब आप लोग उनका भी ज्ञान प्राप्त करलो ॥४४॥ भोज और विजय ये दोनो शान्तिदेवा के आत्मज थे। वृकदेव और गद ये दोनो सुत सुनामा के गर्भ से समुत्पन्न हुए थे ॥४५॥ वृक देवी ने महात्मा अगावह को प्रसूत किया था। त्रिगर्त्त राज की जो कन्या थी वह शिशिरायणि की भार्या हुई थी ॥४६॥ इसने पौरुप मे जिज्ञासा की थी और पौरुप को आस्कन्दित नही किया था। तथा बारहवें वर्ष मे कृष्णायस (काले लोहे) के समान प्ररुय हो गई थी ॥४ ॥ क्रोध से अति समीरित होकर गार्ग्य मिथ्याभिशस्त हो गया था। इसने एक घोप की कन्या को लाकर उसके साथ मैथुन का उपक्रम किया

था ॥४८॥ गोप के वेश को धारण करने वाली गोपाली नाम वाली अप्सरा ने उस गार्ग्य के अच्युत दुर्धर गर्भ को धारण किया था ॥४९॥

मानुष्या गर्गभार्य्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः ।
स कालयवनो नाम यज्ञे राजा महाबलः ॥५०
वृत्तपूर्वार्द्धकायस्तु सिंहसंहननो युवा ।
अपुत्रस्य स राज्ञस्तु ववृधेऽन्तःपुरे शिशुः ॥५१
यवनस्य मुनिश्रेष्ठा स कालयवनोऽभवत् ।
आयुष्यमानो नृपतिः पर्य्यपृच्छद्‌द्विजोत्तम् ॥५२
वृष्ण्यन्धककुल तस्य नारदोऽकथयद्विभुः ।
अक्षौहिण्या तु सैन्यस्य मथुरामभ्ययात्तदा ॥५३
दूत सम्प्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ।
पतो वृष्ण्यन्धकाः कृष्ण पुरस्कृत्य महामतिम् ॥५४
मिताः मन्त्रयामासुर्यवनस्य भयात्तदा ।
कृत्या विनिश्चय सर्व्वे पलायनमरोचयन् ॥५५
विहाय मथुरा रम्या मानयन्तः पिनाकिनम् ।
कुशस्थली द्वारवती निवेशयितुमीप्सवः ॥५६
इति कृष्णस्य जन्मद यः शुचिर्नियतेन्द्रियः ।
पर्व्वसु श्रावयेद्विद्वाननृणः स सुखी भवेत् ॥५७

मानुषी जो गर्ग की भार्या थी उसमें शूलपाणि के नियोग से वह महान् बलवान् राजा कालयवन नाम वाले ने जन्म ग्रहण किया था ॥५०॥ अर्ध काया जिसकी वृत्त पूर्व की ओर सिंह के समान संहनन वाला वह युवा शिशु उस पुत्रहीन राजा के अन्तःपुर में वृद्धि को प्राप्त हो रहा था ॥५१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! वह कालयवन यवन का हुआ था। आयुष्यमान नृपति ने द्विजोत्तम से पूछा था ॥५२॥ विभु श्री नारदजी ने उसका वृष्ण्यन्धक कुल कहा था। उस समय में एक-अक्षौहिणी सेना के द्वारा मथुरापुरी पर अभियान किया था ॥५३॥ उसने वृष्ण्यन्धकों के निवेशन अर्थात् निवास स्थान पर एक दूत को प्रेषित किया था। इसके अनन्तर समस्त वृष्ण्यन्धक लोग उस समय में यवन के भय से महान्

मतिमान भगवान् श्री कृष्ण को आगे करके एकत्रित हुए थे और सब परस्पर मे मन्त्रणा करने मे तत्पर हो गये थे। सब लोगो ने विशेष रूप से यही निश्चय किया था और वहाँ से कही अन्यत्र भाग जाना ही बचने के लिये पसन्द किया था ॥५५॥ उस परम रमणीक मथुरापुरी को त्याग कर पिनाका की मानता करते हुए कुशस्थली द्वारवती (द्वारकापुरी) के अन्दर जाकर निवेशित होने की इच्छा वाले हो गये थे ॥५६॥ जो पुरुष पवित्र होकर इस भगवान् कृष्ण के जन्म की कथा को नियन्द्रिय होते हुए पर्वों के समय में श्रवण करता है वह विद्वान् ऋण से मुक्त और परम सुख सम्पन्न हो जाया करता है ॥५७॥

---

## १२—वृष्णिवंशवर्णन।

क्रोष्टारयाभवत् पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः।
वाजिनीवतमिच्छन्ति स्वाहि स्वाहाकृता वरम् ॥१
स्वाहिपुत्रोऽभवद्राजा उपद्गुर्वदतां वरः।
महाक्रतुभिरीजे यो विविधैर्भू रिदक्षिणैः ॥२
ततः प्रसूतिमिच्छन् वै उपद्गु.सोऽय्मात्मजम्।
जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्म्मभिरन्वितः ॥३
आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः।
शशविन्दुः परं वृत्तं राजर्षीणामनुष्ठितः ॥४
पृथुश्रवाः पृथुयशा राजासीच्छाश विन्दवः।
शसन्ति च पुराणज्ञाः पार्थश्रवसमन्तरम् ॥५
अन्तरस्य सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत्।
उपतो यज्ञमखिल स्वधर्म्मं च कृतादरः ॥६
शिनेयुरभवत् पुत्र उपतः शत्रुतापनः।
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृपः ॥७

महामुनीन्द्र श्री लोमहर्षणजी ने कहा—इसके अनन्तर क्रोष्टु का पुत्र यशस्वी वृजिनीवान् उत्पन्न हुआ था। स्वाहाकृता स्वाहि को वाजिनी वर

वर की इच्छा करते थे ॥१॥ बोलने वालों में परम श्रेष्ठ स्वादि का पुत्र उषद्गु राजा हुआ था जिसने बहुत अधिक दक्षिणा से युक्त अनेक प्रकार के महान् क्रतुओं के द्वारा यजन किया था ॥२॥ इसके उपरान्त उस उषद्गु ने सन्तति की इच्छा करते हुए अत्युत्तम आत्मज चैत्ररथ को जन्म दिया था। उस चैत्ररथ का पुत्र कर्मों से सयुत चैत्ररथि वीर समुत्पन्न हुआ था जो यजन करने वाला था तथा बहुत अधिक दक्षिणा देने वाला हुआ था। इसके आगे राजर्षियों मे अनुष्ठित शशबिन्दु हुआ था ।।३-४।। अधिक यश वाला पृथु श्रवा शाशबिन्दव राजा था। जो पुराणों के ज्ञाता हैं वे अन्तर पार्थश्रव को कहा करते हैं ॥५॥ अन्तर का सुत सुयज्ञ हुआ था तथा इस सुयज्ञ का सुत उषत उत्पन्न हुआ था जिसने पूर्ण यज्ञ किया था और अपने धर्म मे अत्यधिक आदर करने वाला हुआ था ॥६॥ उस उषत का तनय शिनेयु नाम वाला हुआ था जो अपने शत्रुओं को ताप देने वाला था। इसका आत्मज मरुत राजर्षि हुआ था जो कि नृप था।७॥

मरुतोऽलभत ज्येष्ठ सुत कम्बलबर्हिषम् ।
चचार विपुल धर्म्मममर्षात् प्रेत्यभागपि ॥८
स सत् प्रसूतिमिच्छन् वै सुत कम्बलबर्हिषः ।
बभूव रुक्मकवच. शतप्रसवतः सुतः ॥९

निहत्य रुक्मकवचः शत कवचिना रणे ।
धन्विना निशितैर्वाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् ॥१०
जज्ञे च रुक्मकवचात् पराजित्परवीरहा ।
जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्य्या- पराजिताः ॥११

रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः पालितो हरिः ।
पालित च हरि चैव विदेहेभ्यः पिता ददौ ॥१२
रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्य गश्रयात् ।
ताभ्या प्रव्राजितो राजा ज्यामघोऽवसदाश्रमे ॥१३

इस मरुत ने अपना ज्येष्ठ पुत्र कम्बलबर्हिष नाम वाला प्राप्त किया था। उसने प्रेत्यभाग होते हुए भी अमर्ष से बहुत अधिक धर्म का समा-

धारण किया था ।।८।। उनने कम्बल बर्हिष के सुत सत्प्रसूति की इच्छा की थी तब सतप्रसव ने रुक्म कवच हुआ था ।।९।। इस रुक्म कवच ने रणक्षेत्र में सौ कवचियों का निहनन करके धन्वियो के निशित बाणों के द्वारा उत्तम श्री की प्राप्ति की थी ।।१०।। रुक्म कवच से शत्रुओं के वीरों का हनन करने वाले परांजित ने जन्म प्राप्त किया था । महान् वीर्य वाले परांजित के पाँच पुत्रों ने जन्म धारण किया था ।।११।। उनके शुभ नाम सुक्मेषु-पृथु रुक्म-ज्यामघ-पालित और हरि थे । पिता ने पालित और हरि को विदेहो के लिये दे दिया था ।।१२।। पृथुरुक्म के संभ्रम से रुक्मेषु राना हो गया था । उन दोनों के द्वारा प्रव्राजित राजा ज्यामघ आश्रम में निवास किया करता था ।।१३।।

प्रशान्तश्च तदा राजा ब्राह्मणैश्च विबोधितः ।
जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी ।।१४
नर्म्मदाकूलमेकाकीमेखलां मृत्तिकावतीम् ।
ऋक्षवन्त गिरिं जित्वा शुक्तिमत्यामुवास सः ।।१५
ज्यामघस्याभवद्भार्य्या शैब्या बलवती सती ।
अपुत्रोऽपि स राजा वै नान्या भार्य्यामविन्दत ।।१६
तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप सः ।
भार्य्यामुवाच सन्त्रस्तः स्नुषेति स जनेश्वरः ।।१७
एतच्छ्रुत्वाब्रवीद्देवी कस्य देव स्नुषेति वै ।
अब्रवीत्तदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तमः ।।१८
यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्य्योपपादिता ।।१९
उग्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः सा व्यजायत ।
पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती ।।२०
राजपुत्र्यातुविद्वांसौ स्नुषायां क्रथकैशिकौ ।
पश्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ ।।२१

उस समय में राजा प्रशान्त था और ब्राह्मणो के द्वारा समझा दिया गया था । वह ध्वजी रथी अपना धनुष ग्रहण करके अन्य देश को चला गया था ।।१४।। उस एकाकी ने नर्मदाकुल मेखला मृत्तिकावती और

ऋक्षवन्त गिरि को जीत कर फिर वह शुक्तिमती मे निवास करता था ॥१५॥ उस ज्यामघ की भार्या बलवती सती शैब्या थी वह राजा पुत्रहीन भी था तोभी उसने दूसरी कोई भार्या नही बनाई थी ॥१६॥ उसकी युद्ध मे विजय हुई थी और वही पर उसने एक कन्या को प्राप्त किया था। वह जनेश्वर डरते हुए अपनी भार्या से बोला था—यह स्नुषा है ॥१७॥ यह राजा का वचन श्रवण करके उस देवी ने कहा—हे देव ! यह किसकी स्नुषा है। यह श्रवण करके राजाओ मे श्रेष्ठ ज्यामघ ने कहा ॥१८॥ राजा बोला—जो तेरा पुत्र समुत्पन्न होगा उसकी यह भार्या उपपादित की गयी है ॥१९॥ महर्षि लोमहर्षणजी ने कहा—उस कन्या की उग्रतपश्चर्या से उस सुभगा सती परिणता शैब्या ने विदर्भ पुत्र को प्रसूत किया था ॥२०॥ पीछे विदर्भ ने उस राजपुत्री स्नुषा मे रण-विद्या मे विशारद-शूरवीर और परम विद्वान क्रथ और कैशिक को जन्म ग्रहण कराया था ॥२१॥

भीमो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ।
कुन्तेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान् ॥२२
धृष्टस्य जज्ञिरे शूराश्च परमधार्मिकाः ।
आवन्तश्च दशार्हश्च बली विषहरश्च सः ॥२३
दशार्हस्य सुतो व्योमा व्योम्नो जीमूत उच्यते ।
जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः स्मृतः ॥२४
अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो नवरथस्तथा ।
तस्य चासीद्दशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः ॥२५
तस्मात्करम्भः कारम्भिर्देवरातोऽभवन्नृपः ।
देवक्षत्रोऽभवत्तस्य वृद्धक्षत्रो महायशाः ॥२६
देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः ।
मधूना वंशकृद्राजा मधुर्मधुरवागपि ॥२७
मधोर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां पुरुद्वान्पुरुषोत्तमः ।
ऐक्ष्वाकी चाभवद्भार्या मधोस्तस्या व्यजायत ॥२८

सत्वान् सर्व्वगुणोपेतः सात्वतां कीर्त्तिवर्द्धनः ।
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः ।
युज्यते परमप्रीत्या प्रजावांश्च भवेत् सदा ॥२९

राजा भीम विदर्भ का पुत्र था और उसका आत्मज कुन्ति हुआ था। कुन्ति का सुत धृष्टा उत्पन्न हुआ जो रण में धृष्ट और प्रतापवान् था ॥२२॥ इस धृष्ट के वीर्य से तीन पुत्रों ने जन्म धारण किया था जो शूर और परमधार्मिक हुए थे। उनके शुभ नाम आवन्त-दशार्ह और बलीविषहर ये थे ॥२३॥ दशार्ह का पुत्र व्योमा उत्पन्न हुआ था तथा व्योमा का सुत जीमूत कहा जाता है। जीमूत के यहाँ विकृति नाम वाला पुत्र प्रसूत हुआ था और उसका सुत भीमरथ कहा गया है ॥२४॥ इसके अनन्तर उस भीमरथ के नवरथ पुत्र ने जन्म लिया था। उसका आत्मज दशरथ हुआ था और इस दशरथ के वीर्य से शकुनि तनय ने जन्म लिया था ॥२५॥ उससे करम्भ प्रसूत हुआ तथा करम्भ से कारम्भि देवरात नृप हुआ था। उसके सुत देवक्षत्र हुआ था। उस देवक्षत्र का पुत्र महान् यशस्वी-देवगर्भ के समान वृद्धक्षत्र समुत्पन्न हुआ था। मधुर वाणी वाला मधु मधुओं का वंशधर राजा हुआ था ॥२६-२७॥ इसके अनन्तर उस मधु से वैदर्भी के गर्भ से उत्तम पुरुष पुरुद्वान् प्रसूत हुआ था। उस मधु की भार्या ऐक्ष्वाकी हुई थी। मधु की उस पत्नी से सत्वगुणों से युक्त और सात्वतों की कीर्ति की वृद्धि करने वाला सत्वान् समुत्पन्न हुआ था। महान् आत्मा वाले ज्यामघ की इस विशेष सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य परम प्रीति से युक्त होता है और सदा प्रजा वाला हुआ करता है ॥२८-२९॥

सत्वतः सत्वसम्पन्नान् कौशल्या सुषुवे सुतान् ।
भागिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम् ॥३०
अन्धकं च महाबाहुं वृष्णिं च यदुनन्दनम् ।
तेषां विसर्गाश्चत्वारो विस्तरेणेह कीर्त्तिताः ॥३१
भजमानस्य सृञ्जयो बाह्यकाथोपबाह्यका ।
आस्तां भार्य्ये तयोस्तस्माज्जज्ञिरेबहवः सुताः ॥३२

क्रिमिश्च क्रमणश्चैव धृष्टः शूरः पुरञ्जयः ।
एते वाह्यकसृञ्जय्या भजमानाद्विजज्ञिरे ॥३३
अयुताजित् सहस्राजिच्छता जित्वथ दासकः ।
उपवाह्यकसृञ्जय्या भजमानाद्विजज्ञिरे ॥३४
यज्वा देववृधो राजा चचार विपुल तपः ।
पुत्रः सर्व्वगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितम् ॥३५

महर्षि श्री लोमहर्षण जी ने कहा—उस सत्वत ने कौशल्या के गर्भ से सत्त्व से सुसम्पन्न पुत्रों को प्रसूत किया था । उनके शुभ नाम भागी-भजमान-दिव्य-देवा वृध नृप-अन्धक-महाबाहु-वृष्णि और यदुनन्दन थे । उनके विशेष सर्ग चार थे जिनका कि यहाँ पर मैंने विस्तार के साथ वर्णन कर दिया है ॥३०-३१॥ भजमान के सृञ्जयु में बाधक और उप-बाधक हुए थे । तथा भार्यतप हुआ था और इससे बहुत से पुत्रों ने जन्म धारण किया था ॥३२॥ क्रिमि-क्रमण-धृष्ट-शूर-पुरञ्जय ये सब वाह्यक सृञ्जयु में भजमान के वीर्य से समुत्पन्न हुए थे ॥३३॥ अयुताजित्-सहस्राजित्-शताजित्-दासक ये सब उपवाह्यक सृञ्जयी में भजमान की सन्तति समुत्पन्न हुई थी ॥३४॥ राजा देववृध यजन करने वाला था जिसने बहुत तप किया था । उसके तपस्या का यही निश्चित उद्देश्य था कि मेरे समस्त सद्गुणों से सुसम्पन्न सुत समुत्पन्न होवे ॥३५॥

संयुज्यमानस्तपसा पर्णाशाया जल स्पृशन् ।
सदोपस्पृशतस्तस्य चकार प्रियमापगा ॥३६
चिन्तयाभिपरीता सा न जगामैव निश्चयम् ।
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्या सा निम्नगोत्तमा ॥३७
नाध्यगच्छत्तु ता नारी यस्यामेव विधः सुतः ।
भवेतस्मात् स्वयं गत्वा भवाम्यस्य महानुगा ॥३८
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परम वपुः ।
वरयामास नृपति मामियेष च स प्रभुः ॥३९
तस्यामाधत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधीः ।
अथ सा दशमे मासि सुषुवे सरिता वरा ॥४०

पुत्रं सर्व्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधं द्विजाः ।
अत्र वंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥४१
गुणान् देवावृधस्यापि कीर्त्तयन्तो महात्मनः ।
यथवाग्रे तथा दूरात्पश्यामस्तावदन्तिकात् ॥४२

तप से सयुज्यमान-पर्णाशा को जल का उपस्पर्शन करते हुए और सर्वदा उपस्पर्शन करने वाले उसका प्रिय आपगा ने किया था ॥३६॥ चिन्ता से अभिपरीता उसने कोई निश्चय नही किया था। नरपति के कल्याण होने से उसको वह उत्तमा निम्नगा नारी उसका अधिगमन न करे जिसमे इस प्रकार का पुत्र होवे इससे मैं स्वय ही जाकर इसकी सहानुगामिनी हो जाऊँ ॥३७-३८॥ इसके अनन्तर वह स्वय कुमारी होकर परम सुन्दर शरीर को धारण करती हुई उसने उस राजा का वरण किया था और वह प्रभु भी उसी को चाहता था ॥३९॥ उसमे उस नृपति ने जो अत्यन्त उदार बुद्धि वाला था एक परम तेजस्वी गर्भ धारण कर दिया था। इसके उपरान्त दशवें मास मे उस सरिद्वरा ने प्रसव किया था ॥४०॥ हे द्विजगण ! उससे समस्त सद्गुणो से युक्त बभ्रु देवा वृध-पुत्र समुत्पन्न हुआ था। इस वश मे पुराणो के ज्ञाता लोग यह परिश्रुत-गान किया करते हैं और महात्मा देव वृध के सद्गुणो का कीर्तन किया करते हैं कि जिस प्रकार से इसके आगे वैसे ही दूर से एव समीप से भी हम इसको देखा करते हैं ॥४१-४२॥

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणा देवैर्देवावृधः समः ।
षष्टिश्च षट् च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च ॥४३
एतेऽमृतत्व प्राप्ता वै बभ्रोर्देवावृधादपि ।
यज्वा दानपतिर्धीमान् ब्रह्मण्यः सुदृढायुधः ॥४४
तस्यान्ववायः सुमहान्भोजा ये मार्त्तिकावताः ।
अन्धकात्काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान् ॥४५
कुकुरं भजमान च ससक बलबाहिपम् ।
कुकुरस्य सुतो वृष्टिर्वृष्टेस्तु तनयस्तथा ॥४६

कपोतरोमा तस्याथ तिलिरिस्तनयोऽभवत् ।
जज्ञे पुनर्व्वसुस्तस्मादभिजिन्न पुनर्व्वसोः ॥४७
तथा वै पुत्रमिथुन बभुवाभिजितः किल ।
आहुकः श्चाहुकाश्चैव ख्यातौ ख्यातिमता वरौ ॥४८
इमा चोदाहरन्त्यत्र गाथा प्रति तमाहुकम् ।
श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमोमहान् ॥४९

बभ्रु मनुष्यों में परम श्रेष्ठ है और देवावृध देवों के ही समान है सात हजार छयासठ पुरुष बभ्रु देवा वृध से अमृतत्व को प्राप्त हो गये हैं। यह यजन करने वाला-दानपति-धीमान् गुरुढ़ आयुधों वाला और शरण में समागतों की सुरक्षा करने वाला था । इसका अन्ववाय (वंश) सुमहान था जो कि मात्तिकावत भोज थे । काश्य की पुत्री ने अन्धक के वीर्य से चार पुत्रों की प्राप्ति की थी ॥४३-४५॥ उनके शुभ नाम कुकुर-भजमान-शश और कम्बलबर्हिष थे । कुकुर का पुत्र धृष्टि और धृष्टि का आत्मज कपोतरोमा हुआ था तथा इसका सुत तिलिरि नाम वाले ने जन्म धारण किया था । फिर इससे पुनर्वसु ने जन्म लिया था और पुनर्वसु के वीर्य से अभिजित् समुत्पन्न हुआ था ॥४६-४७॥ उस अभिजित का एक युग्म पुत्रों का हुआ था । ये दोनों परम प्रसिद्धि प्राप्त करने वालों में आहुक-श्चाहुक इन नामों से ही प्रख्यात हुए थे ॥४८॥ यहाँ पर उस आहुक के प्रति इस गाथा को उदाहृत करते हैं कि यह श्वेत परिवार से महान् किशोर प्रतिमा वाला था ॥४९॥

अशीतिचर्म्मणा युक्त आहुकः प्रथम व्रजेत् ।
नापुत्रवानाशतदो नासहस्रशतायुषः ॥५०
नाशुद्धकर्म्मा नायज्वा यो भोजमभितो व्रजेत् ।
पूर्व्वस्या दिशि नागाना भोजस्य प्रययुः किल ॥५१
सोमारसङ्गानुकर्षाणा ध्वजिना सवरूथिनाम् ।
रथाना मेघघोषाणा सहस्राणि दशैव तु ॥५२
रौप्यकाञ्चनकक्षाणा सहस्राण्येकविंशतिः ।
तावन्त्येव सहस्राणि उत्तरस्या तथा दिशि ॥५३

आभूमिपाला भोजास्तु सन्ति ज्याकिङ्किणीकिनः ।
आहुः किं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसारं ददुरन्धकाः ॥५४
आहुकस्य तु काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः ।
देवकस्याभवन् पुत्राश्चत्वारस्त्रिदशोपमाः ॥५५
देववानुपदेवश्च सदेवो देवरक्षितः ॥५६

अस्सी वर्म्म से युक्त आहुक हो सबसे प्रथम गमन करे । अपुत्रवान्-अशतद असहस्र-शतायुष-अशुद्धकर्मा-अयज्वा कोई भी इनमे से नही है जो भोज के समक्ष में गमन करे । पूर्व दिशा में भोज के नागो के प्रति गमन किया था ॥५०-५१॥ सोम से सङ्गानुकर्पो के-ध्वजियो के-सवरूथियो के और मेघों के समान घोष करने वाले रथो की सख्या दश सहस्र थी ॥५२॥ रौप्य काञ्चन कक्षो की सख्या इक्कीस सहस्र थी । उतने ही सहस्र उत्तर दिशा में थे ॥५३॥ आभूमिपाल भोज ज्याकिङ्किणीकिन थे । और आहु तथा अवन्तियो के लिये अन्धको ने अपनी स्वसा (बहिन) देदी थी ॥५४॥ इस आहुक के काश्या मे दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे । देवक के देवो के समान चार पुत्रो ने जन्म लिया था । उनके शुभ नाम-देववान्-उपदेव-सदेव और देवरक्षित थे ॥५५-५६॥

कुमार्य्यः सप्त चास्याथ वसुदेवाय ता ददौ ।
देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता ॥५७
वृकदेव्युपदेवी च सुनाम्नी चैव सप्तमी ।
नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्व्वजः ॥५८
न्यग्रोधश्च सुनामा च तथा कङ्कः सुभूषणः ।
राष्ट्रपालोऽथ सुतनुरनावृष्टिस्तु पुष्टिमान् ॥५९
तेषां स्वसारः पञ्चासन् कंसा कंसवती तथा ।
सुतनू राष्ट्रपाली च कङ्का चैव वराङ्गना ॥६०
उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः ।
कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम् ॥६१
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुयान्नरः ॥६२

इसके सात कन्याऐं भी उत्पन्न हुई थी। उसने उन सातों कुमारियों को वसुदेवजी को समर्पित कर दिया था। उन कुमारियों के नाम देवकी शान्तिदेवा-सुदेवा-देवरक्षिता वृकदेवी-उपदेवी और सातवी सुनाम्नी थी। राजा उग्रसेन के नौ सुत हुए थे उन सबमें कंस सबसे बड़ा था। ५७-५८॥ उनके नाम न्यग्रोध-सुनामा-कङ्क-सुभूषण-राष्ट्रपाल-सुतनु-अनावृष्टि और दृष्टिमान ये थे ॥५९॥ उनकी बहिनें भी पाँच थी-कंसा-कंसवती-सुतनु-राष्ट्रपाली और वर अङ्गों वाली कङ्का ये उनके नाम थे ॥६०॥ राजा उग्रसेन सन्तति के सहित बतला दिया गया है जो कि कुकुरोद्भव था। ये कुकुर अपरिमित ओज वाले थे। इनके वंश की धारणा करने वाला मनुष्य अपने प्रजा वाले विपुल वंश को प्राप्त किया करता है ॥६१ ६२॥

-:※:-

## १३—सत्राजित उपाख्यान वर्णन

भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः।
राजाधिदेयः शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत् ॥१

राजाधिदेयस्य सुता जज्ञिरे वीर्य्यवत्तराः।
दत्तातिदत्तौ बलिनौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः ॥२

शमी च दण्डशर्म्मा च दन्तशत्रुश्च शत्रुजित्।
श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारौ सम्बभूवतुः ॥३

शमिपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः।
स्वयम्भोजः स्वयम्भोजाद्हृदिकः सम्बभूव ह ॥

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्व्वे भीमपराक्रमाः।
कृतवर्म्माग्रजस्तेषां शतधन्वा तु मध्यमः ॥४

देवान्तश्च नरान्तश्च भिषग्वैतरणश्च यः।
सुदान्तश्चातिदान्तश्च निकाश्यः कामदम्भकः ॥६

देवस्तस्याभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलबर्हिषः ।
असमौजाः सुतस्तस्य नासमौजाश्च तावुभौ ॥७

श्री लोमहर्षण जी ने कहा—भजमान का पुत्र रथियों में परम प्रमुख विदूरथ समुत्पन्न हुआ था । राजाधिदेव शूर इस विदूरथ के वीर्य से समुत्पन्न हुआ था ॥१॥ इस राजाधिदेव के बहुत बलवीर्य वाले सुतों ने जन्म लिया था । परम बलवान् दत्त-अनिदत्त-शोणाश्व-श्वेत वाहन शमी-दण्ड शर्मा दन्तशत्रु-शत्रुजित् ये पुत्रों के नाम हैं तथा श्रवणा एवं श्रविष्ठा ये दो बहिनें समुत्पन्न हुई थीं ॥२-३॥ शमी के पुत्र का नाम प्रतिक्षत्र था और प्रतिक्षत्र का पुत्र स्वयम्भोज हुआ था । इस स्वयम्भोज के वीर्य से हृदिक सुत ने जन्म लिया था ॥४॥ हृदिक के सभी पुत्रों के बल पराक्रम बहुत ही भीषण था ऐसे ही सब सुत समुत्पन्न हुए थे । उन सब में कृतवर्मा ज्येष्ठ पुत्र था तथा शतधन्वा मध्यम था ॥५॥ अन्य पुत्रों के नाम देवान्त नरान्त-भिषक्-वैतरण-सुदान्त-अतिदान्त-निकाश्य और कामदम्भक थे ॥६॥ उस कम्बलबर्हि का पुत्र परम विद्वान् देव हुआ था । उसके पुत्र का नाम असमौजा था । वे दोनों असम ओज वाले थे ॥७॥

अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमौजसे ।
सुदंष्ट्रश्च सुचारश्च कृष्ण इत्यन्धकाः स्मृताः
गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुभार्य्ये बभूवतुः ।
गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ॥६
माद्री युधाजित पुत्र ततो वै देवमीढुषम् ।
अनमित्रममित्राणां जेतारमपराजितम् ॥१०
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतुः ।
प्रसेनश्चाथ सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ ॥११
प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन् ये महामणिम् ।
दिव्यं स्यमन्तकं नाम स सूर्य्यादुपलब्धवान् ॥१२
तस्य सत्राजितः सूर्य्यः सखा प्राणसमोऽभवत् ।
स कदाचिद्निशापाये रथेन रथिना वरः ॥१३

तोयकूलमपःस्प्रष्टुमुपस्थातुं ययौ रविम् ।
तस्योपतिष्ठतः सूर्य्यं विवस्वानग्रतः स्थितः ॥१४

यह असमौजा पुत्रहीन था इसको पुत्र दिये गये थे। इन पुत्रों के नाम सुदंष्ट्र-सुचारु और कृष्ण थे—ये सब अन्धक कहे गये हैं ॥८॥ गान्धारी और माद्री ये दोनों क्रोष्टु की भार्यायें थीं। गान्धारी ने महान् बलवान् अनमित्र को उत्पन्न किया था ॥९॥ माद्री ने युधाजित नाम वाले पुत्र को जन्म दिया था और इसके पश्चात् अनमित्र के मित्रों को जीतने वाला अपराजित देवमीढुष पुत्र को उत्पन्न किया था ॥१०॥ अनमित्र का सुत निघ्न उत्पन्न हुआ था। इस निघ्न के वीर्य से दो पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था इनके नाम प्रसेन और सत्राजित् थे। ये दोनों ही शत्रुओं की सेना को जीतने वाले हुए थे ॥११॥ यह प्रसेन द्वारवती में निवास किया करता था और इसने परम दिव्य महामणि स्यमन्तक को सूर्य देव से प्राप्त किया था ॥१२॥ उस सत्राजित् का सूर्य प्राण के समान ही था। यह किसी समय में रथियों में परम श्रेष्ठ रथ के द्वारा निशा-काल के समाप्त होने पर तोय के कूल को जल का स्पर्श करने को उप-स्थान करने के लिये सूर्य देव के समीप में गया था। जब वह सूर्य देव का उपस्थान कर रहा था उस समय में विवस्वान् उसके आगे स्थित हो गये थे ॥१३-१४॥

विस्पष्टमूर्तिभगवांस्तेजोमण्डलवान् विभुः ।
अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः ॥१५
यथैव व्योम्नि पश्यामि सदा त्वां ज्योतिषां पते ।
तेजोमण्डलिनं देव तथैव पुरतः स्थितम् ॥१६
को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः सख्येनोपगतस्य वै ।
एतच्छ्रुत्वा तु भगवान्मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥१७
स्वकण्ठादवमुच्याथ एकान्ते न्यस्तवान् विभुः ।
ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा ॥१८
प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कथाम् ।
तमभिप्रस्थितं भूयो विवस्वन्तं स सत्राजित् ॥१९

लोकान् भासयसे सर्व्वान् येन त्वं सततं प्रभो ।
तदेतन्मणिरत्नं मे भगवन् दातुमर्हसि ॥२०
ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवान् भास्करस्तदा ।
स तमाबध्य नगरीं प्रविवेश महीपतिः ॥२१

वह भुवन भास्कर विभु भगवान् विस्पष्टमूर्ति वाले थे और तेजो मण्डल से युक्त थे । इसके अनन्तर उस राजा ने अपने आगे स्थित विवस्वान् प्रभु से कहा था—हे ज्योतियों के स्वामिन् ! मैं जिस प्रकार आपको सदा ही व्योम में देखा करता हूँ वैसे तेजो मण्डल वाले देव आपको इस समय में भी अपने आगे स्थित हुए को भी देख रहा हूँ ॥१५-१६॥ सख्यभाव से समुपगत आप से मुझ में क्या विशेषता है ? यह श्रवण करके भगवान् सूर्यदेव ने मणियों में सर्वोत्तम स्यमन्तक मणि को अपने कण्ठ से उतार कर विभु ने एकान्त में विन्यस्त कर दिया था । उस समय में फिर राजा ने विग्रहवान् उनका दर्शन किया था ॥१७-१८॥ परम प्रीति वाले उसने उनका दर्शन करके मुहूर्त्त भर तक कथा की थी । उस सत्राजित् ने अभिप्रस्थान करने वाले विवस्वान् देव से फिर निवेदन किया था—हे प्रभो ! जिसके द्वारा आप समस्त लोकों को सदा भासित किया करते हैं हे भगवन् ! उस मणि रत्न को आप मुझे प्रदान कर देने के योग्य होते हैं ॥१९-२०॥ उसी समय भगवान् भास्कर ने उसको स्यमन्तक मणि प्रदान कर दी थी । उस मणि को कण्ठ में पहिन कर फिर राजा ने द्वारवती नगरी में प्रवेश किया था ॥२१॥

तं जनाः पर्य्यधावन्त सूर्य्योऽयं गच्छतीति ह ।
स्वां पुरीं स विसिष्माय राजा त्वन्तःपुरं तथा ॥२२
तं प्रसेनजितं दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम् ॥२३
स मणिं स्यन्दते रुक्मं वृष्ण्यन्धकनिवेशने ।
कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत् ॥२४
लिप्सां चक्रे प्रसेनस्य मणिरत्ने स्यमन्तके ।
गोविन्दो न च तं लेभे भक्तोऽपि न जहार सः ॥२५

कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः ।
स्यमन्तककृते सिंहाद्वधं प्राप वनेचरात् ॥२६

अथ सिंह प्रधावन्तमृक्षराजो महाबलः ।
निहत्य मणिरत्न तदादाय प्राविशद्गुहाम् ॥२७

ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्ण प्रसेनवधकारणात् ।
प्रार्थना ता मणेर्बुद्ध्वा सर्व्वं एव शशङ्किरे ॥२८

जिस समय मे यह अपनी नगरी के मध्य से जा रहा था तो लोगो ने उसको देखकर यही समझा था कि यह सूर्यदेव ही गमन कर रहे हैं तथा लोग उसके इधर-उधर चारो ओर से दौड पडे थे। उस राजा ने अपनी सब नगरी को विस्मित कर दिया और वहाँ पर भी सबको परम विस्मय मे डाल दिया था। उस परम दिव्य मणिरत्न स्यमन्तक को राजा ने अपने भाई प्रसेनजित को प्रेम से दे दिया था वह सत्राजित् के द्वारा दी हुई मणि स्यमन्तक वृष्णि और अन्धको के घर मे नित्य ही सुवर्ण का स्यन्दन किया करती थी और उस स्यमन्तक मणि का यह प्रभाव था कि पर्जन्य सदा ठीक समय पर वर्षा किया करता था तथा कभी भी किसी व्याधि का वहाँ पर भय नही था ॥२२-२४॥ उस मणि-रत्न स्यमन्तक मे जो कि प्रसेनजित् के पास था गोविन्द ने अपनी इच्छा की थी किन्तु उसे वे प्राप्त न कर सके थे और भक्त ने भी उसे नही दिया था ॥२५॥ किसी समय मे वह प्रसेनजित् उस स्यमन्तक मणि से भूषित होकर मृगया ( शिकार ) के लिये चला गया था। उस स्यमन्तक के लिये एक वनेचर सिंह से वध को प्राप्त हो गया था ॥२६॥ इसके अनन्तर प्रसेनजित् को मार कर सिंह जब स्यमन्तक लेकर दौड रहा था तो महान् बलवान् ऋक्षराज जाम्बवन्त ने उस सिंह को पकड कर मार डाला था और उस मणिरत्न को लेकर वह जाम्बवान् अपनी गुफा प्रवेश कर गया था ॥२७॥ इसके अनन्तर समस्त वृष्णि-अन्धक गण प्रसेन के वध का कारण श्रीकृष्ण के विषय मे शङ्का करने लग गये थे क्योंकि उन्होंने उस मणि के प्राप्त करने की पहिले प्रार्थना की थी ॥२८॥

स शङ्क्यमानो धर्म्मात्मा अकारी तस्य कर्म्मणः ।
आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययौ ॥२९
यत्र प्रसेनो मृगयां व्याचरत्तत्र चाप्यथ ।
प्रसेनस्य पद गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः ॥३०
ऋक्षवन्तं गिरिवर विन्ध्यं च गिरिमुत्तम् ।
अन्वेषयन् परिश्रान्तः स ददर्श महामनाः ॥३१
साश्वं हत प्रसेन तु नाविन्दत च तन्मणिम् ।
अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः ॥३२
ऋक्षेण निहतो दृष्टः पदैर्ऋक्षस्तु सूचितः ।
पदैस्तैरन्वियायाथ गुहामृक्षस्य माधवः ॥३३
स हि ऋक्षविले वाणी शुश्राव प्रमदेरिताम् ।
धात्र्या कुमारमादाय सुत जाम्बवतो द्विजाः ॥
क्रीडयन्त्या च मणिना मा रोदीरित्यथेरिताम् ॥३४

वह भगवान् श्रीकृष्ण पर इस प्रकार से शङ्कित किये गये थे जिन्होने उस कर्म को बिल्कुल नही किया था तब उन्होने उसी समय मे यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं उस मणि को कही से भी खोज कर ला दूंगा और फिर वे धर्मात्मा वन मे चले गये थे ॥२९॥ जहाँ पर प्रसेनजित् ने मृगया की थी या मृगया के लिये विचरण किया था वहाँ पर प्रसेनजित् के चरणो के चिह्नो को आप्तकारी पुरुषो के द्वारा ग्रहण करके वे आगे बढते गये थे और उस उत्तम ऋक्षराज से युक्त विन्ध्य पर्वत को खोजते हुए पूर्णतया परिश्रान्त महामना श्रीकृष्ण ने देखा था ॥३०-३१॥ उन्होंने वहाँ पर अश्व के सहित मरे हुए प्रसेन को तो देखा था किन्तु उस स्यमन्तक मणि को नही प्राप्त किया था। इसके पश्चात् मृत प्रसेन के शरीर के समीप मे ही रीछ के द्वारा हनन किये हुए सिंह को भी देखा था क्योंकि चरणो के चिह्नो से वह रीछ सूचित हो रहा था। फिर माधव प्रभु उस रीछ के चरण चिह्नो के पीछे२ चलकर उस रीछ की गुफा पर पहुँच गये थे ॥३२-३३॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने उस रीछ के बिल मे किसी प्रमदा के द्वारा कही हुई वाणी का श्रवण किया था। हे द्विज-

मत ! यह वाणी एक धात्री ( धाय ) के द्वारा कही गयी थी जो कि जाम्बवान् के सुत को लेकर उसी मणि के द्वारा खिला रही थी और 'मत रोओ' यह उससे कह रही थी ॥३४॥

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥३५
व्यक्तिस्तस्य शब्दस्य तूर्णमेव बिले ययौ ।
प्रविश्य तत्र भगवांस्तदृक्षबिलमञ्जसा ॥३६
स्थापयित्वा बिलद्वारे यदूँल्लाङ्गलिना सह ।
शार्ङ्गधन्वा बिलस्थं तु जाम्बवन्तं ददर्श सः ॥३७
युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह ।
बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥३८
प्रविष्टेऽथ बिले कृष्णे बलदेवपुरःसराः ।
पुरीं द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ॥३९
वासुदेवोऽपि निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम् ।
लेभे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम् ॥४०
मणिं स्यमन्तकं चैव जग्राहात्मविशुद्धये ।
अनुनीयर्क्षराजं तु निर्ययौ च ततो बिलात् ॥४१
उपायाद्द्वारकां कृष्णः सविनीतैः पुरःसरैः ।
एवं स मणिमाहृत्य विशोध्यात्मानमच्युतः ॥४२

धात्री ने कहा—सिंह ने तो प्रसेन का वध कर दिया था और उस सिंह को जाम्बवान् ने मार डाला है। अब हे कुमार ! मत रुदन करो। यह स्यमन्तक मणि अब तो तेरी ही है ॥३५॥ उसके शब्दों के स्पष्टतया अभिव्यक्त हो जाने से श्रीकृष्ण तुरन्त ही रीछ की गुफा के अन्दर घुसे गये थे। शीघ्र भगवान् ने उस रीछ के बिल को प्रवेश कर प्राप्त कर लिया था। इससे पूर्व उनने उस गुफा के द्वार पर लाङ्गली (श्री बलराम) के साथ यादवों को स्थापित करके छोड़ गये थे। शार्ङ्ग धनुष के धारी श्रीकृष्ण ने बिल के अन्दर स्थित जाम्बवान् रीछ को देखा था ॥३६-३७॥ उस बिल में भगवान् वासुदेव जी ने उस रीछों के राजा जाम्बवान् के

साथ युद्ध किया था। श्री गोविन्द ने इक्कीस दिन तक बाहुओं से ही युद्ध किया था ॥३८॥ श्री बलदेव जिनमें प्रमुख थे वे सब गुफा के द्वार पर स्थित यादव गण श्रीकृष्ण के बिल में प्रविष्ट हो जाने पर वापिस द्वारकापुरी मे लौटकर आ गये थे और उन्होंने यह कह दिया था श्रीकृष्ण तो निहत हो गये हैं ॥ ३९॥ उधर भगवान् वासुदेव ने भी महाबली जाम्बवान् को जीतकर ऋक्षराज की सम्भल जाम्बवती कन्या को प्राप्त कर लिया था ॥४०॥ अपनी विशुद्धि के लिये उस स्यमन्तक मणि को भी ग्रहण कर लिया था और रीछो के राजा का अनुनय करके फिर उस बिल से निकलकर आ गये थे ॥४१॥ फिर विनयी पुरोगामियों के साथ श्रीकृष्ण द्वारकापुरी मे आकर प्राप्त हो गये थे। इस तरह भगवान् अच्युत ने उस मणि का आहरण करके अपने ऊपर लगे कलङ्क का परिशोधन किया था ॥४२॥

ददौ सत्राजिते तं वै सव्वसात्वतससदि ।
एवं मिथ्याभिशस्तेन कृष्णेनामित्रघातिना ॥४३
आत्मा विशोधितः पापाद्वि नर्जित्य स्यमन्तकम् ।
सत्राजितो दश त्वासन् भार्य्यास्तासां शतं सुताः ॥४४
ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषांभङ्कारस्तु पूर्व्वजः ।
वीरो वातपतिश्चैव वसुमेघस्तथैव च ॥४५
कुमार्य्यश्चापि तिस्रो वै दिक्षु ख्याता द्विजोत्तमाः ।
सत्यभामोत्तमा तासा व्रतिनी च दृढ़व्रता ॥४६
तथा प्रस्वापिनो चैव भार्य्याः कृष्णाय ता ददौ ।
सभार्य्यो भङ्गकारिस्तु नावेयश्च नरोत्तमौ ॥४७
जज्ञाते गुणसम्पन्नौ विश्रुतौ रूपसम्पदा ।
माद्र्याः पुत्रोऽथ जज्ञेऽथ वृष्णिपुत्रो युधाजितः ॥४८
जज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ।
श्वफल्कः काशिराजस्य सुता भार्य्यामिविन्दत ॥४९

समस्त सात्वतो की सभा मे उस स्यमन्तक मणि को श्रीकृष्ण ने सत्राजित् को दे दिया था। इस प्रकार से अमित्रघाती और मिथ्या ही

कलङ्क लगाये गये श्रीकृष्ण ने स्यमन्त को जीतकर अपनी आत्मा को विशोधित किया था। इस सत्राजित् के दस भार्याएँ थी और उन सबके सौ पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥४३-४४॥ उन सब मे तीन ख्याति प्राप्त कर लेने वाले हुए थे और भृङ्गकार उन सब मे ज्येष्ठ था। दूसरे वीर वातपति और वसुमेघ थे ॥४५॥ हे द्विजोत्तमो ! उनके तीन कुमारियाँ भी उत्पन्न हुई थी जो दिशाओं मे परम प्रसिद्ध थी। उनमे भी सत्यभामा सत्युत्तम-व्रतिनी और दृढव्रत वाली थी ॥४६॥ तथा प्रस्वापिनी थी। ये सब श्रीकृष्ण के लिये भार्याओं के रूप मे समर्पित कर दी थी। सभार्क्ष भङ्गकारि और नावेय ये दोनो नरो मे उत्तम तथा गुणों से गुणसम्पन्न समुत्पन्न हुए थे जो रूप की सम्पत्ति के कारण परम प्रसिद्ध थे। माद्री का पुत्र वृष्णि पुत्र युधाजित् ने जन्म ग्रहण किया था ॥४७-४८॥ वृष्णि के वीर्य से श्वफल्क और चित्रक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। श्वफल्क ने काशिराज की सुता को अपनी भार्या बनाया था ॥४९॥

> गान्दिनी नाम तस्याश्च गाः सदा प्रददौ पिता।
> तस्या जज्ञे महाबाहुः श्रुतवानतिथिप्रियः ॥५०
> अक्रूरोऽथ महाभागो जज्ञे विपुलदक्षिणः।
> उपमद्गुस्तथा मद्गुर्मुदरश्चारिमर्दनः ॥५१
> आरिक्षेपस्तथोपेक्षः शत्रुहा चारिमेजयः।
> धर्म्मभृच्चापि धर्म्मा च गृध्रभोजान्धकस्तथा ॥५२
> आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना ॥५३
> विश्रुताश्वस्य महिषी कन्या चास्य वसुन्धरा ॥५४
> रूपयौवनसम्पन्ना सर्व्वसत्त्वमनोहरा।
> अक्रूरेणोग्रसेनायां सुतौ द्वौ कुलनन्दनौ ॥५५
> वसुदेवश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्च्चसौ।
> चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च ॥५६

उसका नाम गान्दिनी था और उसका पिता सदा गौओं का दान दिया करता था उस भार्या के गर्भ से महाबाहु-अतिथियों पर प्यार करने वाला श्रुतवान् समुत्पन्न हुआ था ॥५०॥ महान् भाग वाला और विपुल

दक्षिणा देने वाले अक्रूर ने जन्म ग्रहण किया था। उपमद्गु-मद्गु-मुदर-अरिमर्दन-आरिक्षेप-उपेक्ष-शत्रुघ्न-अरिमेजय-धर्मभृत्-धर्मा-गृध्रभोजान्धक-आवाह-प्रतिवाह और वराङ्गना सुन्दरी ने जन्म लिया था ॥५१-५३॥ विश्रुताश्व की महिषी और इसकी कन्या वसुन्धरा थी ॥५४॥ यह रूप एवं यौवन से युक्त तथा समस्त प्रभियों में मनोहर थी। अक्रूर ने उग्रसेना भार्या में कुल के नन्दित करने वाले देवों के समान वर्चस वाले दो पुत्रों को समुत्पन्न किया था। चित्रक के पृथु और विपृथु पुत्र हुए थे ॥५५-५६॥

अश्वग्रीवोऽश्ववाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ।
अरिष्टनेमिश्च सुता धर्म्मो धर्म्मभृदेव च ॥५७
सुवाहुर्बहुवाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ।
इमां मिथ्याभिशस्तिं यः कृष्णस्य समुदाहृतम् ॥५८
वेद मिथ्याभिशापास्तं न स्पृशन्ति कदाचिन ॥५९

अश्वग्रीव-अश्ववाहु-सुपार्श्वक-गवेषण-अरिष्टनेमि सुता-धर्मभृत् और धर्म सुवाहु-बहुबाहु तथा श्रविष्ठा और श्रवणो दो स्त्रियाँ समुत्पन्न हुए थे। इस मिथ्या अभिशस्ति को जो कोई मनुष्य श्रीकृष्ण के विषय में कही गयी थी जानता है उस पुरुष को कभी भी मिथ्याभिशाप स्पर्श नहीं किया करते हैं ॥५७-५९॥

—※—

## १४—स्यमन्तक उपाख्यान वर्णन

यत्तु सत्राजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम्।
स्दावहारयद्वभ्रुर्भोजिन शतधन्वना ॥१
सदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम्।
अक्रूरोऽन्तरमन्विष्यन्मणिं चैव स्यमन्तकम् ॥२

सत्राजितं ततो हत्वा शतधन्वा महाबलः ।
रात्रौ तं मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान् ॥३
अक्रूरस्तु तदा विप्रा रत्नमादाय चोत्तमम् ।
समयं कारयाञ्चक्रे नावेद्योऽहं त्वयेत्युत ॥४
वयमभ्युत्प्रपत्स्यामः कृष्णेन त्वां प्रधर्षितम् ।
ममाद्य द्वारका सर्व्वा वशे तिष्ठत्यसंशयम् ॥५
हते पितरि दुःखार्त्ता सत्यभामा मनस्विनी ।
प्रययौ रथमारुह्य नगरं वारणावतम् ॥६
सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वनः ।
भर्त्तुं निवेद्य दुःखार्त्ता पार्श्वस्थाश्रूण्यवर्त्तयत् ॥७

श्री लोमहर्षणजी ने कहा—श्री कृष्णभगवान् ने जो स्यमन्तक मणिरत्न सत्राजित् को दी थी उसको बभ्रु भोज शतधन्वा ने आहृत कर लिया था ॥१॥ अक्रूर अन्तर का अन्वेषण करते हुए सदा अनिन्दित सत्यभामा की और स्यमन्तक मणि की प्रार्थना किया करते थे ॥२॥ इसके उपरान्त महाबली शतधन्वा ने सत्राजित् का हनन करके रात्रि में ही उस मणि स्यमन्तक को लाकर अक्रूर को देदी थी। और यह समझौता करा लिया था कि आप मेरा नाम किसी को भी न बतायें ॥३–४॥ हम इस बात को अभ्युत्पन्न करेंगे कि कृष्ण के द्वारा आपको प्रधर्षित किया गया है। आज सम्पूर्ण द्वारका निश्चय ही मेरे वश में स्थित है ॥५॥ मनस्विनी सत्यभामा अपने पिता के मृत हो जाने पर बहुत ही दुःख आर्त्त हो गयी थी। वह सत्यभामा रथ मे समारूढ़ होकर वारणावत नगर को चली गयी थी ॥६॥ सत्यभामा ने उस भोज शतधन्वा के वृत्त को भर्त्ता से निवेदन करके अत्यन्त दुःखार्त्त होकर पास में स्थिति होती हुई अपने नेत्रों से अश्रुपात कर रही थी ॥७॥

पाण्डवानां च दग्धानां हरिः कृत्वोदकक्रियाम् ।
कुल्यार्थे चापि पाण्डूनां न्ययोजयत सात्यकिम् ॥८
ततस्त्वरितमागम्य द्वारकां मधुसूदनः ।
पूर्व्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥९

हतः प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना ।
स्यमन्तकस्तु मद्गामी तस्य प्रभुरहं विभो ॥१०

तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महारथम् ।
स्यमन्तको महाबाहो अस्माकं स भविष्यति ॥११
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं भोजकृष्णयोः ।
शतधन्वा ततोऽक्रूरं सर्वतोदिशमैक्षत ॥१२

सरब्धौ तावुभौ तत्र दृष्ट्वा भोजजनार्दनौ ।
शक्तोऽपि शापाद्धार्दिक्यमक्रूरो नान्वपद्यत ॥१३
अपयाने ततो बुद्धि भोजश्चक्रे भयार्दितः ।
योजनानां शतं साग्रं हृदया प्रत्यपद्यतः ॥१४

श्री हरि ने दग्ध हुए पाण्डवों की उदक क्रिया करके पाण्डुओं के कुल्यार्थ मे सात्यकि को नियोजित कर दिया था ॥८॥ इसके अनन्तर श्रीमधुसूदन शीघ्र ही द्वारकापुरी मे समागत हो गये थे और श्रीमान् श्रीकृष्ण ने अपने बड़े भाई हलधारी बलदेवजी से यह वचन कहा था ॥९॥ श्रीकृष्ण ने कहा—सिंह ने प्रसेन को मार डाला था और शतधन्वा ने सत्राजित् का हनन कर दिया है। हे प्रभो ! अब वह स्यमन्तक मणि मेरे पास आनी चाहिए क्योंकि मैं ही उस मणि का स्वामी हूँ ॥१०॥ अत-एव हे महबाहो ! अति शीघ्र आप रथ पर समारूढ हो जाइये और उस महारथी भोज का हनन करके उस स्यमन्तक को लाइए। वह स्यमन्तक मणि तभी हमारी हो जायगी ॥११॥ श्री लोमहर्षण मुनि ने कहा—इसके अनन्तर भोज और श्रीकृष्ण का महान् घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया था। इसके पश्चात् शतधन्वा ने सभी दिशाओं मे अक्रूर को देखा था ॥१२॥ वहाँ पर भोज और जनार्दन इन दोनों को संरब्ध देखकर शक्त होते हुए भी अक्रूर ने शाप से अपने हृदय की बात नहीं कही थी ॥१३॥ इसके पश्चात् भय से भीत होकर भोज ने वहाँ से अपयान करने का विचार किया था और उसको हृदया ने डेढ़ सौ योजन दूर पहुँचा दिया था ॥१४॥

विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी ।
भोजस्य वड़वा विप्रा ययौ कृष्णमयोधयत् ॥१५
क्षीणा जवेन हृदयामध्वनः शतयोजने ।
दृष्ट्वा रथस्य स्वा वृद्धिं शतधन्वानमर्द्दयत् ॥१६
ततस्तस्या हृतायास्तु श्रमात् खेदाच्च भो द्विजाः ।
समुत्पेतुरथ प्राणाः कृष्णो राममथाब्रवीत् ॥१७
तिष्ठेह त्वं महाबाहो दृष्टदोषा हता मया ।
पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥१८
पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युतः ।
मिथिलामभितो विप्रा जघान परमास्त्रवित् ॥१९
स्यमन्तकं च नापश्यद्धत्वा भोजं महाबलम् ।
निवृत्तं चाब्रवीत् कृष्णं मणिं देहीति लाङ्गली ॥२०
नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषान्वितः ।
धिक्शब्दपूर्व्वमसकृत् प्रत्युवाच जनार्द्दनम् ॥२१

हृदया भोज की एक घोड़ी थी । हे विप्रो ! वह हृदया एक सौ योजन तक गमन करने वाली प्रसिद्ध थी । वह दूर चला गया और उसने श्रीकृष्ण से युद्ध किया था ॥१५॥ जब सौ योजन मार्ग के चलने से वह हृदया घोड़ी वेग से क्षीण हो गयी थी । ऐसी उसको क्षीण देखकर और अपने रथ की वृद्धि को देखकर श्रीकृष्ण ने शतधन्वा को मर्दित किया था ॥१६॥ हे द्विजो ! श्रम और खेद से निहित उसके प्राण आकाश में उत्पतित हो गये थे । तब श्रीकृष्ण बलदेवजी से कहने लगे ॥१७॥ हे महाबाहुओं वाले ! आप यहीं पर ही ठहरिये । दोष के देखे जाने वाली यह घड़वा मैंने मार डाली है । अब पैरों से चलकर ही मैं उस मणि रत्न स्यमन्तक का हरण कर लूँगा ॥१८॥ इसके अनन्तर परम अस्त्रों के ज्ञाता अच्युत ने विप्रगण हे ! पैरों से ही चलकर मिथिला के समीप में उस शतधन्वा का हनन कर दिया था ॥१९॥ उस महान् बलवान भोज को मार कर भी उसके पास उस स्यमन्तक मणि को नहीं देखा था । जब श्रीकृष्ण उसे मार कर वापिस लौटे तो

बलरामजी ने श्रीकृष्ण से कहा था—उस स्यमन्तक मणि को हमको दे दो ॥२०॥ श्रीकृष्ण ने बलदेवजी को यही उत्तर दिया था कि वह मणि तो उसके पास नहीं मिली है। तब तो बलदेवजी बहुत क्रोधित हो गये थे और वे वारम्वार धिक्कार है ऐसे शब्द श्री कृष्ण से उन्होने कहे थे ॥२१॥

भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ।
कृत्यन मे द्वारकाया न त्वया न च वृष्णिभिः ॥२२
प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्द्दनः ।
सर्व्वकामैरुपहृतैर्मिथिलेनाभिपूजितः ॥२३
एतस्मिन्नेव काले तु वभ्रुर्मतिमतां वरः ।
नानारूपान् क्रतून् सर्व्वानाजहार निरर्गलान् ॥२४
दीक्षामयं स कवच रक्षार्थं प्रविवेश ह ।
स्यमन्तककृते प्राज्ञो गान्दीपुत्रो महायशाः ॥२५
अथ रत्नानि चान्यानि धनानि विविधानि च ।
षष्टिं वर्षाणि धर्म्मात्मा यज्ञेष्वेव न्ययोजयत् ॥२६
अक्रूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः ।
बह्वन्नदक्षिणाः सर्व्वे सर्व्वकामप्रदायिनः ॥२७
अथ दुर्य्योधनो राजा गत्वा स मिथिला प्रभुः ।
गदाशिक्षा ततो दिव्या बलदेवादवाप्तवान् ॥२८

मैं भाई होने के कारण से ही इस बात को सहन कर रहा हूँ, अच्छा तुम्हारा कल्याण हो, मैं तो अब यहाँ से जाता हूँ। मुझे अब द्वारकापुरी से, तुमसे और वृष्णियो से कुछ कार्य नही है ॥२२॥ इसके अनन्तर अरियो के मर्दन करने वाले बलरामजी ने मिथिला मे प्रवेश किया था और वहाँ पर सम्पूर्ण अभीष्ट उपहारो के द्वारा मिथिल ने उनका अभि-पूजन किया था ॥२३॥ इसी बीच में मतिमानो मे परमश्रेष्ठ वभ्रु ने समस्त अनेक रूपो वाले निरर्गल क्रतुओं को किया था ॥२४॥ उस परम प्राज्ञ महायशस्वी गान्दी पुत्र ने स्यमन्तक लिये दीक्षामय-कवच मे रक्षार्थ प्रवेश किया था ॥२५॥ इसके अनन्तर अन्य रत्नो को और

अनेक धनों को साठ वर्ष पर्यन्त उस धर्म्मात्मा ने यज्ञों में ही नियोजित किया था ॥२०॥ उस महात्मा के वे यज्ञ अक्रूर यज्ञ हैं ऐसे ही विख्यात हुए थे। वे सभी यज्ञ बहुत अन्न और दक्षिणा वाले थे तथा सब कामनाओं के प्रदान करने वाले भी थे ॥२७॥ इसके अनन्तर राजा दुर्योधन ने मिथिला में जाकर परम दिव्य गदा चलाने की शिक्षा श्रीबलदेवजी से ग्रहण की थी ॥२८॥

सम्प्रसाद्य ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः ।
आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥२६
अक्रूरश्चान्धकैः सार्द्धमायातः पुरुषर्षभः ।
हत्वा सत्राजित सुप्त सहबन्धु महाबलः ॥३०
ज्ञातिभेदभयात्कृष्णस्तमुपेक्षितवास्तदा ।
अपयाते तदाक्रूरे नावपत्पाकशासनः ॥३१
अनावृष्ट्यो तदा राष्ट्रमभवद्बहुधा कृशम् ।
तत. प्रसादयामासुरक्रूर कुकुरान्धकाः ॥३२
पुनर्द्वारवती प्राप्ते तस्मिन् दानपतौ तत. ।
प्रववर्ष सहस्राक्ष. कक्षे जलनिधेस्तदा ॥३३
कन्या च वासुदेवाय स्वसार शीलसम्मताम् ।
अक्रूरः प्रददौ धीमान् प्रीत्यर्थं मुनिसत्तमाः ॥३४
अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगत मणिम् ।
सभामध्यगत. प्राह तमक्रूर जनार्द्दन. ॥३५

इसके पश्चात् वृष्णि और अन्धक महारथियों के द्वारा तथा महात्मा श्रीकृष्ण के द्वारा भली-भाँति प्रसन्न करके श्रीबलराम को पुन. द्वारकापुरी में ले आया गया था ॥२९॥ पुरुषों में श्रेष्ठ अक्रूर अन्धकों के साथ आये थे और यह महान् बलवान सोते हुए सहबन्धु सत्राजित् को हनन करके ही समागत हुए थे। उस समय में ज्ञाति के भेद के भय से श्रीकृष्ण ने उसकी उपेक्षा करदी थी। उस अक्रूर के उस समय में अपयात हो जाने पर पाक शासन (इन्द्र देव) ने वर्षा नहीं की थी ॥३०-३१॥ उस समय में अनावृष्टियाँ हुई और सम्पूर्ण राष्ट्र बहुधा कृश हो गया था।

तब तो कुकुरान्धकों ने अक्रूर को प्रसन्न किया था ॥३२॥ उस दानपति के पुनः द्वारका मे प्राप्त होने पर इन्द्रदेव ने वर्षा की थी और उस समय मे जल निधि के कक्ष मे वर्षा हुई थी ॥३३॥ हे मुनि सत्तमो ! उस बुद्धिमान अक्रूर ने प्रीति के लिये शील से सम्मत अपनी बहिन को वासुदेव के लिये समर्पित की थी ॥३४॥ इसके उपरान्त श्रीकृष्ण ने योग के द्वारा बभ्रु के पास रहने वाली मणि का ज्ञान प्राप्त करके सभा के मध्य में स्थित होकर जनार्दन ने उस अक्रूर से कहा था ॥३५॥

यत्तद्रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं विभो।
तत्प्रयच्छ च मानार्ह मयि मानार्य्यकं कृथाः ॥३६
पष्टिवर्षगते काले यो रोपोऽभून्ममानघ।
स संरूढोऽसकृत् प्राप्तस्ततः कालात्ययो महान् ॥३७
स ततः कृष्णवचनात् सर्व्वसात्वतसंसदि।
प्रददौ तं मणिं बभ्रुरक्लेशेन महामतिः ॥३८
ततस्तमार्जवात् प्राप्तं बभ्रोर्हस्तादरिन्दमः।
ददौ हृष्टमनाः कृष्णस्तं मणिं बभ्रवे पुनः ॥३९
स कृष्णहस्तात् सम्प्राप्तं मणिरत्नं स्यमन्तकम्।
आबध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव ॥४०

श्रीकृष्ण भगवान ने कहा—हे प्रभो ! जो मणियों में परम श्रेष्ठ रत्नवर है वह तुम्हारे हस्तगत है। हे मनार्ह ! उसको आप दे दीजिए और मेरे प्रति अनार्य कृत्य मत करिए ॥ ६॥ हे अनघ ! साठ वर्ष के काल के व्यतीत होने पर जो रोप मुझे हुआ था वह बारम्बार सरूढ हो गया है और तबसे बहुत काल का अत्यय हो चुका है ॥३७॥ इसके पश्चात् समस्त सात्वतो की सभा मे श्रीकृष्ण के इन वचनों से महान मतिमान बभ्रु ने बिना ही किसी क्लेश के उस मणि को दे दिया था ॥३८॥ इसके अनन्तर अरियो के दमन करने वाले श्रीकृष्ण ने सरलता के साथ उस बभ्रु के हाथ से प्राप्त हुई उस मणि को श्रीकृष्ण ने परम प्रसन्न मन वाले होकर पुनः बभ्रु को प्रदान कर दी थी। उस

गान्दिनी पुत्र ने श्रीकृष्ण के हाथ से सम्प्राप्त हुई उस मणि स्यमन्तक को बाँधकर वह अंशुमान की तरह सुशोभित हो गया था ॥३९-४०॥

---

## १५—भूर्भुव.स्वरादिलोकवर्णन

कथित भवता सर्व्वमस्माक सकल तथा ।
भुवर्लोकादिकाँल्लाकान् श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥१
तथैव ग्रहसस्थान प्रमाणानि यथा तथा ।
समाचक्ष्व महाभाग यथावल्लोमहर्षण ॥२
रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते ।
ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता ॥३
यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डला ।
नभस्तावत्प्रमाण हि विस्तारपरिमण्डलम् ॥४
भूमेर्योजनलक्षे तु सौर विप्रास्तु मण्डलम् ।
लक्षे दिवाकराच्चापि मण्डल शशिन स्थितम् ॥५
पूर्व्वे शतसहस्रे तु योजनाना निशाकरात् ।
नक्षत्रमण्डल कृत्स्नमुपरिष्टात् प्रकाशते ॥६
द्विलक्षे चोत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात् ।
तावत् प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः ॥७

मुनिगण ने कहा—हे श्री लोमहर्षण जी ! आपने हमारे सामने सभी कुछ सम्पूर्ण वर्णित करके बता दिया है। अब हम लोग भुवर्लोकादिक समस्त लोकों को श्रवण करने की इच्छा रखते हैं। उसी भाँति ग्रहों का सस्थान तथा उनके प्रमाण जो भी जिस भाँति हैं हे महाभाग ! आप इस समय में ठीक २ वर्णन कीजिए ॥१-२॥ श्री लोमहर्षण जी ने कहा—सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से जितना भाग अवभासित हुआ करता है जिसमें समुद्र-पर्वत और नदियाँ भी हैं उतनी ही

यह पृथिवी कही गयी है ॥३॥ विस्तार के परिमण्डल वाली जितने प्रमाण से युक्त यह पृथिवी है नभ भी उतने प्रमाण से संयुत विस्तार परिमण्डल वाला होता है ॥४॥ हे विप्रगण ! भूमि के एक लक्ष योजन मे सौर मण्डल है। उस दिवाकर से भी लक्ष योजन में चन्द्र का मण्डल स्थित होता है ॥५॥ निशाकर से एक सौ सहस्र योजनो के पूर्व मे ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल प्रकाशित हुआ करता है ॥६॥ हे विप्रो ! इस नक्षत्र मण्डल से दो लक्ष योजन उत्तर मे बुध है। इस बुध के उतने ही प्रमाण भाग मे शुक्र स्थित रहा करता है ॥७॥

अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः।
लक्षद्वयेन भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥८
सौरिर्वृहस्पतेरूर्द्ध्वं द्विलक्षे समवस्थितः।
सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमेकं द्विजोत्तमाः ॥९
ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूर्द्ध्वं व्यवस्थितः।
मेढीभतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः ॥१०
त्रैलोक्यमेतत् कथितं संक्षेपेण द्विजोत्तमाः।
इज्याफलस्य भूरेषा इज्या चात्र प्रतिष्ठिता ॥११
ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः।
एकयोजनकोटी तु महर्लोको विधीयते ॥१२
द्वे कोट्यौ तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः।
सनन्दनाद्याः कथिता विप्राश्चामलचेतसः ॥१३
चतुर्गुणोत्तरं चोर्द्ध्वं जनलोकात्तपः स्मृतम्।
वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता देहविवर्जिताः ॥१४

अङ्गारक ( मङ्गल ) भी उतने ही प्रमाण की शुक्र की दूरी पर व्यवस्थित रहा करता है। भौम में दो लाख योजन की दूरी पर देवो के पुरोहित ( वृहस्पति ) स्थित रहा करते हैं ॥८॥ सौरि अर्थात् सूर्यदेव के पुत्र शनि वृहस्पति से भी ऊपर दो लाख योजन की दूरी पर अवस्थित रहा करता है। हे द्विजोत्तमो ! सप्तर्षियो का मण्डल उस शनि से एक लक्ष योजन के फासले पर रहा करता है। जो ऋषियो के एक सौ सहस्र

योजन ऊपर के भाग मे व्यवस्थित है। इस सम्पूर्ण ज्योतिश्चक्र का मेढी-भूत ध्रुव होता है ॥९-१०॥ हे द्विजगण! यह त्रैलोक्य का वर्णन मैंने अत्यन्त ही संक्षेप से कर दिया है। यह भू इज्या फल की है और यहाँ पर इज्या ही प्रतिष्ठित है ॥११॥ इस ध्रुव से ऊपर महर्लोक है जहाँ पर वे कल्प के निवास करने वाले रहा करते हैं। एक करोड योजन का विस्तार महर्लोक का कहा जाता है ॥१२॥ दो करोड योजन का विस्तार वाला जनलोक होता है जहाँ पर वे ब्रह्माजी के पुत्र निवास किया करते हैं। हे विप्रो! वे अमलचित्त वाले सनन्दन आदि कहे गये हैं ॥१३॥ चौगुने प्रमाण के विस्तार वाला ऊपर के भाग मे इस जनलोक से तपोलोक कहा गया है जहाँ पर वे वैराज देव स्थित रहा करते हैं जो देह से रहित होते हैं ॥१४॥

षड्गुणेन तपोलोकात् सत्यलोको विराजते।
अपुनर्मारक यत्र सिद्धादिमुनिसेवितम् ॥१५
पादगम्य तु यत् किञ्चिद्वस्त्वस्ति पृथिवीमयम्।
स भूर्लोकः समाख्यातो विस्तारोऽस्य मयोदितः ॥१६
भूमिसूर्य्यान्तर यत्तु सिद्धादिमुनिसेवितम्।
भुवर्लोकस्तु सोऽप्युक्तो द्वितीयो मुनिसत्तमाः ॥१७
ध्रुवसूर्य्यान्तर यत्तु नियुतानि चतुर्दश।
स्वर्लोकः सोऽपि कथितो लोकसस्थानचिन्तकैः ॥१८
त्रैलोक्यमेतत् कृतक विप्रैश्च परिपठ्यते।
जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृतक त्रयम् ॥१९
कृतकाकृतको मध्ये महर्लोक इति स्मृतः।
शून्यो भवति कल्पान्ते योऽन्त न च विनश्यति ॥२०
एते सप्त महालोका मया वः कथिता द्विजाः।
पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्यैप विस्तरः ॥२१

तपोलोक का जितना विस्तार बताया गया है उससे छैगुना प्रमाण वाला तपोलोक से आगे ऊपर सत्यलोक है जहाँ अपुनर्मारक है और जो सिद्ध मुनि आदि के द्वारा सेवित होता है ॥१५॥ जो कुछ भी पैरों से

गमन करने के योग्य वस्तु है वह सब पृथिवी मय होती है। वही भूलोक कहा गया है और इसका विस्तार मैंने बता दिया है ॥१६॥ इस भूमि और सूर्य का जो अन्तर है वह सिद्धों और मुनियों के द्वारा सेवित होता है। हे मुनिश्रेष्ठो ! वह दूसरा भी भुवर्लोक कहा गया है ॥१७॥ ध्रुव और सूर्य का जो अन्तर है वह चौदह नियुत होता है। लोकों के संस्थानों के चिन्तन करने वालों ने ब्रह्म को स्वर्लोक भी कहा है ॥१८॥ यह पूर्ण त्रैलोक्य जिसमें भू-भुव और मह ये आते हैं कृतक विप्रों के द्वारा पढ़ा जाया करता है। जन तप और ये तीनों लोक अकृतक बताये गये हैं ॥१९॥ कृतक और अकृतक के मध्य में जो लोक है वह महर्लोक है जो कल्प के अन्त में शून्य हो जाता है उसका अन्त नहीं है और न वह विनष्ट ही होता है ॥२०॥ हे द्विजो ! ये सात महालोक मैंने बता दिये हैं। इसी प्रकार से नीचे में पाताल लोक भी सात ही हुआ करते हैं उनके नाम अनल-वितल-सुतल-तलातल-रसातल-महातल और पाताल ये ब्रह्माण्ड का विस्तार है ॥२१॥

एतदण्डकटाहेन तिर्य्यगूर्द्ध्वमधस्तथा ।
कपित्थस्य यथा वीज सर्व्वतो वै समावृतम् ॥२२
दशोत्तरेण पयसा द्विजाश्चाण्डञ्च तद्वृतम् ।
स चाम्बुपरिवारोऽसौ वह्निना वेष्टितो बहिः ॥२३
वह्निस्तु वायुना वायुर्विप्रास्तु नभसावृतः ।
आकाशोऽपि मुनिश्रेष्ठा महता परिवेष्टितः ॥२४
दशोत्तराण्यशेषाणि विप्राश्चैतानि सप्त वै ।
महान्तञ्च समावृत्य प्रधान समवस्थितम् ॥२५
अनन्तस्य न तस्यान्तः सस्यान चापि विद्यते ।
तदनन्तमसस्यात प्रमाणेनापि वै यतः ॥२६
हेतुभूतमशेषस्य प्रकृतिः सा परा द्विजाः ।
अण्डानान्तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च ॥२७
ईदृशाना तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च ।
दारुण्यग्निर्यथा तैल तिले तद्वत् पुमानिह ॥२८

यह सम्पूर्ण अण्डकटाह के द्वारा तिरछा-ऊपर नीचे जिस प्रकार से कपित्थ का बीज होता है उसी भाँति सब ओर से समावृत्त होता है ॥२२॥ हे द्विजगण ! यह दशोत्तर पय से आण्ड आवृत्त होता है। यह अम्बु परिवार वाला होता है और वह्नि से वेष्टित हुआ करता है ॥२३॥ यह वह्नि वायु से आवृत्त होता है तथा हे द्विजगण ! यह वायु नभ से समावृत है। हे मुनिगण ! यह नभ भी महत् से आवृत होता है अर्थात् महत् तत्त्व उसके सब ओर परिवेष्टित होकर रहता है ॥२४॥ इन समस्त दशोत्तर हे विप्रो ! ये सात हैं उन सबको और महातत्त्व को समावृत करके प्रधान समवस्थित रहा करता है ॥२५॥ यह अनन्त है और उसकी कोई सख्या भी नही है। क्योकि यह प्रमाण से भी अनन्त और असख्यात है। यह सम्पूर्ण का हेतुभूत है हे द्विजो ! वह परा प्रकृति है। जिनका अन्त होता है उन अन्तो के सहस्रो और सहस्रो अयुत होते हैं ॥२६-२७॥ इस तरह रहने वाले वहाँ सैकडो करोडो के भी करोड़ हैं। जिस तरह से काष्ठ मे अग्नि और तिलो मे तैल रहा करता है ठीक उसी भाँति यहाँ पर पुमान् रहते है ॥२८॥

प्रधानेऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मनिवेदनः।
प्रधनञ्च पुमाश्चैव सर्व्वभूतानुभूतया ॥२९
विष्णुशक्त्या द्विजश्रेष्ठा धृतो सश्रयधर्म्मिणो।
तयो. सैव पृथग्भावे कारण सश्रयस्य च ॥३०
क्षोभकारणभूता च सर्गकाले द्विजोत्तमा.।
यथा शैत्य जले वातो विभर्त्ति कणिकागतम् ॥३१
जगच्छक्तिस्तथा विष्णोः प्रधानपुरुषात्मकम्।
यथा च पादपो मूलस्कन्धशाखादिसयुत्तः ॥३२
आद्यबीजात् प्रभवति बीजान्यन्यानि वै ततः।
प्रभवन्ति ततस्तेभ्यो भवन्त्यन्ये परे द्रुमा. ॥३३
तेऽपि तल्लक्षणद्रव्यकारणानुगता द्विजाः।
एवमव्याकृतात् पूर्व्वं जायन्ते महदादयः ॥३४

विशेषान्तास्ततस्तेभ्यः सम्भवन्ति सुरादयः।
तेभ्यश्च पुत्रास्तेषां तु पुत्राणां परमे सुताः ॥३५

यह प्रधान में अवस्थित-व्यापक और चेतनात्म निवेदन वाला है। यह प्रधान और पुमान् समस्त भूतों के द्वारा अनुभव की गयी भगवान् विष्णु की शक्ति से हे द्विजश्रेष्ठो ! सश्रय धर्मवाले धारण किये गये हैं। उन दोनों के पृथग्भाव मे वही सश्रय का कारण होती है ॥२९-३०॥ हे द्विजगण ! और सर्ग के समय मे क्षोभ का कारण भूत होती है। जिस तरह से जल मे शीतलता होती है और वात कणिका जल को धारण किया करता है ठीक उसी प्रकार से भगवान् विष्णु की प्रधान और पुरुष के स्वरूप वाली इस जगत् की शक्ति हुआ करती है। जिस प्रकार से वृक्ष मूल-शाखा आदि से संयुत हुआ करता है ॥३१-३२॥ यह वृक्ष आदि में होने वाले बीज से ही उत्पन्न हुआ करता है और इसके पश्चात् इसमें आगे बड़ा हो जाने पर वैसे ही अन्य बीज भी हो जाया करते हैं और फिर उन्ही बीजो से आगे चलकर दूसरे अन्य द्रुमभी समुत्पन्न हो जाया करते हैं ॥३३॥ हे द्विजो ! और वेरी उसी लक्षण वाले द्रव्य के कारण के अनुगत होते हैं। इसी भाँति अव्याकृत से पूर्व में महदादि समुत्पन्न हुआ करते हैं ॥३४॥ ये सब विशेष के अन्त वाले हैं अर्थात् विशेष इनमे अन्तिम होता है उनमे ही सब सुर आदि समुत्पन्न हुआ करते हैं फिर उनके पुत्र उत्पन्न होते हैं और उन पुत्रों के भी परम पुत्र-पौत्रादि हुआ करते हैं ॥३५॥

बीजाद्वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरोः।
भूतानां भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा ॥३६
सन्निधानाद्यथाकाशकालाद्याः कारणं तरोः।
तथैवापरिणामेन विश्वस्य भगवान् हरिः ॥३७
व्रीहिबीजे यथा मूलं नाल पत्राङ्कुरौ तथा।
काण्डकोषास्तथा पुष्प क्षीरं तद्वच्च तण्डुलः ॥३८
तुषाः कणाश्च सन्तो वै यान्त्याविर्भावमात्मनः।
प्ररोहहेतुसामग्र्यमासाद्य मुनिसत्तमाः ॥३९

तथा कर्म्मस्वनेकेषु देवाद्यास्तनव· स्थिताः ।
विष्णुशक्ति समासाद्य प्ररोहमुपयान्ति वै ।।४०
स च विष्णुः पर ब्रह्म यतः सर्व्वमिद जगत् ।
जगच्च यो यत्र चेदं यस्मिन्विलयमेष्यति ।।४१
तद्ब्रह्म परम धाम सदसत् परम पदम् ।
यस्य सर्व्वमभेदेन जगदेतच्चराचरम् ।।४२
स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः ।
तस्मिन्नेव लयं सर्व्वं याति तत्र च तिष्ठति ।।४३
कर्त्ता क्रियाणा स च इज्यते क्रतुः,
स एव तत् कर्म्मफलञ्च यस्य यत् ।
युगादि यस्माच्च भवेदशेषतो-
हरेर्न किञ्चिद्व्यतिरिक्तमस्ति तत् ।।४४

जिस प्रकार से बीज से जब वृक्ष का प्ररोह होता है तो तरु का अपचय नही होता है उस प्रकार से भूतो के भूतो का सर्ग होने से अपचय नही हुआ करता है ।।३६।। जिस प्रकार से सन्निधान से तरु के प्रकाश वातादि कारण होते हैं ठीक उसी भाँति विश्व के अपरिणाम के होने से भगवान् श्री हरि कारण होते हैं ।।३७।। जिस तरह से व्रीहि के बीज मे उसका मूल-नाल-पत्र-अकुर-काण्ड-कोष-पुष्प-क्षीर आदि होते हैं उसी भाँति तण्डुल होता है ।।३८।। तुष और कण होते हुए अपने आपका आविर्भाव किया करते हैं । हे मुनिगण ! जिस समय बीज को सम्पूर्ण प्ररोह होने की सामग्री प्राप्त होती है तभी ऐसा होता है अर्थात् शनैः शनैः सभी का प्रादुर्भाव हो जाया करता है ।।३९।। उसी प्रकार से अनेक कर्मों मे देवादि के तनु स्थित होते है । जिस समय मे भगवान् विष्णु की शक्ति उनको प्राप्त हो जाती है तभी ये प्ररोह को प्राप्त हो जाया करते हैं ।।४०।। ये भगवान् श्री विष्णु ही परब्रह्म हैं जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् हुआ करता है । और यह जगत् और सम्पूर्ण विश्व जिसमे आकर विलय को प्राप्त हो जाया करता है । तात्पर्य यह है कि उसी भगवान् विष्णु से इस जगत् की उत्पत्ति होती है और उसी मे इसका

विलय भी हो जाया करता है ॥४१॥ वही ब्रह्म परम धाम है और सत् तथा असत् परम पद होता है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिसके अभेद से ही विद्यमान होता है ॥४२॥ वह ही मूल प्रकृति है और वही व्यक्त रूप वाला यह जगत् है। उसी में यह सम्पूर्ण लय को प्राप्त हो जाया करता है तथा उसी मे स्थित रहा करता है। तात्पर्य यह है कि यह सम्पूर्ण जगत् उसी परमब्रह्म भगवान् विष्णु का ही स्वरूप है ॥४३॥ समस्त क्रियाओं का वही कर्त्ता है—और वही क्रतु स्वरूप है जिसका यजन किया जाया करता है—वही उस कर्म का फल होता है जिससे ये सब युगादि हुआ करते हैं। श्री हरि भगवान् से व्यतिरिक्त अन्य कुछ भी नही है यह सभी कुछ उसी का स्वरूप होता है ॥४४॥



## १६—ध्रुवसंस्थिति निरूपण।

तारामयं भगवतः शिशुमाराकृतिः प्रभोः ॥१

दिवि रूपं हरेर्यन्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुवः।
तँप भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान् ग्रहान्।
भ्रमन्तमनु त यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥२

सूर्य्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैःसह।
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ॥३

शिशुमाराकृति प्रोक्तं यद्रूपं ज्योतिषां दिवि।
नारायणः परं धाम तस्याधारः स्वयं हृदि ॥४

उत्तानपादतनयस्तमाराध्य प्रजापतिम्।
स ताराशिशुमारस्य ध्रुवः पुच्छे व्यवस्थितः ॥५

आधारः शिशुमारस्य सर्व्वाध्यक्षो जनार्द्दनः।
ध्रुवस्य शिशुमारश्च ध्रुवे भानुर्व्यवस्थितः ॥६

तदाधार जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ।
येन विप्रा विधानेन तन्मे शृणुत साम्प्रतम् ॥७

श्रीलोम हर्षण जी ने कहा—उन्हीं प्रभु भगवान की यह तारामय शिशुमार आकृति है ॥१॥ दिवलोक मे यह उसी श्री हरि का रूप होता है और उसके पुच्छ मे ध्रुव की स्थिति है। यही स्वयं भ्रमण करता हुआ चन्द्र तथा आदित्य आदि समस्त ग्रहों को भ्रमण कराया करता है। भ्रमण करते हुए उसी के पीछे चन्द्र की भाँति ये सब नक्षत्र गमन किया करते हैं ॥२॥ सूर्य-चन्द्र-तारागण सब ग्रहों के साथ वाता-नीक मय बन्धो के द्वारा ध्रुव मे बद्ध होते हैं ॥३॥ दिविलोक में ज्यो-तियों का जो स्वरूप है वह शिशुमार की आकृति कहा गया है। भगवान् नारायण परम धाम है और उसका आधार स्वयं हृदय में होता है ॥४॥ राजा उत्तानपाद का जो पुत्र ध्रुव था उसने उसी प्रजापति की आराधना की थी और वह ध्रुवतारा शिशुमार के पुच्छ में व्यवस्थित रहता है ॥५॥ इस शिशुमार का आधार सबका स्वामी भग-वान जनार्दन होते हैं। यह शिशुमार ध्रुव का तथा उस ध्रुव मे भानु व्यवस्थित होता है ॥६॥ उसका आधार यह जगत है जिसमे देव-असुर और मानव सभी विद्यमान हैं। हे विप्रगण ! जिस विधान से इन सबकी स्थिति होती उसका अब आप लोग सब मुझसे श्रवण करिए ॥७॥

विवस्वानष्टभिर्मासैर्ग्रसत्यापो रसात्मिकाः ।
वर्षत्येषु ततश्चान्नमन्नादमखिलं जगत् ॥८
विवस्वानंशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतो जलम् ।
सोमं पुष्यत्यथेन्दुश्च वायुनाडीमयैर्दिवि ॥९
जलैर्विक्षिप्यतेऽभ्रेषु धूमाग्न्यनिलमूर्त्तिषु ।
न भ्रस्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान् यतः ॥१०
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ।
संस्कारं कालजनितं विप्राश्चासाद्य निर्म्मलाः ॥११

सरित्समुद्रा भौमास्तु यथापः प्राणिसम्भवाः ।
चतुष्प्रकारा भगवानादत्ते सविता द्विजाः ॥१२
आकाशगङ्गासलिलं तथाहृत्य गभस्तिमान् ।
अनभ्रगतमेवोर्व्यां सद्यः क्षिपति रश्मिभिः ॥१३
तस्य संस्पर्शनिर्धूतपापपङ्को द्विजोत्तमाः ।
न याति नरकं मर्त्यो दिव्यं स्नानं हि तत्स्मृतम् ॥१४

यह विवस्वान् (सूर्य) आठ मासों में जो रसात्मक जल है उसका ग्रसन किया करता है फिर यही इन पर जल की वृष्टि द्वारा अन्न की वर्षा किया करता है और उसी अन्न से यह सम्पूर्ण जगत निर्मित हुआ करता है ॥८॥ विवस्वान अपनी परम तीक्ष्ण किरणों के द्वारा जगत के जल को ग्रहण करा लिया करता है। यह सोम को पुष्ट किया करता है और वह इन्दुवायुनाड़ी मय दिवलोक में रहता है ॥९॥ धूम-अग्नि और अनिल मूर्त्ति वाले मेघों में जलों के द्वारा विक्षिप्यमाण किया जाता है जिस कारण से उनसे अभ्र जलों को नहीं गिराया करते हैं ॥१०॥ इनमें वर्त्तमान रहने वाले जल जब वायु के द्वारा समुदीरित होते हैं तभी नीचे गिरा करते हैं। हे विप्रगणो ! कालजनित संस्कार को प्राप्त करके ये निर्मल हो जाते हैं ॥११॥ हे द्विजगणो ! भगवान सविता चार प्रकार के जलों का आदान किया करते हैं—सरिता-समुद्र-भूमि पर होने वाले और प्राणियों से समुत्पन्न जल हैं ॥१२॥ गभस्तिमान (सूर्य) उसी भाँति आकाश गङ्गा के जल का आहरण करके उस अनभ्रगत को ही तुरन्त अपनी रश्मियों के द्वारा पृथ्वी पर क्षिप्त कर दिया करते हैं ॥१३॥ हे द्विजोत्तमो ! उसके भली-भाँति स्पर्श होने से जिसके पापों का कीच धुल गया है वह मनुष्य फिर नरकों में कभी भी गमन नहीं किया करता है क्योंकि वह परम दिव्य स्नान बताया जाता है ॥१४॥

दृष्टसूर्य्यं हि तद्वारि पतत्यभ्रैर्विना दिवः ।
आकाशगङ्गासलिलं तद्गोभिः क्षिप्यते रवेः ॥१५
कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु विषमेष्वम्बु यद्दिवः ।
दृष्ट्वार्कं पतितं ज्ञेयं तद्गाङ्गं दिग्गजोद्धृतम् ॥१६

युग्मर्क्षेषु तु यत्तोय पतत्यर्कोद्धृतं दिवः ।
तत्सूर्य्यरश्मिभिः सद्यः समादाय निरस्यते ॥१७

उभयं पुण्यमत्यर्थं नृणां पापहरं द्विजाः ।
आकाशगङ्गासलिलं दिव्यं स्नानं द्विजोत्तमाः ॥१८
यत्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारि तत् प्राणिनां द्विजाः ।
पुष्णात्योषधयः सर्व्वा जीवनायामृतं हि तत् ॥१९

तेन वृद्धिं परां नीतः सकलश्चौषधीगणः ।
साधकः फलपाकान्तः प्रजानान्तु प्रजायते ॥२०
तेन यज्ञान् यथाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रचक्षुषः ।
कुर्व्वतेऽहरहर्य्यैश्च देवानाप्यायन्ति ते ॥२१

जिसने सूर्य का दर्शन न प्राप्त किया है वह जल बिना ही मेघों के दिवलोक से गिरा करता है। वह आकाश गङ्गा का जल है जो रवि की किरणो के द्वारा प्रक्षिप्त हुआ करता है ॥१५॥ कृत्तिका आदि नक्षत्रो मे विषमो मे जो जलदिव से अर्क को देखकर पतित होता है उसको दिग्गजो के द्वारा उद्धृत गाङ्गजल ही समझना चाहिए ॥१६॥ युग्म नक्षत्रो मे जो जल दिवलोक से सूर्य के द्वारा उद्धृत नीचे गिरा करता है वह सूर्य की किरणो के द्वारा तुरन्त ही ग्रहण कर निरस्त हो जाया करता है ॥१७॥ हे द्विजो ! यह दोनो प्रकार का जल मनुष्यो के लिये परम पुण्यमय होता है। और पापो का हरण करने वाला हुआ करता है । हे द्विजो ! आकाश गङ्गा का जो जल होता है वह परम दिव्य स्नान बताया गया है। इस जल का बहुत बड़ा महत्व है ॥१८॥ हे द्विजगण ! जो मेघो के द्वारा जल छोड़ा जाया करता है वह प्राणियो की सब ओषधियो का पोषण किया करता है और वह जीवन के लिये अमृत हुआ करता है ॥१९॥ इससे सम्पूर्ण ओषधियो का समुदाय परमाधिक वृद्धि को प्राप्त हो गया था तथा प्रजाजनो का फल पाकान्त साधक हो जाता है ॥२०॥ उससे शास्त्रो के चक्षुओ वाले अर्थात् शास्त्रो के द्वारा अपना कर्त्तव्य मार्ग निर्णय करने वाले मनुष्य आये दिन यथा-कथित

यज्ञों को किया करते हैं और वे देवों को आप्यायित करते रहते हैं ॥२१॥

एवं यज्ञाश्च वेदाश्च वर्णाश्च द्विजपूर्व्वकाः ।
सर्व्वदेवनिकायाश्च पशुभूतगणाश्च ये ॥२२
वृष्ट्या धृतमिदं सर्व्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तमाः ॥२३
आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तमाः ।
ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणाश्रयः ॥२४
हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः ।
बिभर्त्ता सर्व्वभूतानामादिभूतः सनातनः ॥२५
एवं मया मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माण्डं समुदाहृतम् ।
भूसमुद्रादिभिर्युक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥२६

इस प्रकार से यज्ञ-वेद-द्विज जिनमें प्रमुख हैं ऐसे वर्ण तथा सब देवों के निकाय और पशुभूतगण वृष्टि के ही द्वारा यह सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत धारण किया गया है। हे मुनिश्रेष्ठो ! वह वृष्टि भी सविता के ही निष्पादित की जाया करती है ॥२२॥२३॥ हे मुनिवरोत्तमो ! उस वृष्टि के कर्त्ता सविता का आधारभूत ध्रुव है। इस ध्रुव का आधार यह शिशुमारचक्र होता है और वह शिशुमार भगवान नारायण का आश्रित है ॥२४॥ उस शिशुमार के हृदय में नारायण संस्थित रहा करते हैं। वे भगवान नारायण समस्त भूतों के विशेष भरण करने वाले आदिभूत एवं सनातन हैं ॥२५॥ इस प्रकार से हे मुनिगणो ! मैंने भूमि और समुद्र आदि से युक्त यह पूर्ण ब्रह्माण्ड वर्णित कर दिया है अब आप लोग यह बताओ कि अन्य क्या मुझसे श्रवण करना चाहते हैं ? ॥२६॥

—:※:—

## १७—सर्वतीर्थमाहात्म्यवर्णन ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ श्रोतुं नो वर्त्तते मनः ॥१
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्च व सुसयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥२
मनो विशुद्धं पुरुपस्य तीर्थ,
वाचां तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च ।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि,
स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति ॥३
चित्तमन्तर्गत दुष्ट तीर्थस्नानैर्न शुध्यति ।
शतशोऽपि जलैर्धौत सुराभाण्डमिवाशुचि ॥४
न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः ।
दुष्टाशय दम्भरुचि पुनन्ति व्युत्थितेन्द्रियम् ॥५
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र यत्र वसेन्नरः ।
तत्र तत्र कुरुक्षेत्र प्रयाग पुष्कर तथा ॥६
तस्माच्छृणुध्व वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च ।
सक्षेपेण मुनिश्रेष्ठाः पृथिव्या यानि कानि वै ॥७

मुनिगण ने कहा—हे धर्म के ज्ञाता ! इस भूमण्डल मे जो भी तीर्थ तथा परम पुण्यमय स्थल हैं उनका अब आप वर्णन करने के योग्य हैं क्योकि हमारा मन उनके श्रवण करने का बहुत इच्छुक है ॥१॥ श्री लोमहर्षण मुनि ने कहा—सभी तीर्थ फल देने वाले होते हैं—इसमे कुछभी सन्देह नहीं है किन्तु जिस मनुष्य के हाथ-पैर और मन सुसयत हुआ करते हैं तथा जिसमे विद्या-तप और कीर्ति विद्यमान होते हैं वही मनुष्य तीर्थों के फल का उपभोग किया करता है । तीर्थों के फल पाने के लिये सुसयत होने की परमावश्यकता है ॥२॥ पुरुष का विशुद्ध मन ही एक महान तीर्थ है । मनुष्य की वाणी का निग्रह और सय

इन्द्रियों का निग्रह रखना ये भी मानव के शरीर में ही रहने वाले तीर्थ होते हैं तथा ये स्वर्ग के मार्ग को बतला देने वाले होते हैं ॥३॥ अन्दर शरीर मे रहने वाला चित्त ही यदि दुष्ट है अर्थात् अनेक दोषों से युक्त है तो वह तीर्थों के स्नान करने से कभी भी शुद्ध नहीं हुआ करता है। जिस तरह से सैकड़ों बार जल से धोया हुआ भी सुरा का पात्र अशुचि ही रहा करता है और कभी भी शुद्ध एवं पवित्र नहीं हो सकता है वैसे ही दोष युक्त मन वाला मनुष्य तीर्थों के स्नान से कभी पवित्र नहीं होता है ॥४॥ जिस पुरुष की दूषित भावनाऐं होती है जो दण्ड में रुचि रखता है तथा जिसकी इन्द्रियाँ अविजित होती हैं उस मनुष्य को तीर्थ-दान-व्रत और आश्रम कभी भी विशुद्ध नहीं कर सकते हैं। अपनी इन्द्रियों को वश में करके मनुष्य जहाँ २ पर भी निवास किया करता है वहाँ २ पर ही कुरुक्षेत्र प्रयाग और पुष्कर हो जाया करता है। शुद्धि के लिये अपनी इन्द्रियों का हनन करना परमावश्यक होता है ॥५-६॥ हे श्रेष्ठ मुनिगणो ! इसलिये क्योंकि आप लोग तीर्थों के शुभ नाम जानना चाहते हैं मैं तीर्थों तथा पुण्य स्थलों को संक्षेप के साथ बतलाऊँगा। आप लोग श्रवण करिये जो भी इस पृथिवी पर विद्यमान हैं ॥७॥

विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि ।
प्रथम पुष्कर तीर्थ नैमिषारण्यमेव च ॥८

प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्म्मारण्य द्विजोत्तमाः ।
धेनुक चम्पकारण्यं सैन्धवारण्यमेव च ॥९

पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च ।
गया प्रभास श्रीतीर्थं दिव्य कनखलं तथा ॥१०

भृगुतुङ्गं हिरण्याक्ष भीमारण्यं कुशस्थलीम् ।
लोहाकुलं सकेदारं मन्दरारण्यमेव च ॥११

महाबल कोटितीर्थं सर्व्वपापहरं तथा ।
रूपतीर्थ शूकरव चक्रतीर्थं महाफलम् ॥१२

योगतीर्थं सोमतीर्थं तीर्थं साहोटकं तथा ।
तीर्थं कोकामुखं पुण्यं बदरीशैलमेव च ॥१३
सोमतीर्थं तुङ्गकूटं तीर्थं स्कन्दाश्रमं तथा ।
कोटितीर्थञ्चाग्निपद तीर्थं पञ्चशिख तथा ॥१४

यदि कोई भी विस्तार के साथ तीर्थों के और शुद्ध आयतनों को बतलाने का प्रयत्न करे तो सैकड़ों वर्षों में भी उनको नहीं बतला सकता है। सर्व प्रथम पुष्कर तीर्थ है—तथा नैमिषारण्य है ॥८॥ हे द्विजोत्तम ! प्रयागराज को बतलाता हूँ। धर्मारण्य तीर्थ है। धेनुक-चम्पकारण्य है तथा सैन्धवारण्य तीर्थ है ॥९॥ परम पुण्यमय मे तीर्थ मगधारण्य और दण्डकारण्य तीर्थ हैं। गया प्रभास श्रीतीर्थ तथा दिव्य कनखल तीर्थ हैं ॥१०॥ भृगुतुङ्ग-हिरण्याक्ष-भीमारण्य-कुशस्थली-लोहाकुल-सकेदार- और मन्दरारण्य तीर्थ हैं॥ ११॥ महाबल-कोटितीर्थ तथा सर्वपापहर तीर्थ हैं। रूपतीर्थ-शूकरव और महा फलचक्र तीर्थ हैं ॥१२॥ योगतीर्थ-सोम तीर्थ तथा साहोटक तीर्थ है,परम पुण्य कोकमुख तथा बदरीशैल तीर्थ हैं ॥१३॥ सोमतीर्थ-तुङ्गकूट तथा स्कन्दाश्रमतीर्थ है । कोटितीर्थ-अग्निपदतीर्थ और पञ्चशिख तीर्थ हैं है१५॥

धर्मोद्भव कोटितीर्थं तीर्थं बाधप्रमोचनम् ।
गङ्गाद्वार पञ्चकूट मध्यकेसरमेव च ॥१५
चक्रप्रभ मतङ्गञ्च कुशदत्तञ्च विश्रुतम् ।
दंष्ट्राकुण्ड विष्णुतीर्थं सार्व्वकामिकमेव च ॥१६
तीर्थं मत्स्यतिलञ्चैव बदरी सुप्रभ तथा ।
ब्रह्मकुण्ड वह्निकुण्ड तीर्थं सत्यपद तथा ॥१७
चतु.स्रोतश्चतु.शृङ्ग शैल द्वादशधारकम् ।
मानस स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्ड तथोर्व्वशी ॥१८
लोकपाल मनुवर सोमाह्व शैलमेव च ।
सदाप्रभ मेरुकुण्ड तीर्थं सोमाभिषेचनम् ॥१९
महास्रोत कोटरक पञ्चधार त्रिधारकम् ।
सप्तधारैकधारञ्च तीर्थं चामरकण्टकम् ॥२०

शालग्रामं चक्रतीर्थं कोटिद्रुममनुत्तमम् ।
विल्वप्रभं देवह्लदं तीर्थं विष्णुह्लदं तथा ॥२१

धर्मोद्भव-कोटितीर्थं और बाध प्रमोचन नाम वाला एक तीर्थ है। गङ्गाद्वार-पञ्चकूट और मध्य केशर तीर्थ है ॥१५॥ चक्रप्रभ-मतङ्ग-कुशदत्त परम विश्रुत तीर्थ होता है। दष्ट्राकुण्ड विष्णुतीर्थ और सार्वकामिक तीर्थ है ॥१६॥ मत्स्यतिल तीर्थ है और बदरी सुप्रभ तीर्थ है। ब्रह्मकुण्ड वह्निकुण्ड तथा सत्यपद तीर्थ है ॥१७॥ चतुःस्रोत-चतुश्शृङ्ग तथा द्वादश और धारक तीर्थ है। मानस-स्थूलश्शृङ्ग-स्थूलदण्ड और उर्वशी तीर्थ है ॥१८॥ लोकपाल-मनुवर-सोमाह्वशैल-सदाप्रभ-मेरुकुण्ड और सोमाभिषेन तीर्थ हैं ॥१९॥ महास्रोत-कोटरक-पञ्चधार त्रिधारंव-सप्तधार-एकधार और अमर कण्टक तीर्थ हैं ॥२०॥ शालग्राम-चक्रतीर्थ-सर्वोत्तम कोटिद्रुम-विल्व प्रभ तथा विष्णुह्लद नाम वाले तीर्थ हैं ॥२१॥

शङ्खप्रभं देवकुण्ड तीर्थं वज्रायुधं तथा ।
अग्निप्रपञ्च पुन्नाग देवप्रभमनुत्तमम् ॥२२
विद्याधर सगान्धर्व्वं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो ह्लदम् ।
सातीर्थं लोकपालाख्य मणिपूरगिरिं तथा ॥ ३
तीर्थं पञ्चह्लदञ्चैव पुण्यं पिण्डारक तथा ।
मलय गोप्रभावञ्च गोवरं वटमूलकम् ॥२४
स्नानदण्ड प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपद तथा ।
कन्याश्रम वायुकुण्ड जम्बूमार्गं तथोत्तमम् ॥२५
गभस्तितीर्थञ्च तथा ययातिपतन शुचि ।
कोटितीर्थं भद्रवट महाकालवन तथा ॥२६
नर्म्मदातीर्थमपर तीर्थवज्रं तथार्व्वुदम् ।
पिङ्गुतीर्थं सवासिष्ठं तीर्थं च पृथुसङ्गमम् ॥२७
तीर्थं दौर्व्वासिक नाम तथा पिञ्जरकं शुभम् ।
ऋषितीर्थं ब्रह्मतुङ्गं वसुतीर्थं कुमारिकम् ॥२८

शङ्खप्रभ-देवकुण्ड-वज्रायुध-अग्निप्रभ-पुन्नाग-सर्वोत्तम देवप्रभ-विद्याधर सगान्धर्व श्री तीर्थ-ब्रह्महृद—सप्तीर्थ—लोकपालाख्य-मणिपूरगिरि—पञ्चह्लद

तीर्थ तथा पुष्प और निन्टारक तीर्थ हैं। मलय-गोप्रभाव-गोबर-वटमूलक स्नानदण्ड-प्रयाग-गुह्य तथा विष्णुपद-कन्याश्रम वायुकुण्ड तथा सर्वोत्तम जम्बूमार्ग तीर्थ हैं ॥२२-२५॥ गनन्नि तीर्थ-दशाश्वमेध भुवि कोटितीर्थ भद्रवट तथा महाकालवन तीर्थ हैं ॥२६॥ ऊपर नर्मदा तीर्थ-तीर्थवज्र-अर्बुद-पिङ्गतीर्थ वशिष्ठ और पृथु सङ्गमतीर्थ हैं ॥२७॥ दौर्वासिक नामक एक तीर्थ है तथा शुभ पिञ्जरक तीर्थ है। ऋषितीर्थ-ब्रह्मतुङ्ग-वसु तीर्थ और कुमारिक तीर्थ हैं ॥२८॥

शक्रतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च ।
पैतामहञ्च विमलं रुद्रपादं तथोत्तमम् ॥२९
मणिमत्तञ्च कामाख्यं कृष्णतीर्थं कुशाविलम् ।
यजनं याजनञ्चैव तथैव ब्रह्मवालुकम् ॥३०
पुष्पन्यासं पुण्डरीकं मणिपूरं तथोत्तरम् ।
दीर्घसत्रं हयपदं तीर्थं चानशनं तथा ॥३१
गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेदं नर्मदोद्भेदमेव च ।
वस्त्रापदं दारुवनं छायारोहणमेव च ॥३२
सिद्धेश्वरं मित्रवलं कालिकाश्रममेव च ।
वटावटं भद्रवटं कौशाम्बी च दिवाकरम् ॥३३
द्वीपं सारस्वतञ्चैव विजयं कामदं तथा ।
रुद्रकोटिं सुमनसं तीर्थं सद्रावनामितम् ॥३४
स्यमन्तपञ्चकं तीर्थं ब्रह्मतीर्थं सुदर्शनम् ।
सततं पृथिवीसर्व्वं पारिप्लवपृथूदकौ ॥३५

शक्रतीर्थ-पञ्चनद रेणुकातीर्थ पैतामह-विमल तथा उत्तम रुद्रपाद-मणिमत्त-कामाख्य-कृष्णतीर्थ-कुशाविल-यजन-याजन तथा ब्रह्मवालुक तीर्थ हैं ॥२९-३०॥ पुष्पन्यास पुण्डरीक-मणिपुर-दीर्घसत्र हयपद तीर्थ और अनशन नाम वाला तीर्थ है ॥३१॥ गङ्गोद्भेद-शिवोद्भेद-नर्मदोद्भेद-वस्त्रापद- दारुवन-छायारोहण -सिद्धेश्वर मित्रवल- कालिकाश्रम-वटावट-भद्रवट-कौशाम्बी और दिवाकर ये सभी तीर्थ हैं ॥३२-३३॥ द्वीप-सारस्वत-विजय-कामद रुद्रकोटि सुमनस और सद्रावनामित नामक तीर्थ हैं ॥३४॥

स्यमन्त पञ्चकतीर्थ-ब्रह्मतीर्थ-सुदर्शन-सतत पृथिवी सर्व्व तथा परिप्लव एवं पृथूदक तीर्थ हैं ॥३५॥

दशाश्वमेधिकं तीर्थं सर्पिजं विषयान्तिकम् ।
कोटितीर्थं पञ्चनदं वाराहं यक्षिणीह्लदम् ॥३६
पुण्डरोक सोमतीर्थं मुञ्जवाट तथोत्तमम् ।
वदरीवनमासीनं रत्नमूलकमेव च ॥३७
लोकद्वार पञ्चतीर्थं कपिलातीर्थमेव च ।
सूर्य्यतोर्थ शङ्खिनी च गवा भवनमेव च ॥३८
तीर्थञ्च यक्षराजस्य ब्रह्मावर्त्तं सुतीर्थकम् ।
कामेश्वर मातृतीर्थं तीर्थं शीतवनं तथा ॥३९
स्नानलोमापहञ्चैव माससंसरक तथा ।
दशाश्वमेध केदारं ब्रह्मोदुम्बरमेव च ॥४०
सप्तर्षिकुण्डञ्च तथा तीर्थं देव्याः सुजम्बुकम् ।
ईहास्पद कोटिकूटं किन्दान किञ्जप तथा ॥४१
कारण्डव चावेध्यञ्च त्रिविष्टपमथापरम् ।
पाणिखात मिश्रकञ्च मधुवटमनोजवौ ॥४२

दशाश्वमेधिक तीर्थ, सर्पिज-विषयान्तिक कोटितीर्थ, पञ्चनद-यक्षिणीह्लद-पुण्डरीक-सोमतीर्थ उत्तम मञ्जुवाट-वदरीवन-रत्नमूलक-लोकद्वार-पञ्चतीर्थ-कपिलातीर्थ सूर्यतीर्थ-शङ्खिनी-और गवा भवन तीर्थ हैं ॥३६-३८॥ यक्षराज का तीर्थ-ब्रह्मावर्त्त-सुतीर्थ-कामेश्वर-मातृतीर्थ-शीतवन-स्ननानलोमापह-माससंसरक-दशाश्वमेध-केदार-ब्रह्मादुम्बर तीर्थ हैं ॥३९-४०॥ सप्तर्षिकुण्ड नाम वाला तीर्थ तथा देवी का सुजम्बुकतीर्थ-ईहास्पद तीर्थ-कोटिकूट-किन्दान-किञ्जप तीर्थ हैं ॥४१॥ कारण्डव-अवेध्य तथा अपर त्रिविष्टप तीर्थ-पाणिखात-मिश्रक-मधुवट तथा मनोजव तीर्थ है ॥४२॥

कौशिकी देवतीर्थञ्च तीर्थञ्च ऋणमोचनम् ।
दिव्यञ्च नृगधूमास्य तीर्थं विष्णुपद तथा ॥४३

अमराणां ह्रदं पुण्यं कोटितीर्थं तथापरम् ।
श्रीकुञ्जं शालितीर्थञ्च नैमिशेयञ्च विश्रुतम् ॥४४
ब्रह्मस्थान सोमतीर्थं कन्यातीर्थं तथैव च ।
ब्रह्मतीर्थं मनस्तीर्थं तीर्थं वै कारुपावनम् ॥४५
सौगन्धिकवनञ्चैव मणितीर्थं सरस्वती ।
ईशानतीर्थं प्रवरं पावनं पाञ्चयज्ञिकम् ॥४६
त्रिशूलधारं माहेन्द्र देवस्थानं कृतालयम् ।
शाकम्भरी देवतीर्थं सुवर्णाक्षं कलिं ह्रदम् ॥४७
क्षीरस्रव विरूपाक्ष भृगुतीर्थं कुशोद्भवम् ।
ब्रह्मतीर्थं ब्रह्मयोनि नीलपर्व्वतमेव च ॥४८
कुजाम्रक भद्रवट वसिष्ठपदमेव च ।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं कालिकाश्रममेव च ॥४९

कौशिकी-देवतीर्थ-ऋणमोचन तीर्थ-दिव्य-नृग धूमास्य तीर्थ-विष्णुपद तीर्थ है ॥४०॥ अमरो का अर्थात् देवो का पुण्य ह्रद-तथा अपर कोटि तीर्थ श्रीकुञ्ज-शालितीर्थ और परम प्रसिद्ध नैमिषेय तीर्थ है ॥४४॥ ब्रह्मस्थान-सोमतीर्थ-कन्या तीर्थ-ब्रह्मतीर्थ मनस्तीर्थ-कारुपावन तीर्थ-सौगन्धिक वन नाम वाला मणि तीर्थ, सरस्वती-ईशान तीर्थ प्रवर एवं पावन पाञ्चयाज्ञिक तीर्थ हैं ॥४५-४६॥ त्रिशूल धार-माहेन्द्र-देवस्थान-कृतालय-शाकम्भरी-देव तीर्थ-सुवर्णाक्ष-कलि-ह्रद-क्षीरस्रव-विरूपाक्ष-भृगु तीर्थ-कुशोद्भव-ब्रह्म तीर्थ-ब्रह्मयोनि-नीलपर्वत तीर्थ हैं ॥४७-४८॥ कुजाम्रक भद्रवट-वसिष्ठपद-स्वर्गद्वार-प्रजाद्वार और कालिकाश्रम तीर्थ हैं ॥४९॥

रुद्रावर्त्तं सुगन्धाश्वं कपिलायनमेव च ।
भद्रकर्णह्रदञ्चैव शङ्कुकर्णह्रद तथा ॥५०
सप्तसारस्वतञ्चैव तीर्थमौशनस तथा ।
कपालमोचनञ्चैव अघकीर्णञ्च काम्यकम् ॥५१
चतुःसामुद्रिकञ्चैव शतिकञ्च सहस्रिकम् ।
रेणुक पञ्चवटक विमोचनमथौजसम् ॥५२

स्थाणुतीर्थं कुरोस्तीर्थं स्वर्गद्वारं कुशध्वजम् ।
विश्वेश्वरं माणवकं कूपं नारायणाश्रयम् ॥५३

गङ्गाह्रदं वटञ्चैव वदरीपाटनं तथा ।
इन्द्रमार्गमेकरात्रं क्षीरकावासमेव च ॥५४

सोमतीर्थं दधीचश्च श्रुततीर्थञ्च भो द्विजाः ।
कोटितीर्थं स्थलीश्चैव भद्रकालीह्रद तथा ॥५५

अरुन्धतीवनञ्चैव ब्रह्मावर्त्तं तथोत्तमम् ।
अश्ववेदी कुब्जावनं यमुनाप्रभवं तथा ॥५६

रुद्रावर्त्त-सुगन्धाश्व-कपिलावन-भद्रकर्णह्लद-शकुकर्णह्लद-सम सारस्वत तीर्थ-औशनस-कपाल मोचन अवकीर्ण-काम्यक तीर्थ हैं ॥५०-५१॥ चतुः सामुद्रक तीर्थ-शतिक-सहस्रिक-रेणक-पञ्चवटक-विमोचन-ओजस तीर्थ है ॥५२॥ स्थाणु तीर्थ-कुरोस्तीर्थ-स्वर्गद्वार-कुशध्वज विश्वेश्वर-माणवक-कूप नारायणाश्रय तीर्थ है ॥५३॥ गङ्गाह्लद-वट वदरीपाटन इन्द्रमार्ग-एकरात्र और क्षीरकावास तीर्थ है ॥५४॥ सोमतीर्थ-दधीच-श्रुततीर्थ— हे द्विजगण ! कोटितीर्थ-स्थली तथा भद्रकाली ह्लद तीर्थ है ॥५५॥ अरुन्धती वन-ब्रह्मावर्त्त उत्तम तीर्थ अश्ववेदी-कुब्जावन तथा यमुनाप्रभ तीर्थ है ॥५६॥

वीरं प्रमोक्षं सिन्धूत्थमृषिकुल्या सकृत्तिकम् ।
उर्व्वीसङ्क्रमणञ्चैव मायाविद्योद्भवं तथा ॥५७

महाश्रमो वैतसिकारूप सुन्दरिकाश्रमम् ।
बाहुतीर्थं चारुनदी वितलाशोकमेव च ॥५८

तीर्थं पञ्चनदञ्चैव मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
सोमतीर्थं सितोदश्च तीर्थं मत्स्योदरी तथा ॥५९

सूर्य्यप्रभं सूर्य्यतीर्थमशोकवनमेव च ।
अरुणास्पदं कामदञ्च शुक्रतीर्थं सवालुकम् ॥६०

पिशाचमोचनञ्चैव सुभद्राह्रदमेव च ।
कुण्डं विमलदण्डस्य तीर्थं चण्डेश्वरस्य च ॥६१

ज्येष्ठस्थानह्रदञ्चैव पुण्यं ब्रह्मसरं तथा ।
जैगीषव्यगुहा चैव हरिकेशवनं तथा ।।६२
अजामुखसरश्चैव घण्टाकर्णह्रदं तथा ।
पुण्डरीकह्रदञ्चैव वापी कर्कोटकस्य च ।।६३

वीर-प्रमोक्ष-सिन्धूत्थ-ऋषिकुल्या- सकृत्तिक-उर्वी सक्रमण मायाविद्यो-द्भव, महाश्रम-वैतासिकारूप-सुन्दरिकाश्रम-बाहु तीर्थ-चारुनदी तथा विमलाशोक तीर्थ है ।।५७-५८।। पञ्चनद तीर्थ-धीमान् मार्कण्डेय का तीर्थ-सोमतीर्थ-सितोद तथा मत्स्योदरी तीर्थ है ।।५९।। सूर्यप्रभ-सूर्यतीर्थ अशोक वन-अरुणास्पद-कामद-शुक्रतीर्थ-सालुक तीर्थ है ।।६०।। पिशाच मोचन-सुभद्रह्रद-कुण्ड-विमलदण्ड तीर्थ-चण्डेश्वर का तीर्थ है ।।६१।। ज्येष्ठस्थान ह्रद-पुण्य ब्रह्मसर-जैगीषव्य गुहा तथा हरिकेश वन तीर्थ है ।।६२।। अजामुखसर-घण्टाकर्णह्रद-पुण्डरीकह्रद-वापी-कर्कोटक तीर्थ है ।।६३।।

सुवर्णास्योदपानश्च श्वेततीर्थह्रदं तथा ।
कुण्ड घर्घरिकायाश्च श्यामाकूपश्च चन्द्रिका ।।६४
श्मशानस्तम्भकूपञ्च विनायकह्रदं तथा ।
कूप सिन्धूद्भवश्चैव पुण्य ब्रह्मसरं तथा ।।६५
रुद्रावास तथा तीर्थ नागतीर्थं पुलोमकम् ।
भक्तह्रद क्षीरसरः प्रेताधार कुमारकम् ।।६६
ब्रह्मावर्त्त कुशावर्त्त दधिकर्णोदपानकम् ।
शृङ्गतीर्थं महातीर्थं तीर्थश्रेष्ठा महानदी ।।६७
दिव्य ब्रह्मसर पुण्य गयाशीर्षाक्षय वटम् ।
दक्षिणं चोत्तरञ्चैव गोमय रूपशीतिकम् ।।६८
कपिलाह्रद गृध्रवट सावित्रीह्रदमेव च ।
प्रभासन सीतवनं योनिद्वारञ्च धेनुकम् ।।६९
धन्यक कोकिलाख्यञ्च मतङ्गह्रदमेव च ।
पतृकूप रुद्रतीर्थं शक्रतीर्थं सुमालिनम् ।।७०

सुवर्णास्योद्यान-श्वेततीर्थह्रद, घर्घरिका का कुण्ड-श्यामाकूप-चन्द्रिका—श्मशानस्तम्भ कूप—तथा विनायक ह्रद—सिन्धूद्भव कूप-पुण्य ब्रह्मधर तीर्थ हैं ॥६४-६५॥ रुद्रावास-नागतीर्थ पुलोमक-भक्तह्रद-क्षीरसर-प्रेताधार-कुमारक-ब्रह्मावर्त्त-कुशावर्त्त-दधिकर्णोदपानक—शृङ्गतीर्थ-महातीर्थ-तीर्थश्रेष्ठा-महानदी ये सब भी तीर्थ हैं ॥६६-६७॥ दिव्य ब्रह्मसर-पुण्य गयाशीर्षाक्षय वट-दक्षिण और उत्तर-गोमय-रूपशीतिक तीर्थ हैं ॥६८॥ कपिलाह्रद-गृध्रवट-सावित्रीह्रद-प्रभासन सीतवन-योनिदार धेनुक-धन्यक-कोकिलाख्य-मतङ्गह्रद-पतृकूप-रुद्रतीर्थ-शक्रतीर्थ और सुमालिन तीर्थ हैं ॥६९-७०॥

ब्रह्मस्थानं सप्तकुण्डं मणिरत्नह्रदं तथा ।
कौशिक्यं भरत चैव तीर्थं ज्येष्ठालिका तथा ॥७१
वश्वेश्वरं कल्पसरः कन्यासंवेद्यमेव च ।
निश्चीवाप्रभवश्चैव वसिष्ठाश्रममेव च ॥७२
देवकूटंच कूपंच वसिष्ठाश्रममेव च ।
वीराश्रमं ब्रह्मसरो ब्रह्मवीरावकापिलो ॥७३
कुमारधारा श्रीधारा गौरीशिखरमेव च ।
शुनः कुण्डोऽथ तीर्थंच नन्दितीर्थं तथैव च ॥७४
कुमारवास श्रीवासमौर्वीशीतीर्थमेव च ।
कुम्भकर्णह्रदञ्चैव कौशिकीह्रदमेव च ॥७५
धर्म्मतीर्थं कामतीर्थं तीमुद्दालकं तथा ।
सन्ध्यातीर्थं कामतीर्थं कपिलं लोहितार्णवम् ॥७६
शोणोद्भवं वंशगुल्ममृषभं कलतीर्थकम् ।
पुण्यावतीह्रद तीर्थं तीर्थं वदरिकाश्रमम् ॥७७

ब्रह्मस्थान-सप्तकुण्ड-मणिरत्नह्रद-कौशिक्य-भरत तीर्थ-ज्येष्ठालिका-'वश्वेश्वर-कल्पसर-कन्या संवेद्य-निश्चीवाप्रभव-वसिष्ठाश्रम—ये सभी तीर्थ हैं। वीराश्रम-देवकूट-कूप ब्रह्मसर—ब्रह्मवीरा वकापली—कुमारधारा—श्रीधारा-गौरीशिखर-शुनः कुण्डतीर्थ तथा नन्दीतीर्थ हैं ॥७१-७४॥ कुमारवास, श्रीवास, और्वीशी तीर्थ, 'कुम्भकर्णह्रद, कौशिकीह्रद धर्मतीर्थ, कामतीर्थ,

उद्दालक तीर्थ, सन्ध्या तीर्थ, कार तोय, कपिल, लोहिताणंव तीर्थ हैं ॥७५-७६॥ शोणोद्भव, वंशगुल्म, ऋषभ, कलतीर्थ, पुण्यावतीह्लद तीर्थ और बदरिकाश्रम तीर्थ हैं ॥७७॥

रामतीर्थं पितृवनं विरजातीर्थमेव च ।
मार्कण्डेयवनञ्चैव कृष्णतीर्थं तथा वटम् ॥७८
रोहिणीकूपप्रवरमिन्द्रद्युम्नसरञ्च यत् ।
सानुगर्त्तं समाहेन्द्रं श्रीतीर्थं श्रीनदं तथा ॥७९
इषुतीर्थं वार्षभञ्च कावेरीह्लदमेव च ।
कन्यातीर्थञ्च गोकर्णं गायत्रीस्थानमेव च ॥८०
बदरीह्लदमन्यत्र मध्यस्थान विकर्णकम् ।
जातीह्लद देवकूप कुशप्रवणमेव च ॥८१
सर्व्वदेवव्रतञ्चैव कन्याश्रमह्लदं तथा ।
तथान्यद्वालखिल्यानां सपूर्व्वाणां तथापरम् ॥८२
तथान्यच्च महर्षीणामखण्डितह्लदं तथा ।
तीर्थेष्वेतेषु विधिवत् सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥८३
स्नान करोति यो मर्त्यः सोपवासो जितेन्द्रियः ।
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन् सन्तर्प्य च क्रमात् ॥८४
अभ्यर्च्च्य देवतास्तत्र स्थित्वा च रजनीत्रयम् ।
पृथक् पृथक् फल तेषु प्रतितीर्थेषु भो द्विजाः ॥८५
प्राप्नोति हयमेधस्य नरो नास्त्यत्र संशयः ।
यस्त्विद शृणुयान्नित्य तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥
पठेच्च श्रावयेद्वापि सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥८६

बहुत से तीर्थ हैं जिनमे प्रमुख तीर्थ रामतीर्थ, पितृवन, विरजातीर्थ, मार्कण्डेय वनतीर्थ, कृष्णतीर्थ, वट, रोहणी कूप, प्रवर, इन्द्रद्युम्नसर, सानुगर्त्त, समाहेन्द्र श्रीतीर्थ तथा श्रीनद तीर्थ हैं ॥७८-७९॥ इषुतीर्थ, वार्षभ, कावेरीह्लद, कन्यातीर्थ, गोकर्ण, गायत्री स्थान, अन्य बदरीह्लद, मध्य स्थान, विकर्णक, जातीह्लद, देवकूप, कुशप्रवण, सर्वदेवव्रत, कन्याश्रमह्लद, वालखिल्यो का अन्य ह्रद तथा अपर सपूर्वो का ह्रद तीर्थ

है ॥८०-८२॥ अन्य महर्षियों का अखण्डित ह्रद तीर्थ होता है। ये बहुत से जो तीर्थों के नाम बताये गये हैं इस समस्त तीर्थों में भली भाँति श्रद्धा से युक्त होकर विधि के साथ जो कोई स्नान किया करता है और उपवास के साथ तथा अपनी सब इन्द्रियों को जीतकर जो स्नान करता है और देवों को, ऋषियों को एवं मनुष्यों को और पितृगणों को क्रम से भली भाँति तृप्त करके वहाँ तीर्थ पर ही देवगण की अर्चना करे और तीन रात्रि तक वहीं पर अपनी स्थिति करनी चाहिए। हे द्विजगणो ! इन प्रत्येक तीर्थ का पृथक् २ फल हुआ करता है ॥८३-८५॥ मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जो पुरुष इसको नित्य सुनता है जो कि उत्तम तीर्थों का माहात्म्य बताया गया है इसका पाठ करे या श्रवण करावे वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥८६॥

---

## १८—स्वयम्भूब्रह्मर्षिसंवादवर्णन

पृथिव्यामुत्तमां भूमिं धर्म्मकामार्थमोक्षदाम् ।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं ब्रूहि नो वदतांवर ॥१

इमं प्रश्नं मम गुरुं पप्रच्छुर्मुनयः पुरा ।
तमहं सम्प्रक्ष्यामि यत्पृच्छध्वं द्विजोत्तमाः ॥२

स्वाश्रमे सुमहापुण्ये नानापुष्पोपशोभिते ।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानामृगगणैर्युते ॥३

पुन्नागैः कर्णिकारैश्च सरलैर्देवदारुभिः ।
शालैस्तालैस्तमालैश्च पनसैर्धवखादिरैः ॥४

पाटलाशोकवकुलैः करवीरैः सचम्पकैः ।
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैर्नानापुष्पोपशोभितैः ॥५

कुरुक्षेत्रे रामासीनं व्यासं मतिमतां वरम् ।
महाभारतकर्त्तारं सर्व्वशास्त्रविशारदम् ॥६
अध्यात्मनिष्ठं सर्व्वज्ञं सर्व्वभूतहिते रतम् ।
पुराणागमवक्तारं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥७
पराशरसुतं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
द्रष्टुमभ्याययुः प्रीत्या मुनयः संशितव्रताः ॥८

मुनिगण ने कहा—हे मुनिवर ! आपतो बोलने वालो मे परमश्रेष्ठ हैं । अब आप कृपा करके यह बतलाइये कि इस पृथ्वी मे सबसे उत्तम भूमि कौनसी है जो धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इन चारो के देने वाली हो और इन समस्त तीर्थों मे जो अभी आपने बहुत से बतलाए हैं सर्वोत्तम तीर्थ कौनसा है ॥१॥ श्री लोमहर्षणजी ने कहा—हे मुनिगणो ! पहले समय मे जो इस समय मुझसे आपने पूछा है इसी प्रश्न को मुनिगो ने मेरे गुरूजी से पूछा था । हे द्विजोत्तमो ! जो आप मुझसे पूछते हो उसे मैं आपको बतलाता हू ॥२॥ सुमहान् पुण्यमय अपने आश्रम मे गुरुदेव विराजमान थे । यह आश्रम अनेक पुष्पो से उपशोभित था और नाना प्रकार के वृक्षो तथा लताओ से घिरा हुआ था । इस आश्रम मे बहुत प्रकार के पशुगण रहा करते थे ॥३॥ पुनाग-कणिकार-सरल-देवदारु-शाल—तालतमाल—पनस-अर्धखदिर - पाटल-अशोक—बकुल - करवीर-चम्पक- ये वृक्ष तथा अन्य भी बहुत तरह के वृक्षो से एव अनेक पुष्पो से यह आश्रम शोभायमान था । यह आश्रम कुरुक्षेत्र मे था वहाँ पर मतिमानो मे श्रेष्ठ-महा भारत महान् ग्रन्थ के रचयिता-समस्त शास्त्रो के महामनीषी -अध्यात्मनिष्ठ-सर्वज्ञ और सब प्राणियो के हित करने मे रति रखने वाले पुराणो एव आगमो के वक्ता वेदो और वेदो के अङ्ग के पारगामी पराशर मुनि के पुत्र-परम शान्त मूर्ति तथा पद्म के तुल्य सुन्दर एव आयत नेत्रो वाले व्यासजी उस अपने आश्रम मे जिस समय मे विद्यमान थे उसी समय मे संशित व्रत वाले मुनिगण प्रीति से व्यासदेवजी के दर्शन करने के लिये वहाँ पर समागत हुए थे ॥४-८॥

कश्यपो जमदग्निश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
वसिष्ठो जैमिनिर्धौम्यो मार्कण्डेयोऽथ वाल्मिकिः ॥९
विश्वामित्रः शतानन्दो वात्स्यो गार्ग्योऽथ आसुरिः ।
सुमन्तुर्भार्गवो नाम कण्वो मेधातिथिर्गुरुः ॥१०
माण्डव्यश्च्यवनो धूम्रो ह्यसितो देवलस्तथा ।
मौद्गल्यस्तृणयज्ञश्च पिप्पलादोऽकृतव्रणः ॥११
सम्वर्त्तः कौशिको रैभ्यो मैत्रेयो हरितस्तथा ।
शाण्डिल्यश्च विभाण्डश्च दुर्व्वासा लोमशस्तथा ॥१२
नारदः पर्व्वतश्चैव वैशम्पायनगालवौ ।
भास्करिः पूरणः सूतः पुलस्त्यः कपिलस्तथा ॥१३
उलूकः पुलहो वायुर्देवस्थानश्चतुर्भुजः ।
सनत्कुमारः पैलश्च कृष्णः कृष्णानुभौतिकः ॥१४

जो मुनिगण व्यासजी से मिलने के लिये वहाँ पर समागत हुए थे उनमें कश्यप-जमदग्नि-भरद्वाज-गौतम-वसिष्ठ-जैमिनि-धौम्य-मार्कण्डेय-वाल्मीकि-विश्वामित्र शतानन्द-वात्स्य-गार्ग्य-आसुरि-सुमन्तु-भार्गव-कण्व—मेधातिथि और गुरु थे ॥९—१०॥ माण्डव्य-च्यवन-धूम्र-असित-देवल-मौद्गल्य तृणयज्ञ-पिप्पलाद-अकृतव्रण- सम्वर्तक-कौशिक-रैभ्य मैत्रेय-हरित—शाण्डिल्य-विभाण्ड-दुर्वासा-लोमश थे ॥११-१२॥ नारद-पर्वत-वैशम्पायन-—गालव-भास्करि-पूरण-सूत-पुलस्त्य-कपिल-उलूक-पुलह-वायु-देवस्थान-—चतुर्भुज-सनत्कुमार-पैल-कृष्णानुभौतिक थे ॥१३-१४॥

एतैर्म्मुनिवरैश्चान्यैर्वृतः सत्यवतीसुतः ।
रराज स मुनिः श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥१५
तानागतान्मुनीन् सर्व्वान् पूजयामास वेदवित् ।
तेऽपि तं प्रतिपूज्यैव कथा चक्रुः परस्परम् ॥१६
कथान्ते ते मुनिश्रेष्ठाः कृष्णं सत्यवतीसुतम् ।
पप्रच्छुः संशयं सर्व्वे तपोवननिवासिनः ॥१७
मुने वेदांश्च शास्त्राणि पुराणागमभारतम् ।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्व्वं जानासि वाङ्मयम् ॥१८

कष्टेऽस्मिन् दुःखबहुले निःसारे भवसागरे ।
रागग्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसम्प्लवे ॥१९
इन्द्रियावर्त्तकलिले दृष्टोर्मिशतसङ्कुले ।
मोहपङ्काविले दुर्गे लोभगम्भीरदुस्तरे ॥२०
निमज्जज्जगदालोक्य निरालम्बमचेतनम् ।
पृच्छामस्त्वां महाभाग ब्रूहि नो मुनिसत्तम ? ॥२१

इन उपर्युक्त सब मुनिगण और इनके अतिरिक्त अन्य भी मुनिवरों से सत्यवती के सुत व्यासजी समावृत थे । और वे श्रीमान् मुनीन्द्र श्रीव्यासजी उन समस्त मुनिगणों के मध्य में नक्षत्रों से समावृत चन्द्र की समान सुशोभित होरहे थे ॥१५॥ उन वेदों के विद्वान व्यासदेवजी ने उन समस्त समागत हुए मुनिगणों की पूजा की थी और उन सबने भी व्यासजी की प्रति पूजा करके ये सब परस्पर में कथा-वार्त्ता कर रहे थे ॥१६॥ कथा के समाप्त हो जाने पर उन सबने जो मुनियों मे परम श्रेष्ठ थे सत्यवती के सुत श्री कृष्ण द्वैपायनजी से तपोवन में निवास करने वालों ने अपने मन के संशय के विषय में पूछा था—मुनिगण ने कहा—हे मुनिवर ! आप तो सब वेदों को, शास्त्रों को, पुराणों को, आगमन को, भारत को तथा भूत-भव्य और भविष्य सम्पूर्ण वाङ्मय को भली-भाँति जानते हैं ॥१७—१८॥ यह भवसागर अर्थात् संसार रूपी समुद्र निःसार है और इसमें बहुत से दुःख भरे हुए हैं । यह राग रूपी ग्राहों से समाकुल है तथा परम भयानक एवं विषय रूपी जल से सम्भव वाला है ॥१९॥ इन्द्रियाँ ही इस संसार सागर में महान् आवर्त्त हैं उन भँवरों से यह कलिल है और सैकड़ों ही भाँति की लहरें इसमे दिखाई दे रही हैं जिनसे यह घिरा हुआ है—इसमे मोह रूपी कीच भरा हुआ और लोभ की गम्भीरता से महान् दुस्तर है ऐसे इस दुर्ग मे निमग्न हुए बिना किसी सहारे के अचेतन यह जगत् हो रहा है । हे मुनि श्रेष्ठ ! हम आपसे पूछना चाहते हैं । आप कृपा कर हमको बतलाइये ॥२०—२१॥

श्रेयः किमत्र संसारे भैरवे लोमहर्षणे ।
उपदेशप्रदानेन लोकानुद्धर्त्तुमर्हसि ॥२२

दुर्लभं परम क्षेत्रं कर्त्तुं मर्हसि मोक्षदम् ।
पृथिव्यां कर्म्मभूमिञ्च श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२३
कृत्वा किल नरः सम्यक् कर्म्म भूमौ यथोदितम् ।
प्राप्नोति परमां सिद्धिं नरकञ्च विकर्म्मतः ॥२४
मोक्षक्षेत्रे तथा मोक्षं प्राप्नोति पुरुषः सुधीः ।
तस्माद् ब्रूहि महाप्राज्ञ यत्पृष्टोऽसि द्विजोत्तम ? ॥२५
श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
व्यासः प्रोवाच भगवान्भूतभव्यभविष्यवित् ॥२६

इस महान् भैरव एव लोम हर्षण ससार मे क्या कल्याण का मार्ग हो सकता है ? आप अपने उपदेश को देकर उसके द्वारा सब लोकों का उद्धार करने के योग्य होते हैं ॥२२॥ आप परम दुर्लभ मोक्ष प्रदान करने वाले क्षेत्र को बताने के योग्य हैं। हम सब लोग इस पृथिवी में कर्म्मभूमि का श्रवण करना चाहते हैं ॥२३॥ इस भूमि मे मनुष्य यथोदित कर्म्म को करके भली-भाँति परम सिद्धि को प्राप्त कर लिया करता है तथा विकर्म्म करके नरकों को प्राप्त करता है ॥२४॥ सुधी पुरुष मोक्ष के क्षेत्र में मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है। इस कारण से हे महाप्राज्ञ द्विजोत्तम ! आपसे जो पूछा गया है वही बताने की कृपा करिए ॥२५॥ उन भावित आत्मा वाले मुनिगणों के इस वचन का श्रवण करके भूत-भव्य और भविष्य के पूर्ण ज्ञाता श्री व्यासदेवजी भगवान ने कहा था ॥२६॥

शृणुध्वं मुनयः सर्व्वे वक्ष्यामि यदि पृच्छथ ।
यः संवादोऽभवत् पूर्व्वमृषीणां ब्रह्मणा सह ॥२७
मेरुपृष्ठे तु विस्तीर्णे नानारत्नविभूषिते ।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ॥२८
नानापक्षिरुते रम्ये नानाप्रस्रवणाकुले ।
नानासत्वसमाकीर्णे नानाश्चर्य्यसमन्विते ॥२९
नानावर्णशिलाकीर्णे नानाधातुविभूषिते ।
नानामुनिजनाकीर्णे नानाश्रमसमन्विते ॥३०

तत्रासीनं जगन्नाथं जगद्योनिं चतुर्मुखम् ।
जगत्पतिं जगद्वन्द्यं जगदाधारमीश्वरम् ॥३१

देवदानवगन्धर्व्वैर्यक्षविद्याधरोरगैः ।
मुनिसिद्धाप्सरोभिश्च वृतमन्यैर्दिवालयैः ॥३२

श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे मुनिगणो ! यदि आप सब लोग मुझसे ऐसा पूछ रहे हैं तो अब आप सब सुनिए—मैं आप लोगों को बतलाता हूं । पुराने समय मे पहिले श्री ब्रह्मा के साथ ऋषियों का जो सम्वाद हुआ था ॥२७॥ नाना भाँति के रत्नो से भूषित परम विस्तीर्ण-अनेक द्रुमो-लताओ से सङ्कीर्ण और नाना भाँति के पुष्पो से युक्त मेरु पर्वत के ऊपर ही यह सम्वाद हुआ था ॥२८॥ इस मेरुगिर का पृष्ठ भाग ऐसा था जहाँ पर बहुत प्रकार के पक्षियो की ध्वनि हो रही थी और यह अनेक वस्तुओ के समुत्पन्न होने से पूर्णतया घिरा हुआ परम सुन्दर था । बहुत से जीव इसमे निवास किया करते थे तथा अनेक अद्भुत आश्चर्य जनक पदार्थों से यह युक्त था ॥२६॥ इस मेरु पर्वत पर अनेक वर्ण वाली शिलाएँ थी और बहुत सी धातुओ से वह परिपूर्ण था । वहाँ पर अनेक मुनिगण रहा करते थे और बहुत से आश्रम बने हुए थे ॥३०॥ उस पर्वत पर इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी, जगत के निर्माता, जगत के पति, जगत् के वन्दनीय, जगत् के आधार और ईश्वर, चतुर्मुख ब्रह्माजी विराजमान थे ॥३१॥ उन ब्रह्माजी के चारो ओर देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, उरग बैठे हुए थे । उस समय मे मुनि, सिद्ध, अप्सराएँ और दिवलोक वासी अन्य लोगो से वे घिरे हुए थे ॥३२॥

केचित् स्तुवन्ति तं देवं केचिद्‌गायन्ति चाग्रतः ।
केचिद्वाद्यानि वाद्यन्ते केचिन्नृत्यन्ति चापरे ॥३३

एवं प्रमुदिते काले सर्व्वभूतसमागमे ।
नानाकुसुमगन्धाढ्ये दक्षिणानिलसेविते ॥३४
भृग्वाद्यास्त तदा देवं प्रणिपत्य पितामहम् ।
इममर्थमृषिवराः पप्रच्छुः पितरं द्विजाः ॥३५

भगवन्श्रोतुमिच्छामः कर्म्मभूमि महीतले ।
वक्तुमर्हसि देवेश मोक्षक्षेत्रञ्च दुर्लभम् ॥ ६
तेषां वचनमाकर्ण्य प्राह ब्रह्मा सुरेश्वरः ।
पप्रच्छुस्ते यथा प्रश्नं तत्सर्व्वं मुनिसत्तमाः ॥३७

कुछ लोग तो उनकी स्तुति कर रहे थे और उनमे से कुछ लोग उन देव के आगे गान कर रहे थे। कुछ विविध वाद्यों का वादन कर रहे थे तथा दूसरे कुछ लोग नृत्य कर रहे थे ॥३३॥ वह समय इस प्रकार से बहुत ही प्रमोद से युक्त था और सभी प्राणियो का वहाँ पर समागम हो गया था। बहुत तरह के पुष्पो की गन्ध वहाँ पर भरी हुई थी तथा दक्षिण की वायु चल रही थी ॥३४॥ भृगु आदि ऋषि प्रवरों मे हे द्विजगणो ! उस समय मे उन देव पितामह को प्रणाम करके पितृ देव से इस अर्थ के विषय मे पूछा था ॥३५॥ ऋषिगण ने कहा था—हे भगवन् ! इस महीतल में हम लोग कर्म्मभूमि का श्रवण करना चाहते हैं। हे देवेश्वर ! आप परम दुर्लभ जो मोक्ष का क्षेत्र हो उसे भी बतलाने के योग्य हैं ॥३६॥ श्री व्यासजी ने कहा—उन सब मुनियों के वचन को सुन कर सुरेश्वर ब्रह्माजी ने कहा—जैसा कि उन सब मुनिश्रेष्ठो ने उनसे पूछा था उसी के विषय मे उन्होंने कहा ॥३७॥

—※—

## १९—भारतवर्षवर्णन ।

शृणुध्वं मुनयः सर्व्वे यद्वो वक्ष्यामि साम्प्रतम् ।
पुराणं वेदसम्बद्धं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥१
पृथिव्यां भारतं वर्षं कर्म्मभूमिरुदाहृता ।
कर्म्मणः फलभूमिश्च स्वर्गंच नरकं तथा ॥२
तस्मिन् वर्षे नरः पापं कृत्वा धर्म्मंच भो द्विजाः ।
अवश्यं फलमाप्नोति अशुभस्य शुभस्य च ॥३

ब्राह्मणाद्याः स्वकं च र्म्म कृत्वा सम्यक्सुसंयताः ।
प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं तस्मिन्वर्षे न संशयः ।।४

धर्म्मञ्चार्थंच कामंच मोक्षञ्च द्विजसत्तमाः ।
प्राप्नोति पुरुषः सर्व्वं तस्मिन् वर्षे सुसंयतः ।।५

इन्द्राद्याश्च सुरा सर्व्वे तस्मिन् वर्षे द्विजोत्तमाः ।
कृत्वा सुशोभनं कर्म्म देवत्वं प्रतिपेदिरे ।।६

अन्येऽपि लेभिरे मोक्षं पुरुषाः संयतेन्द्रियाः ।
तस्मिन् वर्षे बुधाः शान्ता वीतरागा विमत्सराः ।।७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिगण ! अब आप समाहित मन वाले होकर सुनिए । मैं इस समय मे आप सबको वेदो से सम्बद्ध और भुक्ति तथा मुक्ति दोनो के प्रदान करने वाले परम शुभ पुराण को बतलाता हूँ ।।१।। इस पृथिवी पर भारत वर्ष को ही कर्म्मों के करने की भूमि बताया गया है । यह कर्मों के करने की भूमि है और फल प्राप्त करने की भी भूमि है तथा स्वर्ग एव नरको के प्राप्त करने की भी यही भूमि है ।।२।। हे द्विजगणो ! उस भारत वर्ष मे मनुष्य पाप कर्म करके तथा धर्म का कर्म करके अवश्य ही फल प्राप्त किया करता है चाहे वह कोई शुभ कर्म करे तो उसका अच्छा फल उसे अवश्य मिलता है और चाहे वह अशुभ कर्म करे तो उसका भी वह फल प्राप्त किया करता है ।।३।। ब्राह्मण आदि लोग यहाँ पर भली भाँति सुसंयत होकर अपना शास्त्र-विहित कर्म करके परम सिद्धि को प्राप्त किया करते हैं—इसमे तनिक भी संशय नही है ।।४।। हे द्विजसत्तमो ! उस भारत वर्ष मे पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी की प्राप्ति सुसंयत होकर किया करता है ।।५।। हे द्विजोत्तमो ! इन्द्र आदि सभी देवगण इस भारत वर्ष मे परम शोभन कर्म करके ही देवपद को प्राप्त हो गये हैं ।।६।। संयत इन्द्रिय वाले अन्य पुरुषो ने भी मोक्ष की प्राप्ति की थी । उस भारत वर्ष मे जो बुध है—शान्त हैं-वीत राग और बिना मात्सर्य वाले हैं वे सब स्वर्गवासी हो गये हैं ।।७।।

ये चापि स्वर्गे तिष्ठन्ति विमानेन गतज्वराः ।
तेऽपि कृत्वा शत कर्म्म तस्मिन् वर्षे दिव गताः ॥८
निवासं भारते वर्षे आकाङ्क्षन्ति सदा सुराः ।
स्वर्गापवर्गफलदे तत्पश्यामः कदा वयम् ॥९
यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म्मं नान्यत्र पुण्यदम् ।
पापाय वा सुरश्रेष्ठ वर्ज्जयित्वा च भारतम् ॥१०
ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमं तच्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म्मं विधीयते ॥११
तस्माद्विस्तरतो ब्रह्मन्नस्माकं भारतं वद ।
यदि तेऽस्ति दयास्मासु यथावस्थिरेव च ॥१२
तस्माद्वर्षमिद नाथ ये वास्मिन् वर्षपर्व्वताः ।
भेदाश्च तस्य वर्षस्य ब्रूहि सर्व्वानिशेषतः ॥१३

जो लोग भी इस समय स्वर्ग में स्थित हैं और विमान के द्वारा गतज्वर होकर गमन किया करते हैं वे भी सब उसी भारत वर्ष में सैंकड़ो शुभ कर्मों को करके ही दिवलोक मे प्राप्त हुए हैं ॥८॥ सदा सुरगण भी इस भारत वर्ष मे निवास करने की अभिलाषा किया करते हैं क्योकि सुरत्व पद भी शुभ कर्मो के फलो के अनुसार अवधि युक्त होता है । पुण्य के क्षीण हो जाने पर अर्थात् उसका फल भोग लेने पर ये सभी पुनः इस कर्म भूमि मे आकर शुभ कर्म करना चाहा करते हैं । वे यही सोचा करते हैं कि स्वर्ग और अपवर्ग के फल प्रदान करने वाले भारत वर्ष मे हम कब पहुच कर शुभ कर्मों के करने का अवसर देखेंगे ॥९॥ मुनियों ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! आपने जो यह बतलाया कि भारत वर्ष के अतिरिक्त अन्यत्र कोई भी पुण्य-फल देने वाला कर्म नहीं हो सकता है अथवा पाप कर्म भी यही पर लोगो से बन पड़ता है जिसका बुरा फल नरकादि का गमन मे प्राप्त करते हैं । शुभाशुभ कर्म की भूमि भारतवर्ष को छोड़कर अन्य नही है ॥१०॥ यही से स्वर्ग मोक्ष तथा मध्यम फल प्राप्त किया जाता है । इसके अतिरिक्त मनुष्यो की कर्म करने की भूमि अन्य कोई भी नही है ॥११॥ हे ब्रह्मन् ! जब ऐसा ही

अटल नियम है तो आप इस विषय मे अर्थात् भारत वर्ष के सम्बन्ध मे हम लोगो को विस्तार पूर्वक बतलाइये । यदि आपकी हम सब लोगो पर कृपा है तो यथा स्थिति वर्णन कीजिए ॥१२॥ इस कारण से हे नाथ ! इस भारत वर्ष मे जो भी वर्ष पर्वत हैं और उस भारत वर्ष के जो भी भेद है उन सबका पूर्ण रूप से आप वर्णन करके बताइये ॥१३॥

शृणुध्व भारत वर्ष नवभेदेन भो द्विजाः ।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते समाश्च परस्परम् ॥१४
इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्या गान्धर्व्वो वारुणस्तथा ॥१५
अयन्तु नवमस्तेषा द्वीपः सागरसवृतः ।
योजनाना सहस्र वै द्वीपोऽय दक्षिणोत्तरः ॥१६
पूर्व्वे किराता यस्यासन् पश्चिमे यवनास्तथा ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ते स्थिता द्विजाः ॥१७
इज्यायुद्धवणिज्याद्यैः कर्म्मभिः कृतपावनाः ।
तेषा सव्यवहारश्च त्रिभिः कर्म्मभिरिष्यते ॥१८
स्वर्गापवर्गहेतोश्च पुण्य पापञ्च वै तथा ।
महेन्द्रो मलय. सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्व्वत. ॥१९
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवात्र कुलाचलाः ।
तेषा सहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगाः ॥२०
विस्तारोच्छ्रयिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानवः ।
कोलाहलः स वैभ्राजो मन्दरो दर्दुराचलः ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा था—हे द्विजगणो ! इस भारत वर्ष के विषय मे आप श्रवण कीजिए—यह नौ भेदो वाला है । ये नौ भेद रूप हैं तथा समुद्रान्तरित है—ऐसा जान लेना चाहिए ॥१४॥ इन्द्रद्वीप, कशेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व तथा वारुण द्वीप हैं । यह उन नौ मे नवमद्वीप है जो सागर से सवृत्त ( घिरा हुआ ) है । यह द्वीप दक्षिण-उत्तर दिशा मे रहने वाला एक सहस्र योजन वाला है ॥१५-१६॥ इसके पूर्व दिग्भाग मे किरात लोग निवास किया करते है तथ

इसके पश्चिम में यवन लोग रहते हैं। हे द्विजगण ! इसके मध्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र निवास किया करते हैं ॥१७॥ ये चारों वर्णों वाले लोग क्रम से इज्यायुद्ध और वाणिज्य आदि कर्मों से पावन होते हैं और उनका संव्यवहार भी तीनो प्रकार के कर्मों से अभीष्ट हुआ करता है ॥१८॥ यही कर्म स्वर्ग तथा अपवर्ग ( मोक्ष ) का हेतु होता है और कर्मों के द्वारा ही यहाँ पर पुण्य एव पाप हुआ करता है। महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्ष पर्वत हैं ॥१६॥ विन्ध्य पारिपात्र- ये सात यहाँ पर कुल पर्वत कहे जाते हैं। इन सात कुल पर्वतों के समीप में ही स्थित अन्य भी हजारों पर्वत हैं ॥२०॥ ये सब विस्तार वाले और ऊँचाई वाले परम रम्य, विपुल तथा विचित्र शिखरों वाले हैं। कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दर्दु राचल पर्वत हैं ॥२१॥

वातन्धयो वैद्यु तश्च मैनाकः सुरसस्तथा।
तुङ्गप्रस्थो नागगिरिर्गोधनः पाण्डराचलः ॥२२
पुष्पगिरिर्वैजयन्ती रैवतोऽर्बुद एव च।
ऋष्यमूकः स गोमन्थः कृतशैलः कृताचलः ॥२३
श्रीपार्व्वतश्चकोरश्च शतशोऽन्ये च पर्व्वताः।
तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाद्याश्चैव भागशः ॥२४
तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठास्ता बुध्यध्वं, द्विजोत्तमाः।
गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथापरा ॥२५
यमुना शतद्रु विपाशा वितस्तीरावती कूहुः।
गोमती धूतपापा च बाहुदा च द्दषद्वती ॥२६
विपाशा देविका चर्मुनिष्ठीवा गण्डकी तथा।
कौशिकी चापगा चैव हिमवत्पादनिःसृताः ॥२७
देवस्मृतिर्देववती वातघ्नी सिन्धुरेव च।
वेण्या तु चन्दना चैव सदानीरा महो तथा ॥२८

वातन्धय, वैद्युत, मैनाक, सुरस, तुङ्ग प्रस्थ, नाग गिरि, गोवर्धन, पाण्डराचल, पुष्पगिरि, वैजयन्ती, रैवत, अर्बुद, ( आबू ) ऋष्यमूक, गोमन्थ, कृतशैल, कृताचल, श्री पार्वत, चकोर ये तथा अन्य भी सैकड़ों

पर्वत भारत वर्ष मे विद्यमान हैं । उन सबसे मिले हुए जनपद भी हैं जहाँ भागो मे म्लेच्छ आदि लोग निवास किया करते हैं ॥२२-२४॥ उन के द्वारा बहुत सी श्रेष्ठ नदियो का पान किया जाता है । हे द्विजोत्तमो ! उनका भी ज्ञान आप लोग प्राप्त कर लेवें । वे सरिताएँ—गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, हैं ॥२५॥ यमुना, शतद्रु, विपाशा, वितस्ति, इरावती, कुहू, गोमती, धूतपापा, बहुदा, दृषद्वती, विपाशा, देविका, चक्षु, निष्ठीवा, गण्डकी, कौशिकी—ये सभी सरिताएँ हिमालय के पार्श्व से निकली हुई हैं ॥२६-२७॥ देव स्मृति, देववती, वातघ्नी, सिन्धु, वेण्या चन्दना सदानीरा तथा मही नदियाँ हैं ॥२८॥

चर्म्मण्वती वृषी चैव विदिशा वेदवत्यपि ।
सिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्रानुगाः स्मृताः ॥२६
शोणा महानदी चैव नर्म्मदा सुरसा क्रिया ।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथापरा ॥३०
चित्रोत्पला वेत्रवपी करमोदा पिशाचिका ।
तथान्यातिलघुश्रोणी विपापा शैवला नदी ॥३१
सधेरुजा शुक्तिमती शकुनी त्रिदिवा क्रमुः ।
ऋक्षपादप्रसूता वै तथान्या वेगवाहिनी ॥३२
सिप्रा पयोष्णी निर्विन्ध्या तापी चैव सरिद्वरा ।
वेणा वैतरणी चैव सिनीवाली कुमुद्वती ॥३३
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा ।
विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥३४
गोदावरी भीमरथी कृष्णावेणा तथापगा ।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा तथान्या पापनाशिनी ॥३५

चर्मण्वती, वृषी, विदिशा, वेदवती, सिप्रा, अवन्ती, पारियात्रानुगा, शोणा, महानदी, नर्मदा, सुरसा, क्रिया, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा नदियाँ हैं ॥२९-३ ॥ चित्रोत्पला, वेत्रवयी, करमोदा, पिशाचिका, अतिलघु श्रोणी, विपाया, शैवला नदी, सधेरुजा, शुक्तिमती, शकुनी, त्रिदिवा, क्रमु, ऋक्षपाद, प्रसूता और वेगवाहिनी नदी हैं ॥ १-३२॥ सिप्रा,

पयोष्णी, निर्विन्ध्या, सरिद्वारा तापी, वेण्य, वैतरणी, सिनी वाली, कुमुद्वती, जोया, महागौरी, दुर्गा, अन्तःशिला, विन्ध्यपाद प्रसूता ये नदियाँ हैं जो परम शुभ और पुण्य जल वाली हैं ॥३३-३४॥ गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा वेणा, आपगा हैं, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा तथा अन्याऽपाप नाशिनी नदी हैं ॥३५॥

सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरितां वराः ।
कृतमाला ताम्रपर्णी पुण्यजा प्रत्यलावती ॥३६
मलयाद्रिसमुद्भूताः पुण्याः शीतजलास्त्विमाः ।
पितृसोमर्षिकुल्या च वञ्जुला त्रिदिवा च या ॥३७
लाङ्गुलिनी वंशकरा महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ।
सुविकाला कुमारी च मनुगा मन्दगामिनी ॥३८
क्षयापलासिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ।
सर्व्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्व्वा गङ्गाः समुद्रगाः ॥३९
विश्वस्य मातरः सर्व्वाः सर्व्वाः पापहराः स्मृताः ।
अन्याः सहस्रशः प्रोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः ॥४०
प्रावृट्कालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्च याः ।
मत्स्या मुकुटकुल्याश्च कुन्तला काशिकोशलाः ॥४१
अन्ध्रकाश्च कलिङ्गाश्च शमकाश्च वृकैः सह ।
मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्त्तिताः ॥४२

ये सब सरिताएँ सह्याचल के पादों से निकलने वाली तथा परम श्रेष्ठ हैं । कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुण्यजा, प्रत्यलावती ये सब नदियाँ शीतल जल वाली-पुण्यमयी और मलयागिरि से समुत्पन्न होने वाली हैं । पितृसोमर्षिकुल्या, वञ्जुला, त्रिदिवा, लाङ्गुलिनी, वंशकरा ये सब सरिताएँ महेन्द्र पर्वत से उद्भव प्राप्त करने वाली हैं । सुविकाला, कुमारी, मनुगा और मन्दगामिनी नदी हैं ॥३६-३८॥ क्षयापलासिनी ये सब नदियाँ शुक्तिम पर्वत से उद्भुत होने वाली हैं । सभी सरस्वती नदियाँ पुण्यमयी हैं और सब गङ्गाएँ समुद्र गामिनी हैं ॥३९॥ ये सभी विश्व की माताएँ हैं तथा सब पापों के हरण करने वाली हैं ऐसा कह

गया है। हे द्विजोत्तमो ! उन उपर्युक्त नदियों के अतिरिक्त सहस्रों क्षुद्र नदियाँ बनाई गयी हैं ॥४०॥ कुछ सरिताएँ तो ऐसी हैं जो वर्षा के समय में ही वहन करने वाली होती हैं और कुछ सदा काल में बहने वाली हैं। मत्स्या, मुकुटकुल्या, कुन्तला, काशिकोशला, अन्धका, कलिङ्गा और शमकानूकों के साथ मध्यदेश के जो जनपद हैं प्रायः ये यहाँ पर कही गयी हैं ॥४१-४२॥

सह्यस्य चोत्तरे यस्तु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामपि कृत्स्नाया स प्रदेशो मनोरमः ॥४३
गोवर्द्धनपुरं रम्य भार्गवस्य महात्मनः ।
वाह्लीका वाटधानाश्च सुतीराः कालतोयदाः ॥ ४
अपरास्ताश्च शूद्राश्च वाह्लिकाश्च सकेरलाः ।
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ॥४५
शतद्रुहाः कलिङ्गाश्च पारदा हारमूषिकाः ।
माठराश्चैव कनकाः कैकेया दम्भमालिकाः ॥४६
क्षत्रियोपमदेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।
काम्बोजाश्चैव विप्रेन्द्रा बर्बराश्च सलौकिकाः ॥४७
वीराश्चैव तुषाराश्च पह्लवाधायता नराः ।
आत्रेयाश्च भरद्वाजा. पुष्कलाश्च दशेरकाः ॥४८
लम्पकाः शुनःशोकाश्च कुलिका जाङ्गलैः सह ।
औषध्यश्चलचन्द्रा च किरातानाञ्च जातयः ॥४९

सह्य अद्रि के उत्तर भाग में जहाँ पर गोदावरी नदी है वह प्रदेश इस सम्पूर्ण पृथ्वी में परम मनोरम हैं ॥४३॥ महात्मा भार्गव का गोवर्द्धनपुर बहुत ही रम्य है। वाह्लीका, वाटधाना, सुतीरा, कालतोयदा और अपरवे शूद्र हैं। और सकेरल, वाह्लिका, गान्धारा, यवना, सिन्धु, सौवीर, मद्रक, शतद्रुहा, कलिङ्ग, पारद, हारभूषिक, मठार, कैकेय, कनक, दम्भमालिक ये क्षत्रियोपम देश हैं। तथा वैश्य एवं शूद्रकुल हैं। हे विप्रेन्द्रो ! काम्बोज, बर्बर, सलौकिक, वीर, तुषार और नर पह्लवाधायन हैं। आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, दशेरक, लम्पक, शुन शोक,

कुलिक जाङ्गलों के सहित, औपध्य, धूलचन्द्र ये किरातो की जातियां हैं ॥४४-४६॥

तोमरा हंसमार्गाश्च काश्मीराः करुणास्तथा ।
शूलिकाः कुहकाश्चैव मागधाश्च तथैव च ॥५०
एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान् देशान्निबोधत ।
अन्धा वामङ्कुरावाश्च बल्लकाश्च मखान्तकाः ॥५१
तथापरेऽङ्गा वङ्गाश्च मलदा मालवर्त्तिकाः ।
भद्रतुङ्गाः प्रतिजया भार्य्याङ्गाश्चापमर्द्दकाः ॥५२
प्रागृज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।
मल्ला मगधका नन्दाः प्राच्या जनपदास्तथा ॥५३
तथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः ।
पूर्णाश्च केरलाश्चैव गोलाङ्गूलास्तथैव च ॥५४
ऋषिका मुषिकाश्चैव कुमारा रामठाः शकाः ।
महाराष्ट्रा माहिषका कलिङ्गाश्चैव सर्व्वशः ॥५५
आभीराः सह वैशिक्या अटव्या सरवाश्च ये ।
पुलिन्दाश्चैव मौलेया वैदर्भा दन्तकैः सह ॥५६

तोमर, हंसमार्ग, काश्मीर, करुण, शूलिक, कुहक, मागध ये सब देश उदीच्य हैं अर्थात् उत्तर दिशा मे होने वाले हैं। अब जो देश प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा मे हैं उनको भी समझलो—अन्ध, वामङ्कुराक, बल्लक, मखान्तक तथा अङ्ग, वङ्ग, मलद, मालवर्त्तिक, भद्रतुङ्ग, प्रतिजय, भार्याङ्ग, अपमर्द्दक, प्राग्ज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगधक और नन्द ये प्राच्यजन पद है ॥५०-५३॥ तथा दूसरे जनपद दक्षिणा पथगामी हैं । पूर्ण, केरल, गोलाङ्गूल, ऋषिक, मुषिक, कुमार, रामठ, शक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिङ्ग, वैशिकी के सहित आभीर, अटव्य, सरव, पुलिन्द, मौलेय और दन्तकों के सहित वैदर्भ ये सब दक्षिण दिशा के भाग मे जनपद हैं ॥५४-५६॥

पौलिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोजवर्द्धनाः ।
कौलिकाः कुन्तलाश्चैव दम्भका नीलकालकाः ॥५७
दक्षिणात्यास्त्वमी देशा अपरान्तान्निबोधत ।
शूर्पारकाः कालिधना लोलास्तालकटैः सह ॥५८
इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणुध्वं विन्ध्यवासिनः ।
मलजाः कर्कशाश्चैव मेलकाश्चोलकैः सहः ॥५९
उत्तमार्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्ध्यकैः सह ।
तोपलाः कोशलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा ॥६०
तुम्बुरास्तु चराश्चैव यवनाः पवनैः सह ।
अभया रुण्डिकेराश्च चर्च्चरा होत्रधर्त्तयः ॥६१
एते जनपदा सर्व्वे तत्र विन्ध्यनिवासिनः ।
अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्व्वताश्रयिणश्च ये ॥६२
नीहारास्तुपमार्गाश्च कुरवस्तङ्गणाः खसाः ।
कर्णप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दर्घाः सकुन्तकाः ॥६३
चित्रमार्गा मालवाश्च किरातास्तोमरैः सह ।
कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्युगकृतो विधिः ॥६४

पौलिक, मौलिक, अश्मक, भोजवर्द्धन, कौलिक, कुन्तल, दम्भक, नीलकालक ये सब दक्षिणात्य देश हैं । अब अपरान्तों को समझ लो । शूर्पारक, कालिधन, तालकटों के सहित लोल—ये सब अपरान्त देश हैं । अब विन्ध्य वासियों का श्रवण कीजिए । मलज, कर्कश, मेलक, चोलक, उत्तमार्ण, दशार्ण, भोज, किष्किन्ध्यक, तोपल, कोशल, त्रैपुर, वैदिश, तुम्बुर, चर, यवन, पवन, अभय, रुण्डिकेर, चर्चर, होत्रधर्त्ति—ये सब जनपद यहाँ पर विन्ध्य के निवास करने वाले हैं । अब यहाँ से आगे जो पर्वतों का आश्रय करने वाले हैं उन देशों को बतलाते हैं ॥५७-६२॥ नीहार, तुपमार्ग, कुरव, तङ्गण, खस, कर्णप्रावरण, ऊर्ण, दर्घ, सकुन्तक, चित्रमार्ग, मालव, किरात, तोमर, यहाँ पर कृत त्रेता आदि चतुर्युग कृत विधि है ॥६३-६४॥

एवं तु भारतं वर्षं नवसंस्थानसंस्थितम् ।
दक्षिणे परतो यस्य पूर्व्वे चैव महोदधिः ॥६५
हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथा गुणः ।
तदेतद्भारतं वर्षं सर्व्वबीज द्विजोत्तमाः ॥६६
ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मरुतां तथा ।
मृगयक्षाप्सरोयोनिं तद्वत् सर्पसरीसृपाः ॥६७
स्थावराणाञ्च सर्व्वेषामितो विप्राः शुभाशुभैः ।
प्रयान्ति कर्म्मभूर्विप्रा नान्या लोकेषु विद्यते ॥६८
देवानामपि भो विप्राः सदैवैष मनोरथः ।
अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रच्युताः क्षितौ ॥६९
मनुष्यः कुरुते यत्तु तन्न शक्यं सुरासुरैः ।
तत्कर्म्मनिगड़ग्रस्तैस्तत्कर्म्मक्षपणोन्मुखैः ॥७०

इस प्रकार से यह भारत वर्ष नौ सस्थानो में सस्थित है जिसके परे दक्षिण मे और पूर्व मे महोदधि है ॥६५॥ इस भारत वर्ष के उत्तर में हिमालय पर्वत है और धनुष के गुण के समान है। हे द्विजोत्तमो ! यह यह भारत वर्ष सर्वबीज है ॥६६॥ यहाँ पर ब्रह्मत्व है, अमरेशत्व, देवत्व तथा मरुत हैं। मृगयक्ष और अप्सराओ की योनि है और उसी भाँति सर्प और सृप हैं ॥६७॥ हे विप्रगण ! यहाँ पर सब स्थावरो का शुभाशुभ कर्मों के द्वारा इस कर्म्मभू को प्रयाण करते हैं। ऐसी कर्म भूमि लोकों में अन्य कोई भी नही है ॥६८॥ हे विप्रो ! देवताओ का भी सर्वदा यही मनोरथ रहा करता है कि हम लोग भी इस देवत्व से मनुष्यत्व को क्षिति में उलटा प्राप्त करें ॥६९॥ मनुष्य यहाँ कर्म-क्षेत्र में जो कुछ किया करता है उस कर्म को सुर एवं असुर कोई भी नही कर सकता है। ये सुरासुर सब अपने कर्मों के निगड़ (बन्धन) से ग्रस्त हैं और उस कर्म के क्षपण करने के लिये उन्मुख हुआ करते हैं ॥७०॥

न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजाः ।
यत्र विप्रादयो वर्णाः प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम् ॥७१

धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमाः ।
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥७२
प्राप्यते यत्र तपसः फलं परमदुर्लभम् ।
सर्व्वदानफलञ्चैव सर्व्वयज्ञफलं तथा ॥७३
तीर्थयात्राफलञ्चैव गुरुसेवाफलं तथा ।
देवताराधनफलं स्वाध्यायस्य फलं द्विजाः ॥७४
यत्र देवाः सदा हृष्टा जन्म वाञ्छन्ति शोभनम् ।
नानाव्रतफलञ्चैव नानाशास्त्रफलं तथा ॥७५
अहिंसादिफलं सम्यक्फलं सर्व्वाभिवाञ्छितम् ।
ब्रह्मचर्य्यफलञ्चैव गार्हस्थ्येन च यत्फलम् ॥७६
यत् फलं वनवासेन सन्न्यासेन च यत्फलम् ।
इष्टापूर्त्तफलञ्चैव तथान्यच्छुभकर्म्मणाम् ॥७७

हे द्विजगणो ! इस भारत वर्ष के समान इस पृथिवी में कोई भी वर्ष नहीं है जहाँ पर विप्र आदि सब वर्णों वाले मनुष्य अपने अभिवाञ्छित मनोरथों की प्राप्ति किया करते हैं ॥७१॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य इस भारत वर्ष में समुत्पन्न होते हैं वे परम धन्य अर्थात् महान् भाग्यशाली हैं। ये लोग यहाँ पर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन पुरुषार्थों का महान् फल प्राप्त किया करते हैं ॥७२॥ जहाँ पर तपश्चर्या का परम दुर्लभ फल प्राप्त किया करते हैं। सब प्रकार के दानों का फल और सभी तरह के यज्ञों के फल प्राप्त करते हैं ॥७३॥ तीर्थों की यात्रा का फल गुरुदेव के चरणों की सेवा का फल-देवों के समाराधना करने का फल तथा स्वाध्याय का फल प्राप्त किया करते हैं ॥७४॥ जहाँ पर देवगण सदा प्रसन्न रहा करते हैं और वे परम शोभन जन्म प्राप्त करने की इच्छा किया करते हैं। यहाँ भारत वर्ष में अनेक व्रतों के पुण्य का फल और नाना प्रकार के शास्त्रों का फल प्राप्त करते हैं ॥७५॥ अहिंसा आदि का पुण्य फल और सर्वाभिवाञ्छित सम्यक् फल ब्रह्मचर्य के व्रत का फल तथा गार्हस्थ्य आश्रम का जो पुण्य फल होता है वह सभी यहाँ पर प्राप्त हो जाता है। जो पुण्य फल वन में निवास करने से होता है तथा संन्यास करने से जो

भी फल प्राप्त होता है तथा इष्टापूर्त्त फल होता है और अन्य शुभ कर्मों का जो फल होता है वह सभी यहाँ पर प्राप्त हो जाया करता है ॥७६-७७॥

प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र द्विजोत्तमाः ।
कः शक्नोति गुणान् वक्तुं भारतस्याखिलान्द्विजाः ॥७८
एवं सम्यङ्मया प्रोक्तं भारतं वर्षमुत्तमम् ।
सर्व्वपापहरं पुण्यं धन्यं बुद्धिविवर्द्धनम् ॥७९
य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा नियतेन्द्रियः ।
सर्व्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८०

हे द्विजोत्तमो ! यह भारत वर्ष ही एक स्थल है जिसमें सभी पुण्य फल प्राप्त किये जाया करते हैं और वे अन्य कहीं पर भी नहीं प्राप्त होते हैं। हे द्विजो ! इस भारत के समस्त गुणो को कहने मे कौन समर्थ हो सकता है अर्थात् किसी में भी ऐसी शक्ति नही है जो भारत वर्ष के सब गुणो का वर्णन कर सके ॥७८॥ इस प्रकार से मैंने यह बतला दिया है यह भारत वर्ष बहुत ही उत्तम है। यह समस्त पापो के हरण करने वाला पुण्य, धन्य और बुद्धि का विशेष वर्धन करने वाला है ॥७९॥ इस भारत वर्ष की महिमा का जो कोई श्रवण करता है या इसका पाठ करता है और नियत इन्द्रियो वाला रहता है वह सब पापो से विमुक्त होकर सीधा विष्णुलोक को चला जाया करता है ॥८०॥

—:※:—

## २०—कोणादित्यमाहात्म्यवर्णन ।

तत्रास्ते भारते वर्षे दक्षिणोदधिसंस्थितः ।
ओण्ड्रदेश इति ख्यातः स्वर्गमोक्षप्रदायकः ॥१
समुद्रादुत्तरं तावद्यावद्विरजमण्डलम् ।
देशोऽसौ पुण्यशीलानां गुणैः सर्व्वैरलङ्कृतः ॥२

तत्र देशेप्रसूता ये ब्राह्मणाः सयतेन्द्रियाः ।
तपःस्वाध्यायनिरता वन्द्याः पूज्याश्च ते सदा ॥३
श्राद्धे दाने विवाहे च यज्ञे वाचार्य्यकर्म्मणि ।
प्रशस्ताः सर्व्वकार्य्येषु तत्रदेशोद्भवा द्विजाः ॥४
षट्कर्म्मनिरतास्तत्र ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
इतिहासविदश्चैव पुराणार्थविशारदाः ॥५
सर्व्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो वीतमत्सराः ।
अग्निहोत्ररताः केचित् केचित् स्मार्त्ताग्नितत्पराः ॥६
पुत्रदारधनैर्युक्ता दातारः सत्यवादिनः ।
निवसन्नुत्कले पुण्ये यज्ञोत्सवविभूषिते ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—वहाँ पर भारत वर्ष मे दक्षिण सागर में संस्थित "ओण्ड्र देश"—इस नाम से विख्यात है जो कि स्वर्ग और मोक्ष दोनो के प्रदान करने वाला है ॥१॥ समुद्र से उत्तर मे उतना भाग जितना कि विरजमण्डल है वह सब गुणो से अलङ्कृत पुण्य शीलो का देश है ॥२॥ उस देश मे जो सयत इन्द्रियो वाले ब्राह्मण समुत्पन्न हुए हैं वे तपस्या और स्वाध्याय मे निरत रहने वाले हैं और वे सदा ही वन्दना करने के योग्य तथा सदा पूज्य हैं। उस देश मे समुत्पन्न होने वाले विप्र श्राद्ध-दान विवाह-यज्ञ तथा आचार्य के कर्म मे और सब ही कार्यों मे प्रशस्त होते हैं ॥३-४॥ वहाँ पर वेदो के पारगामी विद्वान् ब्राह्मण षट्कर्मों मे निरत रहने वाले है तथा वे इतिहास के ज्ञाता और पुराणो के अर्थ के जानने वाले हैं ॥५॥ ये ब्राह्मण सभी शास्त्रो के अर्थों मे कुशल हैं—यजन करने वाले हैं तथा मात्सर्य दोष से रहित होते हैं। इनमे कुछ तो अग्निहोत्र करने मे रति रखते हैं और कुछ स्मार्त्त (स्मृतियो द्वारा उपदिष्ट) अग्नि मे तत्पर रहा करते हैं ॥६॥ वहाँ पर निवास करने वाले ब्राह्मण पुत्र-धन और दारा से युक्त होते है-दान देने वाले और सत्यवादी होते हैं जो लोग इस पुण्यमय और यज्ञोत्सवो से भूषित इस उत्कल देश मे निवास किया करते हैं ॥७॥

इतरेऽपि त्रयो वर्णाः क्षत्रियाद्याः सुसंयताः ।
स्वधर्म्मनिरताः शान्तास्तत्र तिष्ठन्ति धार्म्मिकाः ॥८
कोणादित्य इति ख्यातस्तस्मिन् देशे व्यवस्थितः ।
य दृष्ट्वा भास्करं मर्त्यः सर्व्वपापैःप्रमुच्यते ॥६
श्रोतुमिच्छाम तद्ब्रूहि क्षेत्रं सूर्य्यस्य साम्प्रतम् ।
तस्मिन् देशे सुरश्रेष्ठ यत्रास्ते स दिवाकरः ॥१०
लवणस्योदधेस्तीरे पवित्रे सुमनोहरे ।
सर्व्वत्र वालुकाकीर्णे देशे सर्व्वगुणान्विते ॥११
चम्पकाशोकवकुलैः करवीरैः सपाटलैः ।
पुन्नागैः कर्णिकारैश्च वकुलैर्नागकेसरैः ॥१२
तगरैर्धववाणैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः ।
मालतीकुन्दपुष्पैश्च तथान्यैर्मल्लिकादिभिः ॥१३
केतकीवनखण्डैश्च सर्व्वत्तू कुसुमोज्ज्वलैः ।
कदम्बैर्लकुचैः शालैः पनसैर्देवदारुभिः ॥१४

विप्रो से अतिरिक्त अन्य भी तीनो वर्ण क्षत्रिय आदि सुसयत होते हैं और ये सभी अपने २ धर्मो मे निरत रहने वाले शान्त और धार्मिक वहाँ पर रहा करते हैं ॥८॥ उस देस मे व्यवस्थित "कोणादित्य"- इस नाम से विख्यात भगवान् सूर्यदेव है जिन भुवनभास्कर का दर्शन करके मनुष्य सभी प्रकार के पापो से विमुक्त हो जाया करता है ॥६॥ मुनिगण ने कहा—हे सुरों मे परम श्रेष्ठ ! जिस भाग मे वह दिवाकर भगवान् विराजमान हैं और इस समय मे जो सूर्य का क्षेत्र उस देश मे विद्यमान है उसके विषय मे हम लोग श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं । कृपा करके हे भगवन् ! अब आप उसका वर्णन कीजिए ॥१०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस देश मे जो खारी समुद्र है, उसके उत्तर दिशा के भाग में परम पवित्र सुमनोहर और सभी गुणो से सयुत एक भाग है जो सर्वत्र वालुका से घिरा हुआ है तथा चम्पक, अशोक, वकुल, करवीर, पाटल, पुन्नाग, कर्णिकार, नागकेसर, तगर, धववाण, अतिमुक्त, कुब्जक, मालती, कुन्द तथा अन्य मल्लिका आदि से और केतकी के वनखण्डो से एवं सभी

ऋतुओ के पुष्पो से युक्त उज्ज्वल, कदम्ब, लकुच, शाल, पनस और देवदारु के वृक्षों से घिरा हुआ है ॥११-१४॥

सरलैर्मुचुकुन्दैश्च चन्दनैश्च सितेतरैः ।
अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च आम्रै राम्रातकैस्तथा ॥१५
तालैः पूगफलैश्चैव नारिकेलैः कपित्थकैः ।
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्व्वतः समलङ्कृतम् ॥१६
क्षेत्रं तत्र रवेः पुण्यमास्ते जगति विश्रुतम् ।
समस्ताद्योजनं साग्रं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१७
आस्ते तत्र स्वयं देवः सहस्रांशुर्दिवाकरः ।
कोणादित्य इति ख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥१८
माघे मासि सिते पक्षे सप्तम्यां संयतेन्द्रियः ।
कृतोपवासो यस्तत्र स्नात्वा तु मकरालये ॥१९
कृतशौचो विशुद्धात्मा स्मरन् देवं दिवाकरम् ।
सागरे विधिवत् स्नात्वा शर्व्वर्य्यन्ते समाहितः ॥२०
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन सन्तर्प्य च द्विजाः ।
उत्तीर्य्य वाससी धौते परिधाय सुनिर्म्मले ॥२१

वहाँ पर साल मुचुकुन्द के वृक्ष हैं तथा यह स्थल चन्दन, सितेतर चन्दन, अश्वत्थ एवं अनेक प्रकार के वृक्ष—सप्तपर्ण, आम्र, आम्रातक, ताल, पूगफल, नारियल, कपित्थक आदि नाना प्रकार के द्रुमो से समलङ्कृत है ॥१५-१६॥ वहाँ पर ही जगत् मे प्रख्यात रविदेव का परम पुण्यमय क्षेत्र विद्यमान है। यह चारों ओर डेढ योजन विस्तार वाला क्षेत्र है जो भोग और मोक्ष दोनो के प्रदान करने वाला है ॥१७॥ वहाँ पर स्वयं देव सहस्रांशु दिवाकर साक्षात् विराजमान रहते हैं। जिनका शुभ नाम "कोणादित्य" यह प्रसिद्ध है और जो भुक्ति-मुक्ति के प्रदाता हैं ॥१८॥ माघ मास मे शुक्ल पक्ष मे सप्तमी तिथि के दिन मे मनुष्य संयत इन्द्रिय वाला होकर उपवास करके वहाँ आवे और मकरालय मे स्नान करे ॥१९॥ शौच करके विशुद्ध आत्मा वाला होकर दिवाकर देव का स्मरण करे और रात्रि के अन्त मे समाहित होकर सागर मे विधि

के साथ स्नान करे ॥२०॥ हे द्विजगणो ! फिर उस मनुष्य को वहाँ पर देव ऋषि तथा मनुष्यों का भली भाँति तर्पण करना चाहिए । फिर पहिले पहिने हुए वस्त्रों को उतार कर निर्मल धुले हुए दूसरे शुद्ध वस्त्र धारण कर लेने चाहिए ॥२१॥

आचम्य प्रयतो भूत्वा तीरे तस्य महोदधे. ।
उपविश्योदये काले प्राङ्मुखः सवितुस्तदा ॥२२
विलिख्य पद्म मेधावी रक्तचन्दनवारिणा ।
अष्टपत्रं केसराढ्यं वर्त्तुलं चोर्द्ध्वकर्णिकम् ॥२३
तिलतण्डुलतोयञ्च रक्तचन्दनसंयुतम् ।
रक्तपुष्पं सदर्भञ्च प्रक्षिपेत्ताम्रभाजने ॥२४
ताम्राभावेऽर्कपत्रस्य पुटैः कृत्वा तिलादिकम् ।
पिधाय तन्मुनिश्रेष्ठाः पात्रं पात्रेण विन्यसेत् ॥२५
करन्यासाङ्ग वन्यास कृत्वाङ्गं हृदयादिभि. ।
आत्मानं भास्करं ध्यात्वा सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥२६
मध्ये चाग्निदले धीमान्नैर्ऋते श्वासने दले ।
कामारिगोचरे चैव पुनर्मध्ये च पूजयेत् ॥२७
प्रभूत विमल सारमाराध्य परम सुखम् ।
सम्पूज्य पद्ममावाह्य गगनात्तत्र भास्करम् ॥२८

इसके अनन्तर आचमन करे और प्रयत होकर उस समुद्र के तट पर उपविष्ट हो जावे । उस उदय के समय मे उस समय मे सूर्य देव की ओर पूर्व दिशा मे मुख करके स्थित हो जाना चाहिए ॥२२॥ यहाँ पर मेधावी भक्त को चाहिए कि रक्त चन्दन को घिसकर उससे एक पद्म का विलेखन करे । यह पद्म अष्टदल वाला केसरों से युक्त-वर्तुल और ऊर्ध्वकर्णिका वाला पद्म बनाना चाहिए ॥२३॥ तिल-तण्डुल-रक्त चन्दन से युक्त तोय-रक्त पुष्प-दर्भ इनको एक ताम्र के पात्र मे प्रक्षिप्त करना चाहिए ॥२४॥ यदि ताम्र का पात्र न हो तो आक के पत्तों के दोनो से तिल आदिक पदार्थों को उनमे रक्खे और हे मुनिगणो ! पात्र के द्वारा पात्र को विन्यस्त करना चाहिए ॥२५॥ उदय आदि अङ्गों से करन्यास तथा

अङ्गन्यास करे और आत्मा को भास्कर का ध्यान करके भली भाँति श्रद्धा से समन्वित होना चाहिए। २६॥ धीमान् को मध्य अग्निदल मे-नैर्ऋत शासन दल मे और कामारि गोचर मे तथा पुनः मध्य मे पूजन करना चाहिए ॥२७॥ प्रभूत विमल सार आराधना करके, परम सुख का सम्पूजन करके यहाँ पर गगन से भगवान् भास्कर का आवाहन करना चाहिए ॥२८॥

कर्णिकोपरि सस्थाप्य ततो मुद्रा प्रदर्शयेत् ।
कृत्वा स्नानादिक सर्व्वं ध्यात्वा त सुसमाहित । २६
सितपद्मोपरि रवि तेजोविम्वे व्यवस्थितम् ।
पिङ्गाक्ष द्विभुज रक्त पद्मपत्रारुणाम्वरम् ॥३०
सर्व्वलक्षणसयुक्त सर्व्वाभरणभूषितम् ।
सुरूप वरद शान्त प्रभामण्डलमण्डितम् ॥३१
उद्यन्त भास्कर दृष्ट्वा सान्द्रसिन्दूरसन्निभम् ।
ततस्तत्पात्रमादाय जानुभ्या धरणी गत ॥३२
कृत्वा शिरसि तत्पात्रमेकचित्तस्तु वाग्यत ।
त्र्यक्षरेण तु मन्त्रेण सूर्य्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥३३
अदीक्षितस्तु तस्यैव नाम्नवार्घ्यं प्रयच्छति ।
श्रद्धया भावयुक्तेन भक्तिग्राह्यो रविर्यत ॥३४
अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशमध्यपूर्व्वादिदिक्षु च ।
हृच्छिरश्च शिखावर्मनेत्राण्यस्त्रञ्च पूजयेत् ॥३५

उस लिखित पद्म की कर्णिका पर सस्थापित करके इसके उपरान्त मुद्रा को प्रदर्शित करे। स्नानादिक सब क्रिया करके सुसमाहित होकर उनका ध्यान करे ॥२६॥ तेजो बिम्ब सित पद्म के ऊपर मे व्यवस्थित रवि का ध्यान करना चाहिए। पिङ्गल वर्ण के नेत्रो वाले, दो भुजाओ से युक्त-रक्त वर्ण वाले, पद्म दल के समान अरुण अम्बर से सयुत, श्री रविदेव सब सुलक्षणो से समन्वित है और समस्त आभरणो से सुशोभित हैं। सुन्दर रूप वाले—वरदान प्रदान करने वाले—परम शान्तस्वरूप से युक्त और प्रभामण्डल से मण्डित हैं ॥३०-३१॥ घने सिन्दूर के सदृश

उगते हुए सूर्य्यदेव का दर्शन करे। इसके अनन्तर उस पात्र को लेकर जानुओ से पृथ्वी पर स्थित होकर उस पात्र को शिर पर रख करके चित्त को एकाग्र करे और मौनी रहे इसके अनन्तर त्र्यक्षर मन्त्र से सूर्य्यदेव के लिये अर्घ्य देवे ॥३२-३३॥ जो अदीक्षित होवे तो उसके नाम से ही अर्घ्य देता है। क्योंकि श्रद्धा के द्वारा भाव से युक्त मनुष्य से ही रविदेव भक्ति से ग्रहण करने के योग्य हैं ॥३४॥ अग्नि, निर्ऋति, वायु, ईशान, मध्यपूर्वादि दिशाओ मे हृदय, शिर, शिखा, वर्म, नेत्र और अस्त्र का पूजन करना चाहिए ॥३५॥

दत्वार्घ्यं गन्धधूपञ्च दीप नैवेद्यमेव च।
जप्त्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा मुद्रां बद्ध्वा विसर्ज्जयेत् ॥३६
ये चार्घ्यं सम्प्रयच्छन्ति सूर्य्याय नियतेन्द्रियाः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च संयताः ॥३७
भक्तिभावेन सततं विशुद्धेनान्तरात्मना।
ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥३८
त्रैलोक्यदीपकं देवं भास्करं गगनेरतम्।
ये सश्रयन्ति मनुजास्ते स्युः सुखस्य भाजनम् ॥३९
यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय यथोदितम्।
तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरम् ॥४०
तस्मात् प्रयत्नमास्थाय दद्यादर्घ्यं दिने दिने।
आदित्याय शुचिर्भूत्वा पुष्पैर्गन्धैर्मनोरमैः ॥४१
एवं ददाति यश्चार्घ्यं सप्तम्यां सुसमाहितः।
आदित्याय शुचिः स्नातः स लभेदीप्सितं फलम् ॥४२

अर्घ्य देकर गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य सब समर्पित करके तथा जप-स्तवन और नमस्कार करके और मुद्रा बांध कर विसर्जन करे ॥३६॥ जो लोग नियत इन्द्रिय वाले भगवान् सूर्य्य को अर्घ्य दिया करते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र संयत होकर सर्वदा भक्ति की भावना से तथा विशुद्ध अन्तरात्मा से सूर्यदेव को अर्घ्य देते हैं वे अभिमत पदार्थों

के दीपक देव भास्कर को जो गगनरत रहते हैं जो लोग इनका सश्रय ग्रहण करते हैं। वे मनुष्य सदा सुख के पात्र हुआ करते हैं ॥३९॥ जिस समय तक भगवान् भास्कर देव के लिये जैसा बनाया गया है वैसा अर्घ्य नहीं दिया जाता है तब तक भगवान विष्णु देव अथवा शङ्कर एवं सुरेश्वर का पूजन नहीं करना चाहिए ॥४०॥ अतएव प्रबल प्रयत्न मे समास्थित होकर आये दिन सूर्य देव को अर्घ्य देना ही चाहिए। भगवान आदित्य के लिये मनोरम और सुगन्धित पुष्पो के साथ पवित्र होकर अर्घ्य देना चाहिए ॥४१॥ इस प्रकार से सप्तमी तिथि के दिन परम समाहित होकर स्नान करके और पवित्र होकर भगवान आदित्य के लिये जो मनुष्य अर्घ्य दिया करता है वह अपना अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है ॥४२॥

रोगाद्विमुच्यते रोगी वित्तार्थी लभते धनम् ।
विद्या प्राप्नोति विद्यार्थी सुतार्थी पुत्रवान् भवेत् ॥४३
य य काममभिध्यायन् सूर्य्यायार्घ्यं प्रयच्छति ।
तस्य तस्य फल सम्यक् प्राप्नोति पुरुषः सुधीः ॥४४
स्नात्वा वै सागरे दत्वा सूर्य्यायार्घ्यं प्रणाम्य च ।
नरो वा यदि वा नारी सर्व्वकामफल लभेत् ॥४५
ततः सूर्य्यालय गच्छेत् पुष्पमादाय वाग्यतः ।
प्रविश्य पूजयेद्भानु कृत्वा तु त्रिः प्रदक्षिणम् ॥४६
पूजयेत् परया भक्त्या कोणार्क मुनिसत्तमाः ।
गन्धैं पुष्पैस्तथा दीपैर्धूपैर्नैवेद्यकैरपि ॥४७
दण्डवत् प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथा स्तवैः ।
एव सम्पूज्य त देव सहस्रांशु जगत्पतिम् ॥४८
दशानामश्वमेधाना फल प्राप्नोति मानवः ।
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तो युवा दिव्यवपुर्नरः ॥४९

भगवान आदित्य देव को अर्घ्य देने से रोग से युक्त मनुष्य रोग से विमुक्त हो जाया करता है और धन की प्राप्ति की इच्छा रखता है उसको धन प्राप्त हो जाया करता है। विद्या के चाहने वाला विद्या प्राप्त

कर लेता है और जो पुत्र की अभिलाषा रखता है वह पुत्रवान् हो जाता है ।।४३।। जिस-जिस कामना का हृदय मे ध्यान रखकर सूर्य देव को अर्घ्य दिया जाता है सुधी पुरुष उसी कामना का फल प्राप्त कर लिया करता है ।।४४।। सागर मे स्नान करके सूर्य देव को अर्घ्य देकर जो उनको प्रणाम किया करता है वह नर हो अथवा नारी हो सम्पूर्ण कामनाओ का फल प्राप्त करलेता है ।।४५।। इसके पश्चात् सूर्य देव के आलय पर जावे और हाथ मे पुष्प लेकर मौने व्रत रखते हुए वहाँ प्रवेश करना चाहिए । वहाँ भानु देव का अर्चन कर तीन प्रदक्षिणा करे ।।४६।। हे मुनिगणो ! परमाधिक भक्ति की भावना से कोणार्क देव का पूजन करना चाहिए । अर्चन मे पुष्प, गन्ध, दीप धूप, नैवेद्य उपचार लेकर ही पूजन करे तथा अन्त मे दण्डवत प्रणाम करके जय शब्दो की ध्वनि के साथ स्तवन करे । इस तरह से सहस्रांशु देव का जो उस जगत् के पति हैं भली-भाँति पूजन करे । इस पूजन के करने से मनुष्य दशअश्व मेधो को पुण्य फल प्राप्त कर लेता है । युवा मनुष्य दिव्य शरीर धारी होकर सभी पापो से विमुक्त हो जाता है।।४७-४६।।

सप्तावरान् सप्त परान् वशानुद्धृत्य भो द्विजाः ।
विमानेनार्कवर्णेन कामगेन सुवर्च्चसा ।।५०
उपगीयमानो गन्धर्व्वे सूर्य्यलोक स गच्छति ।
भुक्त्वा तत्र वरान् भोगान् यावदाभूतसंप्लवम् ।।५१
पुण्यक्षयादिहायातः प्रवरे योगिनां कुले ।
चतुर्व्वेदो भवेद्विप्रः स्वधर्म्मनिरतः शुचिः ।।५२
योग विवस्वतः प्राप्य ततो मोक्षनवाप्नुयात् ।
चैत्रे मासि सिते पक्षे यात्रां दमनभञ्जिकाम् ।।५३
यः करोति नरस्तत्र पूर्व्वोक्तं स फल लभेत् ।
शयनोत्थापने भानोः सकान्त्या विषुवायने ।।५४
वारे रवेस्तियौ चैव पर्व्वकालेऽथा द्विजाः ।
ये तत्र यात्रा कुर्व्वन्ति श्रद्धया सयतेन्द्रियाः ।।५५

विमानेनार्कवर्णेन सूर्य्यलोकं व्रजन्ति ते ।
आस्ते तत्र महादेवस्तीरे नदनदीपतेः ।।५६
रामेश्वर इति ख्यातः सर्व्वकामफलप्रदः ।
ये तं पश्यन्ति कामारिं स्नात्वा सम्यङ्महोदधौ ।५७

हे द्विजो ! सूर्य देव का पूजक प्राणी अपने पहिली और पिछली सात-सात पीढ़ियों को उद्धृत करके सूर्य के समान वर्ण वाले तथा इच्छानुसार गमन करने वाले विमान के द्वारा जो कि सुन्दर वर्चस वाला है और जिसकी प्रशंसा का गान गन्धर्व किया करते हैं वह सीधा सूर्यलोक को गमन किया करता है । वहाँ पर वह परम श्रेष्ठ भोगों का जब तक भूत-सम्प्लव (महाप्रलय) होता है उपभोग किया करता है ।।५०-५१।। जब इसके पुण्यों का क्षय हो जाता है तो फिर वह वहाँ से यहाँ पर योगियों के कुल में आकर जन्म ग्रहण किया करता है । वह विप्र चारों वेदों का ज्ञाता स्वधर्म में निरत और शुचि होता है ।।५२।। विवस्वान् का योग प्राप्त करके फिर मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है । चैत्रमास के शुक्लपक्ष में जो मानव दमन भञ्जिका की यात्रा करता है वह मनुष्य पहिले बताये हुए पुण्य-फल का लाभ किया करता है विषुव अयन में सङ्क्रान्ति में भानु देव के शयन तथा उत्थापन के अवसर में—रविवार के दिन में अथवा हे द्विजगणो ! किसी भी पर्व के काल में जो लोग श्रद्धा से संयत इन्द्रियों वाले होकर वहाँ पर यात्रा किया करते हैं वे सूर्य के समान वर्ण वाले विमान के द्वारा सूर्यलोक में गमन किया करते हैं । वहाँ पर नदों और नदियों के स्वामी सागर के तट-पर श्री महादेवजी विराजमान हैं । जो "रामेश्वर"—इस नाम से विख्यात हैं और सर्व कामनाओं के फलों को प्रदान करने वाले हैं । जो लोग उन कामारि प्रभु का दर्शन किया करते हैं और उस महोदधि में भली-भाँति स्नान किया करते हैं ।।५३-५७।।

गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैर्वरैः ।
प्रणिपातैस्तथा स्तोत्रैर्गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः ।।५८

राजसूयफलं सम्यग्वाजिमेधफलं तथा ।
प्राप्नुवन्ति महात्मानः ससिद्धि परमां तथा ॥५६
कामगेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना ।
उपगीयमाना गन्धर्व्वैः शिवलोक व्रजन्ति ते ।६०
आभूतसंप्लवं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् ।
पुण्यक्षयादिहागत्य चातुर्व्वेदा भवन्ति ते ॥६१
शाङ्करं योगमास्थाय ततो मोक्ष व्रजन्ति ते ।
यस्तत्र सवितुः क्षेत्रे प्राणांस्त्यजति मानवः ॥६२
स सूर्य्यलोकमास्थाय देववन्मोदते दिवि ।
पुनर्मानुपतां प्राप्य राजा भवति धार्म्मिकः ॥६३
योगं रवेः समासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।
एवं मया मुनिश्रेष्ठाः प्रोक्तं क्षेत्रः सुदुर्लभम्
कोणार्कस्योदधेस्तीरे भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥६४

यहाँ पर शिवार्चन जो लोग गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और श्रेष्ठ नैवेद्यों के द्वारा करते हैं वे राजसूय यज्ञ तथा अश्वमेध यज्ञ करके समान पुण्य-फल प्राप्त किया करते हैं। जो वहाँ पर शिव को प्रणिपात करके स्तोत्रों के द्वारा तथा गीत एवं वाद्यों के द्वारा सुन्दर उनका स्तवन करते हैं। वे महान् आत्माओं वाले पुरुष भी परम सिद्धि की प्राप्ति किया करते हैं ॥५८-५९॥ स्वेच्छानुकूल गमन करने वाले किङ्किणी जालों की मालाओं से युक्त विमान के द्वारा गन्धर्वों के द्वारा गीयमान होते हुए वे लोग शिवलोक को जाया करते हैं ॥६०॥ जब तक सब भूतों का संप्लव होता है तब तक वहाँ पर परमोत्तम भोगों का उपभोग करके पुण्य के क्षीण होने पर यहाँ जन्म लेकर चारों वेदों के ज्ञाता विप्र होते हैं ॥६१॥ शाङ्कर योग में समास्थित होकर फिर वे मोक्ष को प्राप्त किया करते हैं। जो वहाँ पर सूर्य देव के क्षेत्र में मनुष्य अपने प्राणों का परित्याग किया करता है वह सूर्यलोक में स्थित होकर दिवलोक में देवों की तरह आनन्द प्राप्त किया करता है। फिर मनुष्य जीवन का लाभ करके परम धार्मिक राजा हुआ करता है ॥६२-६३॥ रवि-देव के

योग को प्राप्त करके फिर वह मोक्ष को प्राप्त किया करता है। हे मुनि-श्रेष्ठो ! इस प्रकार से मैंने आप सब लोगों के सामने यह परम दुर्लभ क्षेत्र का वर्णन कर दिया है जो कोणार्क उदधि के तट-पर भुक्ति और मुक्ति दोनों के फलों को प्रदान करने वाला है ॥६४॥

—※—

## २१—सूर्यपूजाप्रकरण

श्रुतोऽस्माभिः सुरश्रेष्ठ भवता यदुदाहृतम् ।
भास्करस्य परं क्षेत्रं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१
न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तः सुखदां कथाम् ।
तव वक्त्रोद्भवां पुण्यामादित्यस्याघनाशिनाम् ॥२
अतः परं सुरश्रेष्ठ ब्रूहि नो वदतांवर ।
देवपूजाफलं यच्च यच्च दानफलं प्रभो ॥३
प्रणिपाते नमस्कारे तथा चैव प्रदक्षिणे ।
दीपधूपप्रदाने च समार्ज्जनविधौ च यत् ॥४
उपवासे च यत् पुण्यं यत् पुण्यं नक्तभोजने ।
अर्घ्यश्च कीदृशः प्रोक्तः कुत्र वा सम्प्रदीयते ॥५
कथञ्च क्रियते भक्तिः कथं देवः प्रसीदति ।
एतत् सर्व्वं सुरश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥६

मुनिगण ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! आपने जो भास्कर देव का परमोत्तम क्षेत्र का वर्णन किया है जो कि भोगों और मोक्ष दोनों के प्रदान करने वाला है हम लोगों ने श्रवण कर लिया है ॥१॥ किन्तु ऐसी सुख देने वाली कथा को सुनते हुए भी हम लोग तृप्ति को प्राप्त नहीं हो रहे हैं जो कि आपके मुखारविन्द के द्वारा कही गयी है और परम पुण्यमयी तथा आदित्य देव की कथा अघों का विनाश करने वाली है ॥२॥ हे सुरों मे परमश्रेष्ठ ! इससे भी आगे जो देव की पूजा का फल है और जो-जो धन देने का पुण्य फल होता है उसे भी आप वर्णित कीजिए।

आप तो वक्ताओं में परमाधिक श्रेष्ठ वक्ता हैं ॥३॥ सूर्य देव के प्रणिपात करने में नमस्कार में तथा उनकी परिक्रमा करने में धूप दीप समर्पित करने में और वहाँ पर समार्जन करने में उपवास में तथा रात्रि के भोजन में जो भी पुण्य होता है उसे बतलाइये। अर्घ्य किस प्रकार का होता है और वह कहाँ पर दिया जाता है। भगवान् सूर्यदेव की भक्ति किस तरह से की जाती है तथा देव किस प्रकार से परम प्रसन्न हुआ करते हैं? हे सुरश्रेष्ठ! यह सभी हम लोग श्रवण करना चाहते हैं ॥४-६॥

अर्घ्यं पूजादिकं सर्व्वं भास्करस्य द्विजोत्तमाः ।
भक्तिं श्रद्धां समाधिञ्च कथ्यमानं निबोधत ॥७
मनसा भावना भक्तिरिष्टा श्रद्धा च कीर्त्यते ।
ध्यानं समाधिरित्युक्तं शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥८
तत्कथा श्रावयेद् यस्तु तद्भक्तान् पूजयीत वा ।
अग्निशुश्रूषकश्चैव स वै भक्तः सनातनः ॥९
तच्चित्तस्तन्मनाश्चैव देवपूजारतः सदा ।
तत्कर्म्मकृद्भवेद् यस्तु वै भक्तः सनातनः ॥१०
देवार्थे क्रियमाणानि यः कर्म्माण्यनुमन्यते ।
कीर्त्तनाद्वापरो विप्राः स वै भक्ततरो नरः ॥११
नाभ्यसूयेत तद्भक्तान् ननिन्धाश्चान्यदेवताम् ।
आदित्यव्रतचारी च स वै भक्ततरो नरः ॥१२
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपञ्जिघ्रन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
यः स्मरेद्भास्करं नित्यं स वै भक्ततरो नरः ॥१३
एवंविधा त्विय भक्तिः सदा कार्य्या विजानता ।
भक्त्या समाधिना चैव स्तवेन मनसा तथा ॥१४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजोत्तमो! अर्घ्य और अर्चना आदि सब तथा सूर्य की श्रद्धा और समाधि मेरे द्वारा कही जा रही है उसको अब आप भली भाँति समझ लीजिए ॥७॥ मन द्वारा जो भावना की जाती है वही अभीष्ट भक्ति होती है और यही श्रद्धा कही जाया करती है। जो ध्यान किया जाता है वही समाधि है—ऐसा कहा गया है। अब आप

लोग पूर्णतया सावधान होकर श्रवण कीजिए ॥८॥ उनकी कथा को जो भक्तों को श्रवण कराता है तथा उन भक्तों का अर्चन किया करता है एव अग्निदेव की जो शुश्रूषा किया करता है वही परम सनातन भक्त होता है ॥९॥ जो अपने इष्टदेव मे ही अपना चित्त लगाये रहता है—अह-निश उन्ही मे मन को रमाता है—जो देव की पूजा मे रति रखता है और सदा इष्टदेव के कर्मों मे करने मे संलग्न रहता है वही सनातन भक्त कहा जाया करता है ॥१०॥ देव के लिये किये हुए कर्मों को जो अनुमोदित किया करता है हे विप्रगण ! जो उन कर्मों का ही कीर्तन करता है वह मनुष्य ही अधिक भक्त हुआ करता है ॥११॥ इष्टदेव के भक्तों की कभी भी अभ्यसूया न करे तथा किसी भी अन्य देवता की निन्दा नही करनी चाहिए। जो ऐसा भक्त आदित्यदेव के व्रत का समाचरण करने वाला हो वह मनुष्य अधिक भक्त होता है ॥१२॥ जो गमन करता हुआ स्थित रहकर-शयन करते हुए-सूँघते हुए और उन्मेष एव निमेष करते हुए भी नित्य ही भगवान् भास्कर देव का स्मरण किया करता है वह विशेष भक्त मनुष्य हुआ करता है ॥१३॥ इस प्रकार की यह भक्ति होती है और इस भक्ति को ज्ञानवान् पुरुष के द्वारा सदा ही करनी चाहिए। ऐसी भक्ति से-समाधि से तथा मानसिक सव से ही सूर्य देव की उपासना करनी चाहिए ॥१४॥

क्रियते नियमा यस्तु दान विप्राय दीयते ।
प्रतिगृह्णन्ति तं देवा मनुष्याः पितरस्तथा ॥१५
पत्र पुष्प फल तोय यद्भक्त्या समुपाहृतन् ।
प्रतिगृह्णन्ति तद्देवो नास्तिकान् वर्जयन्ति च ॥१६
भावशुद्धिः प्रयोक्तव्या नियमाचारसंयुता ।
भावशुद्ध्या क्रियते यत्तत् सर्व्वं सफल भवेत् ॥१७
स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वतः ।
उपवासेन भक्त्या वै सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥१८
प्रणिधाय शिरो भूम्या नमस्कारं करोति यः ।
तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१९

भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्य्यात् प्रदक्षिणाम् ।
प्रकक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥२०
सूर्य्यं मनसि यः कृत्वा कुर्य्याद्व्योमप्रदक्षिणाम् ।
प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्व्वे देवा भवन्ति हि ॥२१

जो यह सब नियम का पालन किया जाता है और जो विप्र के लिये दान दिया जाया करता है उसको देवगण-पितृगण और मनुष्य सभी ग्रहण किया करते है ॥१५॥ जो हार्दिक भक्ति के साथ पत्र-पुष्प-फल और जल भी समर्पित किये जाते हैं उसको देव ग्रहण किया करते हैं किन्तु जो नास्तिक होते है अर्थात् देवो की सत्ता को ही नही मानते हैं उनको वर्जित कर दिया करते हैं ॥१६॥ नियमों तथा आचारो से समन्वित जो हार्दिक भाव की शुद्धि है उसी का प्रयोग करना चाहिए भावशुद्धि के द्वारा जिस कर्म को भी किया जाता है वह सभी सफल हुआ करता है । सबमे मुख्य हृदय की भावना की शुद्धि ही होती है ॥१७॥ भगवान् विवस्वान् की पूजा-स्तुति-जप-उपहार और उपवास के द्वारा जो कि भक्ति की भावना से किये जाते है मनुष्य सभी पापो से विमुक्त हो जाया करता है ॥१८॥ जो अपने मस्तक को भूमि मे टेक कर सूर्य देव को नमस्कार करता है वह उसी क्षण मे समस्त पापो से छुटकारा पा जाया करता है–इसमे कुछ भी सशय नही है ॥१६॥ जो भक्ति से युक्त मनुष्य सूर्य की प्रदक्षिणा करता है उसने मानो सातो द्वीपो वाली सम्पूर्ण वसुन्धरा की ही परिक्रमा करली है अर्थात् उसे समस्त भूमि की प्रदक्षिणा का पुण्य-फल प्राप्त हो जाया करता है ॥२०॥ मन मे सूर्य देव का ध्यान करके जो व्योम मे प्रदक्षिणा किया करता है उसने सभी देवताओ की प्रदक्षिणा करने का फल प्राप्त कर लिया है ॥२१॥

एकाहारो नरो भूत्वा षष्ठ्यां योऽर्च्चयते रविम् ।
नियमव्रतचारो च भवेद्भक्तिसमन्वितः ॥२२
सप्तम्यां वा महाभागाः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।
अहोरात्रोपवासेन पूजयेद् यस्तु भास्करम् ॥२३

सप्तम्यामथवा षष्ठ्यां स याति परमां गतिम् ।
कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां सोपवासो जितेन्द्रियः ॥२४
सर्व्वरत्नोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ।
पद्मप्रभेण यानेन सूर्य्यलोक स गच्छति ॥२५
शुल्कपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नरः ।
सर्व्वशुल्कोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ॥२६
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः सूर्य्यलोक स गच्छति ।
अर्कसम्पुटसयुक्तमुदक प्रसृत पिबेत् ॥२७
क्रमवृद्ध्या चतुर्व्विशमेकैक क्षपयेत् पुनः ।
द्वाभ्या सवत्सराभ्यान्तु समाप्तनियमो भवेत् ॥२८

एक बार ही आहार करके जो मनुष्य षष्ठी तिथि मे रवि देव की अर्चना किया करता है तथा नियमों मे समास्थित होकर ब्रह्मचर्य धारण करता है एव भक्तिभाव से युक्त होता है अथवा सप्तमी तिथि मे ऐसा करता है हे महाभागो ! वह मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है। जो एक अहोरात्र के उपवास को करके भास्कर देव की पूजा किया करता है। षष्ठी या सप्तमी किसी भी तिथि मे करे तो वह मनुष्य परमोतम गति को प्राप्त किया करता है। मास की कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि मे जितेन्द्रिय होकर जो उपवास करता है और सब रत्नो के उपहार के द्वारा सूर्य देव का अर्चन किया करता है वह पद्म के समान प्रभा वाले यान के द्वारा अन्त मे सीधा सूर्यलोक मे गमन किया करता है ॥२४-२५॥ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी मे मनुष्य उपवास परायण होकर सम्पूर्ण शुक्ल वर्ण के उपहारो से जो भगवान् भास्कर देव का पूजन करता है वह सब पापो से विमुक्त होकर सूर्यलोक को गमन किया करता है। अर्क सम्पुट से सयुक्त उदक का प्रसृत पान करे तथा क्रम वृद्धि से चौबीस को एक-एक करके पुनः क्षीण करता जावे। इस प्रकार से दो वर्षो मे समाप्त नियम वाला होता है ॥२६-२८॥

सर्व्वकामप्रदा ह्येषा प्रशस्ता ह्यर्कसप्तमी ।
शुल्कपक्षस्य सप्तम्यां यदादित्यदिनं भवेत् ॥२६
सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महत् फलम् ।
स्नानं दानं तपो होम उपवासस्तथैव च ॥३०
सर्व्वं विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम् ।
ये चादित्यदिने प्राप्ते श्राद्धं कुर्व्वन्ति मानवाः ॥३१
यजन्ति च महाश्वेतं ते लभन्ते यथेप्सितम् ।
येषां धर्म्म्याः क्रियाः सर्व्वाः सदैवोद्दिश्य भास्करम् ॥३२
न कुले जायते तेषां दरिद्रो व्याधितोऽपि वा ।
श्वेतया रक्तया वापि पीतमृत्तिकयापि वा ॥३३
उपलेपनकर्त्ता तु चिन्तितं लभते फलम् ।
चित्रभानुं विचित्रैस्तु कुसुमैश्च सुगन्धिभिः ॥३४
पूजयेत् सोपवासो यः स कामानीप्सितांल्लभेत् ।
घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतैलेन वा पुनः ॥३५
आदित्यं पूजयेद्यस्तु चक्षुषा न स हीयते ।
दीपदाता नरो नित्यं ज्ञानदीपेन दीप्यते ॥३६

यह अर्क सप्तमी सब कामनाओं को प्रदान करने वाली होती है और परम प्रशस्त मानी गयी है। शुक्ल पक्ष की सप्तमी मे जब आदित्य का दिन होवे ॥२६॥ वह विजया नाम वाली सप्तमी कही जाती है। उसमे दिये हुए दान का महान् फल हुआ करता है। चाहे उस दिन मे स्नान किया जावे कुछ भी शुभ एवं सत्कर्म किया जावे सब विजय सप्तमी मे महान् पातकों का नाश करने वाला होता है। जो मनुष्य आदित्य के दिन मे प्राप्त होने पर श्राद्ध किया करते हैं और महाश्वेत का यजन किया करते हैं वे जो भी कुछ चाहते हैं उसे ही प्राप्त कर लिया करते हैं। जिनकी समस्त क्रियाऐं धर्म युक्त होती हैं और सदा भगवान् भास्कर देव का उद्देश्य ग्रहण करके ही की जाया करती हैं उनके कुल मे कोई भी दरिद्र अथवा व्याधिग्रस्त समुत्पन्न नहीं हुआ करता है। श्वेत-रक्त अथवा पीत मृत्तिका से जो उपलेपन करने वाला होता है वह

चिन्तित फल को प्राप्त किया करता है। जो चित्रभानु का विचित्र, सुगन्ध से युक्त कुसुमों के द्वारा उपवास करके पूजन किया करता है वह अपनी अभीप्सित कामनाओं की प्राप्ति किया करता है। घृत से दीपक को जलाकर अथवा तिल तैल से दीपक जलाकर जो भगवान् आदित्य देव की नित्य अर्चना किया करता है वह कभी भी चक्षु से क्षीण नहीं होता है। दीपदाता मनुष्य नित्य ही ज्ञान दीप से दीप्त रहता है ॥३०-३६॥

तिलाः पवित्रं तैलं वा तिलगोदानमुत्तमम्।
अग्निकार्य्ये च दीपे च महापातकनाशनम् ॥३७
दीपं ददाति यो नित्यं देवतायनेषु च।
चतुष्पथेषु रथ्यासु रूपवान् सुभगो भवेत् ॥ ८
हविर्भिः प्रथमः कल्पो द्वितीयश्चौषधीरसैः।
वसामेदोस्थिनिर्य्यासैर्न तु देयं कथञ्चन ॥३९
भवेदूर्ध्वगतिर्द्दीपो न कदाचिदधोगतिः।
दाता दीप्यति चाप्येवं न तिर्य्यग्गतिमाप्नुयात् ॥४०
ज्वलमानं सदा दीपं न हरेन्नापि नाशयेत्।
दीपहर्त्ता नरो बन्धं नाशं क्रोधं तमो व्रजेत् ॥४१
दीपदाता स्वर्गलोके दीपमालेव राजते।
यः समालभते नित्यं कुङ्कुमागुरुचन्दनैः ॥४२

तिल परम पवित्र हैं अथवा तिलों का तैल और तिलों का गोदान भी परमोत्तम होता है। अग्नि कार्य में और दीप में यह महापातकों का विनाश करने वाला होता है ॥३७॥ जो पुरुष नित्य प्रति देवों के आयतनों में दीपक जलाया करता है—चतुष्पथों ( चौराहों ) में—रथ्याओं में ( गलियों में ) दीपक जलाता है वह परम रूप वाला और सुभग हुआ करता है ॥ ८॥ हवियों से प्रथम कल्प है और दूसरा कल्प औषधियों के रसों से होता है। वसा-मेद-अस्थि और निर्यासों से कभी भी नहीं देना चाहिए ॥ ९॥ दीप हमेशा ऊर्ध्व गति वाला ही होना चाहिए। इस प्रकार से दीपों का दाता दीप्त होता है और कभी भी तिर्यग् गति

को प्राप्त नहीं किया करता है ॥४०॥ जलते हुए दीपक को सदा हरण न करे और न उसका नाश ही करे। दीपक का हरण करने वाला पुरुष बन्धन-नाश-क्रोध और तम को प्राप्त किया करता है ॥४१॥ दीपो का दान करने वाला पुरुष स्वर्ग लोक मे दीप माला के ही समान राजित होता है। जो मनुष्य नित्य ही कुंकुम-अगुरु और चन्दन के द्वारा समालेपन किया करता है वह धनी होता है ॥४२॥

सम्पद्यते नरः प्रेत्य धनेन यशसा श्रिया ।
रक्तचन्दनसमिश्रं रक्तपुष्पैः शुचिर्नरः ॥४३
उदयेऽर्घ्यं सदा दत्वा सिद्धि सवत्सराल्लभेत् ।
उदयात् परिवर्त्तेत यावदस्तमने स्थितः ॥४४
जपन्नभिमुखः किञ्चिन्मन्त्र स्तोममथापि वा ।
आदित्यव्रतमेतत्तु महापातकनाशनम् ॥४५
अर्घ्येण सहितञ्चैव सर्व्वं साङ्गं प्रदीपयेत् ।
उदये श्रद्धया युक्तं सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥४६
सुवर्णधेन्वनडुहवसुधावस्त्रसयुतम् ।
अर्घ्यप्रदाता लभते सप्तजन्मानुग फलम् ॥४७
अग्नौ तोयेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्या तथैव च ।
प्रतिमाया तथा पिण्ड्यां देयमर्घ्यं प्रयत्नतः ॥४८
नापसव्य न सव्यञ्च दद्यादभिमुखः सदा ।
सघृतं गुग्गुल वापि रवेर्भक्तिसमन्वितः ॥४९

ऐसा पुरुष प्राणान्त होने पर धन एव यश से और श्री से सम्पन्न हुआ करता है। जो मनुष्य पवित्र होकर रक्त चन्दन से संयुत रक्त वर्ण के पुष्पो से सदा उदय काल मे अर्घ्य दिया करता है वह पुरुष एक वर्ष मे सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। जो उदय काल से आरम्भ करके जब तक अस्तकाल हो, स्थित रहता है और सूर्य के अभिमुख होकर किसी मन्त्र का जाप या किसी स्तोत्र का पाठ किया करता है। यह परमोत्तम आदित्य व्रत है जो महापातको का नाश करने वाला होता है ॥४३-४५॥ अर्घ्य के सहित सब साङ्ग प्रदान करना चाहिए। उदय काल मे

श्रद्धा से युक्त होकर ऐसा करने से सभी पापों से छुटकारा पा जाया करता है ॥४६॥ सुवर्ण-धेनु-अनड्वान्-वसुधा और वस्त्र से युक्त अर्घ्य के देने वाला पुरुष सात जन्मानुग फल को प्राप्त करता है ॥४७॥ अग्नि मे, जल मे, अन्तरिक्ष मे तथा पवित्र भूमि मे, प्रतिमा मे और पिण्डी मे प्रयत्न पूर्वक अर्घ्य देना चाहिए ॥४८॥ अर्घ्य कभी भी दाहिनी तथा बाँयी ओर न देवे और सदा ही अभिमुख होकर ही अर्घ्य देना चाहिए। घृत के साथ गूगल को भी देवे और भक्ति से युक्त होकर ही सूर्य को अर्घ्य देना चाहिए ॥४६॥

तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।
श्रीवास चतुरस्रश्च देवदारु तथैव च ॥५०
कर्पूरागुरुधूपानि दत्वा वै स्वर्गगामिनः ।
अयने तूत्तरे सूर्य्यमथवा दक्षिणायने ॥५१
पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ।
विषुवेषूपरागेषु षडशीतिमुखेषु च ॥५२
पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ।
एव वेलासु सर्व्वासु सर्व्वकालञ्च मानवः ॥५३
भक्त्या पूजयते योऽर्कं सोऽर्कलोके महीयते ।
कृसरैः पायसैः पूपैः फलमूलघृतोदनैः ॥५४
बलि कृत्वा तु सूर्य्याय सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् ।
घृतेन तर्पण कृत्वा सर्व्वसिद्धो भवेन्नरः ॥५५
क्षीरेण तर्पण कृत्वा मनस्तापैर्न युज्यते ।
दध्ना तु तर्पणं कृत्वा कार्य्यसिद्धि लभेन्नरः ॥५६

भगवान् सूर्यदेव को अर्घ्य देने वाला मनुष्य उसी क्षण मे तुरन्त सभी पापो से मुक्त हो जाया करता है—इसमे कुछ भी संशय नही है। श्री वास-चतुरस्र देवदारु-कर्पूर-अगुरु-धूप देकर मनुष्य स्वर्गगामी हो जाया करते हैं। उत्तरायन मे अथवा दक्षिणायन मे सूर्यदेव का पूजन करके विशेष रूप से मनुष्य समस्त पापो से छुटकारा प्राप्त कर लिया करता है। विषु वेषु-उपराग ( ग्रहण ) मे और षडशीति मुखो मे विशेष

रूप से पूजन करके मानव सभी पापो से प्रमुक्त हो जाता है। इस प्रकार से सब वेलाओ में और सर्वकाल मे मनुष्य भक्ति की भावना से जो भी सूर्य का अर्चन करता है वह सूर्यलोक मे पहुँच कर प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है। कृसर-पायस-पूआ-फल-मूल-घृत और ओदन आदि के द्वारा सूर्यदेव के लिये बलि देकर मनुष्य सभी मनोरथो की प्राप्ति किया करता है। घृत के द्वारा तर्पण करके मनुष्य सर्वसिद्ध हो जाता है ॥५० ५५॥ क्षीर के द्वारा तर्पण करके मनुष्य मानसिक तापों से कभी युक्त नही होता है। दधि से सूर्यदेव का तर्पण करके मनुष्य कार्य की सिद्धि का लाभ प्राप्त कर लेता है ॥५६॥

स्नानार्थमाहरेद् यस्तु जल भानोः समाहितः।
तीर्थेषु शुचितापन्नः स याति परमा गतिम् ॥५७
छत्रं ध्वज वितान वा पताका चामराणि च।
श्रद्धया भानवे दत्त्वा गतिमिष्टामवाप्नुयात् ॥५८
यद्यद्द्रव्यं नरो भक्त्या आदित्याय प्रयच्छति।
तत्तस्य शतसाहस्रमुत्पादयति भास्करः ॥५९
मानस वाचिक वापि कायज यच्च दुष्कृतम्।
सर्व्वं सूर्य्यप्रसादेन तदशेष व्यपोहति ॥६०
एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम्।
यथोक्तदक्षिणैर्विप्रैर्न तत् क्रतुशतैरपि ॥६१

जो पुरुष सावधान होकर भानुदेव के स्नान के लिये जल का आहरण किया करता है वह तीर्थो मे शुचिता को प्राप्त होने वाला परम गति को प्राप्त किया करता है ॥५७॥ छत्र-ध्वजा-वितान-पताका-चमर इन वस्तुओं को परमार्थिक श्रद्धा से जो भानुदेव को समर्पित करता है वह अपनी अभीष्ट गति को प्राप्त कर लिया करता है ॥५८॥ मनुष्य जिस-जिस द्रव्य को भक्तिभाव के साथ आदित्य देव के लिये अर्पित करता है उस उस वस्तु को शतगुना एवं सहस्र गुना भगवान् भास्कर उत्पादन कर दिया करते हैं ॥५९॥ मानस-वाचिक और कायज जो भी कुछ दुष्कृत होता है वह सभी सूर्यदेव के प्रसाद से पूर्णतया विनष्ट हो

जाया करता है ॥६०॥ एकाह भानुदेव की पूजा का जो पुण्य-फल प्राप्त किया जाता है वह यथोक्त दक्षिणा वाले विप्रो के द्वारा सैकड़ो क्रतुओ से भी प्राप्त नही किया जा सकता है ॥६ ॥

—:※:—

## २२ —आदित्यमाहात्म्यवर्णन (1)

अहो देवस्य माहात्म्य श्रुतमेव जगत्पते ।
भास्करस्य सुरश्रेष्ठ वदतस्तेपु दुर्लभम् ॥१

भूयः प्रब्रूहि देवेश यत् पृच्छामो जगत्पते ।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् पर कौतूहल हि न. ॥२

गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।
य इच्छेन्मोक्षमास्थ तु देवता का यजेत राः ॥३

कुतो ह्यस्याक्षयः स्वर्गः कुतो निःश्रेयस परम् ।
स्वर्गतश्चैव कि कुर्य्याद्येन च च्यवते पुनः ॥४

देवाना चात्र को देवः पितृणाश्चैव क. पिता ।
यस्मात् परतर नास्ति तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर ॥५

कुतः सृष्टमिद विश्व सर्व्व स्थावरजङ्गमम् ।
प्रलये च कमभ्येति तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥६

उद्यन्तेवैप कुरुते जगद्वितिमिर करैः ।
नातः परतरो देवः कश्चिदन्यो द्विजोत्तमाः ॥७

मुनिगण ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! जगत् के पति भास्कर देव का माहात्म्य हम लोगो ने आप के मुख से श्रवण किया है जोकि बहुत ही दुर्लभ है । हे जगत् के स्वामिन् ! हे देवेश ! आपसे हम लोग पुनः कुछ पूछना चाहते हैं । आप कृपा कर यह बतलाइये । हे ब्रह्मन् ! हमको इस बात के जानने के लिये हृदय मे बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥१-२॥

गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी इनमें जो मोक्ष चाहता है वह किस देव का यजन करे ? ॥३॥ इस प्राणी का अक्षय स्वर्ग कैसे होता है और परमनिश्रेय्यस कैसे हुआ करता है। यदि यह स्वर्ग मे भी पुण्यों के प्रभाव से पहुंच जावे तो वहाँ पर भी उसे क्या करना चाहिये जिससे पुनः उसका च्यवन वहाँ से न होवे ॥४॥ यहाँ पर देवों का भी देव कौन है और पितृगणों का भी पिता कौन है ? हे सुरेश्वर ! हमको उसे बतलाइये जिससे कोई बड़ा नहीं है ॥५॥ यह सम्पूर्ण जगत् जिसमे जड़ और चेतन सभी है कैसे सृजन किया गया है और जिस समय में महाप्रलय होता है तो यह सम्पूर्ण विश्व किसमे चला जाया करता है— यह सब हमको बतलाने की कृपा कीजिए ॥६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— हे द्विजोत्तमो ! यह भगवान् भास्कर उदय होते ही इस समस्त जगत् को अन्धकार से रहित कर दिया करता है ? इससे बड़ा अन्य कोई भी देवता नही है अर्थात् यह सूर्य्य देव ही परात्पर देव हैं ॥७॥

अनादिनिधनो ह्येष पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः ।
तापयत्येष त्रीँल्लोकान् भवन्रश्मिभिरुल्वणः ॥८
सर्व्वदेवमयो ह्येष तपता तपनो वरः ।
सर्व्वस्य जगतो नाथः सर्व्वसाक्षी जगत्पतिः ॥९

संक्षिपत्येष भूतानि तथा विसृजते पुनः ।
एष भाति तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः ॥१०
एष धाता विधाता च भूतादिर्भूतभावनः ।
न ह्येष क्षयमायाति नित्यमक्षयमण्डलः ॥११

पितॄणां च पिता ह्येष देवतानां हि देवता ।
ध्रुवस्थानं स्मृत ह्येतद्यस्मान्न च्यवते पुनः ॥१२
सर्गकाले जगत् कृत्स्नमादित्यात् सम्प्रसूयते ।
प्रलये च तमभ्येति भास्करं दीप्ततेजसम् ॥१३

योगिनश्चाप्यसंख्यातास्त्यक्त्वा गृहकलेवरम् ।
वायुर्भूत्वा विशन्त्यस्मिंस्तेजोराशौ दिवाकरे ॥१४

यह देव आदि और अन्त से रहित है और यह पुरुष शाश्वत एवं अव्यय है। अपनी रश्मियों से अत्यन्त उल्वण होकर यही देव तीनों लोकों को सतप्त किया करता है ॥८॥ यह सर्वदेवमय और तपन करने वालों मे परमश्रेष्ठ है। यही इस सम्पूर्ण जगत् का नाथ है और इस जगत् का पति एव सर्व-साक्षी है ॥६॥ यही समस्त भूतों को सक्षिप्त किया करता है तथा पुन उनका सृजन भी करता है। यही प्रकाशित होता है, तपता है और अपनी किरणों के द्वारा वर्षा किया करता है ॥१०॥ यही धाता है विधाता है-यही भूतों का आदि और समस्त भूतों पर कृपा करके पालन करने वाला है। इसका कभी भी क्षय नहीं होता है और इसका मण्डल नित्य ही क्षय रहित होता है ॥११॥ यही पितृगणों का भी पिता है तथा सब देवो का भी देवता है। इसका स्थान ध्रुव कहा गया है। यहा से पुन च्यवन नहीं हुआ करता है ॥१२॥ जब सर्ग का समय होता है तो यह सम्पूर्ण जगत् आदित्य से ही प्रसूत हुआ करता है। जिस समय मे प्रलय होता है इसी दीप्ततेज वाले भास्कर देव मे यह सम्पूर्ण विश्व लीन हो जाया करता है ॥१३॥ असख्य योगीजन भी गृह कलेवर का त्याग करके वायु स्वरूप होकर इसी तेजो राशि दिवाकर देव मे प्रवेश कर जाया करते है ॥१४॥

अस्य रश्मिसहस्राणि शाखा इव विहङ्गमाः।
वसन्त्याश्रित्य मुनयः ससिद्धा दैवतैः सह ॥ १५
गृहस्था जनकाद्याश्च राजानो योगधर्म्मिणः।
वालखिल्यादयश्चैव ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥१६

वानप्रस्थाश्च ये चान्ये व्यासाद्या भिक्षवस्तथा।
योगमास्थाय सर्व्वे ते प्रविष्टाः सूर्य्यमण्डलम् ॥१७
शुको व्याससुतः श्रीमान्योगधर्ममवाप्य सः।
आदित्यकिरणान् गत्वा ह्यपुनर्भावमास्थितः ॥१८
शब्दमात्रश्रुतिमुखा ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
प्रत्यक्षोऽयं परो देवः सूर्य्यस्तिमिरनाशन. ॥१६

तस्मादन्यत्र भक्तिर्हि न कार्य्या शुभमिच्छता ।
यस्माद्दृष्टेरगम्यास्ते देवा विष्णुपुरोगमाः ॥२०
अतो भवद्भिः सततमभ्यर्च्यो भगवान् रविः ।
स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः ॥२१

इस देव की सहस्रों रश्मियाँ होती हैं। जैसे पक्षीगण द्रुम की शाखाओं में आश्रय लेकर वास किया करते हैं वैसे ही मुनिगण देवों के सहित-ससिद्ध-जनक आदि गृहस्थ-योग के धर्म वाले राजा लोग ब्रह्मवादी बाल खिल्यादि ऋषिगण-वानप्रस्थ-अन्य व्यासादि संन्यासी वे सभी योग में समास्थित होकर सूर्य्यमण्डल में प्रविष्ट हुआ करते हैं और आश्रय लेते हैं ॥१५-१७॥ व्यास देवजी के पुत्र श्रीमान् शुकदेव योग धर्म को प्राप्त करके आदित्य की किरणों में पहुच कर अपुनर्भाव को प्राप्त हो गये हैं ॥१८॥ ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि देवगण केवल शब्द से ही कहे जाने वाले हैं और श्रुति ही इनका मुख है अर्थात् इनकी वाणी श्रुति को ही कहा जाता है। यह सूर्य्य देव तो प्रत्यक्ष पर देव हैं जोकि अन्धकार का विनाश करने वाले हैं ॥१९॥ इसलिये जो कोई अपना शुभ चाहता है उसको सूर्य को छोड़कर अन्य किसी भी देवता में भक्ति नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे सब अन्य विष्णु आदि देवगण दृष्टि में अगम्य होते हैं अर्थात् प्रत्यक्ष दिखलाई नहीं दिया करते हैं। इसलिये आप सब को निरन्तर भगवान् रविदेव का अभ्यर्चन करना चाहिए। वह रविदेव इस सम्पूर्ण जगत् के माता-पिता और गुरु हैं ॥२०-२१॥

अनाद्यो लोकनाथोऽसौ रश्मिमाली जगत्पतिः ।
मित्रत्वे च स्थितो यस्मात्तपस्तेपे द्विजोत्तमाः ॥२२
अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षय एव च ।
सृष्ट्वा ससागरान् द्वीपान् भुवनानि चतुर्दश ॥२३
लोकाना स हितार्थाय स्थितचन्द्रसरित्तटे ।
सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्व्वानसृष्ट्वा च विविधाः प्रजाः॥२४
ततः शतसहस्रांशुरव्यक्तश्च पुनः स्वयम् ।
कृत्वा द्वादशधात्मानमादित्यमुपपद्यते ॥२५

इन्द्र धाताथ पर्जन्यस्त्वष्टा पूषार्य्यमा भगः ।
विवस्वान् विष्णुरंशश्च वरुणो मित्र एव च ॥२६
आभिर्द्वादशभिस्तेन सूर्य्येण परमात्मना ।
कृत्स्न जगदिद व्याप्त मूर्त्तिभिश्च द्विजोत्तमा. ॥२७
तस्य या प्रथमा मूर्त्तिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता ।
स्थिता सा देवराजत्वे देवाना रिपुनाशिनी ॥२८

हे द्विजोत्तमो ! यह सूर्यदेव अनाद्य हैं—लोको के नाथ है—रश्मिमाली तथा जगत् के पति है । क्योकि यह मित्रत्व मे स्थित हैं और तप किया करते है ॥२२॥ ब्रह्माजी भी आदि-अन्त से रहित नित्य और अक्षय हैं ये सागर और द्वीपो के सहित इन चौदह लोको की सृष्टि करके यही लोको के हित के लिये सरित्तट पर चन्द्र होकर स्थित हो गये है । समस्त प्रजा पतियो का और अनेक प्रकार की प्रजाओ का सृजन करके इसके अनन्तर पुनः यह स्वय ही अव्यक्त शत सहस्रांशु होकर अपने आपके स्वरूप को बारह रूपो मे करके आदित्य के रूप मे उत्पन्न हुआ करते है ॥२३-२५॥ वे बारह नाम ये हैं—इन्द्र-धाता-पर्जन्य-त्वष्टा-पूषा-अर्यमा-भग-विवस्वान्-विष्णु अश-वरुण-मित्र इन द्वादश नामो से परमात्मा सूर्य के द्वारा बारह मूर्तियो से हे द्विजोत्तमो ! यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है ॥२६-२७॥ उस आदित्य देव की जो सर्व मूर्त्ति है वही इन्द्र सज्ञा वाली है और वह देवो के राजा के पद पर स्थित है जो देवों के शत्रुओ का विनाश करने वाली है ॥२८॥

द्वितीया तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना धातेति कीर्त्तिता ।
स्थिता प्रजापतित्वेन विविधाः सृजते प्रजाः ॥२९
तृतीयार्कस्य या मूर्त्तिः पर्जन्य इति विश्रुता ।
मेघेष्वेव स्थिता सा तु वर्षते च गभस्तिभिः ॥३०
चतुर्थी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना त्वष्टेति विश्रुता ।
स्थिता वनस्पतौ सा तु ओषधीषु च सर्वतः ॥३१
पञ्चमी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना पूषेति विश्रुता ।
अन्ने व्यवस्थिता सा तु प्रजा पुष्णाति नित्यशः ॥३२

मूर्त्तिः षष्ठी रवेर्या व अर्य्यमा इति विश्रुता ।
वायोः ससरणा सा तु देवेष्वेव समाश्रिता ॥३३
भानोर्या सप्तमी मूर्त्तिर्नाम्ना भगेति विश्रुता ।
भूतिष्ववस्थिता सा तु शरीरेषु च देहिनाम् ॥३४
मूर्त्तिर्या त्वष्टमी तस्य विवस्वानिति विश्रुता ।
अग्नौ प्रतिष्ठिता सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम् ॥३५

दूसरी जो आदित्य देव की मूर्त्ति है वह धाता इस शुभ नाम से कही गयी है जोकि प्रजापति के पद पर स्थित होती है और विविध भाँति की प्रजाओं का सृजन किया करती है ॥२९॥ इन अर्कदेव की जो तीसरी मूर्त्ति है वह "पर्जन्य"—इस शुभ नाम से प्रख्यात है । वही मूर्त्ति मेघों मे भी स्थित है जो किरणों के द्वारा जल की वर्षा किया करती है ॥३०॥ चौथी जो सूर्य की मूर्त्ति है वह "त्वष्टा"—इस नाम से विश्रुत है । यह मूर्त्ति समस्त वनस्पतियों मे और औषधियों मे स्थित है और सभी ओर व्याप्त रहती है ॥३१॥ पाँचवी इसकी मूर्त्ति "पूषा"—इस नाम से प्रसिद्ध है और यह मूर्त्ति अन्न मे व्यवस्थित रहा करती है जो नित्य ही समस्त प्रजा का पोषण किया करती है ॥३२॥ छठवी जो सूर्य्यदेव की मूर्त्ति है वह "अर्यमा"—इस शुभ नाम से विख्यात है । वह वायु के ससरण करने वाली है और देवो मे ही समाश्रित रहा करती है ॥३३॥ भानुदेव की जो सातवी मूर्त्ति है वह "भग"—इस नाम से विश्रुत है । वह भूतों में और सब देहियों मे देहो मे अवस्थित रहा करती है ॥३४॥ आठवीं जो उसकी मूर्त्ति है वह विवस्वान् इस नाम से प्रख्यात है और वह अग्नि मे प्रतिष्ठित रहा करती है जोकि शरीर धारियों के अन्न का पाचन किया करती है ॥३५॥

नवमी चित्रभानोर्या मूर्त्तिर्विष्णुश्च नामत. ।
प्रादुर्भवति सा नित्य देवानामरिसूदनी ॥३६
दशमी तस्य या मूर्त्तिरंशुमानिति विश्रुता ।
वायौ प्रतिष्ठिता सा तु प्रह्लादयति वै प्रजाः ॥३७

मूर्त्तिस्त्वेकादशी भानोर्नाम्ना वरुणसंज्ञिता ।
जलेष्ववस्थिता सा तु प्रजां पुष्णाति नित्यशः ॥३८
मूर्तिर्या द्वादशी भानोर्नाम्ना मित्रेति संज्ञिता ।
लोकानां सा हितार्थाय स्थिता चन्द्रसरित्तटे ॥३९
वायुभक्षस्तपस्तेपे स्थित्वा मैत्रेण चक्षुषा ।
अनुगृह्णन् सदा भक्तान् वरैर्नानाविधैस्तु सः ॥४०
एवं सा जगतां मूर्त्तिर्हिताय विहिता पुरा ।
तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्रं परं स्मृतम् ॥४१
आभिर्द्वादशभिस्तेन सवित्रा परमात्मना ।
कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिश्च द्विजोत्तमाः ॥४२

नवमी जो सूर्यदेव की मूर्त्ति है वह विष्णु के नाम से प्रसिद्ध है। वह देवों के अरियों का विनाश करने वाली नित्य ही प्रादुर्भूत हुआ करती है ॥३६॥ दशमी मूर्त्ति 'अंशुमान्' नाम से विश्रुत है। वह वायु मे प्रतिष्ठित रहा करती है और समस्त प्रजा को आह्लादित किया करती है ॥३७॥ भानुदेव की ग्यारहवी मूर्त्ति वरुण संज्ञा वाली होती है। वह जलों मे ही अवस्थित रहा करती है और नित्य ही प्रजा को पोषित किया करती है ॥३८॥ बारहवी भानुदेव की मूर्त्ति "मित्र" इस संज्ञा वाली होती है वह लोकों के हित सम्पादन करने के लिये चन्द्र सरित् के तट पर स्थित रहती है ॥३९॥ मैत्रचक्षु से स्थित होकर वायु का भक्षण करने वाली तपस्या किया करती है। वह अनेक वरदानों के द्वारा अपने भक्तों पर सदा अनुग्रह किया करती है ॥४०॥ इस प्रकार से इस लोकों के हित के लिये पहिले बारह मूर्त्तियों मे यह देव स्थित हुए है। इनमे जो मित्ररूप से स्थित है अतएव यह परम मित्र अर्थात् हित सम्पादक कहे गये है ॥४१॥ हे द्विजो ! इन उपर्युक्त बारह नामों से परमात्मा सविता ने अपनी मूर्त्तियों के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर रक्खा है ॥४२॥

तस्माद्ध्येयो नमस्यश्च द्वादशस्थासु मूर्त्तिषु ।
भक्तिमद्भिर्नरैर्नित्यं तद्गतेनान्तरात्मना ॥४३

इत्येवं द्वादशादित्यान्नमस्कृत्वा तु मानवः ।
नित्य श्रुत्वा पठित्वा च सूर्य्यलोके महीयते ॥४४

यदि तावदयं सूर्य्यश्चादिदेवः सनातनः ।
ततः कस्मात्तपस्तेपे वरेप्सुः प्राकृतो यथा ॥४५
एतद्वः सप्रवक्ष्यामि पर गुह्य विभावसोः ।
पृष्ट मित्रेण यत् पूर्व्वं नारदाय महात्मने ॥४६

प्राङ्मयोक्तास्तु युष्मभ्य रवेर्द्वादश मूर्त्तयः ।
मित्रश्च वरुणश्चोभौ तासा तपसि सस्थितौ ॥४७
अव्भक्षो वरुणस्तासां तस्थौ पश्चिमसागरे ।
मित्रो मित्रवने चास्मिन् वायुभक्षोऽभवत्तदा ॥४८

अथ मेरुगिरेः शृङ्गात् प्रच्युतो गन्धमादनात् ।
नारदस्तु महायोगी सर्व्वांलोकाश्चरन् वशी ॥४९

इस कारण से इन द्वादश मूर्त्तियो मे स्थित सूर्यदेव ध्यान करने के योग्य और नमस्कार करने के योग्य होते हैं। जो भक्तिमान् है उनको तद्गत अन्तरात्मा के द्वारा नित्य ही सूर्यदेव की उपासना करनी चाहिए ॥४३॥ इस प्रकार से मनुष्य को इन द्वादश आदित्यो को नित्य ही नमस्कार करना चाहिए। नित्य इनका श्रवण या पठन करके मनुष्य अन्त मे सूर्य्यलोक मे पहुचकर प्रतिष्ठित होता है ॥४४॥ मुनिगण ने कहा—हे भगवन् । यदि यह सूर्य्यदेव सबसे आदिदेव है और सनातन हैं तो फिर यह एक वरदान की इच्छा वाले प्राकृत मनुष्य की तरह तपस्या क्यो किया करते हैं ॥४५॥ यह हम विभावसु का परम गोपनीय हाल बतलायेगे । यही बात पहिले महात्मा नारदजी के लिये मित्र ने पूछी थी ॥४६॥ मैंने पहिले आपको रविदेव की द्वादश मूर्तियाँ बतलाई थी। उनमे से मित्र और वरुण ये दोनो तपश्चर्या मे सस्थित हैं ॥४७॥ उन मूर्तियो मे से जल का भक्षण करने वाला वरुण पश्चिम सागर मे स्थित हो गया है। उस समय मे वायु का भक्षण करने वाला मित्र इस मित्र-वन मे रहता था ॥४८॥ इसके अनन्तर मेरु शृङ्ग से गन्धमादन से

प्रभुत महायोगी नारद वशी समस्त लोकों में विचरण करते हुए वहाँ पर आगये थे ॥४९॥

आजगामाथ तत्रैव यत्र नित्योऽचरत्तपः ।
तं दृष्ट्वा तु तपस्यन्तं तस्य कौतूहलं ह्यभूत् ॥५०
योऽक्षयश्चाव्ययश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ।
धृतमेकात्मकं येन त्रैलोक्यं सुमहात्मना ॥५१
यः पिता सर्व्वदेवानां पराणामपि यः परः ।
स यजद्देवता. कास्तु पितॄन् वा कानसौ यजेत् ॥५२
इति सञ्चिन्त्य मनसा तं देवं नारदोऽब्रवीत् ।
वेदेषु स पुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे ।
त्वमजः शाश्वतो धाता त्वं निधानमनुत्तमम् ॥५३
भूतं भव्यं भवच्चैव त्वयि सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ।
चत्वारश्चाश्रमा देव गृहस्थाद्यास्तथैव हि ॥५४
यजन्ति त्वामहरहस्त्वां मूर्त्तित्वं समाश्रितम् ।
पिता माता च सर्व्वस्य दैवतं त्वं हि शाश्वतम् ॥५५
यजसे पितरं कं त्वं देव नापि न विद्महे ॥५६

वह योगी नारदजी वहीं पर समागत हुए थे जहाँ पर नित्य तपश्चर्या कर रहा था। उनको इस प्रकार से तप करते हुए देखकर इनके हृदय में बड़ा भारी कौतूहल हो गया था ॥५०॥ जो क्षय रहित है—जो अव्यय और व्यक्ताव्यक्त सनातन है और जिस सुमहात्मा एक ने इस एकात्मक त्रैलोक्य को धारण कर रक्खा है ॥५१॥ जो समस्त देवों का पिता है और जो परों से भी पर है वह किन देवों का यजन करता है तथा किन पितरों का यजन किया करता है। देवर्षि ने अपने मन में इस तरह से चिन्तन करके उन देव से कहा था—श्री नारदजी ने कहा—वह जो वेदों में और साङ्गोपाङ्ग पुराणों में गान किया जाता है वह आप अज-शाश्वत-धाता और उत्तम निधान हैं ॥५२-५३॥ भूतभव्य और भवत् सभी कुछ आप में प्रतिष्ठित है। हे देव ! चारों आश्रम जो गृहस्थ आदि होते हैं वे सभी मूर्त्तित्व को प्राप्त होने वाले आपका ही रातदिन यजन किया

करते हैं। आप सभी के माता-पिता और शाश्वत देवता हैं। फिर आप किस पितर का यजन किया करते है अथवा किस देव का अभ्यर्चन करते हैं यह हम नही जान पाये हैं ॥५४-५६॥

अवाच्यमेतद्वक्तव्य परं गुह्यं सनातनम् ।
त्वयि भक्तिमति ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥५७
यत्तत् सूक्ष्मविज्ञेयमव्यक्तमचलं ध्रुवम् ।
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थैश्च सर्व्वभूतैर्विवर्ज्जितम् ॥५८
स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चैव कथ्यते ।
त्रिगुणाद्व्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चैव कल्पितः ॥५९
हिरण्यगर्भो भगवान् सैव बुद्धिरिति स्मृतः ।
महानिति च योगेषु प्रधानमिति कथ्यते ॥६०
सांख्यञ्च कथ्यते योगे नामभिर्वहुधात्मकः ।
स च त्रिरूपो विश्वात्मा शर्वोऽक्षर इति स्मृतः ॥६१
धृतमेकात्मकं तेन त्रैलोक्यमिदमात्मना ।
अशरीरः शरीरेषु सर्व्वेषु निवसत्यसौ ॥६२
वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्येत कर्म्मभिः ।
ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंस्थिताः ॥६३

मित्र ने कहा—यद्यपि यह बात कहने के योग्य नहीं है क्योंकि यह विषय परमाधिक गोपनीय है और सनातन है तथापि हे ब्रह्मन् ! आप परम भक्तिमान् हैं इसी कारण से मैं इस विषय को आपके सामने ठीक २ कहूँगा ॥५७॥ जो अत्यन्त सूक्ष्म है-अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल और ध्रुव है तथा जो इन्द्रियो, इन्द्रियार्थों और सर्व भूतो से विवर्जित हैं वह भूतों का अन्तरात्मा क्षेत्रज्ञ कहा जाया करता है। यह त्रिगुण से व्यतिरिक्त पुरुष ही कल्पित है। यह हिरण्यगर्भ भगवान् है और यह ही बुद्धि यह कहा गया है। यही योगो मे महान् और प्रधान कहा जाया करता है। ॥५८-६०॥ बहुधात्मक अर्थात् अनेको स्वरूपो वाला यह नामो से योग मे साङ्ख्य कहा जाता है। और वह तीन रूपो वाला विश्वात्मा शर्व तथा अक्षर यह कहा गया है ॥६१॥ यह एकात्मक त्रैलोक्य इस आत्मा के

द्वारा धारण किया गया है। यह बिना शरीर वाला सब शरीरों मे निवास किया करता है ॥६२॥ शरीरो मे निवास करता हुआ भी यह कर्मों से लिप्त नही हुआ करता है। यह मेरा अन्तरात्मा तथा आपका अन्तरात्मा है और जो अन्य देहो मे संस्थित है ॥६३॥

सर्व्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यं केनचित् क्वचित्।
सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः ॥६४
सर्व्वतः पाणिपादान्तः सर्व्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सर्व्वतः श्रुतिमांल्लोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठति ॥६५
विश्वमूर्द्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः।
एकश्चरति वै क्षेत्रे स्वैरचारो यथासुखम् ॥६६
क्षेत्राणीह शरीराणि तेषाञ्चैव यथासुखम्।
तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥६७
अव्यक्ते च पुरे शेते पुरुषस्तेन चोच्यते।
विश्व बहुविध ज्ञेय स च सर्व्वत्र उच्यते ॥६८
तस्मात् स बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृतः।
तस्यैकस्य महत्व हि स चैकः पुरुषः स्मृतः ॥६९
महापुरुषशब्द हि बिभर्त्त्येकः सनातन।
स तु विधिक्रियायत्तः सृजत्यात्मानमात्मना ॥७०

यह सबका साक्षिभूत है और कही पर भी किसी के द्वारा ग्रहण करने के योग्य नही है। यह सगुण, निर्गुण, विश्व तथा ज्ञान के ही द्वारा गम्य अर्थात् जानने के योग्य होता है ऐसा कहा गया है ॥६४॥ यह सभी ओर हाथो तथा चरणो वाला है और सभी ओर नेत्र एव मुख वाला तथा सिर वाला है। लोक सर्वत्र श्रुतिमान् है और सबको आवृत करके स्थित रहता है ॥६५॥ यह विश्व के मूर्द्धा वाला, विश्व की भुजाओं वाला और विश्व की पदअक्षि (नेत्र) और नासिका वाला है। यह एक ही क्षेत्र मे चरण किया करता है तथा सुख पूर्वक स्वच्छन्द सञ्चरण करने वाला है ॥६६॥ ये सब शरीर ही इसके क्षेत्र हैं और उनमे ही सुख पूर्वक यह निवास किया करता है। यह योगात्मा उनको जानता है।

अतएव ये शरीर क्षेत्र कहे जाते हैं ॥६७॥ यह अव्यक्त पुर में शयन किया करता है। इसीसे वह पुरुष कहा जाया करता है। यह विश्व बहुत प्रकार का जानना चाहिए और वह सर्वज्ञ कहा जाता है ॥६८॥ इसी कारण से उसके बहुत रूप होने से वह विश्वरूप कहा गया है। उस एक का ही महत्त्व है और वह एक ही पुरुष कहा गया है। यह एक सनातन ही महापुरुष शब्द को धारण किया करता है। यह विधि और क्रिया के अधीन है तथा आत्मा से ही आत्मा का सृजन किया करता है ॥६९-७०॥

शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ।
कोटिशश्च करोत्येष प्रत्यगात्मानमात्मना ॥७१
आकाशात् पतितं तोयं याति स्वाद्वन्तरं यथा ।
भूमे रसविशेषेण तथा गुणरसात्तु स. ॥७२
एक एव यथा वायुर्देहेष्वेव हि पञ्चधा ।
एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च तथा तस्य न संशयः ॥७३
स्थानान्तरविशेषाच्च यथाग्निर्लभते पराम् ।
संज्ञां तथा मुने सोऽयं ब्रह्मादिषु तथाप्नुयात् ॥७
यथा दीपसहस्राणि दीप एकः प्रसूयते ।
तथा रूपसहस्राणि स एकः सम्प्रसूयते ॥७५
यदा स बुध्यत्यात्मानं तदा भवति केवलः ।
एकत्वप्रलये चास्य बहुत्वञ्च प्रवर्त्तते ॥७६
नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम् ।
अक्षयश्चाप्रमेयश्च सर्वगश्च स उच्यते ॥७७

सौ प्रकार से—सहस्र प्रकार से तथा शत सहस्र प्रकार से और करोड़ प्रकार से यह आत्मा से ही आत्मा को प्रत्यक्ष किया करता है ॥७१॥ आकाश से गिरा हुआ जल जिस प्रकार से भिन्न स्वाद वाला हो जाया करता है और भूमि के रस विशेष से ही ऐसा होता है वैसे ही गुणों के रस से वह हो जाया करता है ॥७२॥ जिस तरह से वायु एक ही होती है किन्तु देहों में पाँच प्रकार का प्राण—अपानादि भेदों वाला हो जाता है

उसी भाँति उसका भी एकत्व और पृथक्त्व होता है। उसका संशय नहीं है ॥७३॥ जिस तरह से स्थानान्तरों की विशेषता से परासंज्ञा को प्राप्त किया करता है। हे मुनिवर! यह भी ब्रह्म आदि संज्ञाओं को प्राप्ति किया करता है ॥७४॥ जिस तरह से एक ही दीपक सहस्रों दीप को जला कर प्रसूत कर दिया करता है उसी प्रकार से यह ही सहस्रों रूपों को सम्प्रसूत किया करता है ॥७५॥ जब वह आत्मा का ज्ञान प्राप्त करता है उसी समय में वह केवल होता है। इसके एकत्व के प्रलय हो जाने पर ही बहुत्व की प्रकृति हो जाया करती है ॥७६॥ इस जगत् में स्थावर-जङ्गम भूत नित्य नहीं है और वह अक्षय-अप्रमेय- और सर्वत्र गमन करने वाला कहा जाता है ॥७७॥

तस्माद्व्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तमाः।
अव्यक्तमावस्था या सा प्रकृतिरुच्यते ॥७८
तां योनिं ब्रह्मणो विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः।
लोके च पूज्यते योऽसौ दैवे पित्र्ये च कर्म्मणि ॥७९
नास्ति तस्मात् परो ह्यन्यं पिता देवोऽपि वा द्विजाः।
आत्मना स तु विज्ञेयस्ततस्तं पूजयाम्यहम् ॥८०
स्वर्गेष्वपि हि ये केचित नमस्यन्ति देहिनः।
तेन गच्छन्ति देवर्षे तेनोद्दिष्टफलां गतिम् ॥८१
तं देवाः स्वाश्रमस्थाश्च नानामूर्त्तिसमाश्रिताः।
भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्यं गतिश्चैषां ददाति सः ॥८२
स हि सर्व्वगतश्चैव निर्गुणश्चैव कथ्यते।
एवं मत्वा यथाज्ञानं पूजयामि दिवाकरम् ॥८३
ये च तद्भाविता लोके एकतत्वं समाश्रिताः ॥
एतदप्यधिकं तेषां यदेकं प्रविशन्त्युत ॥८४

हे द्विजोत्तमो! उससे ही तीन गुणों वाला अव्यक्त समुत्पन्न होता है। अव्यक्त और व्यक्त भाव में स्थित जो है वह प्रकृति कही जाया करती है ॥७८॥ ब्रह्म की योनि उसको ही समझना चाहिए। यह वह सद् और असद् स्वरूप वाला है। वही यह लोक में दैव तथा पित्र्य कर्म्म

में पूजा जाया करता है ॥७९॥ हे द्विजो ! उससे पर अन्य कोई भी नहीं है। यही पिता तथा देव एव परात्पर है। वह आत्मा के द्वारा ही जानने के योग्य है; इसी कारण से मैं उसका अभ्यर्चन किया करता हूँ ॥८०॥ स्वर्गों मे भी जो कोई देहधारी हैं वे उसको नमन किया करते हैं। हे देवर्षे ! इसी से उसके द्वारा उद्दिष्ट फल वाली गति को वे गमन किया करते हैं ॥८१॥ उसकी देवगण—अपने आश्रमो में स्थित रहने वाले तथा नाना मूर्त्तियो में समाश्रित आद्य की पूजा भक्ति से किया करते हैं और वह इन सबको सद्गति प्रदान किया करता है ॥८२॥ वह सबमे रहने वाला भी है और निर्गुण ही कहा जाया करता है। इस प्रकार से मानकर ज्ञान के अनुसार दिवाकर का पूजन किया करता हूँ ॥८३॥ जो लोक मे एक तत्त्व मे समाश्रित उसकी भावना से भावित हैं। उनका यह भी अधिक है कि वे एक मे प्रवेश किया करते हैं ॥८४॥

इति गुह्यसमुद्देशस्तव नारद कीर्त्तितः।
अस्मद्भक्त्यापि देवर्षि त्वयापि परमं स्मृतम् ॥८५
सुरैर्वा मुनिभिर्वापि पुराणैर्वरद स्मृतम्।
सर्व्वे च परमात्मनं पूजयन्ति दिवाकरम् ॥८६
एवमेतद् पुराख्यात नारदाय तु भानुना।
मयापि च समाख्याता कथा भानोर्द्विजोत्तमा. ८७
इदमाख्यानमाख्येयं मयाख्यात द्विजोत्तमाः।
न ह्यनादित्यभक्ताय इद देय कदाचन ॥८८
यश्चैतच्छ्रावयेन्नित्यं यश्चैव शृणुयान्नरः।
स सहस्रार्चिष देव प्रविशेन्नात्र संशयः ॥८९
मुच्येतार्त्तस्तथा रोगाच्छ्रुत्वेमामादितः कथाम्।
जिज्ञासुर्लभते ज्ञान गतिमिष्टां तथैव च ॥९०
क्षणेन लभतेऽध्वानमिदं यः पठते मुने।
यो यं कामयते कामं स तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥९१
तस्माद्भवद्भिः सततं स्मर्त्तव्यो भगवान् रविः।
स च धाता विधाता च सर्व्वस्य जगतः प्रभुः॥ ९२

हे नारद ! यह परम गोपनीय समुद्देश है जो अब आपको मैंने बतला दिया है। हे देवर्षे ! हमारी भक्ति से भी आपने बहुत उत्तम किया है ॥८५॥ सुरो के द्वारा—मुनियो के द्वारा और पुराणो के द्वारा यह वरद कहा गया है। सब परमात्मा दिवाकर का पूजन किया करते हैं ॥८६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह पुराने समय मे भानुदेव ने देवर्षि नारदजी को कहा था और द्विजगणो ! मैंने भी भानुदेव की कथा का वर्णन किया है ॥८७॥ हे द्विजगणो ! यह जो आख्यान मैंने आप को बतलाया है इसका कभी भूल कर भी जो आदित्यदेव का भक्त न हो उसे नही देना चाहिए ॥८८॥ इस उत्तम आदित्याख्यान की बहुत बड़ी महिमा है जो इसको नित्य-प्रति श्रवण कराया करता है और जो नित्य-प्रति श्रवण किया करता है वह मनुष्य सहस्रार्चिदेव मे प्रवेश किया करता है—इसमे लेश मात्र भी संशय नही है ॥८९॥ इस कथा को आदि से जो मनुष्य श्रवण किया करता है वह यदि आर्त्त होता है तो उसकी रोग से मुक्ति हो जाया करती है। यदि वह ज्ञान के प्राप्त करने का इच्छुक होता है तो वह उस ज्ञान को प्राप्त किया करता है तथा वह अभीष्ट गति को भी प्राप्त कर लेता है ॥९०॥ हे मुने ! जो इस आख्यान का पाठ किया करता है वह एक क्षण मात्र मे ही मार्ग को लब्ध कर लेता है। निष्कर्षार्थ यही है कि इसका पढने वाला पुरुष जो भी जिस कामना को किया करता है वह उसको निःसंशय प्राप्त कर लिया करता है ॥९१॥ इसलिये आप लोगो को निरन्तर भगवान् रविदेव का स्मरण करना चाहिए। यह प्रभु इस सम्पूर्ण जगत् का धाता तथा विधाता है ॥९२॥

## २३—आदित्यमाहात्म्यवर्णन (२)

आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं मुनिसत्तमाः ।
भवत्यस्माज्जगत् सर्व्वं सदेवासुरमानुषम् ॥१
रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवौकसाम् ।
महाद्युतिमतार्श्चैव तेजोऽयं सार्व्वलौकिकम् ॥२
सर्व्वात्मा सर्व्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः ।
सूर्य्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम् ॥३
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥४
सूर्य्यात् प्रसूयते सर्व्वं तत्र चैव प्रलीयते ।
भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्नि-सृतौ पुरा ॥५
एतत्तु ध्यानिनां ध्यानं मोक्षश्चाप्येष मोक्षिणाम् ।
तत्र गच्छन्ति निर्व्वाणं जायन्तेऽस्मात् पुनः पुनः ॥६
क्षणा मुहूर्त्ता दिवसा निशा पक्षाश्च नित्यशः ।
मासाः सम्वत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! यह समस्त त्रैलोक्य आदित्य देव के ही मूल वाला है । इसी से यह सम्पूर्ण देव-असुर और मनुष्यों से युक्त जगत् समुत्पन्न हुआ करता है ॥१॥ रुद्रदेव-उपेन्द्र-महेन्द्र विप्रेन्द्र तथा देवों का और महती द्युति वालों का यही सार्वलौकिक तेज होता है ॥२॥ यह सबकी आत्मा है—सब लोकों का ईश है—देवों का भी देव और प्रजापति है । यह सूर्यदेव ही तीनों लोकों का मूल एवं परम दैवत है । ॥३॥ अग्नि मे अर्पित की हुई आहुति भली भाँति आदित्य देव को पहुचा करती है । इस आदित्य देव से ही वर्षा हुआ करती है और वृष्टि से अन्न की समुत्पत्ति हुआ करती है तथा उस अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है ॥४॥ इन सूर्यदेव से ही समस्त पदार्थों का उद्भव हुआ करता है तथा अन्त उन्ही मे सबका नाश भी हो जाता है । पहिले भाव और अभाव मे दोनों

जो लोको के हैं वे आदित्य देव से ही निःसृत हुए थे अर्थात् लोको की उत्पत्ति और विनाश दोनो के कारण आदित्य ही हैं अन्य नही हैं ॥५॥ यही ध्यान करने वालो का ध्यान है और यही मोक्ष प्राप्त करने वालो का मोक्ष है। यही पर लोग निर्वाण को जाया करते हैं और इन्ही देव से पुन पुनः जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥६॥ क्षण-मुहूर्त-दिवस-रात्रि-पक्ष नित्यही-मास-सम्वत्सर-ऋतुएँ और युग ये सभी आदित्य देव से ही हुआ करते हैं ॥७॥

अथादित्यादृते ह्येषा कालसंख्या न विद्यते ।
कालादृते न नियमो नाग्नौ विहरणक्रिया ॥८
ऋतुनामविभागश्च ततः पुष्पफल कुतः ।
कुतो वं शस्यनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणः कुतः ॥६
अभावो व्यवहाराणा जन्तूना दिवि चेह च ।
जगत्प्रभावादिशते भास्कराद्वारितस्कराव् ॥१०
नावृष्ट्या तपते सूर्य्यो नावृष्ट्या परिशुष्यति ।
नावृष्टया परिधिं धत्ते वारिणा दीप्यते रविः ॥११
वसन्ते कपिल. सूर्य्यो ग्रीष्मे काञ्चनसन्निभः ।
श्वेतो वर्षासु वर्णेन पाण्डुः शरदि भास्करः ॥१२
हेमन्ते ताम्रवर्णाभ. शिशिरे लोहितो रवि. ।
इति वर्णाः समाख्याताः सूर्य्यस्य ऋतुसम्भवाः ॥ ३
ऋतुस्वभाववर्णैश्च सूर्य्यः क्षेमसुभिक्षकृत् ।
अथादित्यस्य नामानि सामान्यानि द्विजोत्तमाः ॥१४

बिना आदित्य देव के इन उक्त समयो की सख्या ही नही हो सकती है। काल की सख्या और अवसर के बिना न कोई नियम ही होगा है और न अग्नि मे विहरण क्रिया ही होती है ॥८॥ जब ऋतुओ का ही कोई विभाग नही होगा तो पुष्प और फल भी कैसे समुत्पन्न होगे। ऋतु-विभाग न होने पर धान्य की निष्पत्ति भी सम्भव नही हो सकती है और तृण तथा औषधियो की भी उत्पत्ति भी नही हो सकती है ॥६॥ काल-विभाग के अभाव मे समस्त व्यवहारो का भी जो कि जीवो का इस

लोक में तथा दिवलोक में होते हैं अभाव हो जायगा। तस्करो के धारण करने वाले भास्कर देव से यह जगत् प्रभाव से प्रवेश किया करता है ॥१०॥ वृष्टि के न होने से सूर्य नही तपता है और अवृष्टि से परिशुष्क भी नही होता है। अवृष्टि से परिधि को धारण नही किया करता है। जल से ही रविदेव दीप्त हुआ करते हैं ॥११॥ वसन्त ऋतु मे सूर्य कपिल वर्ण वाले होते हैं—ग्रीष्म काल मे सुवर्ण के सदृश वर्ण वाले हुआ करते हैं। वर्षा ऋतु मे श्वेत वर्ण से युक्त तथा शरत्काल मे भास्कर पाण्डु वर्ण वाले हुआ करते हैं ॥१२॥ हेमन्त ऋतु मे ताम्रवर्ण की आभा वाले होते हैं और शिशिर मे रवि लोहित वर्ण वाले हुआ करते हैं। ये वर्ण सूर्यदेव के भिन्न २ ऋतुओ मे हुआ करते हैं ॥१३॥ ऋतुओ के स्वभाव के अनुसार जो वर्ण होते हैं उन्ही के द्वारा सूर्यदेव क्षेम और सुभिक्ष के करने वाले हुआ करते हैं। इसके अनन्तर हे द्विजगण ! आदित्य के सामान्य नामो को बतलाया जाता है ॥१४॥

द्वादशैव पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यशेषत: ।
आदित्य: सविता सूर्य्यो मिहिरोऽर्क: प्रभाकर: ॥१५
मार्त्तण्डो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकर: ।
रविर्द्वादशभिस्तेषां ज्ञेय: सामान्यनामभि: ॥१६

विष्णुर्धाता भग: पूषा मित्रेन्द्रो वरुणोऽर्य्यमा ।
विवस्वानंशुमास्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादश: स्मृत: ॥१७
इत्येते द्वादशादित्या. पृथक्त्वेन व्यवस्थिता: ।
उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मासद्वादशभि: क्रमात् । १८

विष्णुस्तपति चैत्रे तु वैशाखे चार्य्यमा तथा ।
विवस्वान् ज्यैष्ठमासे तु आषाढे चांशुमान् स्मृत: ॥१९
पर्ज्जन्य: श्रावणे मासि वरुण: प्रोष्ठसंज्ञके ।
इन्द्र आश्वयुजे मासि धाता तपति कार्त्तिके ॥२०
मार्गशीर्षे तथा मित्र: पौषे पूषा दिवाकर: ।
माघे भगस्तु विज्ञयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने ॥२१

ये द्वादश ही नाम हैं किन्तु उनको पृथक् २ पूर्णतया कहते हैं—आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मार्त्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर—इन द्वादश नामो से रवि देव का ज्ञान किया जाता है जो कि सूर्य के सामान्य नाम है ॥१५-१६॥ विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा और पर्जन्य ये भी अन्य द्वादश सूर्यदेव के नाम है जिनसे सूर्य को कहा गया है ॥१७॥ ये द्वादश आदित्य पृथक् रूप से व्यवस्थित किये गये हैं। ये सदा क्रम से बारह नामो से बारह मासो मे उदित हुआ करते हैं ॥१८॥ चैत्र मास मे विष्णु तपा करते हैं वैशाख मे अर्यमा नामधारी सूर्य तपते हैं। ज्येष्ठ मास मे विवस्वान् और आषाढ मास मे अंशुमान् ताप दिया करते है ॥१९॥ श्रावण मास मे पर्जन्य और भाद्रपद मे वरुण नाम वाले सूर्य तपा करते हैं। आश्विन मास मे इन्द्र तथा कार्त्तिक मे धाता नामक सूर्य तपते है ॥२०॥ मार्गशीर्ष मे मित्र-पौष मास मे पूषा दिवाकर तपते हैं। माघ मास मे जो सूर्य ताप दिया करते हैं वह भग नाम वाले होते है और फाल्गुन मे त्वष्टा नामक सूर्य लोको को ताप दिया करते है ॥२१॥

धातैर्द्वादशभिर्विष्णु रश्मिभिर्दीप्यते सदा ।
दीप्यते गोसहस्रेण शतैश्च त्रिभिरर्य्यमा ॥२२
द्विःसप्तकैर्विवस्वांस्तु अंशुमान् पञ्चभिस्त्रिभि ।
विवस्वानिव पर्जन्यो वरुणश्चार्य्यमा तथा ॥२३
मित्रद्भगवास्त्वाष्टा सहस्रेण शतेन च ।
इन्द्रस्तु द्विगुणं षड्भिर्धातैकादशभिः शतैः ॥२४
सहस्रेण तु मित्रो वै पूषा तु नवभिःशतैः ।
उत्तरापक्रमेऽर्कस्य वर्द्धन्ते रश्मयस्तथा ॥२५
दक्षिणोपक्रमे भूयो ह्रसन्ते सूर्य्यरश्मयः ।
एष रश्मिसहस्रन्तु सूर्य्यलोकादनुग्रहम् ॥२६
एष नाम्ना चतुर्विशदेक एषा प्रकीर्त्तितः ।
विस्तरेण सहस्रन्तु पुनरन्यत् प्रकीर्त्तितम् ॥ ७

विष्णु नामधारी सूर्यदेव सदा बारह सौ किरणों के द्वारा ताप दिया करते है। एक हजार तीन सौ रश्मियों से अर्यमा दीप्त हुआ करते हैं ॥२२॥ विवस्वान् चौदह सौ रश्मियों के द्वारा ताप देते हैं और अंशुमान् पन्द्रह सौ किरणों के द्वारा तपा करते हैं। विवस्वान् की ही भाँति पर्जन्य-वरुण-अर्यमा तपा करते हैं। मित्र की ही भाँति त्वष्टा शत सहस्र किरणो से दीप्त होते हैं और धाता ग्यारह सौ किरणों के द्वारा ताप दिया करते हैं ॥२३-२४॥ मित्र नाम वाले सूर्यदेव एक सहस्र रश्मियों के द्वारा तथा पूषा नौ सौ किरणो से दीप्त हुआ करते हैं। उत्तर उपक्रम मे सूर्य की रश्मियाँ बढ़ा करती हैं ॥२५॥ फिर दक्षिणोपक्रम मे अर्थात् दक्षिणायन मे सूर्य की किरणें ह्रास को प्राप्त हुआ करती हैं। इस प्रकार से सहस्र रश्मियाँ सूर्यलोक से अनुग्रह किया करती हैं ॥२६॥ इस रीति से यह एक ही सूर्यदेव चौबीस नामो के द्वारा कहे गये हैं। विस्तार से फिर इनके एक सहस्र नाम भी कहे गये हैं जो कि अन्य हैं ॥२७॥

ये तन्नामसहस्रेण स्तुवन्त्यर्क प्रजापते।
तेषां भवति किं पुण्यं गतिश्च परमेश्वर ॥२८
शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः सारभूतं सनातनम्।
अलं नामसहस्रेण पठन्नेवं स्तवं शुभम् ॥२९
यानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च।
तानि वः कीर्त्तयिष्यामि शृणुध्वं भास्करस्य वै ॥३०
विकर्त्तनो विवस्वांश्च मार्त्तण्डो भास्करो रविः।
लोकप्रकाशकः श्रीमांल्लोकचक्षुर्महेश्वरः ॥३१
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्त्ता हर्त्ता तमिस्रहा।
तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः ॥३२
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्व्वदेवनमस्कृतः।
एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टः सदा रवेः ॥३३
शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्करः।
स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥३४

य एतेन द्विजश्रेष्ठा द्विसन्ध्येऽस्तमनोदये ।
स्तौति सूर्य्यं शुचिर्भूत्वा सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥३५

मुनिगण ने कहा—हे प्रजापते ! जो लोग सूर्य के एक सहस्र नामो के द्वारा उनका स्तवन किया करते है हे परमेश्वर ! उन स्तोताओ का क्या पुण्य-फल हुआ करता है और उनकी क्या गति होती है ? ॥२८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिशार्दूलो ! अब आप लोग सनातन सार-भूत का श्रवण कीजिए । इस प्रकार के शुभ स्तव का पाठ करते हुए ही परम कल्याण होता है फिर एक सहस्र नामो के द्वारा स्तवन करने की कोई भी आवश्यकता नही है ॥२९॥ जो शुभ नाम परम गोपनीय हैं और पवित्र है उन भास्कर भगवान् के नाम है उनका ही मैं आप लोगो के सामने वर्णन करता हूँ । आप लोग उनका श्रवण करिए ॥३०॥ वे परम शुभ नाम ये हैं—विवर्त्तन, विवस्वान्, मार्त्तण्ड, भास्कर, रवि, लोक, प्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता, तमिस्रहा, तपन, तापन, शुचि, और सप्ताश्व वाहन ॥३१-३२॥ गभस्ति हस्त, ब्रह्मा, सर्वदेवनमस्कृत—यह इक्कीस नामो का स्तव है जो रविदेव को सदा इष्ट होता है ॥३३॥ यह स्तव शरीर के आरोग्य को प्रदान करने वाला और धन वृद्धि तथा यश को देने वाला है । इसको स्तव राज तीनो लोको मे कहा जाता है और यह इसी नाम से प्रसिद्ध भी है ॥३४॥ हे श्रेष्ठ द्विजगणो ! इस स्तव के द्वारा दोनो सन्ध्याओ के समय मे अर्थात् उदय काल और अस्त मन वेला मे पवित्र होकर सूर्यदेव की स्तुति किया करता है वह सभी प्रकार के पापो से मुक्त हो जाता है ॥ ५॥

मानस वाचिक वापि देहज कर्म्मज तथा ।
एकजप्येन तत्सर्व्वं नश्यत्यर्कस्य सन्निधौ ॥३६
एकजप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च ।
धूपमन्त्रार्घ्यमन्त्रश्च बलिमन्त्रस्तथैव च ॥३७
अन्नप्रदाने स्नाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे ।
पूजितोऽयं महामन्त्रः सर्व्वपापहरः शुभः ॥३८

तस्माद्यूयं प्रयत्नेन स्तवेनानेन वै द्विजाः ।
स्तुवीध्व वरदं देवं सर्व्वकामफलप्रदम् ॥३६

चाहे कैसा भी पाप हो मानस हो, वाचिक हो, देहज हो या कर्मज हो इस स्तव के एक ही बार जाप करने से जो कि सूर्य की सन्निधि में स्थित होकर किया जावे तो वे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ॥३६॥ एक बार इसका जप-होम-सन्ध्योपासन-धूप मन्त्र-अर्घ्य मन्त्र तथा बलि मन्त्र अन्न के प्रदान से, स्नान, प्रणिपात करने से और परिक्रमा करने में पूजित किया हुआ यह महामन्त्र परम शुभ होता है और सब पापों का हरण करने वाला है ॥३७-३८॥ हे द्विजगणो ! इस कारण से आप लोग प्रयत्न के साथ इस स्तव के द्वारा समस्त कामनाओं के फल को प्रदान करने वाले वरद सूर्यदेव की स्तुति किया करो ॥३६॥

---

## २४—पञ्चतीर्थविधिवर्णन

अतः परं प्रवक्ष्यामि पञ्चतीर्थविधिं द्विजाः ।
यत्फलं स्नानदानेन देवताप्रेक्षणेन च ॥१
मार्कण्डेयह्रदं गत्वा नरश्चोदङ्मुखः शुचिः ।
निमज्जेत्तत्र वाराश्चीनिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२
संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम् ।
त्राहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते ॥३
नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च ।
स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम् ॥४
नाभिमात्रे जले स्नात्वा विधिवद्देवता ऋषीन् ।
तिलोदकेन मतिमान्पितॄंश्चान्यांश्च तर्पयेत् ॥५
स्नात्वा तथैव चाऽऽचम्य ततोगच्छेच्छिवालयम् ।
प्रविश्य देवतागारं कृत्वा त त्रिः प्रदक्षिणम् ॥६
मूलमन्त्रेण मार्कण्डेयस्य चेश्वरम् ।
अघोरेण च भो विप्राः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजो ! इससे आगे हम अब पञ्चतीर्थ की विधि का वर्णन करते है—जो फल स्नान-दान और देवता के दर्शन से होता है यह सब बताया जाता है ॥१॥ मार्कण्डेय ह्रद मे जाकर मनुष्य को पवित्र होकर उत्तर की ओर मुख वाला होकर उस ह्रद मे निमज्जन करना चाहिए और तीन बार इस अधोवर्णित मन्त्र का उच्चारण करे ॥२॥ हे त्रिपुरासुर के नाशक ! हे भग के नेत्रो का हनन करने वाले ! इस ससार रूप सागर मे मन-पापो से ग्रसित और ज्ञान से शून्य मेरी रक्षा करो। आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार है ॥३॥ भगवान् शान्त स्वरूप और सब पापो के हरण करने वाले शिव के लिये मेरा नमस्कार है। हे देवेश्वर ! मैं यहाँ स्नान करता हूँ—मेरा पातक नष्ट हो जावें ॥४॥ नाभिमात्र जल मे स्नान करके विधि के साथ मतिमान् पुरुष को तिलोदक के द्वारा देवता ऋषि और अन्य पितृगणो का तर्पण करना चाहिए ॥५॥ स्नान करके तथा आचमन करके फिर शिवालय मे गमन करना चाहिए। उस देवता के स्थान मे प्रवेश करके वहाँ पर उनकी तीन प्रदक्षिणा करे ॥६॥ मार्कंण्डेय के ईश्वर का मूल मन्त्र से भलीभाँति पूजन करे और हे विप्रगण ! अघोर मन्त्र के द्वारा प्रणाम करके शिव को प्रसन्न करना चाहिए ॥७॥

त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु नमस्ते शशिभूषण।
त्राहि मां त्वं विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते ॥८
मार्कण्डेयह्रदे त्वेवं स्नात्वा दृष्ट्वा च शंकरम्।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥९
पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति।
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥१०
इहलोकं समासाद्य भवेद्विप्रो बहुश्रुतः।
शांकरं योगमासाद्य ततोमोक्षमवाप्नुयात् ॥११
कल्पवृक्षं ततो गत्वा कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्।
पूजयेत्परया भक्त्या मन्त्रेणानेन तं वटम् ॥१२

ओं नमो व्यक्तरूपाय महाप्रलयकारिणे ।
महद्रसोपविष्टाय न्यग्रोधाय नमोऽस्तु ते ॥१३
अमरस्त्व सदा कल्पे हरेश्चाऽऽयतनं वट ।
न्यग्रोध हर मे पाप कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते ॥१४

हे त्रिलोचन ! हे शशि के भूषण वाले ! आपको नमस्कार है—आपकी सेवा मे प्रणाम है ! हे विरूपाक्ष ! हे महादेव ! आप मेरी रक्षा कीजिए। आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥८॥ इस प्रकार से मार्कण्डेय ह्रद में स्नान करके तथा भगवान् शङ्कर का दर्शन करके मनुष्य दश अश्वमेघ यज्ञो न करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लिया करता है ॥९॥ वह मानव सव पापो से निर्मुक्त होकर सीधा शिवलोक मे गमन किया करता है। वहाँ पर परम श्रेष्ठ भोगो का उपभोग जब तक समस्त भूतों का सम्प्लव होता है किया करता है ॥१०॥ फिर पुण्य के क्षीण हो जाने पर इस लोक मे जन्म ग्रहण करके वह बहुश्रुत विप्र होता है और यहाँ पर शाङ्कर योग को प्राप्त करके फिर मोक्ष को प्राप्ति किया करता है ॥११॥ इसके उपरान्त कल्प वृक्ष के समीप मे जावे और उसकी तीन बार परिक्रमा करे। फिर पराभक्ति से निम्न कथित मन्त्र के द्वारा उस वट का अभ्यर्चन करना चाहिए ॥१२॥ महा प्रलय के करने वाले व्यक्त रूपधारी महद्रस से उपाविष्ट न्यग्रोध के लिये नमस्कार है ॥१ ॥ आप तो सदा कल्प मे भी अमर हैं। हे वट ! आप तो श्री हरि का आयतन हैं। हे, न्यग्रोध ! आप मेरे पाप का हरण करो। हे कल्पवृक्ष ! आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥१४॥

भक्त्या प्रदक्षिण कृत्वा नत्वा कल्पवट नरः ।
सहसा मुच्यते पापाज्जीर्णत्वच इवोरगः ॥१५
छाया तस्य समाक्रम्य कल्पवृक्षस्य भो द्विजाः ।
ब्रह्महत्या नरो जह्यात्पापेष्वन्येषु का कथा ॥१६
दृष्ट्वा कृष्णाङ्गसभूतं ब्रह्मतेजोमयं परम् ।
न्यग्रोधाकृतिक विष्णु प्रणिपत्य च भो द्विजाः ॥१७

राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति चाधिकम् ।
तथा स्ववंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥१८
वैनतेयं नमस्कृत्य कृष्णस्य पुरतः स्थितम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥१९
दृष्ट्वा वटं वैनतेयं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् ।
संकर्षणं सुभद्रां च स याति परमां गतिम् ॥२०
प्रविश्याऽऽयतनं विष्णोः कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ।
संकर्षणं स्वमन्त्रेण भक्त्याऽऽपूज्यप्रसादयेत् ॥२१

भक्तिभाव से प्रदक्षिणा करके तथा कल्प वट को नमस्कार करके मनुष्य सहसा पाप से छुटकारा पा जाया करता है जैसे जीर्ण त्वचा वाला सर्प अपनी केंचुली को तुरन्त ही छोड़ दिया करता है ॥१५॥ हे द्विजो ! उस कल्पवृक्ष की छाया मे स्थित होकर मनुष्य ब्रह्म हत्या के पाप से भी मुक्त हो जाया करता है फिर छोटे-मोटे अन्य पापो की तो बात ही क्या है ॥१६॥ हे द्विजो ! श्रीकृष्ण के अङ्ग से समुत्पन्न ब्रह्म तेज से परिपूर्ण न्यग्रोध की आकृति वाले परम विष्णु को प्रणाम करके मनुष्य राजसूय और अश्व इन दोनो यज्ञो के करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लिया करता है और उससे भी अधिक फल प्राप्त कर लेता है। अपने वंश का उद्धार करके वह अन्त मे विष्णु लोक को गमन कर जाता है ॥१७-१८॥ भगवान् श्रीकृष्ण के आगे स्थित रहने वाले वैनतेय ( गरुड ) को प्रणाम करके सब पापो से छुटकारा पाकर फिर विष्णु के पुर को गमन करता है ॥१९॥ वट और वैनतेय का दर्शन करके जो पुरुषोत्तम प्रभु-सङ्कर्षण तथा सुभद्रा का दर्शन किया करता है वह परम गति को प्राप्त होजाता है ॥२०॥ भगवान् विष्णु के मन्दिर मे प्रवेश करके उनकी तीन प्रदक्षिणा करे फिर संकर्षण प्रभु को उनके मन्त्र के द्वारा भक्ति से अर्चना करके उनको प्रसन्न करना चाहिए ॥२१॥

नमस्ते हलधृग्राम नमस्ते मुशलायुध ।
नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल ॥२२

नमस्ते वलिनां श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर ।
प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां कृष्णपूर्वज ॥२३
एवं प्रसाद्य चानन्तमजेयं त्रिदशार्चितम् ।
कैलासशिखराकारं चन्द्रात्कान्ततराननम् ॥२४
नीलवस्त्रधरं देवं फणाविकटमस्तकम् ।
महाबलं हलधरं कुण्डलैकविभूषितम् ॥२५
रौहिणेयं नरो भक्त्या लभेदभिमतं फलम्
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२६
आभूतसम्प्लवं यावद्भुक्त्वा तत्र सुखं नरः ।
पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य प्रवरे योगिनां कुले ॥२७
ब्राह्मणप्रवरो भूत्वा सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
ज्ञानं तत्र समासाद्य मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥२८

सङ्कर्षण भगवान् का मन्त्र यह है—हे बलधारियों में परम श्रेष्ठ ! हे हल के धारण करने वाले ! हे राम ! हे मुसल का आयुध रखने वाले ! हे रेवती के स्वामिन् ! हे भक्तो पर कृपा करने वाले ! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है और पुनः नमस्कार है। हे धरणी को धारण करने वाले ! आपको बारम्बार नमस्कार है। हे प्रलम्ब के दमन करने वाले ! हे कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता ! आपको मेरा नमस्कार है। आप मेरी रक्षा कीजिए ॥२२-२३॥ इन अनन्तर-अजेय-देवों के द्वारा पूजित कैलास के शिखर के आकार वाले और चन्द्र से भी अधिक सुन्दर मुख वाले—नीले वर्ण के वस्त्र को धारण करने वाले—फन के समान विकट मस्तक वाले—महान् बलधारी—कुण्डलों से भूषित—रौहिणेय भगवान् हलधर को इस प्रकार से-भक्तिभाव से प्रसन्न करके मनुष्य अपना अभिमत फल प्राप्त किया करता है और सब पापों से विमुक्त होकर अन्त में वह विष्णुलोक मे गमन किया करता है ॥२४-२६॥ महा प्रलय के समय तक वहाँ पर वह मनुष्य सुखोपभोग करता है। फिर पुण्यों का क्षय होने पर यहाँ पर योगियों के कुल में जो बहुत ही श्रेष्ठ होता है उसमे जन्म लेता है और परम श्रेष्ठ सब शास्त्रों का पारगामी ब्राह्मण होता है। उस जन्म में

परम ज्ञान की प्राप्ति करके वह परम दुर्लभ गति प्राप्त कर लेता है ।।२७-२८।।

एवमभ्यर्च्य हलिनं ततः कृष्णं विचक्षणः ।
द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः ।।२६
द्विषट्कवर्णमन्त्रेण भक्त्या ये पुरुषोत्तमम् ।
पूजयन्ति सदा धीरास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै ।।३०
न तां गतिं सुरा यान्ति योगिनो नैव सोपमाः ।
या गतिं यान्ति भो विप्रा द्वादशाक्षरतत्पराः ।।३१
तस्मात्तेनैव मन्त्रेण भक्त्या कृष्णं जगद्गुरुम् ।
संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ।।३२
जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाघनाशन ।
जय चाणूरकेशिघ्न जय कंसनिषूदन ।।३३
जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर ।
जय नीलाम्बुदश्याम जय सर्वसुखप्रद ।।३४
जय देव जगत्पूज्य जय संसारनाशन ।
जय लोकपते नाथ जय वाञ्छाफलप्रद ।।३५

इस प्रकार से हलधर का अर्चन करके फिर विचक्षण पुरुष को द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्र से सुसमाहित होकर कृष्ण का पूजन करना चाहिए ।।२६।। जो द्वादशाक्षर मन्त्र से भक्तिभाव के साथ पुरुषोत्तम प्रभु का पूजन किया करते हैं वे धीर पुरुष निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त किया करते हैं ।।३०।। जिस परमोत्तम गति को द्वादशाक्षर मन्त्र मे परायण भक्त लोग प्राप्त किया करते है हे विप्रो ! उस गति को सुरगण-योगीजन और महान् से भी महान् लोग भी प्राप्त नहीं किया करते हैं ।।३१।। अतएव उसी द्वादशाक्षर मन्त्र के द्वारा जगत् के गुरु श्री कृष्ण का गन्ध-पुष्पादि से भली भाँति पूजन करके तथा प्राणिपात करके उनको प्रसन्न करना चाहिए ।।३२।। फिर अधो लिखित पद्यों द्वारा प्रार्थना करे—हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! आपकी जय हो । हे सब अघों का विनाश करने वाले ! आपकी जय हो । हे चाणूर और केशी के

हनन करने वाले ! हे कंस के मारने वाले ! आपकी जय हो ।।३३।। हे पद्म-पलाश के समान नेत्रों वाले ! हे चक्र तथा गदा के धारण करने वाले ! आपकी जय हो । हे नीलमेघ के सदृश वर्ण वाले ! आपतो सभी को सुख प्रदान करने वाले हैं, आपकी सदा जय हो । हे जगत् के पूज्य ! आपही इस ससार के विनाश करने वाले हैं और आप सबकी इच्छाओ के फल प्रदान करने वाले महा पुरुष हैं । हे लोकों के स्वामिन् ! हे नाथ ! आपकी सर्वदा जय हो ।।३४-३५।।

ससारसागरे घोरे निःसारे दुःखफेनिले ।
क्रोधग्राहाकुले रौद्रे विपयोदकसप्लवे ।।३६
नानारोगोर्मिकलिले मोहावर्तसुदुस्तरे ।
निमग्नोऽह सुरश्रेष्ठ त्राहि मां पुरुषोत्तम ।।३७
एव प्रसाद्य देवेश वरद भक्तवत्सलम् ।
सर्वपापहरं देव सर्वकामफलप्रदम् ।।३८
पीनास द्विभुजं कृष्णं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
महोरस्क महाबाहु पीतवस्त्रं शुभाननम् ।।३९
शङ्खचक्रगदापाणि मुकुटाङ्गदभूपणम् ।
सर्वलक्षणसंयुक्तं वनमालाविभूपितम् ।।४०
दृष्ट्वा नरोऽञ्जलिं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य च ।
अश्वमेधसहस्राणां फलं प्राप्नोति वै द्विजाः ।।४१
यत्फल सर्वतीर्थेपु स्नाने दाने प्रकीर्तितम् ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ।।४२

हे सुरो मे परम श्रेष्ठ ! यह संसार रूपी सागर परम घोर और सारशून्य है तथा अनेक दुःख ही इसमे फेनो के समान भरे हुए हैं । यह ससार सागर क्रोध रूपी ग्राहो से परिपूर्ण है—महान् रौद्ररूप वाला और विपयों के जल से भरा पूरा है । अनेक रोगो की तरङ्गो से कलिल और मोहरूपी भँवरो से परम दुस्तर है । ऐसे इस ससाररूपी सागर मे मैं निमग्न हो रहा हूँ । हे पुरुषोत्तम ! आप मेरी रक्षा कीजिए ।।३६-३७।। इस तरह से देवेश्वर भगवान् वरदान देने वाले श्री कृष्ण को प्रसन्न करे

जोकि अपने भक्तों पर परम कृपा करने वाले हैं—सब पापों के हरने वाले और सब मनोरथों के फल प्रदान करने वाले हैं ॥३८॥ परिपुष्ट स्कन्धों वाले, दो भुजाओं से युक्त, पद्मपत्रों के समान आयत नेत्रों वाले, महान् वक्षस्थल वाले, बड़ी भुजाओं से संयुत, पीतवर्ण के वस्त्र धारी, परम शुभ मुख वाले, शङ्ख-चक्र-गदा-आयुधों को हाथों में धारण करने वाले, मुकुट एवं अङ्गदों से भूषित, व वनमाला धारी तथा सभी सुलक्षणों से युक्त श्री कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य दण्ड की भाँति भूमि में पड़कर उनको जो मनुष्य प्रणाम किया करता है हे द्विजगण ! वह सहस्रों अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त किया करता है ॥३९-४१॥ जो पुण्य फल सभी तीर्थों में जाकर स्नान तथा दान करने से प्राप्त होना बताया गया है उस सम्पूर्ण पुण्य फल को मनुष्य केवल श्री कृष्ण का दर्शन कर तथा उनको प्रणाम करके ही प्राप्त कर लिया करता है ॥४२॥

यत्फलं सर्वरत्नाद्यैरिष्टे बहुसुवर्णके ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४३
यत्फलं सर्ववेदेषु सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति नरः कृष्णं प्रणम्य च ॥४४
यत्फलं सर्वदानेन यमेन नियमेन च ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४५
तपोभिर्विविधैरुग्रैर्यत्फलं समुदाहृतम् ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४६
यत्फलं ब्रह्मचर्येण सम्यक्चीर्णेन तत्कृतम् ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४७
यत्फलं च गृहस्थस्य यथोक्ताचारवर्तिनः ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४८
यत्फलं वनवासेन वानप्रस्थस्य कीर्तितम् ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४९

जो पुण्यफल समस्त रत्नादि से युक्त बहुत से सुवर्ण के दान करने पर मिला करता है उसी फल को मनुष्य श्री कृष्ण भगवान् का दर्शन

प्राप्त करके तथा प्रणाम करके ही प्राप्त कर लिया करता है ॥४३॥ जो फल समस्त वेदो मे बताया गया है और जो सभी यज्ञो के यजन करने से प्राप्त हुआ करता है उसी फल को मनुष्य श्री कृष्ण को प्रणिपात करके ही प्राप्त कर लिया करता है ॥४४॥ जो पुण्य फल सब प्रकार के दानों के करने से, यमो और नियमो के परिपालन से प्राप्त होता है वह सभी फल श्री कृष्ण के दर्शन तथा प्रणाम करके भक्त मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥४५॥ जो फल अनेक प्रकार के तपो के द्वारा प्राप्त होना बतलाया गया है मनुष्य उसी सम्पूर्ण फल को श्री कृष्ण का दर्शन करके और उसको भक्तिभाव से प्रणाम करके ही प्राप्त कर लिया करता है। ॥४६॥ जो फल भली-भाँति ब्रह्मचर्य व्रत के परिपालन से होता है उसको केवल श्री कृष्ण भगवान् का चरण दर्शन करके तथा दण्डवत्-प्रणाम करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥४७॥ शास्त्र मे बताये हुए आचार के अनुसार रहने वाले गृहस्थाश्रमी को जो फल मिला करता है उसी फल को श्री कृष्ण के दर्शन और उनको प्रणाम करने से मनुष्य पा लिया करता है ॥४८॥ वानप्रस्थाश्रमी को जो फल वन मे ही निवास करने से मिलता है उसको मनुष्य श्री कृष्ण भगवान् का दर्शन तथा प्रणाम करके प्राप्त कर लिया करता है। श्री कृष्ण के दर्शन और प्रणाम करने का महान् उत्तम फल होता है ॥४९॥

सन्यासेन यथोक्तेन यत्फल समुदाहृतम् ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥५०
किं चात्र बहुनाक्नेन माहात्म्ये तस्य भो द्विजाः ।
दृष्ट्वा कृष्णं नरो भक्त्या मोक्ष प्राप्नोति दुर्लभम् ॥५१
पापैर्विमुक्तः शुद्धात्मा कल्पकोटिसमुद्भवैः ।
श्रिया परमया युक्तः सर्वैः समुदितो गुणैः ॥५२
सर्वकामसमृद्धेन विमानेन सुवर्चसा ।
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥५३
तत्र कल्पशतं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् ।
गन्धर्वाप्सरसैः सार्धं यथा विष्णुश्चतुर्भुजः ॥५४

च्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो विप्राणां प्रवरे कुले ।
सर्वज्ञः सर्ववेदी च जायते गतमत्सरः ॥५५
स्वधर्मनिरतः शान्तो दाता भूतहिते रतः ।
आसाद्य वैष्णवं ज्ञानं ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥५६

यथा विधि संन्यास ग्रहण करने में जो फल बताया गया है उसी फल को भक्त मनुष्य श्री कृष्ण के दर्शन तथा प्रणाम से प्राप्त कर लिया करता है उसे सन्यास की आवश्यकता ही नहीं होती है । ॥५०॥ हे द्विजगणो ! भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन तथा प्रणिपात करने के माहात्म्य का अत्यधिक वर्णन करने की क्या आवश्यकता है । संसार में रहकर परम दुर्लभ जो मोक्ष है उसको भी श्री कृष्ण का भक्त भक्ति के द्वारा उनका दर्शन कर तथा उनको प्रणाम करके आसानी से ही प्राप्त कर लेता है ॥५१॥ श्री कृष्ण का भक्त मनुष्य करोड़ों कल्पों में संचित किये हुए पापों से विमुक्त होकर विशुद्ध आत्मा होकर परमाधिक श्री से समन्वित हो जाता है तथा सभी सद्गुणों से भी समुदित हो जाया करता है ॥५२॥ सब कामों से समृद्ध तथा सुवर्चस वाले विमान के द्वारा अपने तीन कुलों का उद्धार करके सीधा विष्णुपुर को गमन किया करता है ॥५३॥ वहाँ पर भी कल्प पर्यन्त परम सुन्दर भोगों का उपभोग करके चार भुजाओं वाले विष्णु के समान स्वरूप वाला गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ आनन्द लाभ लिया करता है ॥५४॥ वहाँ से जब च्युत होता है तो यहाँ पर वह किसी विप्रों के परम श्रेष्ठ कुल में जन्म ग्रहण करता है और वह सर्वज्ञ, सर्ववेदी तथा मात्सर्य से रहित होता है ॥५५॥ वह यहाँ पर अपने धर्म में निरत रहने वाला, परमशान्त, दानशील, प्राणियों के हित में रति रखने वाला होता है । यहाँ पर वैष्णव ज्ञान का लाभ प्राप्त कर फिर मोक्ष को प्राप्त किया करता है । इस तरह से श्री कृष्ण के भक्त को भुक्ति और मुक्ति दोनों ही प्राप्त हो जाती हैं ॥५६॥

ततः संपूज्य मन्त्रेण सुभद्रां भक्तवत्सलाम् ।
प्रसादयेत्ततो विप्राः प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥५७

नमस्ते सर्वगे देवि नमस्ते शुभसौख्यदे ।
त्राहि मां पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥५८
एवं प्रसाद्य तां देवीं जगद्धात्रीं जगद्धिताम् ।
बलदेवस्य भगिनी सुभद्रां वरदां शिवाम् ॥५९
कामगेन विमानेन नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ।
आभूतसम्प्लवं यावत्क्रीडित्वा तत्र देववत् ॥६०
इह मानुषतां प्राप्तो ब्राह्मणो वेदविद्भवेत् ।
प्राप्य योगं हरेस्तत्र मोक्षं च लभते ध्रुवम् ॥६१

इसके उपरान्त मन्त्र के द्वारा भक्तों पर प्यार करने वाली सुभद्रा का अर्चन करके हे विप्रो ! प्रणिपात करके कृताञ्जलि होकर सुभद्रादेवी को प्रसन्न करना चाहिए ॥५७॥ हे सर्वत्र गमन करने वाली देवि ! आपको नमस्कार है । हे शुभ और सौख्य का प्रदान करने वाली ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है । हे पद्म दल के समान सुन्दर नेत्रों वाली ! हे कात्यायनि ! आप मेरा परित्राण करिए तथा मेरा आपकी सेवा में प्रणाम है ॥५८॥ इस प्रकार से जगत् की धात्री तथा जगत् के हित करने वाली श्री बलदेवजी की भगिनी वरदा एवं शिवा सुभद्राजी को प्रसन्न करके अन्त में वह मनुष्य इच्छानुकूल गमन करने वाले विमान के द्वारा विष्णुपुर का गमन किया करता है । वहाँ पर देवों के सामने महा प्रलय होने के समय तक आनन्द का उपभोग करके पुनः पुण्यों का उपभोगों द्वारा क्षय हो जाने पर यहाँ मनुष्य जन्म प्राप्त करता है तथा वेदज्ञ ब्राह्मण होता है । वहाँ हरि का योग प्राप्त करके निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त किया करता है ॥५९-६१॥

—:※:—

## २५—नरसिंहमाहात्म्यवर्णन

एवं दृष्ट्वा बलं कृष्णं सुभद्रां प्रणिपत्य च ।
धर्मं चार्थं च कामं मोक्षं च लभते ध्रुवम् ॥१

निष्क्रम्य देवतागारात्कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
प्रणम्याऽऽयतन पश्चाद्व्रजेत्तत्र समाहितः ॥२
इन्द्रनीलमयो विष्णुर्यत्राऽऽस्ते वालुकावृतः ।
अन्तर्धानगतं नत्वा ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥३
सर्वदेवमयो योऽसौ हतवानसुरोत्तमम् ।
स आस्ते तत्र भो विप्राः सिंहार्धकृतविग्रहः ॥४
भक्त्या दृष्ट्वा तु त देव प्रणम्य नरकेसरीम् ।
मुच्यते पातकैर्मर्त्यः समस्तैर्नात्र सशयः ॥५
नरसिंहस्य ये भक्ता भवन्ति भुवि मानवाः ।
न तेषा दुष्कृत किंचित्फल स्याद्यद्यदीप्सितम् ॥६
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नरसिंह समाश्रयेत् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणा फल यस्मात्प्रयच्छति ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से बलराम-श्रीकृष्ण और सुभद्रा को प्रणाम करके मनुष्य धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष को निश्चित रूप से प्राप्त कर लिया करता है ॥१॥ देवमन्दिर से निकल कर मनुष्य कृत-कृत्य होजाता है । फिर उस देवायतन को प्रणाम करके सावधान होकर गमन करना चाहिए ॥२॥ जहाँ पर इन्द्रनीलमय भगवान् विष्णु बालुका से समावृत्त हैं उन अन्तर्धान को प्राप्त हुए विष्णु को नमन करके मनुष्य विष्णुपुर को गमन करता है ॥३॥ हे विप्रो ! सर्वदेवो से परिपूर्ण जिसने असुरो उत्तम का हनन किया था वही आधे सिंह का शरीर धारण करने वाले भगवान् नृसिंह वहाँ पर विद्यमान हैं ॥४॥ भक्तिभाव से उन देव का दर्शन करके और नरकेसरी भगवान् को प्रणाम करे । मनुष्य उसी समय मे सब पातको से मुक्त हो जाता है॥इसमे लेश मात्र भी सशय नही है ॥५॥ उस भूमण्डल मे जो मानव भगवान् नरसिंह के भक्त होते हैं उनको कोई भी दुष्कृत शेष नही रहा करता है और जो भी अभीप्सित फल होता है वह प्राप्त होजाया करता है ॥६॥ इस लिये सब प्रकार के प्रयत्नो के द्वारा भगवान् नरसिंह देव का समाश्रय ग्रहण करना चाहिए

जिनसे धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का फल प्राप्त हो जाया करता ॥७॥

माहात्म्यं नरसिंहस्य सुखदं भुवि दुर्लभम् ।
यथा कथयसे देव तेन नो विस्मयो महान् ॥८
प्रभावं तस्य देवस्य विस्तरेण जगत्पते ।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः ॥९
यथा प्रसीदेद्देवोऽसौ नरसिंहो महाबलः ।
भक्तानामुपकाराय ब्रूहि देव नमोऽस्तु ते ॥१०
प्रसादान्नरसिंहस्य या भवन्त्यत्र सिद्धयः ।
ब्रूहि ताः कुरु चास्माकं प्रसादं प्रपितामह ॥११
श्रृणुध्वं तस्य भो विप्राः प्रभावं गदतो मम ।
अजितस्याप्रमेयस्य भुक्तिमुक्तिप्रदस्य च ॥१२
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समस्तास्तस्य भो द्विजाः ।
सिंहार्धकृतदेहस्य प्रवक्ष्यामि समासतः ॥१३
याः काश्चित्सिद्धयश्चात्र श्रूयन्ते दैवमानुषाः ।
प्रसादात्तस्य ताः सर्वाः सिध्यन्ति नात्र संशयः ॥१४

मुनिगण ने कहा—हे देव ! इस भूमण्डल मे परम दुर्लभ और सुख देने वाला भगवान् नरसिंह का माहात्म्य है जैसाकि आप वर्णन कर रहे हैं । इससे हमको महान् विस्मय हो रहा है ॥८॥ हे जगत् के स्वामिन् ! उन देव का प्रभाव हम लोग विस्तार पूर्वक श्रवण करने की अभिलाषा करते हैं । आप कृपया हमको बतलाइये । हमारे मन मे इसका बड़ा भारी कौतूहल होरहा है ॥९॥ जिस विधि से यह महान् बलवान् देव नरसिंह प्रसन्न हो जावें उसी विधान को आप भक्तो के उपकार के लिये बतलाइये । हे देव ! आपकी सेवा मे हमारा बारम्बार प्रणाम है ॥१०॥ नरसिंह भगवान् के प्रसाद से यहाँ पर जो सिद्धियाँ होती हैं उन सबको भी आप बतलाइये । हमारे ऊपर प्रसन्नता कीजिए हे पितामह ! आप परम कृपालु हैं ॥११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे विप्रगणो ! अब मैं बतलाता हूँ आप कृपा करके उन देव नरसिंह का जो प्रभाव होता है

उसका श्रवण करिए। यह देव अजित हैं। अजेय हैं और भुक्ति तथा मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाले हैं ॥१२॥ हे द्विजो ! कौन ऐसा शक्तिशाली पुरुष है जो उनके समस्त गुण-गणों का वर्णन कर सके। अर्थात् ऐसी शक्ति वाला कोई भी नहीं है। अतएव आधे सिंह का शरीर धारण करने वाले उन नरसिंह देव के गुणों को हम अतीव संक्षेप में बतलाते हैं ॥१३॥ देव और मानव जो भी कोई सिद्धियों के विषय में यहाँ पर श्रवण किया करते हैं अर्थात् जितनी भी कुल सिद्धियाँ हैं उन नरसिंहदेव के प्रसाद से वे सभी सिद्ध होजाया करती हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१४॥

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले दिक्षु तोये पुरे नगे।
प्रसादात्तस्य देवस्य भवत्यव्याहता गतिः ॥१५
असाध्यं तस्य देवस्य नास्त्यत्र सचराचरे।
नरसिंहस्य भो विप्राः सदा भक्तानुकम्पिनः ॥१६
विधानं तस्य वक्ष्यामि भक्तानामुपकारकम्।
येन प्रसीदते स्वामी सिंहार्धकृतविग्रहः ॥१७
शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः कल्पराजं सनातनम्।
नरसिंहस्य तत्त्वं च यन्न ज्ञातं सुरासुरैः ॥१८
शाकयावकमूलैस्तु फलपिण्याककसक्तुभिः।
पयोभक्षेण विप्रेन्द्रा वर्तयेत्साधकोत्तमः ॥१९
कौपीनवासाश्च ध्यानयुक्तो जितेन्द्रियः।
अरण्ये विजने देशे पर्वते सिन्धुसंगमे ॥२०
ऊषरे सिद्धक्षेत्रे च नरसिंहाश्रमे तथा।
प्रतिष्ठाप्य स्वयं वाऽपि पूजां कृत्वा विधानतः ॥२१

उन नरसिंह देव के प्रसाद से स्वर्ग में, मर्त्यलोक में, पाताल में, सभी दिशा-विदिशाओं में, जल में, पुर में, पर्वत में, मनुष्य की गति अव्याहत होजाया करती है अर्थात् वह सभी जगह गमन कर लिया करता है और उसकी कहीं पर भी रुकावट नहीं हुआ करती है ॥१५॥ इस चराचर में उस देव को कुछ भी असाध्य नहीं है। भगवान् नरसिंह

हे विप्रो ! सर्वदा अपने भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले हैं ॥१६॥ भक्तों का उपकार करने वाले उन देव का विधान मैं बतलाऊँगा जिसके द्वारा आधे सिंह का विग्रह धारण करने वाले नरसिंह प्रभु अति प्रसन्न होजाया करते हैं ॥१७॥ हे मुनिशार्दूलो ! आप लोग सनातन कल्प राज का श्रवण कीजिए। वह नरसिंह प्रभु का तत्त्व है जिसको कि सुरों तथा असुरों में किसी ने भी जाना है ॥१८॥ शाक यावक-मूल-फल-पिण्याक-सतुआ और यव के भक्षण के द्वारा हे विप्रेन्द्रो ! उत्तम साधना करने वाले को वर्त्तन करना चाहिए ॥१९॥ कौश और कोपीन का वस्त्र धारण करे-सदा ध्यान में युक्त रहे और इन्द्रियों को जीतकर रक्खे। चाहे अरण्य में या किसी वियावान देश में-पर्वत पर या दो सरिताओं के सङ्गम के स्थल में-ऊपर में अथवा किसी सिद्ध क्षेत्र में तथा नरसिंह के आश्रम में अपने आपकी स्थिति करे और यहाँ प्रतिष्ठापित करके विधि-विधान से अभ्यर्चन करना चाहिए ॥२०-२१॥

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य उपोष्य मुनिपुंगवाः।<br>
जपेल्लक्षाणि वै विशन्मनसा संयतेन्द्रियः ॥२२

उपपातकयुक्तश्च महापातकसंयुतः।<br>
मुक्तो भवेत्ततो विप्राः साधको नात्र संशयः ॥२३

कृत्वा प्रदक्षिणं तत्र नरसिंहं प्रपूजयेत्।<br>
पुण्यगन्धादिभिर्धूपैः प्रणम्य शिरसा प्रभुम् ॥२४

कर्पूरचन्दनाक्तानि जातीपुष्पाणि मस्तके।<br>
प्रदद्यान्नरसिंहस्य ततः सिद्धिः प्रजायते ॥२५

भगवान्सर्वकार्येषु न क्वचित्प्रतिहन्यते।<br>
तेजः सोढुं न शक्ताः स्युर्ब्रह्मरुद्रादयः सुराः ॥२६

किं पुनर्दानवा लोके सिद्धगन्धर्वमानुषाः।<br>
विद्याधरा यक्षगणाः सकिन्नरमहोरगाः ॥२७

मन्त्र यानासुरान्हन्तुं जपन्त्येकेऽन्यसाधकाः।<br>
ते सर्वे प्रलयं यान्ति दृष्ट्वाऽनित्याग्निवर्चसः ॥२८

हे मुनिपुङ्गवो ! मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन उपवास करें और संयत इन्द्रियों वाला मन से बीस लक्ष जाप करे ॥२२॥ उप पातकों से युक्त और महापातकों से युक्त मनुष्य जो साधना करने वाला है वह मुक्त होजाया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२३॥ वहाँ पर प्रदक्षिणा करके नरसिंह भगवान् का पूजन करना चाहिए। पुष्प-गन्ध-धूप आदि से अर्चन करके प्रभु के आगे मस्तक भूमि में टेककर प्रणाम करना चाहिए ॥२४॥ इसके अनन्तर भगवान् नरसिंह के मस्तक में कर्पूर और चन्दन से अक्त जाती पुष्पों का अर्पित करे—ऐसा करने से सिद्धि हो जाया करती है ॥२५॥ नरसिंह भगवान् समस्त कार्यों में कहीं पर भी हन्यमान नहीं होते हैं। उनका इतना प्रबल तेज होता है कि उसको ब्रह्मा और रुद्र आदि कोई भी सुर सहन करने में समर्थ नहीं हुआ करते हैं ॥२६॥ फिर लोक में दानवों की तो बात ही क्या है। सिद्ध-गन्धर्व-मनुष्य-विद्याधर-यक्षगण-किन्नर-महोरग तथा अन्य साधक जिन असुरों का हनन करने के लिये नरसिंह देव के मन्त्र का जप किया करते हैं। इस अग्नि के समान वर्चस वालों को देख कर ही वे सब प्रलय को प्राप्त होजाया करते हैं ॥२७-२८॥

सकृज्जप्तं तु कवचं रक्षेत्सर्वमुपद्रवम् ।
द्विर्जप्तं कवचं दिव्यं रक्षते देवदानवात् ॥२९
गन्धर्वाः किंनरा यक्षा विद्याधरमहोरगाः ।
भूताः पिशाचा रक्षांसि ये चान्ये परिपन्थिनः ॥३०
त्रिर्जप्तं कवचं दिव्यमभेद्यं च सुरासुरैः ।
द्वादशाभ्यन्तरे चैव योजनानां द्विजोत्तमाः ॥३१
रक्षते भगवान्देवो नरसिंहो महाबलः ।
ततो गत्वा बिलद्वारमुपोष्य रजनीत्रयम् ॥३२
पलाशकाष्ठैः प्रज्वाल्य भगवन्तं हुताशनम् ।
पलाशसमिधस्तत्र जुहुयात्त्रि मधुप्लुताः ॥३३
द्वे शते द्विजशार्दूला वषट्कारेण साधकः ।
ततो विवरद्वारं तु प्रकटं जायते क्षणात् ॥३४

ततो विशेत्तु निःशङ्कं कवची विवरं बुधः ।
गच्छतः संकटं तस्य तमोमोहश्च नश्यति ॥३५

एक बार भी इनके कवच का जप सब उपद्रवो से रक्षा किया करता है । यदि दो बार इनके कवच का जाप किया जावे जोकि परम दिव्य है देव और दानवो से रक्षा किया करता है ॥२६॥ गन्धर्व, किन्नर यक्ष, विद्याधर, महोरग, भूत, पिशाच, राक्षस और जो अन्य भी परिपन्थी होवे हैं इनसे सुरक्षा पाने के लिये तीन बार इस दिव्य कवच का जाप करे जोकि सुरासुरों के द्वारा अभेद्य है । हे द्विजोत्तमो ! द्वादश योजनो के अन्दर उसकी महान् बलवान भगवान् नरसिंहदेव रक्षा किया करते हैं । इसके पश्चात् वहा से किसी बिल के द्वार पर जाकर तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करना चाहिए ॥३०-३२॥ ढाक के काष्ठों से भगवान् हुताशन को प्रज्वलित करके त्रिमधु से युक्त करके उस अग्नि में पलाश की समिधाओ की आहुतियां देनी चाहिए ॥३३॥ हे द्विजशार्दूलो ! साधक को वषट्कार से दोसौ आहुतियां देनी चाहिए । इसके पश्चात उसी क्षण मे विवर का द्वार प्रकट हो जाता है ॥३४॥ इसके अनन्तर कवच वाला बुध निःशङ्क होकर उस विवर मे प्रवेश करे । गमन करने वाले उसका सब सङ्कट और तमोमोह नष्ट हो जाया करता है ॥३५॥

राजमार्गः सुविस्तीर्णो दृश्यते भ्रमराजि(श्रि)तः ।
नरसिंहं स्मरंस्तत्र पाताल विशते द्विजाः ॥३६
गत्वा तत्र जपेत्तत्त्व नरसिंहाख्यमव्ययम् ।
ततः स्त्रीणा सहस्राणि वीणावादनकर्मणाम् ॥३७
निर्गच्छन्ति पुरो विप्राः स्वागतं ता वदन्ति च ।
प्रवेशयन्ति ता हस्ते गृहीत्वा साधकेश्वरम् ॥३८
ततो रसायनं दिव्य पाययन्ति द्विजोत्तमाः ।
पीतमात्रे दिव्यदेहो जायते सुमहाबलः ॥३९
क्रीडते सह कन्याभिर्यावदाभूतसम्प्लवम् ।
भिन्नदेहो वासुदेवे लीयते नात्र संशयः ॥४०

यदा न रोचते वासस्तस्मान्निर्गच्छते पुनः ।
पट्टं शूलं च खड्गं च रोचना च मणि तथा ॥४१
रसं रसायनं चैव पादुकाञ्जनमेव च ।
कृष्णाजिनं मुनिश्रेष्ठा गुटिका च मनोहराम् ॥४२
कमण्डलुं चाक्षसूत्रं यष्टिं सञ्जीवनी तथा ।
सिद्धविद्या च शास्त्राणि गृहीत्वा साधकेश्वरः ॥४३

उसमें भ्रमरो ने अखिल गज मार्ग अत्यन्त सुविस्तीर्ण दिखलाई दिया करता है । हे द्विजो ! वहाँ पर भगवान् नरसिंह का स्मरण करता हुआ पाताल मे प्रवेश किया करता है ॥३६॥ वहाँ जाकर अव्यय नरसिंह नामक तत्व का ध्यान करना चाहिए । इसके उपरान्त वीणा के वादन करने वालो की सहस्रो स्त्रियाँ आगे निकलती हैं और हे विप्रो ! वे स्वागत कहा करती हैं । वे स्त्रियाँ उस साधक का स्वागत करती हुई उसको हाथ से पकड कर अन्दर प्रवेश कराया करती हैं ॥३७-३८॥ हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर वे उस साधना करने वाले पुरुष को परम दिव्य रसायन का पान करती हैं । उसके पान करते ही वह साधक दिव्यदेह वाला महान् बलवान होता है ॥३९॥ वहाँ पर वह जब तक भूतो का सम्प्लव होता है जब तक कन्याओं के साथ क्रीडा किया करता है । फिर निर्मदेह वाला वह वासुदेव मे लीन हो जाता है—इसमें कुछ भी संशय नही है ॥४०॥ जब इसको वहाँ पर निवास पसन्द नहीं होता है तो वह वहाँ से पुनः निकल कर चला जाता है । पट्ट-शूल खड्ग-रोचना-मणि-रस-रसायन- पादुकाञ्जन -कृष्णाजिन और हे मुनिश्रेष्ठो ! मनोहरगुटिका, कमण्डलु, अक्षसूत्र, यष्टि, सञ्जीवनी, सिद्धविद्या और शास्त्रो को वह साधकेश्वर सबको ग्रहण कर लेता है ॥४१-४३॥

ज्वलद्वह्निस्फुलिङ्गोर्मिवेष्टितं निशिखं हृदि ।
सकृन्न्यस्तं दहेत्सर्वं वृजिनं जन्मकोटिजम् ॥४४
विषे न्यस्तं विषं हन्यात्कुष्टं हन्यात्तनौ स्थितम् ।
स्वदेहे भ्रूणहत्यादि कृत्वा दिव्येन शुध्यति ॥४५

महाग्रहग्रहीतेषु ज्वलमानं विचिन्तयेत् ।
हृदन्ते वै ततः शीघ्रं नश्येयुर्दारुणा ग्रहाः ॥ ६
बालानां कण्ठके बद्धं रक्षा भवति नित्यशः ।
गण्डपिण्डकलूतानां नाशनं कुरुते ध्रुवम् ॥४७
व्याधिजाते समिद्भिश्च घृतक्षीरेण होमयेत् ।
त्रिसंध्यं मासमेकं तु सर्वरोगान्विनाशयेत् ॥४८
असाध्यं तु न पश्यामि त्रैलोक्ये सचराचरे ।
यां या कामयते सिद्धिं तां तां प्राप्नोति स ध्रुवम् ॥४९

जलती हुई वह्नि के स्फुलिङ्गो की ऊर्मियों से वेष्टित त्रिशिख को हृदय मे एक बार विन्यस्त करके करोड़ों जन्मों मे समुत्पन्न सम्पूर्ण पापों को दग्ध कर देना चाहिए ॥४४॥ विष मे न्यस्त विष का हनन कर देवे और शरीर मे स्थित कुष्ठ का हनन कर देना चाहिए। अपने देह मे भ्रूण हत्यादि करके दिव्यतेज से शुद्ध होता है ॥४५॥ महाग्रहो मे गृहीतो मे ज्वलमान का दिचिन्तन करना चाहिए। इसके अनन्तर हृदन्त मे शीघ्र ही दारुणग्रह नष्ट हो जाते हैं ॥४६॥ छोटे बालको के कण्ठ मे बद्ध होकर नित्य ही रक्षा होती है। गण्ड-पिण्डक और लूताओं का विनाश निश्चय रूप से कर देता है ॥४७॥ व्याधि के समुत्पन्न होने पर घृत और क्षीर के द्वारा समिधाओं से होम करना चाहिए। एक मास पर्यन्त तीनो सन्ध्याओ के समय मे करने से समस्त रोगो का विनाश कर देता है ॥४८-। इस चराचर त्रैलोक्य में कुछ भी ऐसा मैं नहीं देखता हूँ जो साध्य न हो। जिस-जिस सिद्धि की कामना किया करता है उसी-उसी सिद्धि की प्राप्ति निश्चित रूप से मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥४९॥

अष्टोत्तरशतं त्वेके पूजित्वा मृगाधिपम् ।
मृत्तिकाः सप्त वल्मीके श्मशाने च चतुष्पथे ॥५०
रक्तचन्दनसमिश्रा गवां क्षीरेण लोडयेत् ।
सिंहस्य प्रतिमां कृत्वा प्रमाणेन षडङ्गुलाम् ॥५१

लिम्पेत्तथा भूर्जपत्रे रोचनया समालिखेत् ।
नरसिंहस्य कण्ठे तु बद्ध्वा चैव हि मन्त्रवित् ॥५२
जपेत्संख्याविहीनं तु पूजयित्वा जलाशये ।
यावत्सप्ताहमात्रं तु जपेत्संयमितेन्द्रियः ॥५३
जलाकीर्णा मुहूर्तेन जायते सर्वमेदिनी ।
अथवा शुष्कवृक्षाग्रे नरसिंहं तु पूजयेत् ॥५४
जप्त्वा चाष्टशतं तत्त्वं वर्षन्तं विनिवारयेत् ।
तमेव पिञ्जके बद्ध्वा भ्रामयेत्साधकोत्तमः ॥५५
महावातो मुहूर्तेन आगच्छेन्नात्र संशयः ।
पुनश्च धारयेत्क्षिप्रं सप्तस(ज)प्तते वारिणा ॥५६

कुछ लोग एक सौ आठ मृगाधिप का पूजन सात मृत्तिका वल्मीक ( बांबी ) में—श्मशान में और चतुष्पथ में ग्रहण करके रक्त चन्दन से भलीभाँति मिश्रित करे और गौ के क्षीर से लोडन करना चाहिए । फिर छै अंगुल प्रमाण वाली सिंह की प्रतिमा का निर्माण करे ॥५०-५१॥ तथा भोजपत्र में लिम्पन करे और रोचना से लेखन करना चाहिए । मन्त्र के ज्ञाता पुरुष को उसे नरसिंह भगवान् के कण्ठ में बद्ध कर देना चाहिए ॥५२॥ जलाशय में पूजन करके बिना ही संख्या के उसका जाप करे । सब इन्द्रियों का संयम में रखने वाले साधक पुरुष को एक सप्ताह भर इसका जप करना चाहिए ॥५३॥ एक मूहूर्त्त मात्र समय में ही सम्पूर्ण मेदिनी जल से समाकीर्ण हो जाती है । अथवा किसी सूखे हुए वृक्ष के अग्रभाग में नरसिंह देव का यजन करना चाहिए ॥५४॥ आठ सौ तत्त्व का जाप करके वर्षते हुए का निवारण कर देवे । इस प्रकार से उसको एक पिञ्जक में बाँधकर उत्तम साधक को उसे घुमाना चाहिए ॥५५॥ एक मुहूर्त्त मात्र समय में ही महान् वात आ जाया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । और फिर इसको शीघ्र ही सात बार जपे हुए जल से धारण करे ॥५६॥

अथ तां प्रतिमां द्वारि निखनेद्यस्य साधकः ।
गोत्रोत्सादो भवेत्तस्य उद्धृते चैव शान्तिदः ॥५७

तस्मात्तं मुनिशार्दूला भक्त्या संपूजयेत्सदा ।
मृगराजं महावीर्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥५८
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः ॥५९
संपूज्य तं सुरश्रेष्ठं भक्त्या सिंहवपुर्धरम् ।
मुच्यन्ते चाशुभैर्दुःखैर्जन्मकोटिसमुद्भवैः ॥६०
सपूज्य तं सुरश्रेष्ठं प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम्
देवत्वममरेशत्वं गन्धर्वत्व न भो द्विजाः ॥६१
यक्षविद्याधरत्व च तथाऽन्यच्चाभिवाञ्छितम् ।
दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा सपूज्य नरकेसरीम् ॥६२
प्राप्नुवन्ति नरा राज्यं स्वर्गं मोक्ष च दुर्लभम् ।
नरसिंहं नरो दृष्ट्वा लभेदभिमत फलम् ॥६३

साधक जिसके द्वार पर इस प्रतिमा को गाड़ देवे तो उसका गोत्र का एकदम उत्साह हो जाया करता है और उसके उद्वास करने पर शान्ति देने वाला हुआ करता है अर्थात् वह प्रतिमा भूमि में रहेगी जब तक उसके वंश का नाश होता ही रहेगा और उसे निकाल लेने पर ही शान्ति हुआ करती है ॥५७॥ इस कारण से हे मुनि शार्दूलो ! उन महान् वीर्य वाले सब कामों के फल को प्रदान करने वाले मृगरेज का सदा ही पूजन करना चाहिए ॥५८॥ वह पूजक पुरुष सब पापों से विमुक्त होकर सीधा विष्णु भगवान् के लोक को गमन किया करता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और स्त्रियाँ तथा अन्त्यज सभी भक्तिभाव से सिंह के शरीर का धारण करने वाले उन सुरों में श्रेष्ठ का भली भाँति पूजन करके करोड़ों जन्मों में समुत्पन्न होने वाले अशुभ दुःखों से छुटकारा पा जाया करते हैं ॥५९-६०॥ उन सुरों में परम श्रेष्ठ देव का अभ्यर्चन करके मनुष्य अपने अभिवाञ्छित फल की प्राप्ति किया करते हैं । देवत्व-अमरत्व-अमरों का ईशत्व-गन्धर्वत्व-यक्ष तथा विद्याधरत्व और हे द्विज-गणो ! इनके अतिरिक्त जो कुछ भी अन्य अभीष्ट मनोरथ होता है उसको भी भगवान् नरकेसरी का दर्शन करके-स्तवन करके-नमस्कार करके और

भली विधि से पूजन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करते हैं। राज्य-स्वर्गवास और परम दुर्लभ मोक्ष को भी मनुष्य नरसिंह भगवान् का दर्शन करके अभिमत फल का लाभ प्राप्त किया करता है ॥६१-६३॥

निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।
सकृद्दृष्ट्वा तु तं देवं भक्त्या सिंहवपुर्धरम् ॥६४
मुच्यते चाशुभैर्दुःखैर्जन्मकोटिसमुद्भवैः ।
संग्रामे संकटे दुर्गे चोरव्याघ्रादिपीडिते ॥६५
कान्तारे प्राणसंदेहे विषवह्निजलेषु च ।
राजादिभ्यः समुद्रेभ्यो ग्रहरोगादिपीडिते ॥६६
स्मृत्वा तं पुरुषः सर्वं राजग्रामैर्विमुच्यते ।
सूर्योदये यथा नाशं तमोऽभ्येति महत्तरम् ॥६७
तथा सदर्शने तस्य विनाशं यान्त्युपद्रवाः ।
गुटिकाञ्जनपातालपादुके च रसायनम् ॥६८
नरसिंहे प्रसन्ने तु प्राप्नोत्यन्यांश्च वाञ्छितान् ।
यान्यान्कामानभिध्यायन्भजते नरकेसरीम् ॥६९
तांस्तान्कामानवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः ।
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च ॥७०

वह मनुष्य फिर सभी पापों से छूटकर विष्णुलोक में सिंह रूप धारी देव का भक्तिभाव से दर्शन प्राप्त कर लेता है वह करोड़ों जन्मों में उत्पन्न हुए अशुभ दुःखों से विमुक्त हो जाता है। संग्राम में-सङ्कट में-दुर्ग में-चोर तथा व्याघ्रादि से पीड़ित होने के समय में-गहन वन में-प्राणों के सन्देह के अवसर पर-विष,वह्नि और जल में- राजा आदि से तथा समुद्रों से और ग्रह तथा रोग आदि से पीड़ित होने पर पुरुष उन भगवान् का स्मरण करके ही सभी राजग्रामों से विमुक्त हो जाया करता है। जिस प्रकार से सूर्य्य के उदय होने पर महान् से भी महान् अन्धकार विनष्ट हो जाता है ठीक उसी भाँति से उन प्रभु के दर्शन होने पर भी प्रकार के उपद्रव विनाश को प्राप्त होते हैं। गुटिका-अञ्जन-

पातालाञ्जन-पादुकाएँ तथा रसायन ये सभी भगवान् नरसिंहदेव के प्रसन्न होने पर प्राप्त हो जाया करते हैं और अन्य भी वाञ्छितों को प्राप्त कर लेता है। नर केसरी का ध्यान करते हुए जिन-जिन मनोरथों को मनुष्य किया करता है उन्हीं-उन कामनाओं को मनुष्य प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उन देवेश्वर का दर्शन—भक्ति से अर्चन और प्रणाम करके बहुत अधिक फल प्राप्त किया करता है ॥६४-७०॥

दशानामश्वमेधानां फलं दशगुणं लभेत् ।
पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः ॥७१
सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः ।
सौवर्णेन विमानेन किंकिणीजालमालिना ॥७२
सर्वकामसमृद्धेन कामगेन सुवर्चसा ।
तरुणादित्यवर्णेन मुक्ताहारावलम्बिना ॥७३
दिव्यस्त्रीशतयुक्तेन दिव्यगन्धर्वनादिना ।
कुलैकविंशमुद्धृत्य देववन्मुदितः सुखी ॥७४
स्तूयमानोऽप्सरोभिश्च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ।
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्विष्णुलोके द्विजोत्तमाः ॥७५
गन्धर्वैरप्सरैर्युक्तः कृत्वा रूपं चतुर्भुजम् ।
मनोह्लादकरं सौख्यं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ६
पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः प्रवरे योगिनां कुले ।
चतुर्वेदी भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥
वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७७

दश अश्वमेध यज्ञों के जो फल होते हैं उससे भी दश गुना फल भगवान् नरसिंह के दर्शन आदि से प्राप्त हुआ करता है। भगवान् नरसिंह का उपासक पुरुष सब पापों से निर्मुक्त होता हुआ सभी सद्गुणों से समलङ्कृत हो जाता है। सब कामनाओं से समृद्ध होकर जरा (वृद्धता) और मरण से छुटकारा प्राप्त कर लेता है। वह फिर किङ्किणियों के जालों की माला वाले, सुवर्ण निर्मित, सभी कामों से

सुसम्पन्न, कामग, सुवर्चस, तरुण आदित्य के समान वर्ण वाले, मुक्ताओं के हारों से युक्त, दिव्य स्त्रियों के सैकड़ों समूह से संयुत और दिव्य गन्धर्व आदि से समन्वित विमान के द्वारा अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करके देवता के समान प्रसन्न एवं सुखी होकर विष्णुलोक को गमन किया करता है और अप्सराएँ उसकी स्तुति किया करती हैं ॥७१-७५॥ हे द्विजोत्तमो ! वह मनुष्य उस विष्णुलोक में परम श्रेष्ठ भोगों का उपभोग करके गन्धर्व तथा अप्सराओं से युक्त होकर चतुर्भुज स्वरूप धारण कर लिया करता है और मन को आह्लादित करने वाला सुख महाप्रलय के समय तक प्राप्त किया करता है ॥७६॥ जब पुण्य फलों का क्षय हो जाता है तो पुनः वह यहाँ पर किसी योगियों के परम श्रेष्ठ कुल में जन्म ग्रहण किया करता है। वह विप्र चारों वेदों और वेदाङ्गों का पारगामी विद्वान हुआ करता है। फिर वैष्णव योग में समास्थित होकर मोक्ष की प्राप्ति किया करता है। नरसिंहदेव की उपासना से श्रेष्ठ भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति हो जाती है ॥७७॥



## २६—श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णन

अनन्ताख्यं वासुदेवं दृष्ट्वा भक्त्या प्रणम्य च ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति परं पदम् ॥१

मया चाऽऽराधितश्चासौ शक्रेण तदनन्तरम् ।
विभीषणेन रामेण कस्तं नाऽऽराधयेत्पुमान् ॥२

श्वेतगङ्गां नरः स्नात्वा यः पश्येच्छ्वेतमाधवम् ।
मत्स्याख्यं माधवं चैव श्वेतद्वीपं स गच्छति ॥३

श्वेतमाधवमाहात्म्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ।
विस्तरेण जगन्नाथ प्रतिमा तस्य वै हरेः ॥४

तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते जगतीतले ।
श्वेताख्यं माधव देवं कस्त स्थापितवान्पुरा ।।५
अभूत्कृतयुगे विप्राः श्वेतो नाम नृपो बली ।
मतिमान्धर्मविच्छूरः सत्यसंधो दृढव्रतः ।।६
यस्य राज्ये तु वर्षाणां सहस्रं दश मानवाः ।
भवन्त्यायुष्मन्तो लोका बालस्तस्मिन्न सीदति ।।७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अनन्त नाम वाले भगवान् वासुदेव को प्रणाम करके मनुष्य सभी पापों से विमुक्त हो जाया करता है और वह परम पद को प्राप्त हो जाता है ।।१।। मेरे द्वारा इनकी आराधना की गयी थी और इसके पश्चात् इन्द्रदेव ने उनकी आराधना की थी। विभीषण के द्वारा तथा राम के द्वारा भी उनकी आराधना की गयी थी। ऐसे उनकी कौन पुरुष आराधना न करेगा ।।२।। जो पुरुष श्वेत गङ्गा मे स्नान करके भगवान् श्वेत माधव का दर्शन किया करता है तथा मत्स्य नाम वाले माधव का दर्शन करता है वह श्वेत द्वीप को गमन किया करता है ।।३।। मुनिगण ने कहा—हे जगन्नाथ ! आप कृपा करके श्वेत माधव का माहात्म्य पूर्ण रूप से और विस्तार पूर्वक वर्णन करने के योग्य है तथा हरि की प्रतिमा के विषय मे भी वर्णन कीजिए ।।४।। उस श्रेष्ठ एव पुण्यमय क्षेत्र मे जोकि इस जगती तल मे परम विख्यात है उसमे किसने पहिले श्वेत नामक माधवदेव को स्थापित किया था ।।५।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे विप्रो ! कृतयुग मे बलवान् एक श्वेत नाम वाला नृप हुआ था जो बहुत ही बुद्धिमान, धर्म्म का वेत्ता, शूर, दृढ व्रत वाला और सत्य प्रतिज्ञा वाला हुआ था ।।६।। जिसके राज्य में मनुष्य दश सहस्र वर्षों की आयु वाले होते थे तथा उसमें कोई भी बाल्यावस्था मे विनष्ट नही हुआ करता था ।।७।।

वर्तमाने तदा राज्ये किंचित्काले गते द्विजाः ।
कपालगौतमो नाम ऋषिः परमधार्मिकः ।।८
सुतोऽस्याजातदन्तश्च मृतः कालवशाद् द्विजाः ।
तमादाय ऋषिर्धीमान्नृपस्यान्तिकमानयत् ।।९

दृष्ट्वैवं नृपतिः सुप्तं कुमारं गतचेतसम् ।
प्रतिज्ञामकरोद्विप्रा जीवनार्थं शिशोस्तदा ॥१०
यावद्बालमहं त्वेनं यमस्य सदने गतम् ।
नाऽऽनये सप्तरात्रेण चितां दीप्तां समारुहे ॥११
एवमुक्त्वाऽसितैः पद्मैः शतैर्दशशतादिकैः ।
सपूज्य च महादेव राजा विद्या पुनर्जपेत् ?) ॥१२
अतिभक्तिं तु सचिन्त्य नृपस्य जगदीश्वरः ।
सान्निध्यमगमत्तुष्टोऽस्मीत्युवाच सहोमया ॥१३
श्रुत्वैव गिरमीशस्य विलोक्य सहसा हरम् ।
भस्मदिग्ध विरूपाक्ष शरत्कुन्देन्दुवर्चसम् ॥१४
शार्दूलचर्मवसन शशाङ्काङ्कितमूर्धजम् ।
मही निपत्य सहसा प्रणम्य स तदाऽब्रवीत् ॥१५

हे द्विजगणो ! उसी समय मे उस राजा के राज्य के वर्त्तमान होने पर तथा कुछ काल के व्यतीत हो जाने पर एक कपाल गौतम नाम वाला ऋषि परम धार्मिक हुआ था । हे द्विजो ! काल के वश से उसका पुत्र जिसके दाँत भी नही निकले थे मृत हो गया था । उसको लेकर धीमान् ऋषि उस नृप के समीप मे उपस्थित हुआ था । हे विप्रो ! उस समय मे शिशु के जीवन के लिये राजा ने प्रतिज्ञा की थी ॥८-१०॥ राजा ने कहा—जब तक मैं यमराज के सदन मे गये हुए इस बालक को सात रात्रि मे नही ला सकूँगा तो मैं फिर दीप्त हुई चिता पर समारोहण कर जाऊँगा ॥११॥ ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से कहकर राजा ने एक सहस्र सौ असित पद्मो से महादेव का भलीभाँति पूजन करके पुनः विद्या का जाप किया था ॥१२॥ जगदीश्वर ने नृप की अत्यधिक भक्ति का चिन्तन करके उमादेवी के सहित स्वयं उसके समीप मे आगये और उससे बोले—मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हो गया हूँ ॥१३॥ इस प्रकार की ईश की वाणी का श्रवण करके तथा सहसा भगवान् हर को देखकर जिनका भस्म से दिग्ध शरीर था और जो विरूप नेत्रो वाले थे और शरत्काल के चन्द्र के समान वर्चस वाले थे । शिव शार्दूल के चर्म का

वस्त्र धारण करने वाले और जो शशाङ्क से अङ्कित केशों वाले थे।-ऐसे स्वरूप वाले शिव का दर्शन करके उसी समय में वह राजा सहसा शिव के चरणों में भूमि पर गिर गया था और दण्डवत् प्रणाम करके भगवान् महादेव से बोला- ॥१४-१५॥

कारुण्यं यदि मे दृष्ट्वा प्रसन्नोऽसि प्रभो यदि ।
कालस्य वशामापन्नो बालको द्विजपुत्रकः ॥१६
जीवत्वेष पुनर्बाल इत्येवं व्रतमाहितम् ।
अकस्माच्च मृतं बाल नियम्य भगवन्स्त्वयम् ॥
यथोक्तायुष्यसंयुक्तं क्षेमं कुरु महेश्वर ॥१७
श्वेतस्यैतद्वचः श्रुत्वा मुद प्राप हरस्तदा ।
कालमाज्ञापयामास सर्वभूतभयकरम् ॥१८
नियम्य कालं दुर्धर्षं यमस्याऽऽज्ञाकर द्विजाः ।
बालं सजीवयामास मृत्योर्मुखगतं पुनः ॥१९
कृत्वा क्षेम जगत्सर्वं मुनेः पुत्र स तं द्विजाः ।
देव्या सहोमया देवस्तत्रैवान्तरधीगत ॥२०
एव सजीवयामास मुनेः पुत्रं नृपोत्तम. ॥२१

राजा श्वेत ने कहा—हे प्रभो ! यदि आप मेरी करुणा पूर्ण दशा को देखकर मुझ पर परम प्रसन्न हैं तो यह बालक द्विज का पुत्र जो कि काल के वश में प्राप्त हो गया है। यह बालक पुनः जीवित हो जावे—यही व्रत मैंने आहित किया है। हे भगवन् ! यह बालक अकस्मात् मृत हो गया है। हे महेश्वर ! आप स्वयं नियमन करके इसको यथोक्त आयुष्य से संयुक्त करके इसका क्षेम करिये ॥१६-१७॥ उस समय में श्वेत नृप के इस वचन को सुनकर भगवान् हर बहुत अधिक आनन्दित हुए और सब प्राणियों को भय देने वाले काल को उन्होंने उसी समय में आज्ञा दे दी थी ॥१८॥ हे द्विजगणो ! यमराज की आज्ञा को करने वाले काल का नियमन करके जो कि बहुत ही दुर्धर्ष होता है भगवान् हर ने मृत्यु के मुख में गये हुए बालक को पुनः संजीवित कर दिया था ॥१९॥ हे द्विजो ! उन देवेश्वर ने उस मुनि के पुत्र को जीवित करके सम्पूर्ण

जगत् को क्षेम पूर्ण करके वे फिर उमा देवी के सहित वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ॥२०॥ उस नृपोत्तम ने इस प्रकार से मुनि के पुत्र को संजीवित कर दिया था ॥२१॥

देवदेव जगन्नाथ त्रैलोक्यप्रभवाव्यय ।
ब्रूहि नः परमं तथ्यं श्वेताख्यस्य च सांप्रतम् ॥२२
शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः सर्वसत्त्वहितावहम् ।
प्रवक्ष्यामि यथातथ्यं यत्पृच्छथ ममानघाः ॥२३
माधवस्य च माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
यच्छ्रुत्वाऽभिमतान्कामान्ध्रुवं प्राप्नोति मानवः ॥२४
शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः सर्वसत्त्वहितावहम् ।
शृणुध्वं तां कथां दिव्यां भयशोकार्तिनाशिनीम् ॥२५
स कृत्वा राज्यमेकाग्र्यं वर्षाणां च सहस्रशः ।
विचार्य लौकिकान्धर्मान्वैदिकान्नियमास्तथा ॥२६
केशवाराधने विप्रा निश्चितं व्रतमास्थितः ।
स गत्वा परमं क्षेत्रं सागरं दक्षिणाश्रयम् ॥२७
तटे तस्मिञ्छुभे रम्ये देशे कृष्णस्य चान्तिके ।
श्वेतोऽथ कारयामास प्रसादं शुभलक्षणम् ॥२८

मुनिगण ने कहा—हे देवों के भी देव ! आप तो इस जगत् के स्वामी हैं और सम्पूर्ण त्रैलोक्य के जन्मदाता हैं। हे अव्यय ! अब आप कृपा करके इस श्वेत नाम वाले नृप का जो परम तथ्य है उसको हमारे सामने वर्णित कीजिए ॥२२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिशार्दूलो ! आप लोग सभी जीवों के हित का आवहन करके उसका अब श्रवण करिए। हे अनघो ! आप लोग जो मुझ से पूछ रहे हैं उसको ठीक-ठीक बतलाता हूँ ॥२३॥ भगवान् माधव का माहात्म्य समस्त पापों का विनाश करने वाले हैं। जिनका श्रवण करके मनुष्य अपने अभिमत कामनाओं को निश्चय ही प्राप्त कर लेता है ॥२४॥ हे मुनिशार्दूलो ! उस सब जीवों के हित करने वाले उस चरित को सुनिए और उस दिव्य तथा भय-

शोक और आर्त्ति का नाश करने वाली कथा का श्रवण कीजिए ॥२५॥ उस राजा श्वेत ने सहस्रों वर्षों तक उस अपने उत्तम राज्य का शासन करके तथा लौकिक और वैदिक धर्मों का एव नियमो का विचार करके हे विप्रो ! फिर उसने भगवान् श्री केशव के आराधन में निश्चित व्रत को करने में अपना ध्यान लगाया था। वह दक्षिण सागर के आश्रय वाले परम क्षेत्र को चला गया था ॥२६-२७॥ उस परम रम्य एवं शुभ देश में तथा तट पर भगवान् श्रीकृष्ण के समीप मे उनका परम शुभ लक्षण वाला प्रसाद राजा श्वेत ने कराया था ॥२८॥

धन्वन्तरशतं चैकं देवदेवस्य दक्षिणे ।
ततः श्वेतेन विप्रेन्द्राः श्वेतशैलमयेन च ॥२९
कृतः स भगवाञ्छ्वेतो माधवश्चन्द्रसंनिभः ।
प्रतिष्ठा विधिवच्चक्रे यथोद्दिष्टां स्वयं तु सः ॥३०
दत्त्वा दान द्विजातिभ्यो दीनानाथतपस्विनाम् ।
अथानन्तरतो राजा माधवस्य च संनिधौ ॥३१
मही निपत्य सहसा ओंकारं द्वादशाक्षरम् ।
जपन्स मौनमास्थाय मासमेकं समाधिना ॥३२
निराहारो महाभागः सम्यग्विष्णुपदे स्थितः ।
जपान्ते स तु देवेशं संस्तोतुमुपचक्रमे ॥३३
ओं नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमो नारायणाय च ॥३४
नमोऽस्तु बहुरूपाय विश्वरूपाय वेधसे ।
निर्गुणायाप्रतर्क्याय शुचये शुक्लकर्मणे ॥३५

हे विप्रेन्द्रो ! देवदेव के दक्षिण मे एक धन्वन्तर शत उस श्वेत ने श्वेत शैलमय के द्वारा चन्द्रमा के सदृश भगवान् श्वेत माधव का निर्माण किया था। फिर उसने विधि-विधान के साथ स्वयं ही यथोदिष्ट उनकी प्रतिष्ठा भी की थी ॥२९-३०॥ दीनानाथ तपस्वियो को द्विजातियो को दान देकर इसके अनन्तर वह राजा भगवान् माधव की सन्निधि मे गया था ॥३१॥ उसने सहसा भूमि मे निपात कर दण्डवत् प्रणाम करते हुए

ओङ्कार के सहित द्वादशाक्षर मन्त्र का जाप करते हुए एक मास पर्यन्त समाधि के साथ मौन मन मे समाम्थित हो गया था ॥३२॥ वह महा-भाग निराहार होकर भलीभाँति भगवान् विष्णु के पद मे स्थित हो गया था। जप के अन्त मे उसने देवेश्वर का संस्तवन करने का समारम्भ किया था ॥३३॥ राजा श्वेत ने कहा—भगवान् वासुदेव के लिये मेरा नमस्कार है। सङ्कर्षण प्रभु के लिये मेरा नमस्कार है। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, और नारायण भगवान् की सेवा में मेरा नमस्कार है ॥३४॥ बहुत से रूप धारण करने वाले विश्व रूप वेधा-निर्गुण, शुचि शुक्लकर्मा, और अप्रतर्क्य प्रभु के लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥३५॥

ओ नम पद्मनाभाय पद्मगर्भोद्भवाय च।
नमोऽस्तु पद्मवर्णाय पद्महस्ताय ते नम. ॥३६
ओ नमः पुष्कराक्षाय सहस्राक्षाय मीढुषे।
नमः सहस्रपादाय सहस्रभुज मन्यवे ॥३७
ओ नमोऽस्तु वराहाय वरदाय सुमेधसे।
वरिष्ठाय वरेण्याय शरण्यायाच्युताय च ॥३८
ओ नमो बालरूपाय बालपद्मप्रभाय च।
बालकसोमनेत्राय मुञ्जकेशाय धीमते ॥३९
केशवाय नमो नित्य नमो नारायणाय च।
माधवाय वरिष्ठाय गोविन्दाय नमो नम. ॥४०
ओ नमो विष्णवे नित्य देवाय वसुरेतसे।
मधुसूदनाय नमः शुद्धायांशुधराय च ॥४१
नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय नमः श्रीवत्सधारिणे।
त्रिविक्रमाय च नमो दिव्यपीताम्बराय च ॥४२

पद्मनाभ, पद्मगर्भोद्भव, पद्मवर्ण और पद्म हाथ में धारण करने वाले प्रभु के लिये मेरा बारम्बार नमस्कार नमस्कार है ॥३६॥ पुष्कराक्ष, सहस्राक्ष मीढु, सहस्रपाद, सहस्रभुज और मन्यु के लिये मेरा नमस्कार है ॥३७॥ श्री वराह वरद, सुमेधा, वरिष्ठ, वरेण्य, शरण्य और भगवान् अच्युत के लिये मेरा नमस्कार है ॥३८॥ बालरूप, बाल पद्मप्रभ, बाल-

सूर्य, और सोम के समान नेत्रो वाले, मुञ्जकेश तथा धीमान् के लिये मेरा नमस्कार है ॥३९॥ भगवान् केशव के लिये मेरा नित्य ही नमस्कार है तथा नारायण के लिये मेरा नमस्कार है। भगवान् माधव, वरिष्ठ, और गोविन्द के लिये मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥४०॥ भगवान् विष्णु देव और वसुरेता देव के लिये मेरा नित्य ही प्रणाम है। मधुसूदन-शुद्ध और अशुधर के लिये मेरा नमस्कार है ॥४१॥ अनन्त के लिये-सूक्ष्म के और श्री वत्स का चिह्न धारण करने वाले के लिये नमस्कार है। भगवान् त्रिविक्रम के लिये और दिव्य पीताम्बर धारी प्रभु के लिये मेरा प्रणाम है ॥४२॥

सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्य गोप्त्रे धात्रे नमो नमः।
नमोऽस्तु गुणभूताय निर्गुणाय नमो नम. ॥४३
नमो वामनरूपाय नमो वामनकर्मणे।
नमो वामननेत्राय नमो वामनवाहिने ॥४४
नमो रम्याय पूज्याय नमोऽस्त्वव्यक्तरूपिणे।
अप्रतर्क्याय शुद्धाय नमो भयहराय च ॥४५
संसारार्णवपोताय प्रशान्ताय स्वरूपिणे।
शिवाय सौम्यरूपाय रुद्रायोत्तारणाय च ॥४६
भवभङ्गकृते चैव भवभोगप्रदाय च।
भवसघातरूपाय भवसृष्टिकृते नमः ॥४७
ओं नमो दिव्यरूपाय सोमाग्निश्वसिताय च।
सोमसूर्यांशुकेशाय गोब्राह्मणहिताय च ॥४८
ओं नम ऋक्स्वरूपाय पदक्रमस्वरूपिणे।
ऋक्स्तुताय नमस्तुभ्य नम ऋक्साधनाय च ॥४९

इस सृष्टि की रचना करने वाले आपके लिये प्रणाम है तथा गोप्ता और धाता के लिये मेरा नमस्कार है। गुण स्वरूप आपके लिये तथा निर्गुण भगवान् की सेवा मे मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥४३॥ वामन का रूप धारण करने वाले, वामन का कर्म करने वाले, वामन नेत्र, वामन वाहो के लिये मेरा प्रणाम है ॥४४॥ परम रम्य, और पूजने

के योग्य के लिये नमस्कार है तथा अव्यक्त रूप वाले, अप्रतर्क्य, शुद्ध और भयो के हरण करने वाले प्रभु के लिये नमस्कार है ॥४५॥ ससाररूप सागर के पोत अर्थात् ससार सागर से पार करने वाले, प्रशान्त स्वरूप, सुन्दर रूप वाले सौम्यरूप धारी शिव के लिये और उद्धारण करने वाले भगवान् रुद्रदेव के लिये प्रणाम है ॥४६॥ इस ससार के भङ्ग करने वाले और सासारिक भोगो के प्रदान करने वाले, भव (ससार) के सघात रूप वाले और भव की सृष्टि करने वाले के लिये मेरा प्रणाम है ॥४७॥ दिव्य रूप वाले और सोम एव अग्नि के श्वसित वाले के लिये नमस्कार है। सोम सूर्यांशुवेश और गौओ तथा ब्राह्मणो के हित करने वाले के लिये प्रणाम है ॥४८॥ ऋग्वेद के स्वरूप वाले तथा पद, क्रम के स्वरूप से स्थित के लिये और ऋग्वेद द्वारा स्तुति किये गये तथा ऋक् के साधन वाले आपके लिये मेरा अनेक प्रणाम है ॥४९॥

ओं नमो यजुषा धाम्ने यजूरूपधराय च।
यजुर्याज्याय जुष्टाय यजुषा पतये नमः ॥५०
ओ नमः श्रीपते देव श्रीधराय वराय च।
श्रियः कान्ताय दान्ताय योगिचिन्त्याय योगिने ॥५१

ओं नमः सामरूपाय सामध्वनिवराय च।
ओं नमः सामसौम्याय सामयोगविदे नमः ॥५२
साम्ने च सामगीताय ओं नमः सामधारिणे।
सामयज्ञविदे चैव नमः सामकराय च ॥५३

नमस्त्वथर्वशिरसे नमोऽथर्वस्वरूपिणे।
नमोऽस्त्वथर्वपादाय नमोऽथर्वकराय च ॥५४
ओ नमो वज्रशीर्षाय मधुकैटभघातिने।
महोदधिजलस्थाय वेदाहरणकारिणे ॥५५

नमो दीप्तस्वरूपाय हृषीकेशाय वै नमः।
नमो भगवते तुभ्य वासुदेवाय ते नमः ॥५६

यजुर्वेद के धाता, यजुर्वेद के स्वरूप धारी, यजुर्वेद के द्वारा यजन करने के योग्य, जुष्ट और यजुर्वेद व मन्त्रों के स्वामी के लिये प्रणाम है ॥५०॥ हे श्रीपतेदेव ! श्री के धारण करने वाले और वरदान स्वरूप, श्री के कान्त एव दान्त, योगियों के द्वारा चिन्तन करने के योग्य योगी आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥५१॥ सामवेद के रूप वाले और साम की श्रेष्ठ ध्वनि वाले, साम सौम्य तथा साम योग के वेत्ता आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥५२॥ सामवेद, सामवेद के गीत और साम के धारण करने वाले, सामयज्ञ के ज्ञाता और साम के कर्त्ता आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥५३॥ अथर्ववेद के शिर वाले और अथर्ववेद के स्वरूप वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है । अथर्व के पाद वाले के लिये और अथर्ववेद के करने वाले के लिये प्रणाम है ॥५४॥ भगवान् वज्र शीर्ष और मधु तथा कैटभ के घात करने वाले और महोदधि के जल मे स्थित एव वेदो के आहरणकारी भगवान् के लिये मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥५५॥ दीप्त स्वरूप वाले हृषीकेश के लिये मेरा नमस्कार है । भगवान् वासुदेव आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥५६॥

नारायण नमस्तुभ्यं नमो लोकहिताय च ।
ओं नमो मोहनाशाय भवभङ्गकराय च ॥५७

गतिप्रदाय च नमो नमो बन्धहराय च ।
त्रैलोक्यतेजसां कर्त्रे नमस्तेजःस्वरूपिणे ॥५८

योगीश्वराय शुद्धाय रामयोत्तरणाय च ।
सुखाय सुखनेत्राय नमः सुकृतधारिणे ॥५९

वासुदेवाय वन्द्याय वामदेवाय वं नमः ।
देहिनां देहकर्त्रे च भेदभङ्गकराय च ॥६०

देवैर्वन्दितदेहाय नमस्ते दिव्यमालिने ।
नमो वासनिवासाय वासव्यवहराय च ॥६१

ओं नमो वसुकर्त्रे च वसुवासप्रदाय च ।
नमो यज्ञस्वरूपाय यज्ञेशाय च योगिने ॥६२

यतियोगकरेशाय नमो यज्ञाङ्गधारिणे ।
सकर्षणाय च नमः प्रलम्बमथनाय च ॥६३

हे नारायण ! आपके लिये मेरा नमस्कार है । लोकों के हित करने वाले, मोह के नाशक तथा इस ससार के आवागमन के विनाश करने वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥५७॥ सद्गति के प्रदान करने वाले, बन्धन का हरण करने वाले आपकी सेवा मे मेरा बारम्बार नमस्कार है । इस त्रिलोकी के तेजो के करने वाले तथा तेज के स्वरूप वाले, योगेश्वर, शुद्ध स्वरूप, रामा (महालक्ष्मी) को अपनी बाँई ओर विराजमान रखने वाले, सुख स्वरूप, नेत्रो के सुख प्रदान करने वाले और सुदर्शन को धारण करने वाले आपको मेरा प्रणाम है ॥५८-५९॥ वन्दना करने के योग्य वासुदेव भगवान् के लिये तथा वासुदेव प्रभु के लिये नमस्कार । समस्त देहधारियो के देह के करने वाले और भेद के भङ्ग करने वाले के लिये मेरा प्रणाम है ॥६०॥ देवो के द्वारा वन्दित देह वाले, दिव्य माला धारण करने वाले, वास निवास, वास व्यवहार, वसु के कर्त्ता, वसु और वास के प्रदान करने वाले, यज्ञ के स्वरूप वाले, यज्ञो के स्वामी और योगी के लिये नमस्कार है ॥६१-६२॥ यति और योग करने वालो के ईश, यज्ञाङ्ग धारी, सङ्कर्षण और प्रलम्ब के मथन करने वाले के लिये मेरा प्रणाम है ॥६३॥

मेघघोपस्वनोत्तीर्णवेगलाङ्गलधारिणे ।
नमोऽस्तु ज्ञानिना ज्ञान नारायणपरायण ॥६४
न मेऽस्ति त्वामृते बन्धुर्नरकोत्तारणे प्रभो ।
अतस्त्वां सवभावेन प्रणतो नतवत्सल ॥६५
मल यत्कायज याऽपि मानस चैव केशव ।
न तस्यान्योऽस्ति देवेश क्षालकस्त्वामृतेऽच्युत ॥६६
ससर्गाणि समस्तानि विहाय त्वामुपस्थितः ।
सगो मेऽस्तु त्वया सार्धमात्मलाभाय केशव ॥६७
कष्टमापत्सुदुष्पारं ससार वेद्मि केशव ।
तापत्रयपरिक्लिष्टस्तेन त्वा शरणं गतः ॥६८

एषणाभिर्जगत्सर्वं मोहितं मायया तव ।
आकर्षित च लोभाद्यै रतस्त्वामहमाश्रितः ॥६९
नास्ति किंचित्सुखं विष्णो संसारस्यस्य देहिनः ।
यथा यथा हि यज्ञेश त्वयि चेतः प्रवर्तते ॥७०
तथा फलविहीनं तु सुखमात्यन्तिक लभेत् ।
नष्टो विवेकशून्योऽस्मि दृश्यते जगदातुरम् ॥७१

मेघो के घोष की ध्वनि को पार करने वाले वेग युक्त लाङ्गल के धारण करने वाले के लिए मेरा नमस्कार है। हे ज्ञानियो के भी ज्ञान ! हे नारायण परायण ! हे विष्णो ! आप के विना नरको से पार करने वाला कोई भी बन्धु नही है। हे प्रणतो पर प्यार करने वाले ! अतएव मैं आपके चरणो में प्रणत हो रहा हूँ ॥६४-६५॥ हे केशव ! हे अच्युत ! जो इस काया से समुत्पन्न मल है अथवा मन में जमा हुआ मल है उसका प्रक्षालन करने वाला हे देवेश्वर ! आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी नही है ॥६६॥ मैं सभी ससर्गों का त्याग करके अर्थात् अन्य सासारिक समस्त सम्बन्धो को छोड़कर अब आपकी सेवा मे समुपस्थित हो गया हूँ। हे केशव ! अबतो आत्म लाभ प्राप्त करने के लिये केवल आपके ही साथ मेरा संग है ॥६७॥ हे केशव ! आपत्तियो मे महान् कष्ट होता है और मैं इस ससार को परम दुस्तार समझता हूं। मैं इस समय में आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के तापो से परिक्लिष्ट हो रहा हूँ। इसीलिये इनमे छुटकारा पाने के लिय आपके चरणो की शरण में प्राप्त हुआ हू ॥६८॥ आपकी माया बड़ी प्रबल है और एषणाओं से यह सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है। मैं लोभ आदि से अत्यन्त आकर्षित हो रहा हू। इसीलिये अब से आपकी शरण में प्राप्त हो गया हू ॥६९॥ हे विष्णो ! इस ससार मे स्थित देहधारी को कुछ भी सुख नही होता है। जैसे २ हे यज्ञेश ! यह चित्त आपकी शरण गति में प्रवृत्त होता है तथा फल से विहीन यह आत्यन्तिक सुख को प्राप्त किया करता है। मैं विनष्ट और विवेक से शून्य हूँ और सम्पूर्ण जगत् आतुर दिखलाई दिया करता है ॥७०-७१॥

गोविन्द त्राहि संसारान्मामुद्धर्तुं त्वमर्हसि ।
मग्नस्य मोहसलिले निरुत्तारे भवार्णवे ॥
उद्धर्ता पुण्डरीकाक्ष त्वामृतेऽन्यो न विद्यते ॥७२
इत्थं स्तुतस्ततस्तेन राज्ञा श्वेतेन भो द्विजाः ।
तस्मिन्क्षेत्रवरे दिव्ये विख्याते पुरुषोत्तमे ॥७३
भक्तिं तस्य तु संचिन्त्य देवदेवो जगद्गुरुः ।
आजगाम नृपस्याग्रे सर्वैर्देवैर्वृतो हरिः ॥७४
नीलजीमूतसंकाशः पद्मपत्रायतेक्षणः ।
दधत्सुदर्शनं धीमान्कराग्रे दीप्तमण्डलम् ॥७५
क्षीरोदजलसंकाशो विमलश्चन्द्रसंनिभः ।
रराज वामहस्तेऽस्य पाञ्चजन्यो महाद्युतिः ॥७६
पक्षिराजध्वजः श्रीमान्गदाशार्ङ्गासिधृक्प्रभुः ।
उवाच साधु भो राजन्यस्य ते मतिरुत्तमा ॥
यदिष्टं वरं भद्रं ते प्रसन्नोऽस्मि तवानघ ॥७७

हे गोविन्द ! आप मेरा परित्राण करिए । आप इस संसार से मेरा उद्धार करने के योग्य हैं । इस मोहरूपी जल मे मग्न हो रहा हूँ । इस महान् संसार सागर मे जिसका कहीं भी कोई पार होना नहीं दिखलाई देता है मैं विमग्न हो रहा हू । हे पुण्डरीकाक्ष ! इससे उद्धार करने वाला मुझे आपके विना अन्य कोई भी विद्यमान नहीं दिखलाई देता है ॥७२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजो ! उस राजा श्वेत के द्वारा जब वह इस प्रकार से स्तुति किये गये तो उस परम दिव्य क्षेत्र मे उस विख्यात पुरुषोत्तम मे उसकी भक्ति का भली-भाँति चिन्तन करके देवो के भी देव जगत के गुरु समस्त देवो से परिवृत होते हुए भगवान् श्री हरि स्वयं उस राजा के सामने समागत हो गये थे ॥७३-७४॥ जिस समय मे श्री हरि स्वयं उस अपने परम भक्त नृप के समक्ष मे पधारे थे उस समय के प्रभु के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—नीले वर्ण वाले सघन मेघ के समान उनका वर्ण था, पद्म के दलो के सदृश विस्तीर्ण लोचन थे, परम धीमान् प्रभु ने हाथ के अग्रभाग मे प्रदीप्त मण्डल वाला

सुदर्शन चक्र धारण कर रक्खा था ॥७५॥ क्षीर सागर के स्वच्छ जल के समान तथा चन्द्रमा के सदृश विमल उनका स्वरूप था। इनके बाँये हाथ में महान् द्युति से युक्त पाञ्चजन्य शंख शोभित हो रहा था ॥७६॥ गरुड़ की ध्वजा से युक्त, श्री सम्पन्न, गदा, शार्ग धनुष, खड्ग को धारण किये हुए थे ऐसे प्रभु ने वहाँ पर समागत होकर कहा—हे नृप ! बहुत अच्छा है, तुम क्षत्रिय की मति अत्यन्त उत्तम है। हे निष्पाप ! मैं तुझपर परम प्रसन्न हो गया हूँ। अब तुझे जो भी अभीष्ट वरदान प्राप्त करना हो करले। तेरा कल्याण ही होगा ॥७७॥

श्रुत्वेवं देवदेवस्य वाक्यं तत्परमामृतम् ।
प्रणम्य शिरसोवाच श्वेतस्तद्गतमानसः ॥७८

यद्यहं भगवन्भक्तः प्रयच्छ वरमुत्तमम् ।
आब्रह्मभवनादूर्ध्वं वैष्णव पवमव्ययम् ॥७९

विमल विरजं शुद्ध ससारासङ्गवर्जितम् ।
तत्पद गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥८०

यत्पद त्रिबुधाः सर्वे मुनयः सिद्धयोगिनः ।
नाभिगच्छन्ति यद्रम्य परं पदमनामयम् ॥८१

यास्यसि परम स्थान राज्यामृतमुपास्य च ।
सर्वाल्लोकानतिक्रम्य मम लोक गमिष्यसि ॥८२

कीर्तिस्तवात्र राजेन्द्र श्रील्लोकाश्च गमिष्यति ।
सानिध्य मम चैवात्र सर्वदैव भविष्यति ॥८३

श्वेतगङ्गेति गास्यन्ति सर्वे ते देवदानवाः ।
कुशाग्रेणापि राजेन्द्र श्वेतगाङ्गेयमम्बु च ॥८४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे देवो के भी आराध्यदेव के उस परम अमृतमय वचन का श्रवण करके उस नृप ने उनके श्री चरणों मे दण्डवत् प्रणाम किया थ: और उस श्वेत राजा ने उनके चरणों मे अपना मनपूर्ण तन रखते हुए उनसे निवेदन किया था—॥७८॥ राजा श्वेत ने कहा—हे भगवन् ! यदि मैं आपका परम भक्त हूँ तो अब आप कृपया

मुझे उत्तम वरदान प्रदान कीजिए। हे जगत् के स्वामिन् ! मैं आपके प्रसाद से ब्रह्मभवन से भी ऊपर-अव्यय-विमल-विरज शुद्ध-संसार के आसङ्ग से रहित जो वैष्णव पद (स्थान) है उसमें मैं गमन करना चाहता हूँ ॥७९-८०॥ श्री भगवान् ने कहा—जिस पद को समस्त देवगण-मुनिमण्डल और सिद्ध तथा योगी जन नहीं जाया करते हैं वह ऐसा ही परम रम्य और अनामय पद है ॥८१॥ तुम प्रथम अपने राज्य के अमृतमय सुखों को भोग कर फिर अन्त में उसी परम पद को प्राप्त करोगे और समस्त लोकों का अतिक्रमण करके मेरे लोक में ही गमन करोगे ॥८२॥ हे राजेन्द्र ! तेरा यश तीनों लोकों में फैल जायेगा और तेरा वहाँ पर मेरी सन्निधि में निवास सर्वदा ही रहेगा ॥८३॥ समस्त देव दानव उसे "श्वेत गङ्गा" कहकर गान किया करेंगे। हे राजेन्द्र ! कुशा के अग्रभाग के द्वारा भी इस श्वेत गङ्गा के जल का स्पर्श करके स्वर्ग की प्राप्ति किया करेंगे ॥८४॥

स्पृष्ट्वा स्वर्गं गमिष्यन्ति मद्भक्ता ये समाहिताः ।
यस्त्विमां प्रतिमां गच्छेन्माधवाख्यां शशिप्रभाम् ॥८५
शङ्खगोक्षीरसंकाशामशेषाघविनाशिनीम् ।
तां प्रणम्य सकृद्भक्त्या पुण्डरीकनिभेक्षणाम् ॥८६
विहाय सर्वलोकान्वै मम लोके महीपते ।
मन्वन्तराणि तत्रैव देवकन्याभिरावृतः ॥८७
गीयमानश्च मधुरं सिद्धगन्धर्वसेवितः ।
भुनक्ति विपुलान्भोगान्यथेष्टं मामकैः सह ॥८८
च्युतस्तस्मादिहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत् ।
वेदवेदाङ्गविच्छ्रीमान्भोगवांश्चिरजीवितः ॥८९
गजाश्वरथयानाढ्यो धनधान्यावृतः शुचिः ।
रूपवान्बहुभाग्यश्च पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥९०
पुरुषोत्तमं पुनः प्राप्य वटमूलेऽथ सागरे ।
त्यक्त्वा देहं हरिं स्मृत्वा ततः शान्तपदं व्रजेत् ॥९१

जो मेरे परम समाहित भक्त है वे ही इसका कुशाग्रभाग से स्पर्श करके स्वर्ग को गमन किया करेंगे। जो चन्द्र के समान प्रभा वाली मेरी माधव नामधारिणी प्रतिमा है उसके समीप मे जो भी कोई गमन करेगा जिसका स्वरूप शङ्ख, गो-दुग्ध के समान है और जो समस्त अघो का विनाश करने वाली है एव पुण्डरीक के समान जिसके परम सुन्दर नेत्र हैं उस मेरी प्रतिमा को भक्तिभाव से जो कोई एक बार भी प्रणाम किया करता है वह सभी लोको का त्याग करके मेरे ही लोक मे प्रति-ष्ठित हुआ करता है। वहाँ पर वह देव कन्याओं से समावृत रहता हुआ बहुत से मन्वन्तरों तक निवास किया करता है। उसको स्तुति का वहाँ गान किया जाता है जो परम मधुर होता है और सिद्ध तथा गन्धर्वगण उसकी सेवा किया करते हैं। यहाँ पर वह मेरे अनेक भक्तो के साथ यथेष्ट रूप से बहुत से भोगो का उपभोग किया करता है ॥८५-८८॥ वहाँ से च्युत होकर वह अधिक काल के पश्चात् पुण्यो का क्षय हो जाने पर यहाँ पुनः आता है और मनुष्यों मे ब्राह्मण हुआ करता है जो वेदो और वेदाङ्ग शास्त्रो का पूर्ण ज्ञाता-भोगो वाला और चिरकाल तक जीवित रहने वाला होता है ॥८९॥ वह विप्र होकर भी हाथी-घोड़े-रथ और धन से सुसम्पन्न होता है। धन धान्य से परिपूर्ण-शुचि-रूप लावण्य से युक्त बहुत ही भाग्यशाली तथा पुत्र पौत्रादि से समन्वित हुआ करता है। पुन. वह पुरुषोत्तम को वट के मूल मे अथवा सागर मे प्राप्त किया करता है। फिर वह इस देह का परित्याग करके भगवान् श्री हरि का स्मरण करके परम शान्त पद को गमन किया करता है ॥९०-९१॥

—※—

## २७—समुद्रस्नानविधिवर्णन

श्वेतमाधवमालोक्य समीपे मत्स्यमाधवम् ।
एकार्णवजले पूर्वं रोहितं रूपमास्थितम् ॥१
वेदाना हरणार्थाय रसातलतले स्थितम् ।
चिन्तयित्वा क्षिति सम्यक्तस्मिन्स्थाने प्रतिष्ठितम् ॥२
आद्यावतरण रूप माधव मत्स्यरूपिणम् ।
प्रणम्य प्रणतो भूत्वा सवदुःखाद्विमुच्यते ॥३
प्रयाति परम स्थान यत्र देवो हरि. स्वयम् ।
काले पुनरिहाऽऽयातो राजा स्यात्पृथिवीतले ॥४
वत्समाधवमासाद्य दुराधर्षो भवेन्नरः ।
दाता भोक्ता भवेद्यज्वा वैष्णवः सत्यसगरः ॥५
योगं प्राप्य हरेः पश्चात्ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।
मत्स्यमाधवमाहात्म्य मया सपरिकीर्तितम् ॥
यद्दृष्ट्वा मुनिशार्दूलाः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् श्वेत माधव का दर्शन करके उनके समीप मे ही मत्स्य माधव विराजमान हैं उनका अवलोकन करना चाहिए। पहिले यह मत्स्य माधव प्रभु उस एकार्णव जल मे रोहित के रूप मे समास्थित हो गय थे ॥१॥ वेदो के आहरण करने के लिये रसातल मे स्थित हुए। क्षिति का चिन्तन करके उसी स्थान मे यह भली भांति प्रतिष्ठित हो गये थे ॥२॥ मत्स्य के स्वरूप वाले माधव का स्वरूप आदि मे होने वाला अवतार है। इनको प्रणाम करके और इनके समक्ष में प्रणत होने वाला प्राणी सभी दु.खो से छुटकारा प्राप्त कर लिया करता है ॥३॥ अन्त समय मे वह परम पद को गमन किया करता है जहाँ पर स्वयं श्री हरि विराजमान रहा करते हैं। पुण्य के क्षीण होने पर चिरकाल के पश्चात् यह पुन. इस कर्मभूमि भारत मे जन्म ग्रहण करके पृथिवी तल मे राजा होता है ॥४॥ मनुष्य वत्स माधव

को प्राप्त करके दुराधर्ष हो जाया करता है। वह दाता-भोक्ता-यज्वा-सत्यसङ्कर और वैष्णव होता है ॥५॥ फिर यहाँ पर भगवान् श्री हरि के योग को प्राप्ति करके मोक्ष को प्राप्त किया करता है। मैंने यह भगवान् मत्स्य माधव के माहात्म्य का परम संक्षेप से वर्णन कर दिया है। हे मुनिशार्दूलो ! जिन मत्स्य माधव भगवान् का दर्शन करके मनुष्य सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है ॥६॥

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामो मार्जनं वरुणालये।
क्रियते स्नानदानादि तस्याशेषफलं वद ॥७
शृणुध्वं मुनिशार्दूला मार्जनस्य यथाविधि।
भक्त्या तु तन्मना भूत्वा सम्प्राप्य पुण्यमुत्तमम् ॥८
मार्कण्डेयह्रदे स्नानं पूर्वकाले प्रशस्यते।
चतुर्दश्यां विशेषेण सर्वपापप्रणाशनम् ॥९
तद्वत्स्नानं समुद्रस्य सर्वकाल प्रशस्यते।
पौर्णमास्यां विशेषेण हयमेधफलं लभेत् ॥१०
मार्कण्डेयं वटं कृष्णं रौहिणेयं महोदधिम्।
इन्द्रद्युम्नसरश्चैव पञ्चतीर्थीविधि: स्मृत: (?) ॥११
पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य ज्येष्ठा ऋक्ष यदा भवेत्।
तदा गच्छेद्विशेषेण तीर्थराजं पर शुभम् ॥१२
कायवाङ्मानसै: शुद्धस्तद्भावो नान्यमानस:।
सर्वद्वंद्वविनिर्मुक्तो वीतरागो विमत्सर. ॥१३
कल्पवृक्षवटं रम्य तत्र स्नात्वा जनार्दनम्।
प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत त्रिवार सुसमाहित: ॥१४

मुनिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब हम लोग वरुणालय ( सागर ) में मार्जन ( स्नान ) करने के विधान का श्रवण करने की अत्यन्त उत्कृष्ट अभिलाषा रखते हैं। वहाँ पर जो स्नान-आदि किया जाता है उस सब फल का वर्णन कीजिए ॥७॥ हे मुनिशार्दूलो ! अब आप लोग मार्जन का विधान सुनिए। जो कि भक्ति भाव के साथ तन्मनस्क होकर यथाविधि मार्जन करके उत्तम पुण्य की प्राप्ति मनुष्य किया करता है

॥८॥ इसके भी पूर्व समय मे मार्कण्डेय ह्रद मे स्नान करना परम प्रशस्त माना जाता है। विशेष रूप से चतुर्दशी तिथि मे यहाँ स्नान करना सभी पापो का विनाश कर देने वाला होता है ॥९॥ उसी भाँति समुद्र के स्नान को भी सभी कालो मे प्रशस्त माना गया है। पूर्णिमा तिथि मे विशेष रूप से अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है ॥१०॥ मार्कण्डेय-वटकृष्ण-रौहिणेय-महोदधि और इन्द्रद्युम्न सरोवर—यह पाँच तीर्थों की विधि बतायी गयी है ॥११॥ ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा तिथि मे जब कि ज्येष्ठा नक्षत्र होवे उसी समय मे विशेष रूप से यह तीर्थराज परम शुभ होता है ॥१२॥ शरीर-मन वचनो से शुद्ध होकर तीर्थराज मे ही भावना रखने वाला अन्य किसी मे भी अपना मन न लगाने वाला सभी सासारिक द्वन्द्वो से विमुक्त रहकर राग से रहित एव मात्सर्य दोष से शून्य होने वाला पुरुष परम रम्य स्नान करके कल्प वृक्ष वट श्री जनार्दन प्रभु की प्रदक्षिणा करे और परम सावधान होकर तीन बार परिक्रमा करनी चाहिए ॥१३-१४॥

य दृष्ट्वा मुच्यते पापात्सप्तजन्मसमुद्भवात् ।
पुण्य चाऽऽप्नोति विपुल गतिमिष्टां च भो द्विजाः ॥१५

तस्य नामानि वक्ष्यामि प्रमाण च युगे युगे ।
यथासख्य च भो विप्राः कृतादिषु यथाक्रमम् ॥१६

वट वटेश्वर कृष्ण पुराणपुरुष द्विजाः ।
वटस्यैतानि नामानि कीर्तितानि कृतादिषु ॥१७

योजन पादहीन च योजनार्धं तदर्धकम् ।
प्रमाण कल्पवृक्षस्य कृतादौ परिकीर्तितम् ॥१८

यथोक्तेन तु मन्त्रेण नमस्कृत्वा तु त वटम् ।
दक्षिणाभिमुखो गच्छेद्धन्वन्तरशतत्रयम् ॥१९

यस्मात्तो दृश्यते विष्णोः स्वर्गद्वार मनोरमम् ।
सागराम्भः समाकृष्ट काष्ठ सर्वगुणान्वितम् ॥२०

प्रणिपत्य ततस्त भो परिपूज्य ततः पुनः ।
मुच्यते सर्वरोगाद्यैस्तथा पापैर्ग्रहादिभिः ॥२१

हे द्विजगण ! उन प्रभु का दर्शन प्राप्त करके मनुष्य सात जन्मो मे सञ्चित किये हुए पापो से मुक्त हो जाया करता है और बहुत अधिक पुण्य की प्राप्ति किया करता है तथा अभीष्ट गति का लाभ प्राप्त कर लेता है ॥१५॥ उनके शुभ नाम और युग-युग मे जो प्रमाण हैं उनको मैं बतलाता हूँ। हे विप्रो ! कृतयुग आदि मे मैं उन नामो को सख्यानु-सार तथा क्रम के अनुसार बतलाता हूँ ॥१६॥ हे द्विजो ! कृतयुग आदि मे इस वर के वट वटेश्वर-कृष्ण और पुराण पुरुष—ये नाम कीर्तित किये गये हैं ॥१७॥ कृतयुग आदि मे एक योजन ( जो चार कोश का माना जाता है )—पौन योजन अर्थात् तीन कोश-आधा योजन और एक पाव योजन इस कल्प वृक्ष का प्रमाण कहा गया है ॥१८॥ यथोक्त मन्त्र के द्वारा उस वट को प्रणाम करके दक्षिण की ओर मुख करके तीन सौ मन्वन्तर तक गमन करना चाहिए ॥१९॥ जहाँ पर यह भगवान् विष्णु दिखलाई दिया करते है वह परम मनोरम स्वर्ग का द्वार है। सागर के जल के द्वारा समाकृष्ट है जो सभी गुण-गण से युक्त होता है ॥२०॥ उसका प्रणिपात करके उसके उपरान्त उसका पूजन करे। इसका यह फल होता है कि वह मनुष्य सब रोग आदि से समस्त पापो से और दुष्ट ग्रह आदि के प्रकोप से मुक्त हो जाया करता है ॥२१॥

उग्रसेन पुरा दृष्ट्वा स्वर्गद्वारेण सागरम् ।
गत्वाऽऽचम्य शुचिस्तत्र ध्यात्वा नारायण परम् ॥२२
न्यसेदष्टाक्षर मन्त्र पश्चाद्धस्तशरीरयोः ।
ॐ नमो नारायणयेति य वदन्ति मनोषिणः ॥२३
किं कार्यं बहुभिर्मन्त्रैर्मनोविभ्रमकारकैः ।
ॐ नमो नारायणयेति मन्त्रः सर्वार्थसाधक. ॥२४
आपो नरस्य सूनुत्वान्नारा इतीह कीर्तिताः ।
विष्णोस्तास्त्वयन पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ५
नारायणपरा वेदा नारायणपरा द्विजाः ।
नारायणपरा यज्ञा नारायणपराः क्रियाः ॥२६

नारायणपरा पृथ्वी नारायणपरं जलम् ।
नारायणपरो वह्निर्नारायणपरं नभः ॥२७

नारायणपरो वायुर्नारायणपरं मनः ।
अहंकारश्च बुद्धिश्च उभे नारायणात्मके ॥२८

पहिले उग्रसेन का दर्शन करके स्वर्ग द्वार से सागर को जाकर वहाँ आचमन करे । पवित्र होकर परम पुरुष नारायण का ध्यान करना चाहिए ॥२२॥ इसके पीछे हाथ और शरीर मे अष्टाक्षर मन्त्र का न्यास करना चाहिए । वह मन्त्र–"ॐ नमो नारायणाय" यह है जिसको मनीषी लोग कहा करते हैं ॥२३॥ अन्य बहुत से मन के विभ्रम करने वाले मन्त्रो से फिर क्या प्रयोजन है ? ॐ नमो नारायणाय-यह मन्त्र ही सर्वार्थो का साधक होता है ॥२४॥ नर के पुत्रहीन होने से ही जल "नारा"–इस नाम से कीर्त्तित किये गये है । ये ही जल भगवान् विष्णु के अयन हैं जो कि सबसे पूर्व मे था । अतएव वह नारायण नाम वाले कहे गये है ॥२५॥ भगवान् नारायण ही मे परायण रहने वाले समस्त वेद हैं अर्थात् सब वेद नारायण को ही मुख्यतया प्रतिपादित किया करते हैं । सब द्विजगण भी नारायण मे ही तत्पर रहा करते हैं । सब यज्ञ भी नारायण के ही प्राप्त कराने वाले हैं । नारायण की प्राप्ति ही उनका मुख्य ध्येय होता है । समस्त शास्त्रोक्त धार्मिक क्रियाएँ भी नारायण-परायण हुआ करती है । यह सम्पूर्ण पृथ्वी भी नारायण मे ही परायण होती है और जल भी नारायण पर है । नभ तथा वह्नि भी नारायण मे तत्पर रहा करते है एव वायु और मन भी नारायण मे ही परायण रहते हैं । अहङ्कार और बुद्धि ये दोनो भी नारायण स्वरूप ही होते है ॥२६-२८॥

भूत भव्य भविष्य च यत्किंचिज्जीवसंज्ञितम् ।
स्थूल सूक्ष्मं परं चैव सर्वं नारायणात्मकम् ॥२९

शब्दाद्या विषयाः सर्वे श्रोत्रादीनिन्द्रियाणि च ।
प्रकृतिः पुरुषश्चैव सर्वे नारायणात्मकाः ॥३०

जले स्थले च पाताले स्वर्गलोकेऽम्बरे नगे ।
अवष्टभ्य इदं सर्वमास्ते नारायणः प्रभुः ॥ ३१
किं चात्र बहुनोक्तेन जगदेतच्चराचरम् ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नारायणात्मकम् । ३२
नारायणात्परं किञ्चिन्नेह पश्यमि भो द्विजाः ।
तेन व्याप्तमिदं सर्वं दृश्यादृश्यं चराचरम् ॥३३
आपो ह्यायतनं विष्णोः स च एवाम्भसां पतिः ।
तस्मादप्सु स्मरेन्नित्यं नारायणमघापहम् ॥३४
स्नानकाले विशेषेण चोपस्थाय जले शुचिः ।
स्मरेन्नारायणं ध्यायेद्धस्ते काये च विन्यसेत् ॥३५

भूतकाल जो व्यतीत हो चुका है-भव्यकाल जो वर्तमान में है और भविष्य जो आगे आने वाला समय है तथा जो भी कोई जीव सज्ञा से युक्त है-स्थूल स्वरूप से और सूक्ष्म स्वरूप वाले तथापर ये सभी नारायण के एक होते हैं ॥२६॥ शब्द आदि समस्त इन्द्रियों के विषय और श्रोत्रप्रभृति सब इन्द्रियों का समुदाय प्रकृति एवं पुरुष नाम से सम्बोधित किये जाने वाला-ये सभी भगवान् नारायण के ही स्वरूप होते हैं। तात्पर्य यह है कि इस विश्व में नारायण के सब विभिन्न स्वरूप हैं और उनसे व्यतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है ॥३०॥ जल मे, स्थल में, पाताल मे, स्वर्गलोक मे, अम्बर मे, पर्वत मे भगवान् नारायण ही सबको अवष्टब्ध करके विद्यमान रहा करते हैं और निष्कर्षार्थ मे सब नारायण का ही स्वरूप है जो कि सर्व साधारण को विभिन्न रूपों मे दिखलाई दिया करते हैं ॥३१॥ विशेष कथन करने से क्या लाभ है यह सम्पूर्ण चराचर जगत् ब्रह्म से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सभी नारायण का स्वरूप होता है ॥३२॥ हे द्विजो ! हम यहाँ पर नारायण से पर अन्य कुछ भी नही देखते हैं। उन्ही से दृश्य तथा अदृश्य चराचर सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है ॥३३॥ आप अर्थात् जल भगवान् विष्णु का आयतन अर्थात् निवास स्थान है और वही जलो का स्वामी है। इसी लिये अघों के अपहरण करने वाले भगवान् नारायण का स्मरण नित्य ही जल मे करना चाहिए

॥३४॥ विशेष रूप से स्नान करने के समय में उपस्थान करके और शुचि होकर भगवान् नारायण का स्मरण करना चाहिए तथा हस्त में और शरीर में विन्यास करे ॥३५॥

ओंकारं च नकारं च अङ्गुष्ठे हस्तयोर्न्यसेत् ।
शर्षेह(पान्ह)स्ततल (ले)यावत्तर्जन्यादिषु विन्यसेत् ॥३६
ओंकारं वामपादे तु नकारं दक्षिणे न्यसेत् ।
मोकारं वामकट्यां तु नाकारं दक्षिणे न्यसेत् ॥३७
राकारं नाभिदेशे तु यकारं वामबाहुके ।
णाकारं दक्षिणे न्यस्य यकारं मूर्ध्नि विन्यसेत् ॥३८
अधश्चोर्ध्वं च हृदये पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतः ।
ध्यात्वा नारायणं पश्चादारभेत्कवचं बुधः ॥३९
पूर्वे मां पातु गोविन्दो दक्षिणे मधुसूदनः ।
पश्चिमे श्रीधरो देवः केशवस्तु तथोत्तरे ॥४०
पातु विष्णुस्तथाऽऽग्नेये नैर्ऋते माधवोऽव्ययः ।
वायव्ये तु हृषीकेशस्तथेशाने च वामनः ॥४१
भूतले पातु वाराहस्तथोर्ध्वं च त्रिविक्रमः ।
कृत्वैवं कवचं पश्चादात्मानं चिन्तयेत्ततः ॥४२

ॐकार और नकार का दोनों हाथों के अंगुष्ठों में न्यास करे । शर्षहनसे हस्ततल में तर्जनी आदि में विन्यास करना चाहिए ॥३६॥ ॐकार को वामपाद में-नकार को दक्षिण पाद में न्यस्त करना चाहिए । मोकार को बाँये पाद में तथा नाकार को दक्षिण पाद में विन्यस्त करे ॥३७॥ राकार को नाभि देश में और यकार को वाम बाहु में न्यस्त करे । णाकार को दक्षिण में विन्यस्त करे तथा यकार का न्यास मूर्द्धा में करना चाहिए ॥३८॥ हृदय में नीचे तथा ऊपर—पार्श्व भाग में और आगे की ओर भगवान् नारायण का ध्यान करके बुध पुरुष को अनन्तर में नारायण कवच का आरम्भ करना चाहिए ॥३९॥ श्री गोविन्द भगवान् पूर्व दिशा में मेरी रक्षा करें, मधुसूदन प्रभु दक्षिण में रक्षा करें । श्रीधरदेव पश्चिम में सुरक्षा करें तथा उत्तर में केशवदेव रक्षा करें ॥४०॥

आग्नेय कोण मे विष्णु रक्षा करें, नैर्ऋत्य कोण में अव्यय माधव रक्षा करें। वायव्य दिशा में भगवान् हृषीकेश और ईशान कोण मे वामन भगवान् रक्षा करें ॥४१॥ वाराह भगवान भूतल में मेरा यदि त्राण करें और ऊर्ध्वभाग मे त्रिविक्रम प्रभु रक्षा करें। इस प्रकार से सम्पूर्ण कवच का पाठ करके पीछे आत्मा का चिन्तन करना चाहिए ॥४२॥

अहं नारायणो देवः शङ्खचक्रगदाधरः।
एव ध्यात्वा तदाऽऽत्मानमिम मन्त्रमुदीरयेत् ॥४३
त्वमग्निर्द्विपदां नाथ रेतोधाः कामदीपनः।
प्रधानः सर्वभूताना जीवानां प्रभुरव्ययः ॥४४
अमृतस्यारणिस्त्व हि देवयोनिरपां पते।
वृजिनं हर मे सर्वं तीर्थराज नमोऽस्तु ते ॥४५
एवमुच्चार्य विधिवत्ततः स्नानं समाचरेत्।
अन्यथा भो द्विजश्रेष्ठाः स्नानं तत्र न शस्यते ॥४६
कृत्वा तु वैदिकैर्मन्त्रैरभिषेका च मार्जनम्।
अन्तर्जले जपेत्पश्चात्त्रिरावृत्त्याऽघमर्षणम् ॥४७
हयमेधो यथा विप्राः सर्वपापहरः क्रतुः।
तथाऽघमर्षणं चात्र सूक्त सर्वाघनाशनम् ॥४८
उत्तीर्य वाससी धौते निर्मले परिधाय वै।
प्राणानायम्य चाऽऽचम्य सन्ध्या चोपास्य भास्करम् ॥४९

आत्म चिन्तन का विधान यह है कि मैं ही देव नारायण का स्वरूप हूं और शंख-चक्र तथा गदा के धारण करने वाला भी मैं हू। इस प्रकार से अपने आपके विषय मे ध्यान करके फिर इस नीचे बताये हुए मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥४३॥ हे नाथ! आप द्विपदो की अग्नि हो, रेतोधा तथा काम के दीपन करने वाले हो। आप समस्त भूतों मे प्रधान हो और सब जीवो के प्रभु एव आप अव्यय हो ॥४४॥ हे जलों के स्वामिन्! आप अमृत के अरणि हैं और देवयोनि हैं। हे तीर्थराज! मेरे सब वृजिन (पाप) का हरण करिए मेरा आपको नमस्कार है।।४५॥ इस प्रकार से विधि पूर्वक उच्चारण करके इसके उपरान्त स्नान करना

चाहिए। हे द्विजो मे परम श्रेष्ठो ! इस विधान के विपरीत यहाँ पर स्नान करना भी प्रशस्त नही होता है। कई वैदिक मन्त्रो के द्वारा अभिषेक और मार्जन करके पीछे जल के अन्दर स्थित होकर तीन बार अघमर्षण मन्त्र का जाप करना चाहिए ॥४७॥ हे विप्रगणो ! अश्वमेघ यज्ञ जिस प्रकार से सभी पापो का हरण करने वाला है उसी भाँति यह अघमर्षण सूक्त समस्त अघो का विनाश करने वाला यहाँ पर हुआ करता है ।।४८।। उतर कर शुद्ध निर्मल धुले हुए वस्त्रो को धारण करना चाहिए। फिर प्राणायाम करके तथा आचमन करके सन्ध्या वन्दना करे और भगवान् भास्कर की उपासना करनी चाहिए ।।४९।।

उपतिष्ठेत्ततश्चोर्ध्वं क्षिप्त्वा पुष्पजलाञ्जलिम् ।
उपस्थायोर्ध्वबाहुश्च तल्लिङ्गं र्भास्करं ततः ।।५०
गायत्री पावनी देवी जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
अन्याश्च सौरमन्त्राश्च जप्त्वा तिष्ठन्समाहितः ।।५१
कृत्वा प्रदक्षिणं सूर्यं नमस्कृत्योपविश्य च ।
स्वाध्यायं प्राङ्मुखं कृत्वा तर्पयेद्देवतान्यृषीन् ।।५२
मनुष्यांश्च पितॄंश्चान्यान्नामगोत्रेण मन्त्रवित् ।
तोयेन तिलमिश्रेण विधिवत्सुसमाहितः ।।५३
तर्पणं देवतानां च पूर्वं कृत्वा समाहितः ।
अधिकारी भवेत्पश्चात्पितॄणां तर्पणे द्विजः ।।५४
श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निर्वपेत् ।
तर्पणे तूभयं कुर्यादेष एव विधिः सदा ।।५५
अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ।
तृप्यतामिति सिञ्चेत्तु नामगोत्रेण वाग्यतः ।।५६

इसके उपरान्त उपस्थान करे और ऊपर की ओर सूर्यदेव के लिये पुष्पाञ्जलि का प्रक्षेप करना चाहिए । उपस्थान करके ऊपर की ओर बाहुओं वाला होते हुए उनके लिङ्गो के द्वारा भास्कर का उपस्थान करे और परम पावनी गायत्रीदेवी का एक सौ आठ बार जाप करना चाहिए

तथा परम समाहित होते हुए खड़ा रहकर अन्य जो सूर्यदेव के मन्त्र हों उनका भी जप करे । फिर प्रदक्षिणा करके सूर्य्यदेव को प्रणाम करे और बैठ जावे । पूर्व की ओर मुख करके स्वाध्याय करना चाहिए और देवों का तथा ऋषियों का तर्पण करे ॥५०-५२॥ मन्त्रों के ज्ञाता पुरुष को नाम और गोत्रों के उच्चारण के सहित मनुष्यों का एवं पितृगणों का तिलों से मिश्रित जल के द्वारा परम सावधान होकर तर्पण करना चाहिए ॥५३॥ सबसे पूर्व्व सावधान रह कर देवों का तर्पण करे और इसके पीछे ही द्विज पितृगणों के तर्पण करने का उचित अधिकारी हुआ करता है ॥५४॥ श्राद्ध में और हवन के समय में एक हाथ से ही निर्वपन करना चाहिए । तथा तर्पण के समय में दोनों हाथों से ही करे-यह ही सदा इसका विधान होता है ॥५५॥ अन्वारब्ध सव्य और दक्षिण हाथ से तृप्यताम् अर्थात् तृप्त होइये यह कहते हुए नाम एवं गोत्र का उच्चारण करके मौन रहते हुए सिञ्चन करना चाहिए । यही तर्पण की विधि है ॥५६॥

> कायस्थैर्यस्तिलैर्मोहात्करोति पितृतर्पणम् ।
> तर्पितास्तेन पितरस्त्वङ्मांसरुधिरास्थिभिः ॥५७
> अङ्गस्थेन तिलैः कुर्याद्देवतापितृतर्पणम् ।
> रुधिरं तद्भवेत्तोयं प्रदाता किल्बिषी भवेत् ॥५८
> भूम्यां यद्दीयते तोयं दाता चैव जले स्थितः ।
> वृथा तन्मुनिशार्दूला नोपतिष्ठति कस्यचित् ॥५९
> स्थले स्थित्वा जले यस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः ।
> पितॄणां नोपतिष्ठेत सलिलं यन्निरर्थकम् ॥६०
> उदके नोदकं कुर्यात्पितृभ्यश्च कदाचन ।
> उत्तीर्य तु शुचौ देशे कुर्यादुदकतर्पणम् ॥६१
> नोदकेषु न पात्रेषु न क्रुद्धो नैकपाणिना ।
> नोपतिष्ठति तत्तोयं यद्भूम्यां न प्रदीयते ॥६२

काया में स्थित तिलों के द्वारा मोह से फिर तर्पण किया करता है उससे त्वचा-मांस-रुधिर और अस्थियों के द्वारा पितर तर्पित होते हैं

॥५७॥ अङ्गुस्थ तिलो से देवता पितृगणो का तर्पण नही करना चाहिए क्योकि ऐसा करने से वह जल रुधिर हो जाया करता है और जो जल का प्रदान करने वाला है वह पाप का भागी होता है ॥५८॥ दाता जल मे स्थित होकर भूमि मे जो जल इसके द्वारा दिया जाता है हे मुनि-शार्दूलो ! वह व्यर्थ ही होता है और किसी को भी प्राप्त नही हुआ करता है ॥५९॥ जो मनुष्य स्थल मे स्वय स्थित होकर जल को जल मे ही दिया करता है वह जल भी पितृगणो को प्राप्त नही होता है और ऐसा जल देना सर्वथा निरर्थक हुआ करता है ॥६०॥ पितृगणो को जल दान किया जाता है उस उदक को कभी भी उदक मे नही करना चाहिए। किसी पवित्र भाग मे उत्तर का ही उदक तर्पण करना चाहिए। उदको मे नही—पात्रो मे नही क्रुद्ध होकर एक हाथ से नही जलदान करना चाहिए क्योकि वह जल उनको प्राप्त नही हुआ करता है जो कि भूमि मे प्रदान नही किया जाया करता है ॥६१-६२॥

पितृणामक्षय स्थान मही दत्ता मया द्विजाः।
तस्मात्तत्रैव दातव्य पितृणा प्रीतिमिच्छता ॥६३
भूमिपृष्ठे समुत्पन्ना भूम्या चैव च सस्थिताः।
भूम्या चैव लय याता भूमौ दद्यात्ततो जलम् ॥६४
आस्तीर्य च कुशान्साग्रास्तानावाह्य स्वमन्त्रतः।
प्राचीनाग्रेषु वै देवान्याम्याग्रेषु तथा पितृन् ॥६५

हे द्विजो ! मैने पितृगणो को अक्षय स्थान मही दी है। इसलिये पितृगणो की प्रीति की अभिलाषा रखने वालो को भूमि में ही जलदान करना चाहिए ॥६३॥ ये सभी भूमि के ही पृष्ठ पर समुत्पन्न हुए हैं तथा भूमि पर ही सस्थित भी रहे थे और इस भूमि में ही ये सब लय को प्राप्त हुए हैं अतएव भूमि में ही जल उनको देना चाहिए ॥६४॥ अग्रभाग के सहित कुशाओ को फैलाकर वहाँ पर अपने मन्त्र से उनका आवाहन करना चाहिए। प्राचीनाग्रो पर देवो का आवाहन करे तथा याम्याग्रो पर पितृगणो का आवाहन करे ॥६५॥

## २८—पूजाविधिकथन

देवान्पितृ ंस्तथा चान्यान्संतर्प्याऽऽचम्य वाग्यतः ।
हस्तमात्र चतुष्कोणं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ॥१
पुरं विलिख्य भो विप्रास्तीरे तस्य महोदधेः ।
मध्ये तत्र लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥२
एव मण्डलमालिख्य पूजयेत्तत्र भो द्विजाः ।
अष्टाक्षरविधानेन नारायणमज विभुम् ॥३
अतः परं प्रवक्ष्यामि कायशोधनमुत्तमम् ।
अकारं हृदये ध्यात्वा चक्ररेखासमन्वितम् ॥४
ज्वलन्तं त्रिशिख चैव दहन्तं पापनाशनम् ।
चन्द्रमण्डलमध्यस्थ राकार मूर्ध्नि चिन्तयेत् ॥५
शुक्लवर्णं प्रवर्षन्तममृत प्लावयन्महीम् ।
एव निर्धू तपापस्तु दिव्यदेहस्ततो भवेत् ॥६
अष्टाक्षर ततो मन्त्र न्यसेदेवाऽऽत्मनो बुधः ।
वामपादं समारभ्य क्रमशश्चैव विन्यसेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—देवो को तथा पितृ गणो को एव अन्य सबको भली भाँति तृप्त करके आचमन करे और मौन व्रत धारण करके एक हाथ भर के प्रमाण वाले चार कोनो वाले तथा चार द्वारों वाले परम शोभा से युक्त पुर का लेखन करे हे विप्रो ! इस पुर का विलेखन उस महोदधि के तट, पर ही करना चाहिए । उस पुर के मध्य में एक आठ दलो वाले तथा कणिका से युक्त पद्म का विलेखन करना चाहिए ॥१-२॥ हे द्विजो ! इस प्रकार के मण्डल का विलेखन करके वहाँ पर पूजा करनी चाहिए ! अष्टाक्षर के विधान के द्वारा विभु अजन्मा भगवान् नारायण का अर्चन करे ॥३॥ इससे आगे मैं उत्तम काया के शोधन के विषय मे बतलाता हूँ । साधक को अपने हृदय मे चक्ररेखा से युक्त अकार का ध्यान करना चाहिए ॥४॥ जाज्वल्यमान-तीन शिखाओ से सयुत-दहन करते हुए पापो का विनाश करने वाले तथा चन्द्रमण्डल के मध्य मे स्थित राकार को मूर्धा मे चिन्तन करना चाहिए ॥५॥ अमृत

की वर्षा करने वाले-शुक्ल वर्ण से युक्त-सम्पूर्ण मही को प्लावित करते हुए इस प्रकार से निर्धूत पापों वाला होकर फिर दिव्य देह वाला हो जाया करता है ॥६॥ फिर बुध पुरुष अपना अष्टाक्षर मन्त्र का न्यास करना चाहिए। वामपाद से समारम्भ करके क्रम से ही विन्यास करना चाहिए ॥७॥

पञ्चाङ्ग वैष्णवं चैव चतुर्व्यूहं तथैव च ।
करशुद्धि प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण साधकः ॥८
एवंक चैव वर्णं तु अङ्गुलीषु पृथक्पृथक् ।
ओकारं पृथिवी शुक्ला वामपादे तु विन्यसेत् ॥९
नकारः शाम्भवः श्यामो दक्षिणे तु व्यवस्थितः ।
मोकारं कालमेवाऽऽहुर्वामकट्यां निधापयेत् ॥१०
नाकारः सर्वबीजं तु दक्षिणस्यां व्यवस्थितः ।
राकारस्तेज इत्याहुर्नाभिदेशे व्यवस्थितः ॥११
वायव्योऽयं यकारस्तु वामस्कन्धे समाश्रितः ।
णाकारः सर्वगो ज्ञेयो दक्षिणांसे व्यवस्थितः ॥
यकारोऽयं शिरस्थश्च यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥१२
ममाग्रेऽवस्थितो विष्णुः पृष्ठतश्चापि केशवः ।
गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे वामे तु मधुसूदनः ॥१३-१४

वैष्णव पञ्चाङ्ग को तथा चतुर्व्यूह का विन्यास करे। साधक को मूल मन्त्र के द्वारा कर शुद्धि करनी चाहिए ॥८॥ अंगुलियों में एक-एक वर्ण को पृथक् २ विन्यस्त करे। ओङ्कार को तथा शुक्ला पृथिवी को वामपाद में विन्यस्त करे ॥९॥ नकार शाम्भव और श्याम है जो दक्षिण पाद में व्यवस्थित है। मोकार काल को ही वाम कटि में निधापित करे ॥१०॥ नाकार सर्वबीज को दक्षिण कटि में व्यवस्थित करना चाहिए। राकार तेज ऐसा कहा गया है जो कि नाभि देश में व्यवस्थित होता है ॥११॥ यह यकार वायव्य है जो वाम स्कन्ध में समाश्रित होता है। णाकार को सर्वत्र गमन करने वाला जानना चाहिए। जो कि दक्षिण अंश में व्यवस्थित रहा करता है। यह यकार शिर में स्थित रहने वाला

है जहाँ पर सब लोक प्रतिष्ठित रहा करते हैं ॥१२॥ मेरे आगे वाले भाग मे भगवान् विष्णु अवस्थित हैं और पृष्ठभाग मे केशव स्थित रहते हैं। दक्षिण पार्श्व मे गोविन्द और वाम पार्श्व मे मधुसूदन प्रभु रहते हैं ॥१३-१४॥

उपरिष्टात्तु वैकुण्ठो वाराहः पृथिवीतले ।
अवान्तरदिशो यास्तु तासु सर्वासु माधवः ॥१५
गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा ।
नरसिंहकृता गुप्तिर्वासुदेवमयो ह्ययम् ॥१६
एवं विष्णुमयो भूत्वा ततः कर्म समारभेत् ।
यथा देहे तथा देवे सर्वतत्त्वानि योजयेत् ॥१७
ततश्चैव प्रकुर्वीत प्रोक्षण प्रणवेन तु ।
फट्कारान्त समुद्दिष्ट सर्वविघ्नहर शुभम् ॥१८
तत्रार्कचन्द्रवह्नीना मन्डलानि विचिन्तयेत् ।
पद्ममध्ये न्यसेद्विष्णु पवनस्याम्बरस्य च ॥१६
ततो विचिन्त्य हृदय ओंकार ज्योतीरूपिणम् ।
कर्णिकाया समासीन ज्योतीरूप सनातनम् ॥२०
अष्टाक्षर ततो मन्त्र विन्यसेच्च यथाक्रमम् ।
तेन व्यस्तसमस्तेन पूजन परम स्मृतम् ॥२१

ऊपर के भाग मे वैकुण्ठ हैं और पृथिवी तल मे वाराह देव स्थित रहते हैं। जो अवान्तर दिशाऐं हैं उन सबमे माधव भगवान् विराजमान रहा करते हैं ॥१५॥ गमन करते हुए, स्थित रहते हुए, जागते हुए, सोते हुए नरसिंह कृता गुप्ति है अर्थात् भगवान् नरसिंह के द्वारा की हुई रक्षा होती है। यह सब वासुदेवमय ही है ॥१ ॥ इस प्रकार से विष्णु-मय होकर ही इसके अनन्तर कर्म का आरम्भ करना चाहिए। जिस प्रकार से देह मे है उसी भाँति समस्त तत्त्वो को देव में योजित करना चाहिए ॥१७॥ इसके उपरान्त प्रणव ( ॐकार ) के द्वारा प्रोक्षण करे। फट्कार जिसके अन्त मे हो ऐसा समुदिष्ट किया गया है जो कि सब का हरण करने वाला एवं शुभ होता है ॥१८॥ यहाँ पर चन्द्र-अर्क और

वह्नियों के मण्डलों का विचिन्तन करना चाहिए। पद्म के मध्य में भगवान् विष्णु का पवन का तथा अम्बर का न्यास करना चाहिए ॥१६॥ इसके अनन्तर ज्योति स्वरूप वाले ओङ्कार का हृदय विचिन्तन करे जो कर्णिका मे समासीन हैं और ज्योति स्वरूप वाले सनातन हैं ॥२०॥ इसके पश्चात् यथाक्रम आठ अक्षर वाले मन्त्र का विन्यास करना चाहिए। उस व्यस्त अर्थात् अलग २ और समस्त अर्थात् सम्पूर्ण उसके द्वारा परम श्रेष्ठ पूजन बताया गया है ॥२१॥

द्वादशाक्षरमन्त्रेण यजेद्देव सनातनम् ।
ततोऽवधार्य हृदये कर्णिकाया वहिर्न्यसेत् ॥२२
चतुर्भुज महासत्त्व सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
चिन्तयित्वा महायोग ज्योतीरूप सनातनम् ॥
ततश्चाऽऽवाहयेन्मन्त्र क्रमेणाऽऽचिन्त्य मानसे ॥२३
पूर्वे दले वासुदेव याम्ये सकर्षण न्यसेत् ।
प्रद्युम्न पश्चिमे कुर्यादनिरुद्ध तथोत्तरे ॥२४
वाराह च तथाऽऽग्नेये नरसिह च नैऋते ।
वायव्ये माधव चैव तथैशाने त्रिविक्रमम् ॥२५
तथाऽष्टाक्षरदेवस्य गरुड पुरतो न्यसेत् ।
वामपार्श्वे तथा चक्र शङ्ख दक्षिणतो न्यसेत् ॥२६
तथा महागदा चैव न्यसेद्देवस्य दक्षिणे ।
तत. शार्ङ्ग धनुर्विद्वान्न्यसेद्देवस्य वामत. ॥२७

इस प्रकार से द्वादशाक्षर (ओ नमो भगवते वासुदेवाय) अर्थात् बारह अक्षरो वाले इस उपर्युक्त मन्त्र से सनातन देव का यजन करना चाहिए। इसके उपरान्त हृदय मे कर्णिका मे अर्थात् हृदयरूप कमल की कर्णिका मे अवधारण करके फिर बाहिर न्यास करना चाहिए ॥२२॥ महान् सत्त्व वाले, करोड़ो सूर्य्यों के समान प्रभा से सयुत चार भुजाओ वाले, महा योग, ज्योति स्वरूप, सनातन का चिन्तन करना चाहिए। और इसके पश्चात् क्रम से मानस मे चिन्तन करके मन्त्र के

द्वारा आवाहन करे आवाहन, स्थापन,अर्घ, पाद्य,मधुपर्क,आचमनीय, स्नान, वस्त्र,विलेपन,उपवीत,अलङ्कार,धूप,दीप,नैवेद्य,आदि का मन्त्रो द्वारा निवेदन करना चाहिए फिर पूर्व दल मे अर्थात् बाहिर विलिखित पद्म के पूर्व दिशा की ओर वाले दल में वासुदेव का न्यास करे,दक्षिण दल मे सङ्कर्षण का,पश्चिम की ओर वाले दल मे प्रद्युम्न का तथा उत्तर में अनिरुद्ध न्यास करना चाहिए ॥२३-२४॥ विदिशाओ मे आग्नेय कोण में वाराह का, नैर्ऋत में नरसिंह का, वायव्य में माधव का और ईशान कोण में त्रिविक्रम प्रभु का न्यास करना चाहिए ॥२५॥ तथा अष्टाक्षर देव के गरुड़ को आगे विन्यस्त करे। वाम पार्श्व मे सुदर्शन चक्र का और दक्षिण की ओर शङ्ख (पाञ्चजन्य) का न्यास करना चाहिए ॥२६॥ इसके अनन्तर महा गदा कौमोदकी को देव के दक्षिण भाग मे विन्यस्त करे और शार्ङ्ग धनुष को देव के वाम भाग मे विद्वान के द्वारा विन्यास करना चाहिए ॥२७॥

दक्षिणेऽिपुधी दिव्ये खड्ग वामे च विन्यसेत् ।
श्रिय दक्षिणतः स्थाप्य पुष्टिमुत्तरतो न्यसेत् ॥२८
वनमालां च पुरतस्ततः श्रीवत्सकौस्तुभौ ।
विन्यसेद्धृदयादीनि पूर्वादिषु चतुर्दिशम् ॥२९
ततोऽस्त्रं देवदेवस्य कोणे चैव तु विन्यसेत्।
इन्द्रमग्नि यम चैव नैर्ऋत वरुण तथा ॥३०
वायु धनदमीशानमनन्तं ब्रह्मणा सह ।
पूजयेत्तान्निकंमन्त्रैरधश्चोर्ध्वं तथैव च ॥३१
एव संपूज्य देवेश मण्डलस्थं जनार्दनम् ।
लभेदभिमतान्कामान्नरो नास्त्यत्र सशयः ॥३२
अनेनव विधानेन मण्डलस्थ जनार्दनम् ।
पूजितं यः संपश्येत स विशेद्विष्णुमव्ययम् ॥३३
सकृदप्यर्चिता येन विधिनाऽनेन केशवः ।
जन्ममृत्युजरां तीर्त्वा स विष्णोः पदमाप्नुयात् ॥३४

दक्षिण की ओर दिव्य इपुधियो को और वाम भाग में खड्ग का

मे पुष्टि का न्यास करे ॥२८॥ आगे बनमाला का और फिर श्री वत्स और कौस्तुभ का न्यास करना चाहिए। पूर्वादिक चारो दिशाओ में हृदयादि का न्यास करे ॥२६॥ फिर देवों के देव के अस्त्र को कोण मे विन्यस्त करे। इन सब विन्यासो के करने के अनन्तर अधोभाग मे और ऊर्ध्व भाग मे तान्त्रिक मन्त्रो के द्वारा इन्द्रअग्नि-यम-नैऋत-वरुण-वायु-धनद-ईशानब्रह्मा के सहित अनन्त का पूजन करना चाहिए ॥३०-३१॥ इस भांति से मण्डल मे स्थित देवेश्वर जनार्दन का भली-भाँति से अभ्यर्चन करके मनुष्य अपने समस्त अभिमत मनोरथों को प्राप्त कर लिया करता है, इसमे तनिक भी सशय नहीं है ॥३२॥ इस ो वर्णित विधान के द्वारा मण्डल मे समवस्थित देवेश्वर जनार्दन प्रभु को समचित हुए जो भी भली-भाँति दर्शन कर लेता है वह अव्यय भगवान् विष्णु के पुर मे प्रवेश किया करता है ॥३३॥ इस वर्णित किये हुए विधान के द्वारा जिस किसी ने जीवन मे एक बार भी केशव भगवान् का अभ्यर्चन कर लिया है वह इस ससार के जन्म-मरण और जरा को पार करके अन्त मे विष्णु भगवान् के पद को प्राप्त कर लिया करता है ॥३४॥

य स्मरेत्सतत भक्त्या नारायणमतन्द्रितः।
अन्वह तस्य वासाय श्वेतद्वीप: प्रकल्पित: ॥३५
ओंकारादिसमायुक्त नमःकारान्तदीपितम्।
तन्नाम सर्वतत्त्वाना मन्त्र इत्यभिधीयते ॥३६
अनेनैव विधानेन गन्धपुष्प निवेदयेत्।
एकैकस्य प्रकुर्वीत यथोद्दिष्ट क्रमेण तु ॥३७
मुद्रास्ततो निबध्नीयाद्यथोक्तक्रमचोदिताः।
जप चैव प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥३८
अष्टाविंशतिमष्टौ वा शतमष्टोत्तर तथा।
कामेषु च यथाप्रोक्त यथाशक्ति समाहित: ॥३९
पद्म शङ्खश्च श्रीवत्सो गदा गरुड एव च।
चक्र खड्गश्च शार्ङ्ग च अष्टौ मुद्रा. प्रकीर्तिता: ॥४०

विसर्जनमन्त्रः—गच्छ गच्छ परं स्थानं पुराणपुरुषोत्तम ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा विन्दन्ति परमं पदम् ॥४१
अर्चनं ये न जानन्ति हरेर्मन्त्रैर्यथादितम् ।
ते तत्र मूलमन्त्रेण पूजयन्त्वच्युतं सदा ॥४२

जो निरन्तर भक्ति की भावना से तन्द्रा रहित होकर भगवान् नारायण का स्मरण किया करता है प्रति दिन उसके वास के लिये श्वेत द्वीप को कल्पित किया गया है ॥३५॥ ओंकार के आदि से युक्त नमःकार के द्वारा अन्त मे दीपित और उनका शुभ नाम सर्व तत्त्वो का मन्त्र है जोकि कहा जाया करता है ॥३६॥ इसी विधान से गन्ध, पुष्पादि का समर्पण करना चाहिए। क्रम से जो जहा उद्दिष्ट किये गये हैं उनमे एक-एक को निवेदन करना चाहिए ॥३७॥ जैसा कि क्रम बताया गया है उसी के अनुसार फिर मुद्राओ का निवन्धन करे। मन्त्र के ज्ञाता पुरुषमूल मन्त्र के द्वारा जाप भी करना चाहिए ॥३८॥आठ-अट्ठाईस-अष्टोत्तर शत जाप जो जिस कामना मे जैसा भी कहा गया है उसको यथा शक्ति समाहित होकर वैसा ही करना चाहिए ॥३९॥ पद्म शङ्ख-श्री वत्स-गदा-गरुड-चक्र-खड्ग-शार्ङ्ग-ये कुल आठ मुद्राएं कीर्त्तित की गयी हैं ॥४०॥ इसके अनन्तर विसर्जन करे। इसका मन्त्र यही है—हे पुराण पुरुषोत्तम ! अब आप कृपा करके परम स्थान मे पधारिये और गमन करिये जहाँ पर ब्रह्मादिक देवगण परम पद को जानते हैं ॥४१॥ जो लोग भगवान् के परम भक्त हैं किन्तु जिन-जिन मन्त्रो द्वारा हरिका अभ्यर्चन ऊपर मे बताया गया है उसका पूर्ण ज्ञान उनको नही है तो वे ज्ञान के अभाव में कुछ भी न करे, ऐसा नहीं है प्रत्युत उनको सदा केवल मूल-मन्त्र के द्वारा ही अच्युत भगवान् का पूजन करना चाहिए ॥४२॥

—※—

## २६—समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णन

एवं संपूज्य विधिवद्भक्त्या तं पुरुषोत्तमम् ।
प्रणम्य शिरसा पश्चात्सागरं च प्रसादयेत् ॥१
प्राणस्त्वं सर्वभूतानां योनिश्च सरितां पते ।
तीर्थराज नमस्तेऽस्तु त्राहि मामच्युतप्रिय ॥२
स्नात्वैवं सागरे सम्यक्तस्मिन्क्षेत्रवरे द्विजाः ।
तीरे चाभ्यर्च्य विधिवन्नारायणमनामयम् ॥३
रामं कृष्णं सुभद्रां च प्रणिपत्य च सागरम् ।
शतानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥४
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविवर्जितः ।
वृन्दारक इव श्रीमान्रूपयौवनगर्वितः ॥५
विमानेनार्कवर्णेन दिव्यगन्धर्वनादिना ।
कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥६
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्क्रीडित्वा चाप्सरैः सह ।
मन्वन्तरवतं साग्रं जरामृत्युविवर्जितः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस पूर्व वर्णित विधि-विधान के द्वारा भक्तिभाव से उन पुरुषोत्तम भगवान का सम्यक् रीति से अभ्यर्चन करके और साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम उनको करके पीछे सागर का प्रसाद प्राप्त करना चाहिए ॥१॥ हे सरिताओं के स्वामिन् ! आप ही समस्त भूतों के प्राण तथा उत्पत्ति स्थल हैं। हे अच्युत भगवान् के परम प्रिय तीर्थों के राजन् ! आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम है। आप मेरा परित्राण करिए ॥२॥ हे द्विजो ! उस परम श्रेष्ठ क्षेत्र में भली-भाँति सागर में स्नान करके तट पर अनामय नारायण का विधि पूर्वक अर्चन करना चाहिए ॥३॥ श्रीराम भद्र, श्रीकृष्ण चन्द्र, सुभद्रा देवी तथा नदीश्वर सागर को प्रणिपात करके मनुष्य एक शत अश्वमेध यज्ञों के यजन करने

का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है ॥४॥ वह मनुष्य सभी पापों से जो भी इस जन्म के तथा पूर्व जन्मो मे सञ्चित हो छुटकारा पाकर समस्त सांसारिक दुःखों से रहित हो जाता है। वह फिर देवता के समान श्री से सुसम्पन्न होकर रूप एवं यौवन से गर्वित हो जाया करता है ॥५॥ फिर वह सूर्य के सदृश वर्ण वाले विमान के द्वारा जो कि परम दिव्य गन्धर्व और अप्सरा आदि से ससेवित होता है अपने इक्कीस कुलो का उद्धार करके अन्त मे सीधा विष्णुलोक मे ही गमन किया करता है। वहाँ पर वह परमोत्तमोत्तम भोगो का सुख भोग करके तथा दिव्याप्सराओ के साथ विलास क्रीड़ा करके डेढसौ मन्वन्तरो के बहुत लम्बे समय तक जरा-जन्म और मृत्यु के क्लेशो से छुटकारा पा जाया करता है ॥६-७॥

पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः कुले सर्वगुणान्विते ।
रूपवान्सुभगः श्रीमान्सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥८
वेदशास्त्रार्थविद्विप्रो भवेद्यज्वा तु वैष्णवः ।
योग च वैष्णव प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥९
ग्रहोपरागे सक्रान्त्यामयने विषुवे तथा ।
युगादिषु षडशीत्यां व्यतीपाते दिनक्षये ॥१०
आषाढ्या चैव कार्तिक्या माघ्या वाऽन्ये शुभे तिथौ ।
ये तत्र दान विप्रेभ्य प्रयच्छन्ति सुमेधसः ॥११
फल सहस्रगुणितमन्यतीर्थाल्लभन्ति ते ।
पितॄणा ये प्रयच्छन्ति पिण्ड तत्र विधानतः ॥१२
अक्षया पितरस्तेषां तृप्ति सप्राप्नुवन्ति वै ।
एव स्नानफल सम्यक्सागरस्य मयोदितम् ॥१३
दानस्य च फल विप्राः पिण्डदानस्य चैव हि ।
धर्मार्थमोक्षफलदमायुष्कीर्तियशस्करम् ॥१४

जब अपने किये हुए पुण्यो का उपभोग द्वारा शनैः शनैः क्षय होता है तो फिर वह पुनः इस कर्मभूमि भारत मे आकर सभी गुणगण से युक्त किसी उत्तम कुल मे जन्म ग्रहण किया करता है। वह मानव जीवन में

भी उसी पूर्वकृत महान् पुण्य के प्रभाव से रूपवान्, सुभग, श्रीमान, सत्य-वादी, जितेन्द्रिय, वेदों और समस्त शास्त्रों का ज्ञाता, यज्वा और वैष्णव विप्र हुआ करता है। फिर यहाँ पर वैष्णव योग को प्राप्त करके अन्त में मोक्ष को प्राप्त किया करता है। तात्पर्य यह है कि पहिले अतुल-अनुपम भोग और अन्त में मुक्ति दोनों ही उसे प्राप्त हो जाते हैं ॥८-९॥ कुछ ऐसे विशिष्ट अवसर हैं जैसे—ग्रहोपराग (ग्रहण) सङ्क्रान्ति-विषुवअयन-युगादि-षडशीति-व्यतीपात-दिनक्षय-आषाढी, कार्तिकी तथा माघी पूर्णिमा एवं अन्य शुभतिथि इन अवसरों पर जो सुन्दर मेधा वाले पुरुष यहाँ पर विप्रों को दान दिया करते हैं वे अन्य तीर्थों से सहस्र गुना पुण्य-फल प्राप्त किया करते हैं। जो यहाँ पर पितृगणों को विधि पूर्वक पिण्ड दान किया करते हैं ॥१०-१२॥ उससे उनके पितृगण अक्षय तृप्ति की प्राप्ति किया करते हैं। इस रीति से मैंने सागर के स्नान करने का पुण्य-फल भली-भाँति वर्णित कर दिया है। साथ ही यहाँ पर दिये हुए दान का फल तथा पितरों के किये गये पिण्डदान का फल भी बता दिया है जो धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के फल देने वाला तथा आयु-कीर्ति और यश के प्रदान करने वाला होता है ॥१३-१४॥

भुक्तिमुक्तिफलं नृणां धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥१५
नास्तिकाय न वक्तव्यं पुराणं च द्विजोत्तमाः ।
तावद्गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वैः पृथक्पृथक् ॥१६
यावन्न तीर्थराजस्य महात्म्यं वर्ण्यते द्विजाः ।
पुष्करादीनि तीर्थानि प्रयच्छन्ति स्वकं फलम् ॥१७
तीर्थराजस्तु स पुनः सर्वतीर्थफलप्रदः ।
भूतले यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ॥१८
विशन्ति सागरे तानि तेनासौ श्रेष्ठतां गतः ।
राजा समस्ततीर्थानां सागरः सरितां पतिः ॥१९
तस्मात्समस्ततीर्थेभ्यः श्रेष्ठोऽसौ सर्वकामदः ।
तमो नाशं यथाऽभ्येति भास्करेऽभ्युदिते द्विजाः ॥२०

यह मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति के फल को प्रदान करने वाला है तथा परम धन्य और दुःस्वप्नो का नाशक भी है। सब पापो के हरण करने वाला परम पुण्यमय और सब मनोरथो के फलो को देने वाला है ॥१५॥ हे द्विजोत्तमो ! इस पुराण को भूलकर भी कभी ऐसे पुरुष को मत बताना जो ईश्वर की सत्ता को ही न मानने वाला नास्तिक हो। तभी तक सब तीर्थ अपने अपने पृथक २ माहात्म्यो की प्रशसा लेकर गर्जना किया करते हैं जब तक कि हे द्विजो ! इस तीर्थराज की महिमा एवं माहात्म्य का वर्णन नही किया जाता है। तात्पर्य यह है कि तीर्थ-राज के माहात्म्य के आगे सब अन्य तीर्थों का माहात्म्य हेय ही रह जाया करता है। अन्य पुष्कर आदि तीर्थ केवल अपना ही फल दिया करते हैं ॥१६-१७॥ किन्तु यह तीर्थराज तो स्वय अकेला ही समस्त तीर्थों का पुण्य-फल प्रदान करने वाला होता है। इस भूमण्डल मे जो भी तीर्थ-सरिताएँ और सर हैं ॥१८॥ वे सभी अन्त मे सागर मे ही जाकर प्रवेश किया करते हैं। इसी कारण से इसकी श्रेष्ठता सबसे अधिक है। समस्त तीर्थों का राजा सरिताओ का स्वामी सागर ही है ॥१९॥ इसी कारण से यह अन्य सब तीर्थों से श्रेष्ठ और सब कामनाओ का प्रदाता होता है। हे द्विजगण ! जैसे भगवान् भास्कर के समुदित हो जाने पर तम का विनाश हो जाया करता है वैसे ही इस तीर्थराज के द्वारा पापो का नाश हो जाया करता है ॥२०॥

स्नानेन तीर्थराजस्य तथा पापस्य सक्षयः।
तीर्थराजसम तीर्थं न भूत न भविष्यति ॥२१
अधिष्ठान यदा यत्र प्रभोर्नारायणस्य वै।
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तीर्थराजस्य भो द्विजाः ॥२२
कोटयो नवनवत्यस्तु यत्र तीर्थानि सन्ति वै।
तस्मात्स्नान च दान च होम जप्य सुरार्चनम् ॥
यत्किंचित्क्रियते तत्र चाक्षय क्रियते द्विजाः ॥२३

इस तीर्थराज सागर के स्नान से पापो का अच्छी तरह से क्षय हो जाता है। इस तीर्थराज के समान अन्य कोई भी तीर्थ न तो अब तक

हुआ है और न भविष्य में भी होगा ॥२१॥ जब जहाँ पर प्रभु नारायण का अधिष्ठान होता है तो ऐसे इस तीर्थराज सागर के गुणों को कौन वर्णन करने में समर्थ हो सकता है ? करोड़ों नवनवति तीर्थ जहाँ पर विद्यमान रहते हैं उसकी महिमा का क्या पारावार है। इसलिये वहाँ दान-स्नान-होम जप और सुरार्चन जो भी कुछ शुभ कर्म किया जाता है वह सभी हे द्विजगण ! अक्षय ही होता है ॥२२-२३॥

---

## ३०—पञ्चतीर्थीमाहात्म्यनिरूपण

ततो गच्छेद्द्विजश्रेष्ठास्तीर्थं यज्ञाङ्गसंभवम् ।
इन्द्रद्युम्नसरो नाम यत्राऽऽस्ते पावनं शुभम् ॥१
गत्वा तत्र शुचिर्धीमानाचम्य मनसा हरिम् ।
ध्यात्वोपस्थाय च जलमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२

अश्वमेधाङ्गसंभूत तीर्थ सर्वाघनाशन ।
स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते ॥३
एवमुच्चार्य विधिवत्स्नात्वा देवानृषीन्पितॄन् ।
तिलोदकेन चान्यांश्च संतर्प्याऽऽचम्य वाग्यतः ॥४

दत्त्वा पितॄणां पिण्डांश्च संपूज्य पुरुषोत्तमम् ।
दशाश्वमेधिकं सम्यक्फलं प्राप्नोति मानवः ॥५
सप्तावरान्सप्त परान्वंशानुद्धृत्य देववत् ।
कामगेन विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥६

भुक्त्वा तत्र सुखान्भोगान्यावच्चन्द्रार्कतारकम् ।
च्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो मोक्षं च लभते ध्रुवम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजो ! इसके आगे यज्ञाङ्ग सम्भव तीर्थ पर गमन करना चाहिए जहाँ पर इन्द्रद्युम्न नाम वाला परम पावन एवं

शुभ सरोवर है ॥१॥ वहाँ पर पहुंच कर परम शुचि होकर बुद्धिमान् पुरुष को आचमन करके मन के द्वारा श्री हरि का ध्यान तथा उपस्थान करना चाहिए। उस जल पर उपस्थित होकर निम्न वर्णित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥२॥ हे तीर्थ ! आपकी उत्पत्ति अश्वमेध के अङ्ग से हुई है और आप समस्त अघो के विनाश करने की शक्ति रखते हैं। आज इस समय मे मैं आप मे स्नान करता हूं। आप मेरे सब पापों का हरण कीजिए। आपको मेरा परमाधिक आदर के साथ प्रणाम है ॥३॥ इस प्रकार से समुच्चारण करके फिर विधि-विधान के साथ स्नान करे और तिलोदक से देवो का, ऋषियो का, पितृगण का तथा अन्यों का भली भाँति वहाँ पर तर्पण करना चाहिए। फिर आचमन करके मौन हो पितरो को पिण्ड दान करे और पुरुषोत्तम प्रभु का अभ्यर्चन करना चाहिए। इस सबके करने से मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञों के यजन करने का फल प्राप्त किया करता है ॥४-५॥ वह मनुष्य अपने सात पहिले और सात आगे होने वाले वंशो का उद्धार करके स्वेच्छागामी विमान के द्वारा सीधा विष्णुलोक को गमन किया करता है ॥६॥ वहाँ पर जब तक चन्द्र-सूर्य और तारागण नभ मण्डल मे विद्यमान रहते हैं तब तक परमोत्तम दिव्य सुखो का उपभोग किया करता है। जब भोगो के करने से उस महान् पुण्य का शनैः शनैः क्षय होता है तथा कुछ स्वल्पांश शेष रहता है तब वह वहाँ से च्युत हो जाता है और यहाँ मर्त्यलोक मे जन्म ग्रहण करके निश्चित रूप से मोक्ष को प्राप्त करता है ॥७॥

एवं कृत्वा पञ्चतीर्थमेकादश्यामुपोषितः।
ज्येष्ठशुक्लपञ्चदश्यां यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् ॥८

स पूर्वोक्तं फलं प्राप्य क्रीडित्वा चाऽच्युतालये।
प्रयाति परमं स्थानं यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः ॥९

मासानन्यान्परित्यज्य माघादीन्प्रपितामह।
प्रशंससि कथं ज्येष्ठं ब्रूहि तत्कारणं प्रभो ॥१०

शृणुध्व मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः ।
ज्येष्ठ मास तथा तेभ्यः प्रशसामि पुनः पुनः ॥११
पृथिव्या यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ।
पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कूपास्तथा ह्रदाः ॥१२
नानानद्यः समुद्राश्च सप्ताह पुरुषोत्तमे ।
ज्येष्ठशुक्लदशम्यादि प्रत्यक्षं यन्ति सर्वदा ॥१३
स्नानदानादिक तस्माद्देवताप्रेक्षणं द्विजाः ।
यत्किंचित्क्रियते तत्र तस्मिन्कालेऽक्षय भवेत् ॥१४

इस प्रकार से पञ्चतीर्थों का क्रियाकलाप समाप्त करके एकादशी से उपवास करना चाहिए । जो ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की पञ्चमी के दिन पुरुषोत्तम प्रभु का दर्शन किया करता है वह पूर्व मे वर्णित फल का लाभ किया करता है अथवा अच्युत भगवान् के आलय मे आनन्द की क्रीडा करके परमोत्तम पद को प्राप्त करता है जहाँ से पुनः आवर्तित नही होता है ॥८-६॥ मुनियो ने कहा—हे प्रपितामह ! हे प्रभो ! माघ आदि अन्य समस्त श्रेष्ठ मासो का परित्याग करके इस ज्येष्ठ मास की ही इतनी अधिक प्रशसा क्यो कर रहे हैं—इसका क्या कारण है—यह हमको बतलाने की कृपा कीजिए ॥१०॥ श्री परमेष्ठी पितामह ने कहा—हे मुनिगणो ! आप इसका कारण सुनिए । मैं सक्षेप मे इसे बतलाता हूँ । मैं इस ज्येष्ठ मास की उन अन्य मासो से जो बारम्बार प्रशसा क्यो करता हूँ ॥११॥ इस पृथिवी मे जितने भी तीर्थ है—सरिताएँ, सरोवर, पुष्करिणियाँ, तालाब, बावडी, कूप, ह्रद—अनेक नदियाँ और समुद्र हैं वे पुरुषोत्तम मे सप्ताह के लिये ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की दशमी से लेकर सर्वदा प्रत्यक्ष रूप को प्राप्त किया करते है ॥१२-१३॥ इसी कारण से हे द्विजो ! उस अवसर पर जो वहाँ स्नान दान आदि तथा देव दर्शन जो कुछ भी किया जाता है उस समय मे अक्षय हुआ करता है ॥१४॥

शुक्लपक्षस्य दशमी ज्येष्ठे मासि द्विजोत्तमाः ।
हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृताः ॥१५

यस्तस्यां हलिनं कृष्णं पश्येद्भद्रां सुसंयतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥१६
उत्तरे दक्षिणे विप्रास्त्वयने पुरुषोत्तमम्।
दृष्ट्वा रामं सुभद्रां च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥१७
नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम्।
फाल्गुन्यां प्रयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत् ॥१८
विषुद्दिवसे प्राप्ते पञ्चतीर्थीं विधानतः।
कृत्वा संकर्षणं कृष्णं दृष्ट्वा भद्रां च भो द्विजाः ॥ ६
नरः समस्तयज्ञानां फलं प्राप्नोति दुर्लभम्।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२०
यः पश्यति तृतीयायां कृष्णं चन्दनरूषितम्।
वैशाखस्यासिते पक्षे स यात्यच्युतमन्दिरम् ॥२१
ज्यैष्ठ्यां ज्येष्ठर्क्षयुक्तायां यः पश्येत्पुरुषोत्तमम्।
कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २

हे द्विजोत्तमो ! ज्येष्ठ मास में शुक्ल पक्ष की जो दशमी तिथि है वह दश प्रकार के पापों का अपहरण किया करती है इसीलिये वह दशहरा कही गयी है ॥१५॥ जो नर उसतिथि के दिन में हलधर बलराम-श्रीकृष्ण और सुभद्रा देवी का सुसंयत होकर दर्शन करता है वह समस्त पापों से विमुक्त होकर विष्णुलोक को गमन करता है। उत्तरायण और दक्षिणायन में भगवान् पुरुषोत्तम-श्री बलराम और सुभद्रा का जो पुरुष दर्शन प्राप्त करता है वह विष्णुलोक को चला जाता है ॥१६-१७॥ फाल्गुनी पूर्णिमा के दिन प्रयत होकर जो मनुष्य डोला में विराजमान पुरुषोत्तम गोविन्द का दर्शन किया करता है वह सीधा गोविन्द के ही पुर को जाया करता है ॥१८॥ विषुवद् दिवस में प्राप्त होने पर पञ्च-तीर्थों के विधान से हे द्विजगण ! भगवान् सङ्कर्षण-श्रीकृष्ण और सुभद्रा देवी के दर्शन करता है वह मनुष्य समस्त यज्ञों के यजन करने का दुर्लभ फल प्राप्त किया करता है और सब पापों से विमुक्त होकर विष्णुलोक को गमन कर जाता है ॥१६-२०॥ जो वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में

ऋषिकुल्या, कुमारी, विपाशा, दृषद्वती, ॥११-१२॥ सरयू, नाकगङ्गा, गण्डकी, महानदी, कौशिकी, करतोया, त्रिस्रोता, मधुवाहिनी, महानदी, वैतरणी और जो अन्य नदियाँ तीर्थ हैं जिनका नाम निर्देश यहाँ पर नहीं किया गया है। हे द्विजोत्तमो ! अथवा बहुत अधिक कथन से क्या लाभ है ॥१३-१४॥

पृथिव्या सर्वतीर्थेषु सर्वेष्वायतनेषु च।
सागरेषु च शैलेषु नदीषु च सरःसु च ॥१५
यत्फलं स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे।
तत्फलं कृष्णमालोक्य महाज्यैष्ठ्या लभेन्नरः ॥१६
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यं पुरुषोत्तमे।
महाज्यैष्ठ्या मुनिश्रेष्ठा सर्वकामफलेप्सुभिः ॥१७
दृष्ट्वा रामं महाज्येष्ठं कृष्णं सुभद्रया सह।
विष्णुलोकं नरो याति समुद्धृत्य स्वकं कुलम् ॥१८
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्यावदाभूतसम्प्लवम्।
पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत् ॥१९
स्वधर्मनिरतः शान्तः कृष्णभक्तो जितेन्द्रियः।
वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२०

इस पृथ्वी तल में सब तीर्थों में तथा समस्त आयतनों में, सागर शैलों में नदियों में और सरोवरों में जो भी पुण्य-फल राहु के द्वारा सूर्य के ग्रसित होने के समय में स्नान करने तथा दान करने से होता है वह सम्पूर्ण फल महाज्येष्ठी में श्री कृष्ण भगवान् के दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥१५-१६॥ इस कारण से सभी प्रकार के प्रबल प्रयत्नों के द्वारा हे मुनिश्रेष्ठो ! महाज्येष्ठी में पुरुषोत्तम प्रभु के समीप में सब कामनाओं के फल प्राप्त करने की अभिलाषा रखने वाले पुरुषों को अवश्य जाना चाहिए ॥१७॥ वहाँ पर महा ज्येष्ठ श्री बलराम, श्री कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करे। इससे मनुष्य अपने ही साथ अपने पूरे कुल का उद्धार करके विष्णुलोक को गमन किया करता है ॥१८॥

वहाँ पर परमोत्तम दिव्य भोगों का उपभोग करके महाप्रलय पर्यन्त निवास करता है। पुण्यों के क्षीण होने पर वह चारों वेदों का ज्ञाता द्विज यहाँ पर होता है। अपने धर्म में रत, शान्त, कृष्णभक्त, जितेन्द्रिय होकर वैष्णव योग को प्राप्त कर फिर मोक्ष प्राप्त किया करता है ॥१९-२०॥

—:※:—

## ३२—कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णन

कस्मिन्काले भवेत्स्नानं कृष्णस्य कमलोद्भव।
विधिना केन तद्ब्रूहि ततो विधिविदां वर ॥१

शृणुध्वं मुनयः स्नानं कृष्णस्य वदतो मम।
रामस्य च सुभद्रायाः पुण्यं सर्वाघनाशनम् ॥२

मासि ज्येष्ठे च संप्राप्ते नक्षत्रे चन्द्रदैवते।
पौर्णमास्यां तदा स्नानं सर्वकाल हरेर्द्विजाः ॥३

सर्वतीर्थमयः कूपस्तत्राऽऽस्ते निर्मलः शुचिः।
तदा भोगवती तत्र प्रत्यक्षा भवति द्विजाः ॥४

तस्माज्ज्यैष्ठ्यां समुद्धृत्य हैमाढ्यैः कलशैर्जलम्।
कृष्णरामाभिषेकार्थं सुभद्रायाश्च भो द्विजाः ॥५

कृत्वा सुशोभनं मञ्चं पताकाभिरलंकृतम्।
सुदृढं सुखसचारं वस्त्रैः पुष्पैरलंकृतम् ॥६

विस्तीर्णं धूपितं धूपैः स्नानार्थं रामकृष्णयोः।
सितवस्त्रपरिच्छन्नं मुक्ताहारावलम्बितम् ॥७

मुनिगण ने कहा—हे कमलोद्भव! आप तो विधि-विधान के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ हैं। अब आप कृपा करके यह बतलाइये कि श्रीकृष्ण

का स्नान किस समय में और किस विधि से होता है ॥१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिगणो ! अब मैं श्रीकृष्ण के स्नान के विषय में बतलाता हूँ आप श्रवण कीजिए । इसी भाँति श्री बलराम का और सुभद्रा देवी का स्नान भी बतलाऊँगा जो कि परम पुण्यमय एवं समस्त अघों का विनाश करनेवाला है ॥२॥ हे द्विजगण ! ज्येष्ठ मास में चन्द्र दैवत नक्षत्र के सम्प्राप्त होने पर उसी समय में पूर्णिमा तिथि में श्री हरि का स्नान सर्वकाल में होता है । सर्वतीर्थों से परिपूर्ण कूप होता है और उसमें निर्मल एवं शुचि होता है । उस समय में वहाँ पर भोगवती प्रत्यक्ष होती है ॥३-४॥ उससे ज्येष्ठी में हैमाढ्य अर्थात् सुवर्ण निर्मित कलशों से जल को निकाले और हे द्विजो ! वह श्री बलराम-कृष्ण और सुभद्रा के लिये अभिषेक में लिया जाता है ॥५॥ उस अभिषेक के लिये एक मंच की रचना करना आवश्यक है जो कि परम शोभा से समन्वित हो और पताकाओं से भी विभूषित किया जावे । वह मंच सुदृढ़-सुख का सचार करने वाला तथा वस्त्रों और पुष्पों से मण्डित होना चाहिए ॥६॥ यह मंच श्री राम कृष्ण दोनों के अभिषेक के लिये विस्तार वाला तथा धूप से धूपित होना आवश्यक है । इस मंच को श्वेतवस्त्र से ढक देवे और इसके चारों ओर मुक्ताओं के हार लटका देवे ॥७॥

तत्र नानाविधैर्वाद्यैः कृष्णं नीलाम्बरं द्विजाः ।
मध्ये सुभद्रां चाऽऽस्थाप्य जयमङ्गलनिस्वनैः ॥८
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः ।
अनेकशतसाहस्रैर्वृतं स्त्रीपुरुषैर्द्विजाः ॥९
गृहस्थाः स्नातकाश्चैव यतयो ब्रह्मचारिणः ।
स्नापयन्ति तदा कृष्णं मञ्चस्थं सहलायुधम् ॥१०
तथा समस्ततीर्थानि पूर्वोक्तानि द्विजोत्तमाः ।
स्वोदकैः पुष्पमिश्रैश्च स्नापयन्ति पृथक्पृथक् ॥११
पश्चात्पटहशङ्खाद्यैर्भेरीमुरजनिस्वनैः ।
काहलैस्तालशब्दैश्च मृदङ्गैर्झर्झरैस्तथा ॥१२

अन्यैश्च विविधैर्वाद्यैर्घण्टास्वनविभूषितैः ।
स्त्रीणां मङ्गलशब्दैश्च स्तुतिशब्दैर्मनोहरैः ॥१३

जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्वीणावेणुनिनादितैः ।
श्रूयते सुमहाञ्छब्दः सागरस्येव गर्जतः ॥१४

उस मंच पर हे द्विजगणो ! अनेक प्रकार के वाद्यों के द्वारा तथा जय मङ्गल शब्दो के द्वारा नीले मेघ के समान वर्ण वाले भगवान् श्रीकृष्ण को तथा मध्य भाग में सुभद्रा जी को समास्थित करे ॥८॥ फिर हे द्विजो ! ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र तथा अन्य जाति वालों के द्वारा बहुत से सैकड़ो और सहस्रो सभी स्त्री और पुरुषो से से समावृत हलायुध ( बलराम ) के सहित मच पर स्थित श्रीकृष्ण को गृहस्थ-स्नातक-यतिगण और ब्रह्मचारीगण उस समय में स्नपन कराते हैं ॥९-१०॥ हे उत्तम द्विजो ! उसी भाँति पूर्व में वर्णित समस्त तीर्थ पुष्पो से मिश्रित अपने २ जलो के द्वारा पृथक् २ स्नपन कराते हैं ॥११॥ इसके पश्चात् पटह-शखादि-भेरी और मुरज की ध्वनियो से कोलाहल और ताल के शब्दो से तथा मृदङ्ग और झर्झरो से एव अन्य विविध वाद्यो के द्वारा-घण्टा के स्वर ( ध्वनि ) से विभूषित स्त्रियों के मङ्गल वाचक शब्दो से मनोहर स्तवन के शब्दो से, जय शब्दो से, स्तोत्रो से, वीणा और वेणु के शब्दों से गर्जना करते हुए सागर के समान महान् शब्दो का घोष सुनाई दिया करता है ॥१२-१४॥

मुनीनां वेदशब्देन मन्त्रशब्दैस्तथाऽपरैः ।
नानास्तोत्ररवैः पुण्यैः सामशब्दोपवृंहितैः ॥१५
यतिभिः स्नातकैश्चैव गृहस्थैर्ब्रह्मचारिभिः ।
स्नानकाले सुरश्रेष्ठ स्तुवन्ति परया मुदा ॥१६

स्यामं वेश्याजनैश्चैव कुचभारावनामिभिः ।
पीतरक्ताम्बराभिश्च माल्यदामावनामिभिः ॥१७
सरत्नकुण्डलैर्दिव्यैः सुवर्णस्तवकान्वितैः ।
चामरै रत्नदण्डैश्च वीज्येते रामकेशवौ ॥१८

यक्षविद्याधरैः सिद्धैः किनरैश्चाप्सरोगणैः।
परिवार्याम्बरगतैर्देवगन्धर्वचारणैः ॥१६
आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः।
लोकपालास्तथा चान्ये स्तुवन्ति पुरुषोत्तमम् ॥२०
नमस्ते देवदेवेश पुराण पुरुषोत्तम।
सर्गस्थित्यन्तकृद्देव लोकनाथ जगत्पते ॥२१

उस स्नान के समय में मुनिगणों के द्वारा समुच्चारित वेद मन्त्रों की ध्वनि से, तथा दूसरे अनेक प्रकार के स्तोत्रों के शब्दों से, पुण्यमय सामवेद के शब्दों से उपबृंहित यति-स्नातक-गृहस्थ और ब्रह्मचारियों के द्वारा हे सुरश्रेष्ठो ! परमाधिक आनन्द से स्तुतियाँ की जाती हैं ॥१५-१६॥ अपने स्तनों के भार से अवनमन करने वाली श्याम वेश्या जनों के द्वारा-माल्यों के भार से नीचे की ओर झुक जाने वाली तथा पीत और रक्त वस्त्र धारिणी नारियों के द्वारा-रत्न जटित कुण्डलों से और दिव्य सुवर्ण के स्तवकों से युक्त-रत्नों के दण्ड वाले चामरों से वे दोनों राम और केशव वीज्यमान होते हैं ॥१७-१८॥ यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, किन्नर, अप्सराओं के गण, देव, गन्धर्व,चारण लोग आकाश में चारों ओर घिरे हुए होते हैं। इन सबसे परिवारित आदित्य, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, साध्य, विश्वेदेवा, लोकपाल और अन्य सब उस समय में पुरुषोत्तम प्रभु का स्तवन किया करते हैं ॥१९-२०॥ उस समय में सभी यही स्तवन किया करते हैं—हे पुराण पुरुषोत्तम ! आप तो देवों के भी देवता हैं और आप विश्व की सृष्टि-स्थिति तथा अन्त करने वाले हैं। हे देव ! हे लोकों के स्वामिन् ! हे जगतों के पति ! आपको हम नमस्कार करते हैं ॥२१॥

त्रैलोक्यधारिणं देव ब्रह्मण्य मोक्षकारणम्।
त नमस्यामहे भक्त्या सर्वकामफलप्रदम् ॥२२
स्तुत्वैव विबुधाः कृष्ण रामं चैव महाबलम्।
सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठास्तदाऽऽकाश व्यवस्थिताः ॥२३

गायन्ति देवगन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसस्तथा ।
देवतूर्याण्यवाद्यन्त वाता वान्ति सुशीतलाः ॥२४
पुष्पमिश्रं तदा मेघा वर्षन्त्याकाशगोचराः ।
जयशब्दं च कुर्वन्ति मुनयः सिद्धचारणाः ॥२५
शक्राद्या विबुधाः सर्वं ऋषयः पितरस्तथा ।
प्रजानां पतयो नागा ये चान्ये स्वर्गवासिनः ॥२६
ततो मङ्गलसंभारं विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ।
अभिषेचनिकं द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणाः ॥२७
इन्द्रो विष्णुर्महावीर्यः सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।
धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानलौ ॥२८

उन त्रैलोक्य के धारण करने वाले ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले मोक्ष के कारण स्वरूप सब कामनाओं के फल प्रदान करने वाले उन देव को हम नमस्कार करते हैं ॥२२॥ इस रीति से देवगण महान् बल वाले श्री राम एवं कृष्ण का स्तवन करके हे मुनिश्रेष्ठो ! तथा सुभद्रा देवी की स्तुति करके फिर सब आकाश में व्यवस्थित हो जाया करते हैं ॥२३॥ देव गन्धर्व गान किया करते हैं—अप्सराएँ नृत्य करती हैं—देवों के तूर्य बजाये जाते हैं और वायु परम शीतल होकर वहन किया करते हैं ॥२४॥ उस सुसमय पर आकाश में दिखाई देने वाले मेघ पुष्पों से मिश्रित जल की वृष्टि किया करते हैं । मुनिगण-सिद्ध और चारण जय-जयकार के शब्दों का उच्चारण किया करते हैं ॥२५॥ इन्द्र आदि देवता सब ऋषिगण पितृगण प्रजापतियों के समुदाय नाग तथा अन्य स्वर्ग निवासी सभी जय-जयकार किया करते हैं ॥२६॥ इसके पश्चात् मङ्गल के संभारों से विधि मन्त्रों से पुरस्कृत अभिषेक के द्रव्य को देवगण ग्रहण करके वहाँ पर स्थित रहते हैं ॥२७॥ उनके कतिपय प्रमुख नामों को बतलाया जाता है—इन्द्र विष्णु जो महान् वीर्य से युक्त हैं—सूर्य-चन्द्रमा-धाता-विधाता-अनिल-अनल ये सब देवता वहाँ पर उपस्थित रहते हैं ॥२८॥

पूषा भगोऽर्यमा त्वष्टा अंशुनैव विवस्वता ।
पत्नीभ्यां सहितो धीमान्मित्रेण वरुणेन च ।।२६
रुद्रैर्वसुभिरादित्यै रश्विभ्यां च वृतः प्रभुः ।
विश्वैर्देवैर्मरुद्भिश्च साध्यैश्च पितृभिः सह ।।३०
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ।
देवर्षिभिरसंख्येयैस्तथा ब्रह्मर्षिभिर्वरैः ।।३१
वैखानसैर्वालखिल्यैर्वाय्वाहारैर्मरीचिपैः ।
भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च सर्वविद्यासुनिष्ठितैः ।।३२
सर्वविद्याधरैः पुण्यैर्योगसिद्धिभिरावृतः ।
पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः ।।३३
अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भृगुरेव च ।
क्रतुर्हरः प्रचेताश्च मनुर्दक्षस्तथैव च ।।३४
ऋतवश्च ग्रहाश्चैव ज्योतींषि च द्विजोत्तमाः ।
मूर्त्तिमत्यश्च सरितो देवाश्चैव सनातनाः ।।३५

पूषा, भग, अर्यमा, त्वष्टा जो अंशु और विवस्वान् धीमान् पत्नियों के सहित हैं। मित्र, वरुण, रुद्र, वसु, आदित्य और अश्विनी कुमारों से प्रभु परिवृत रहते हैं। विश्वेदेवा, मरुद्गण, साध्य, पितृगण, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष, राक्षस और पन्नगों से पुरुषोत्तम प्रभु उस समय में घिरे हुए रहते हैं। असंख्य देवर्षि गण तथा श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियों से भी चारों ओर से आवृत रहते हैं ।।२६-३१।। वैखानस, वालखिल्य, वायु के आहार करने वाले, मरीचिप, सब विद्याओं में परिनिष्ठित भृगु और अङ्गिरा, सब विद्याओं के धारण करने वाले पुण्यात्मा योग सिद्धियों के द्वारा वे आवृत रहते हैं। उस अभिषेक के समय पर पितामह, पुलस्त्य, पुलह, महात्मा अङ्गिरा, कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु, क्रतु, हर, प्रचेता, मनु, दक्ष—ये सब उस अभिषेक के समय में उपस्थित थे ।।३२-३४।। सब ऋतुएँ, समस्त ग्रह, ज्योतिर्गण, मूर्त्तिमती सब सरिताएँ और सनातन सब देवगण वहाँ पर थे ।।३५।।

समुद्राश्च ह्रदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च ।
पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च द्विजोत्तमाः ॥३६
अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती ।
उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः कुहूः ॥३७
राका च धिषणा चैव पत्न्यश्चान्या दिवौकसाम् ।
हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकशृङ्गवान् ॥३८
ऐरावतः सानुचरः कलाकाष्ठास्तथैव च ।
मासार्धं मासऋतवस्तथा राज्यहनी समाः ॥३९
उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो नागराजश्च वामनः ।
अरुणो गरुडश्चैव वृक्षाश्चौषधिभिः सह ॥४०
धर्मश्च भगवान्देवः समाजग्मुर्हि सगताः ।
कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ये ॥४१
बहुलत्वाच्च नोक्ता ये विविधा देवतागणाः ।
ते देवस्याभिषेकार्थी समायान्ति ततस्ततः ॥४२

द्विजोत्तमो ! सब समुद्र, ह्रद, विविध तीर्थ, पृथिवी, द्यौ, दिशाऐं समस्त पादप, देवमाता अदिति, ह्री, श्री स्वाहा, सरस्वती, उमा शची, सिनी वाली, अनुमति, कुहू, राका, धिषणा, देवगणो की अन्य पत्नियाँ ये सब वहाँ पर उस समय मे विद्यमान थे । हिमवान्, विन्ध्य, मेरु, अनेक शृङ्गवान्, ऐरावत, अनुचरो के सहित, कला, काष्ठा, मास का अर्धभाग पक्ष, मास, सब ऋतुऐं, रात्रि, दिन, समा, हयो मे श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा, नागराज, वामन, अरुण, गरुण, सब वृक्ष, समस्त औषधिया, भगवान् देव धर्म मे सभी संगत होकर वहाँ पर समागत हुए थे । काल, यमराज, मृत्यु, और समस्त यम के अनुचर गण, देवगण अनेक और बहुत हैं मे सब नही बतलाये गये हैं । ये सभी जिनके नाम नही बतलाये गये हैं इधर-उधर से पुरुषोत्तम देव के अभिषेक के लिए समागत होतेहैं ॥३६–४२॥

गृहीत्वा ते तदा विप्राः सर्वे देवा दिवौकसः ।
आभिषेचनिक द्रव्य मङ्गलानि च सर्वशः ॥४३

दिव्यसंभारसंयुक्तैः कलशैः काञ्चनैर्द्विजाः ।
सारस्वतीभि. पुण्याभिर्दिव्यतोयाभिरेव च ॥४४
तोयेनाऽऽकाशगङ्गायाः कृष्ण रामेण सगतम् ।
सपुष्पै. काञ्चनैः कुम्भैः स्नापयन्त्यवनिस्थिताः ॥ ५
सचरन्ति विमानानि देवनामम्बरे तथा ।
उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥४६
दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः ।
गीतैर्वाद्यैः पताकाभिः शोभितानि समन्ततः ॥४७
एव तदा मुनिश्रेष्ठाः कृष्ण रामेण सगतम् ।
स्नापयित्वा सुभद्रा च सस्तुवन्ति मुदाऽन्विताः ॥४८

हे विप्रो! उस अभिषेक के अवसर पर समस्त देवगण और दिवलोक मे निवास करने वाले सभी ओर से मङ्गलमय पदार्थों को और अभिषेचनिक द्रव्य को ग्रहण करके वहाँ पर समुपस्थित थे ॥४३॥ हे द्विजगणो! दिव्य सम्भारो से समन्वित-कचन के निमित्त कलशो से सरस्वती के परम पुण्यमय एव दिव्यजलो से-आकाश गङ्गा के जल से-पुष्पो के सहित सुवर्ण निर्मित कुम्भो से भगवान् राम के सहित श्री कृष्ण का भूमि मे स्थित होकर सब स्नपन कराते है ॥४४-४५॥ नभोमण्डल मे देवो के उच्चावच, स्वेच्छागामी-स्थिर दिव्य-दिव्य रत्नो के जटित होने के कारण अति अद्भुत-अप्सराओ के समुदाय के द्वारा सेवित-सभी ओर गीत वाद्यो से एव पताकाओ से सुशोभित देवो के विमान सञ्चरण किया करते हैं ॥४६—४७॥ इस प्रकार से हे मुनि श्रेष्ठो! सभी राम के सहित श्री कृष्ण का और सुभद्रा देवी का बडे आनन्द के साथ सस्तवन किया करते है और स्नपन कराते है ॥४८॥

जय जय लोकपाल भक्तरक्षक जय जय प्रणतवत्सल जय जय भूतचरण जय जयाऽऽदिदेव बहुकारण जय जय वासुदेव जय जयासुरसहरण जय जय दिव्यमीन जय जय त्रिदशवर जय जय जलधिशयन जय जय योगिवर जय जय सूर्यनेत्र जय जय

देवराज जय जय कैटभारे जय जय वेदवर जय जय कूर्मरूप जय जय यज्ञवर जय जय कमलनाभ जय जय शैलचर जय जय योगशायिञ्जय जय वेगधर जय जय विश्वमूर्ते जय जय चक्रधर जय जय भूतनाथ जय जय धरणीधर जय जय शेषशायिञ्जय जय पीतवासो जय जय सोमकान्त जय जय योगवास जय जय दहनवक्त्र जय जय धर्मवास जय जय गुणनिधान जय जय श्रीनिवास जय जय गरुडगमन जय जय सुखनिवास जय जय धर्मकेतो जय जय महीनिवास जय जय गहनचरित्र जय जय योगिगम्य जय जय मखनिवास जय जय वेदवेद्य जय जय शांतिकर जय जय योगिचिन्त्य जय जय पुष्टिकर जय जय ज्ञानमूर्ते जय जय कमलाकर जय जय भाववेद्य जय जय मुक्तिकर जय जय विमलदेह जय जय सत्वनिलय जय जय गुणसमृद्ध जय जय यज्ञकर जय जय गुणविहीन जय जय मोक्षकर जय जय भूशरण्य जय जय कान्तियुत जय जय लोकशरण जय जय लक्ष्मीयुत जय जय पङ्कजाक्ष जय जय सृष्टिकर जय जय योगयुत जय जयातसीकुसुमश्यामदेह जय जय समुद्रविष्टदेह जय जय लक्ष्मीपङ्कजषट्चरण जय जय भक्तवश जय जय लोककान्त जय जय परमशान्त जय जय परमसार जय जय चक्रधर जय जय भोगियुत जय जय नीलाम्बर जय जय शान्तिकर जय जय मोक्ष कर जय जय कलुषहर ॥४६

अब सस्तवन जिस प्रकार से किया जाता है यह बतलाते हैं— हे देवेश्वर ! आप सब लोकों के पालन करने वाले हैं आपकी सदा जय जय होवे । आप अपने भक्तों की रक्षा करने वाले हैं आपका जय-जयकार होवे । आप शरणागति में आने वाले प्रणतों पर प्यार करने वाले हैं आपकी सदा जयकार होवे । हे भूत चरण ! आपकी जय होवे । आप आदि देव हैं तथा बहुतों के कारण हैं आपका सदा जयकार होवे । हे वासुदेव ! आपकी जय हो । हे असुरों के सहार करने वाले !

आपकी जय हो। हे दिव्यमीन ! आपका जय-जयकार होवे। हे देवों मे परमश्रेष्ठ ! आपकी जय हो। आप जलधि मे शमन करने वाले तथा योगियो मे परम श्रेष्ठ हैं आपकी जय होवे। हे सूर्य के नेत्र वाले ! आप देवो के राजा हैं और हे कैटभ असुर के हनन करने वाले ! आप वेदो मे परमश्रेष्ठ पुकारे जाते है आपकी जयकार हो। हे कूर्म का स्वरूप धारण करने वाले ! आप यज्ञो मे श्रेष्ठ हैं तथा नाभि मे कमल रखने वाले हैं आपकी सर्वदा जय हो। हे शैलो पर चरण करने वाले ! आप योगावस्था मे शयन करने वाले तथा वेदो को धारण करने वाले हैं आपकी जय हो। हे विश्व की मूर्ति वाले ! तथा हे चक्र को धारण करने वाले ! आप समस्त भूतो के नाथ हैं और इस धरणी को धारण करने वाले है आपका सदा जयकार होवे। हे शेष की शय्या पर शयन करने वाले ! आप पीताम्बर धारी हैं—चन्द्र के समान सुन्दर है तथा योग मे ही वास किया करते हैं आपकी जय हो। हे दहन के मुख वाले ! हे धर्म के नियाम से युक्त आप गुणो की खान हैं—आप मे श्री का निवास रहता है और सदा अपने वाहन गरुड पर बैठ कर गमन किया करते है आपकी सदा जयकार होवे। हे सुख के आश्रय ! आप धर्म के केतु हैं आपकी जय हो। हे भूमि पर निवास करने वाले अथवा मही को आश्रय देने वाले ! आपका चरित्र बहुत ही महान है—आप योगियो के द्वारा जानने के योग्य हैं—मखो मे आप विद्यमान रहा करते हैं—वेदो के द्वारा आपका ज्ञान होता है और आप शान्ति के करने वाले हैं आपका अनेक बार जय-जयकार होवे। हे योगिजनो के द्वारा चिन्तन करने के योग्य ! आप पुष्टि के करने वाले हैं—ज्ञान की मूर्ति हैं—कल्पना के आकार हैं—भावना के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के योग्य हैं और आप मानव का संसार के जन्म-मरण जय के बारम्बार बन्धन से छुटकारा देने वाले हैं—आपका कर्म पूर्णतया विमल है अर्थात् कर्मों का कोई भी प्रभाव आपके देह पर नहीं होता है। आपका जय हो। हे सत्व निलय ! आप गुण गणो से समृद्धि प्राप्त करने वाले हैं—यज्ञों के करने वाले—मोक्ष को प्रदान करने वाले—भूमि को धारण

देने वाले और कान्ति से युक्त है अर्थात् पूर्ण कान्ति से सुसम्पन्न हैं। आपका सर्वदा जय जयकार होवे। हे लोकों को सुरक्षा प्रदान करने वाले! आप लक्ष्मी से युक्त हैं—कमल के सदृश सुन्दर नेत्रों वाले हैं—सृष्टि के करने वाले हैं-योग से युक्त हैं-अलसी के कुसुम के समान श्याम शरीर वाले हैं—समुद्र में विष्ट देह वाले हैं आपकी जय-जयकार होवे। हे महालक्ष्मी के स्वरूप रूप कमल के लिये भ्रमर के समान हैं। आप अपने भक्तों के वश में रहते हैं—लोकों के कान्त हैं—परम शान्त स्व-रूप है-परमाधिक तार रूप हैं-सुदर्शन चक्र के धारण करने वाले हैं भोगियों से युक्त हैं—हे नीले अम्बर वाले! हे शान्ति के करने वाले! मोक्ष के कर्त्ता और आप कलुषों के हरण करने वाले हैं—आपका सदा-सर्वदा जय-जयकार होवे ॥४६॥

जय कृष्ण जगन्नाथ जय संकर्पणानुज।
जय पद्मपलाशाक्ष जय वाञ्छाफलप्रद ॥५०
जय मालावृतोरस्क जय चक्रगदाधर।
जय पद्मालयाकान्त जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥५१
एवं स्तुत्वा तदा देवाः शक्राद्या हृष्टमानसाः।
सिद्धचारणसंघाश्च ये चान्ये स्वर्गवासिनः ॥५२
मुनयो वालखिल्याश्च कृष्णं रामेण संगतम्।
सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्रणिपत्याम्बरे स्थिताः ॥५३
दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा तदा ते त्रिदिवौकसः।
कृष्णं रामं सुभद्रां च यान्ति स्वं स्वं निवेशनम् ॥५४
संचरन्ति विमानानि देवानामम्बरे तदा।
उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥५५
दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः।
गीतैर्वाद्यैः पताकाभिः शोभितानि समन्ततः ॥५६

हे जगत् के नाथ कृष्ण! आपकी जय हो। हे सङ्कर्षण भगवान् के छोटे भाई! आपका जयकार हो। हे पद्म के दलों के समान लोचनों वाले! आप वान्छा के अनुसार फल प्रदान करने वाले हैं। आपकी

जय-जयकार होवे ॥५०॥ हे मालाओं से समावृत वक्षःस्थल वाले ! हे चक्र गदा दोनों के धारण करने वाले ! हे महालक्ष्मी देवी के स्वामिन् ! हे विष्णु देव ! आपका सर्वदा जयकार होवे और हमारा आपकी चरण सेवा में प्रणाम समर्पित है ॥५१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस महाभिषेक के समय में इस प्रकार से इन्द्र प्रभृति देवों ने परम प्रसन्न होकर स्तवन किया था और सिद्धों तथा चारणों के संघों ने तथा अन्य स्वर्ग लोक में निवास करने वालों ने भी भगवान् विष्णुदेव की स्तुति की थी ॥५२॥ बालखिल्य मुनियों ने राम के सहित स्थित श्रीकृष्ण और सुभद्रा को प्रणिपात किया था और फिर वे सभी आकाश में स्थित हो गये थे ॥५३॥ उस समय में उन सब त्रिदिव के निवासियों ने दर्शन करके स्तवन करके श्रीकृष्ण-राम और सुभद्रा जी को प्रणाम किया था फिर वे सब अपने २ निवास स्थलों को गमन किया करते हैं ॥५४॥ उस महाभिषेक के सुअवसर पर देवों के विमान अम्बर में सञ्चरण किया करते हैं जो कि ऊँचे और नीचे हैं—परम दिव्य-कामनानुसार गमन करने वाले तथा स्थिर हैं ॥५५॥ वे देवों के विमान परम दिव्य रत्नों से अतीव अद्भुत हैं और अप्सराओं के गणों के द्वारा सुसेवित हैं तथा गीत-वाद्यों के द्वारा और पताकाओं से वे विमान सुन्दर शोभा से युक्त थे ॥५६॥

तस्मिन्काले तु ये मर्त्याः पश्यन्ति पुरुषोत्तमम् ।
बलभद्रं सुभद्रां च ते यान्ति पदमव्ययम् ॥५७

सुभद्रारामसहितं मञ्चस्थं पुरुषोत्तमम् ।
दृष्ट्वा निरामयं स्थानं यान्ति नास्त्यत्र संशयः ॥५८

कपिलाशतदानेन यत्फलं पुष्करे स्मृतम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं सहलायुधम् ॥
सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्राप्नोति शुभकृन्नरः ॥५९

कन्याशतप्रदानेन यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६०

सुवर्णशतनिष्काणां दानेन यत्फलं स्मृतम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६१
गोसहस्रप्रदानेन यत्फलं परिकीर्तितम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६२
भूमिदानेन विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६३

उस समय पर जो मनुष्य पुरुषोत्तम प्रभु बलभद्र और सुभद्रा का दर्शन किया करते हैं वे सीधे अव्यय पद को प्राप्त किया करते हैं ॥५७॥ सुभद्रा देवी और बलराम जी के सहित महामञ्च पर विराजमान श्री पुरुषोत्तम प्रभु का दर्शन करके परम निरामय स्थान को गमन किया करते हैं—इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं है ॥५८॥ एक सौ कपिला गौओं के दान का जो पुष्कर राज में पुण्य-फल होता है वही फल हलायुध प्रभु के साथ मञ्च पर स्थित श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त करके तथा सुभद्रा देवी का अवलोकन करके हे मुनिश्रेष्ठो ! शुभ कर्म करने वाला नर प्राप्त कर लिया करता है ॥५९॥ एक सौ कन्याओं के दान करने से जो फल बताया गया है उसी फल की प्राप्ति मंच पर विराजमान श्रीकृष्ण का दर्शन करके मनुष्य किया करता है ॥६०॥ एक सौ सुवर्ण के निष्क ( एक प्राचीन सिक्का तथा परिमाण का नाम है ) के दान से जो पुण्य-फल कहा गया है उसी फल को मंच पर विराजमान श्रीकृष्ण का दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥६१॥ एक सहस्र गौओं के दान करने का जो भी पुण्य फल कहा गया है उसी फल को मंच पर समवस्थित श्रीकृष्ण का दर्शन करके मनुष्य पा लेता है ॥६२॥ विधिपूर्वक भूमि के दान से जो फल बताया गया है उसी फल को मंचस्थ कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥६३॥

यत्फलं चान्नदानेन अर्घातिथ्येनकीर्तितम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६४
वृषोत्सर्गेण विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६५

यत्फलं तोयदानेन ग्रीष्मे वाऽन्यत्र कीर्त्तितम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६६

तिलधेनुप्रदानेन यत्फलं सम्प्रकीर्त्तितम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६७

गजाश्वरथदानेन यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६८

सुवर्णश्रृङ्गीदानेन यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६९

जलधेनुप्रदानेन यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥७०

जो फल अन्न के दान से तथा अर्घ्य के सहित आतिथ्य करने से कहा गया है वही फल मञ्चस्थ श्रीकृष्ण का दर्शन कर प्राप्त हो जाता है ॥६४॥ शास्त्रोक्त विधान के साथ जो एक कूप के उत्सर्ग करने का फल कहा गया है वही फल अभिषेक के मच पर विराजमान श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन से प्राप्त हो जाया करता है ॥६५॥ ग्रीष्म के तपन काल में जो फल जल के दान का अन्य स्थल मे बताया गया है वही पुण्य का फल मञ्चपद पर विराजमान श्री कृष्ण के दर्शन से हो जाता है ॥६६॥ तिल और धेनु के दान का जो फल कहा गया है वह मञ्चस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से मनुष्य पा जाता है ॥६७॥ गज-अश्व और रथ के दान का जो फल होता है वह मच पर स्थित श्रीकृष्ण के दर्शन से होता है ॥६८॥ सुवर्ण श्रृङ्गी के दान के फल के समान मचस्थ श्रीकृष्ण-दर्शन से प्राप्त होता है ॥६९॥ जल धेनु के दान के फल के तुल्य ही मचस्थित श्रीकृष्ण दर्शन से हुआ करता है ॥७०॥

दानेन घृतधेन्वाश्च फलयत् समुदाहृतम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥७१

चान्द्रायणेन चीर्णेन यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥७२

मासोपवासैर्विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥७३

अथ किं बहुनोक्तेन भाषितेन पुनः पुनः ।
तस्य देवस्य माहात्म्यं मञ्चस्थस्य द्विजोत्तमाः ॥७४
यत्फलं सर्वतीर्थेषु व्रतैर्दानैश्च कीर्तितम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं सहलायुधम् ॥७५

सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्राप्नोति शुभकृन्नरः ।
तस्मान्नरोऽथवा नारी पश्येत पुरुषोत्तमम् ॥७६
ततः समस्ततीर्थानां लभेत्स्नानादिकं फलम् ।
स्नानशेषेण कृष्णस्य तोयेनाऽऽत्माऽभिषिच्यते ॥७७

घृत धेनु के दान का जो फल कहा गया है वही पुण्य-फल मञ्च-स्थित कृष्ण दर्शन से होता है ॥७१॥ चान्द्रायण महाव्रत के चीर्ण करने से जो फल बताया गया है वही फल मञ्चस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से वह प्राप्त कर लेता है ॥७२॥ एक मास के लम्बे उपवास से जो फल बताया गया है वही मंचस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से प्राप्त हो जाता है ॥७३॥ इसके पीछे बारम्बार बहुत कथन से क्या लाभ है जो कि हे द्विजगणो ! उन देवेश्वर के मंच पर विराजमान के दर्शन का माहात्म्य हुआ करता है क्योंकि सभी तरह के महान् पुण्यों का फल इससे प्राप्त हो जाया करता है ॥७४॥ जो फल समस्त तीर्थों में व्रतों और दानों के करने से हुआ करता है वह केवल एकमात्र मंचस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से हो जाया करता है जो कि हलायुध के सहित विराजमान रहते हैं ॥७५॥ हे मुनियों में परम श्रेष्ठो ! सुभद्रा देवी जी का दर्शन कोई परम शुभ कर्म करने वाला ही पुरुष प्राप्त किया करता है । इस लिये नर हो अथवा नारी हो उन पुरुषोत्तम प्रभु का उनको दर्शन अवश्य ही करना चाहिए ॥७६॥ इसके अनन्तर जो श्रीकृष्ण के स्नान से शेष जल है उसके द्वारा अपने आपका अभिषिञ्चन किया जाता है वह समस्त तीर्थों के स्नान करने आदि के पुण्य-फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥७७॥

वन्ध्या मृतप्रजा या तु दुर्भगा ग्रहपीडिता ।
राक्षमाद्यं गृंहीता वा तथा रोगैश्च संहताः ॥७८
सद्यस्ताः स्नानशेषेण उदकेनाभिषेचिताः ।
प्राप्नुवन्तीप्सितान् कामान्यान्यान्वाञ्छन्ति चेप्सितान् ॥७९
पुत्रार्थिनी लभेत्पुत्रान्सौभाग्य च सुखार्थिनी ।
रोगार्ता मुच्यते रोगाद्धन च धनकाङ्क्षिणी ॥८०
पुण्यानि यानि तोयानि तिष्ठन्ति धरणीतले ।
तानि स्नानावशेषस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥८१
तस्मात्स्नानावशेष यत्कृष्णस्य सलिल द्विजाः ।
तेनाभिषिञ्चेद्गात्राणि सर्वकामप्रद हि तत् ॥८२
स्नात पश्यन्ति ये कृष्ण व्रजन्त दक्षिणामुखम् ।
ब्रह्महत्यादिभि· पापैर्मुच्यन्ते ते न् सशयः ॥८३
शास्त्रेषु यत्फल प्रोक्त पृथिव्यास्त्रिप्रदक्षिणैः ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण व्रजन्त दक्षिणामुखम् ॥८४

जो नारी वन्ध्या हैं अथवा जिसकी सन्तान समुत्पन्न होकर मृत हो जाया करती हैं—जो दुर्भाग्य वाली-ग्रहो से सतायी हुई हैं—जो राक्षसादि के द्वारा गृहीत हैं—जो रोगो से युक्त हैं वे सभी प्रकार से पीड़ित नारियाँ स्नान से बचे हुए जल से अभिषेचित होकर तुरन्त ही सब कष्टो से छूट जाया करती हैं तथा अपने अभीष्ट मनोरथो को प्राप्त कर लेती हैं जो भी वे मन मे इच्छा किया करती हैं ॥७८-७९॥ जो पुत्र की अभिलाषा रखती हैं वे पुत्रो को प्राप्त कर लिया करती हैं—जो सुखो की चाह रखती हैं वे परम सौभाग्य का लाभ लिया करती है । रोगो से पीड़ित नारी रोग से मुक्त हो जाती हैं और धन की आकांक्षा रखने वाली धन-लाभ करती हैं ॥८०॥ इस धरणी तल मे जो भी पुण्यमय जल स्थित हैं वे सभी इस श्रीकृष्ण के अभिषेक से बचे हुए जल की सोलहवी कला के योग्य नहीं हो सकते हैं ॥८१॥ इसलिये हे द्विजो ! श्रीकृष्ण के स्नानावशेष जो परम पावन जल हैं उससे अपने समस्त अङ्गो का अभिषिञ्चन करना चाहिए क्योंकि वह सभी प्रकार की कामनाओ के पू[illegible] प्रदान

करने वाला होता है ॥८२॥ दक्षिण की ओर अभिमुख स्नान करते हुए श्रीकृष्ण का जो दर्शन किया करते हैं वे ब्रह्महत्या प्रभृति जो महान् पाप हैं उन सबसे छूट जाता है—इसमें संशय नहीं है ॥८३॥ शास्त्रों में इस पृथिवी की तीन प्रदक्षिणाओं के करने का जो फल बताया गया है उसको दक्षिण की ओर मुख करके गमन करने वाले श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त कर लिया करता है ॥८४॥

तीर्थयात्राफलं यत्तु पृथिव्यां समुदाहृतम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८५
बदर्यां यत्फल प्रोक्तं दृष्ट्वा नारायणं नरम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८६
गङ्गाद्वारे कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८७
प्रयागे च महामाघ्या यत्फलं समुदाहृतम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८८
शालग्रामे महाचैत्र्या स्नानदानेन यत्फलम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८९
महाभिधानकार्तिक्यां पुष्करे यत्फलं स्मृतम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९०
यत्फल स्नानदानेन गङ्गासागरसगमे ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९१

जो पृथिवी में तीर्थों की यात्रा का फल बताया गया है वही सम्पूर्ण फल दक्षिणा मुख कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥८५॥ बदरी आश्रम में नर-नारायण का दर्शन प्राप्त करने से जो पुण्य का फल प्राप्त होता है उसको दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य पा जाता है ॥८६॥ गङ्गा द्वार में कुरुक्षेत्र में स्नान करने तथा दान देने से जो फल होता है वही पुण्य फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन से प्राप्त हो जाता है ॥८७॥ महामाघी में प्रयाग में जो फल बताया गया है वही फल दक्षिणामुख श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन से

हुआ करता है ।।८८।। महा चैत्री मे शालग्राम मे स्नान और दान से जो फल प्राप्त होता है उतना ही पुण्य-फल दक्षिणा की ओर मुख वाले श्री कृष्ण के दर्शन से हुआ करता है ।।८६।। महाभिधान कार्त्तिकी मे पुष्कर मे जो फल बताया गया है वही फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण को अवलोकन करके प्राप्त कर लिया करता है ।।६०।। गङ्गा सागर के सगम मे स्नान करने मथा दान करने से जो परम पुण्य का फल प्राप्त हुआ करता है वह फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन करने से प्राप्त हो जाया करता है ।।६१।।

ग्रस्ते सूर्ये कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ।।६२
गङ्गाया सर्वतीर्थेषु यामुनेषु च भो द्विजाः ।
सारस्वतेषु तीर्थेषु तथाऽन्येषु सरःसु च ।।६३
यत्फल स्नानदानेन विधिवत्समुदाहृतम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फल दक्षिणामुखम् ।।६४
पुष्करे चाथ तीर्थेषु गये चामरकण्टके ।
नैमिषादिषु तीर्थेषु क्षेत्रेष्वायतनेषु च ।।६५
यत्फलं स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फल दक्षिणामुखम् ।।६६
अथ किं पुनरुक्तेन भाषितेन पुनः पुनः ।
यत्किंचित्कथितं चात्र फलं पुण्यस्य कर्मणः ।।६७
वेदशास्त्रे पुराणे च भारते च द्विजोत्तमाः ।
धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु तथाऽन्यत्र मनीषिभिः ।।६८
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं सहलायुधम् ।
सकलं भद्रया सार्धं व्रजन्त दक्षिणामुखम् ।।६६

कुरुक्षेत्र मे सूर्य के ग्रस्त हो जाने पर अर्थात् सूर्य ग्रहण के समय मे स्नान एव दान से जो फल मनुष्य को मिलता है ठीक वैसा ही फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के अवलोकन से हो जाता है । ।।६२।। हे

द्विजगणो ! गङ्गा मे यमुना के सभी तीर्थों में सरस्वती के समस्त तीर्थों मे तथा अन्य पुण्यमय सरोवरो मे स्नान से तथा दान देने से जितना भी पुण्य का विधिवत् करने से फल प्राप्त हुआ करता है वही फल केवल एक दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन से मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥६३-६४॥ पुष्कर में-तीर्थों मे-गया मे-अमर कण्टक में-नैमिषारण्य आदि मे तथा अन्य तीर्थों में, क्षेत्रो मे और देवायतनो में रुद्र के द्वारा ग्रस्त हुए दिवाकर के समय में स्नान एवं दान करने से जो फल मिलता है वही पूरा फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन से प्राप्त होता है ॥६५-६६॥ बारम्बार कथन से और उसी बात को दुबारा-तिबारा पुनः बोलने से क्या लाभ है निष्कर्ष मे बात यह है कि यहाँ पर पुण्य कर्म्म का जितना भी कुछ कहा गया है और द्विजोत्तमो ! महामनीषियों ने धर्म शास्त्रो में-सब वेदो मे-पुराणो मे और भारत में जो भी बताया गया है वह सम्पूर्ण पुण्य कर्म्म का फल ज्येष्ठ भाई हलायुध के सहित एवं सुभद्राजी के साथ गमन करते हुए दक्षिण की ओर मुख वाले श्री कृष्ण के दर्शन करने से मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥६७-६६॥

---

## ३३—तीर्थ संख्या के विषय में नारदजी का प्रश्न

सर्वेषां चैव तीर्थानां क्षेत्राणां च द्विजोत्तमाः ।
जपहोमव्रतानां च तपोदानफलानि च ॥१
न तत्पश्यामि भो विप्रा यत्तेन सदृशं भुवि ।
किं चात्र बहुनोक्तेन भाषितेन पुनः पुनः ॥२
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं क्षेत्रं तत्परमं महत् ।
पुरुषाख्यं सकृद्दृष्ट्वा सागराम्भः समाप्लुतम् ॥३
ब्रह्मविद्यां सकृज्ज्ञात्वा गर्भवासो न विद्यते ।
हरेः सन्निहिते स्थाने उत्तमे पुरुषोत्तमे ॥४

संवत्सरमुपासीत मासमात्रमथापि वा ।
तेन जप्तं हुतं तेन तेन तप्तं तपो महत् ॥५
स याति परमं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः ।
भुक्त्वा भोगान्विचित्रांश्च देवयोषित्समन्वितः ॥६
कल्पान्ते पुनरागत्य मर्त्यलोके नरोत्तमः ।
जायते योगिनां विप्रा ज्ञानज्ञेयोद्यतो गृहे ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! समस्त तीर्थों के–सब क्षेत्रों के और जाप, होम और सब व्रतों के तपो दान के जो पुण्य फल होते हैं, हे विप्रो ! मैं इस भूमण्डल में वैसा इसके समान कुछ भी नहीं देखता हूँ। यहाँ इस विषय में बहुत अधिक कहने से तथा बारम्बार भाषण करने से क्या लाभ है ॥१-२॥ यह सर्वथा सत्य है और पूर्णतया सत्य है एवं परम सत्य है कि यह परमाधिक एवं महान् क्षेत्र है कि सागर के जल में समाप्लुत पुरुष नाम धारी प्रभु का दर्शन करके और ब्रह्म विद्या का ज्ञान एक बार प्राप्त करके फिर गर्भ में वास नहीं हुआ करता है अर्थात् पुनर्जन्म की वेदना नहीं होती है। श्री हरि के सन्निहित उत्तम पुरुषोत्तम स्थान में एक वर्ष तक अथवा केवल एक मास पर्यन्त ही उपासना करनी चाहिए। उस पुरुष ने सब जाप कर लिया समझो तथा होम और महान् तपस्या भी करली है—ऐसा ही मान लेना चाहिए। तात्पर्य यह है कि उसको फिर किसी भी जप-तपादि एवं होम करने की आवश्यकता अपने कल्याण के लिये नहीं होती है ॥३-५॥ वह पुरुष तो उतने ही करने से परम स्थान को प्राप्त हो जाता है जहाँ पर योगेश्वर श्री हरि विराजमान रहा करते है। वहाँ पर देवाङ्गनाओं के साथ रह कर अतीव अद्भुत एवं भोगों का उपभोग करके एक कल्प के अवसान होने पर वह श्रेष्ठ नर पुनः इस मनुष्य लोक में आया करता है और योगियों के गृह में हे विप्रो ! ज्ञान द्वारा ज्ञेय के प्राप्त करने के लिए उद्यत होने वाला होकर जन्म ग्रहण किया करता है ॥६-७॥

संप्राप्य वैष्णवं योगं हरेः स्वच्छन्दतां व्रजेत् ।
कल्पवृक्षस्य रामस्य कृष्णस्य भद्रया सह ॥८
मार्कण्डेयेन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यं माधवस्य च ।
स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं सागरस्य विधिः क्रमात् ॥९
मार्जनस्य यथाकाले भागीरथ्याः समागमम् ।
सर्वमेतन्मया ख्यातं यत्परं श्रोतुमिच्छथ ॥१०
इन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यमेतच्च कथित मया ।
सर्वाश्चर्य समाख्यात रहस्यं पुरुषोत्तमम् ॥
पुराणं परम गुह्यं धन्यं संसारमोचनम् ॥११
नहि नस्तृप्तिरस्तीह शृण्वतां तीर्थविस्तरम् ।
पुनरेव पुरं गुह्यं वक्त महेस्यशेपतः ॥
परं तीर्थस्य माहात्म्य सर्वतीर्थोत्तमम् ॥१२
इममेव पुरा प्रश्न पृष्टोऽस्मि द्विजसत्तमाः ।
नारदेन प्रयत्नेन तदा त प्रोक्तवानहम् ॥१३
तपसो यज्ञदानाना तीर्थाना पावन स्मृतम् ।
सर्व श्रुत मया त्वत्तो जगद्योने जगत्पते ॥१४
कियन्ति सन्ति तीर्थानि स्वर्गमर्त्यरसातले ।
सर्वेपामेव तीर्थाना सवदा कि विशिष्यते ॥१५

फिर वह यहाँ पर हरि के वैष्णव योग को प्राप्त करके परम स्वच्छन्दता को गमन किया करता है। मैंने कल्प वृक्ष का-सुभद्रा के साथ कृष्ण का मार्कण्डेयेन्द्रद्युम्न का-माधव का-तथा स्वर्ग द्वार का माहात्म्य तथा क्रम से सागर के मार्जन का विधान और यथा काल मे भगवती भागीरथी का समागम-यह सभी वर्णित कर दिया है। अब इससे आगे आप लोग क्या श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं ? ॥८—१०॥ इन्द्र द्युम्न का यह माहात्म्य भी मैंने कह दिया है। मैंने सभी आश्चर्य कह दिये हैं और पुरुषोत्तम प्रभु का जो परम रहस्य है वह भी आप लोगों को बतला दिया है। यह पुराण परमाधिक गोपनीय है तथा अतीव धन्य है और संसार के भय के छुड़ा देने वाला है ॥११॥

मुनियो ने कहा—हे भगवन् ! यहाँ पर तीर्थों के विस्तार का जो वर्णन किया है उसका श्रवण करते हुए हमारी तृप्ति नही हो रही है। हमारी अब आगे यही आपकी सेवा मे प्रार्थना है कि पुनः उस परम गोपनीय विषय का पूर्ण रूप से वर्णन करने के लिये आप योग्य हैं। समस्त तीर्थों मे उत्तम से भी उत्तम तीर्थ का परम माहात्म्य कहिए ।१२। श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजसत्तमो ! पहिले भी इसी प्रश्न को देवर्षि नारद ने मुझ से पूछा था सो मैंने पूर्ण प्रयत्न के साथ उसको बतलाया था ॥१३॥ श्री नारदजी ने कहा था—तप का-यश और तीर्थों का माहात्म्य मैंने हे जगत् के स्वामिन् ! और जगत् के कारण ! आप से सभी सुना है ।।१४।। स्वर्ग मे-रसातल मे और मनुष्यलोक मे कितने तीर्थ है ? उन सब तीर्थों मे सर्वदा क्या विशेषता, होती है ? ॥१५॥

चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले ।
दैवानि मुनिशार्दूल आसुराण्यार्षाणि च ॥१६
मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि सुरादिभिः ।
मानुषेभ्यश्च तीर्थेभ्य आर्षं तीर्थमनुत्तमम् ॥१७
आर्षेभ्यश्चैव तीर्थेभ्य आसुरं बहुपुण्यदम् ।
आसुरेभ्यस्तथा पुण्यं दैवं तत्सार्वकामिकम् ॥१८
ब्रह्मविष्णु शिवैश्चैव निर्मितं दैवमुच्यते ।
त्रिभ्यो यदेक जायते तस्मात्रातः परं विदुः ॥१६
त्रयाणामपि लोकाना तीर्थं मेध्यमुदाहृतम् ।
तत्रापि जाम्बव द्वीप तीर्थं बहुगुणोदयम् ॥२०
जाम्बवे भारत वर्षं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
कर्मभूमिर्यतः पुत्र तस्मात्तीर्थं तदुच्यते ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—स्वर्ग-पाताल और मर्त्यलोक मे चार प्रकार के तीर्थ होते हैं। हे मुनिशार्दूल ! सुरादि के द्वारा त्रिलोक मे दैव-सुर-आर्ष और मानुष ये चार प्रकार परम विख्यात हैं। जो मानुष

तीर्थ है उनसे आर्षतीर्थ अधिक उत्तम होते हैं ॥१६-१७॥ आर्ष तीर्थों से भी अधिक पुण्य प्रदान करने वाला असुर तीर्थ होता है। उसी भाँति आसुर तीर्थों से अधिक पुण्यप्रद देव तीर्थ हुआ करता है जो कि सभी कामनाओं का देने वाला होता है ॥१८॥ जो तीर्थ ब्रह्मा-विष्णु और शिव के द्वारा निर्मित होता है वही देव 'तीर्थ कहा जाता है। यह तीर्थ जो तीनों देवों से समुत्पन्न होता है इसी कारण से सर्वोत्तम होता है और इससे उत्तम अन्य कोई भी नहीं हुआ करता है ॥१९॥ तीनों लोकों में तीर्थ को परम पवित्र कहा गया है। उसमें भी जम्बूद्वीप में होने वाला तीर्थ बहुत गुणों के उदय वाला होता है ॥२०॥ इस जम्बू द्वीप में भारतवर्ष तीर्थ त्रैलोक्य में विख्यात है। हे पुत्र! यह भारत-वर्ष कर्मों के करने की भूमि है इसी कारण से यह तीर्थ कहा जाया करता है ॥२१॥

तत्रैव यानि तीर्थानि यान्युक्तानि मया तव।
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये षण्नद्या देवसंभवाः ॥२२
तथैव देवजा ब्रह्मन्दक्षिणार्णवविन्ध्ययोः।
एता द्वादश नद्यस्तु प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ॥२३
अभिसपूजितं यस्माद्भारतं बहुपुण्यदम्।
कर्मभूमिरतो देववर्षं तस्मात्प्रकीर्तितम् ॥२४
आर्षाणि चैव तीर्थानि देवजानि क्वचित्क्वचित्।
आसुरैरावृतान्यासंस्तदेवाऽऽसुरमुच्यते ॥२५
दैवेष्वेव प्रदेशेषु तपस्तप्त्वा महर्षयः।
दैवप्रभावात्तपस आर्षाण्यपि च तान्यपि ॥२६
आत्मनः श्रेयसे मुक्त्यै पूजायै भूतयेऽथवा।
आत्मनः फलभूत्यर्थं यशसोऽवाप्तये पुनः ॥२७
मानुषैः कारितान्याहुर्मानुषाणीति नारद।
एवं चतुर्विधो भेदस्तीर्थानां मुनिसत्तमाः ॥२८

इस भारत में जो जो भी तीर्थ होते हैं वे सब मैंने आपको बतला दिये हैं। हिमालय पर्वत और विन्ध्याचल इन दोनों के मध्य भाग में

छै सरिताएं ऐसी है जो देवो से ही समुत्पन्न हुई हैं ॥२२॥ उसी प्रकार से हे ब्रह्मन् ! दक्षिण सागर और विन्ध्याचल के मध्य मे देवों से समुत्पन्न नदियाँ है। ये बारह नदियाँ प्रधान तथा बताई गयी हैं ॥२३॥ जिस कारण से बहुत पुण्य का प्रदान करने वाला यह भारत-वर्ष अभिसपूजित होता है। यह कर्मों के करने की भूमि है इसी कारण से देवो ने भी इसकी प्रशसा का कीर्त्तन किया है ॥२४॥ आर्ष और दैव तीर्थ कहीं कहीं पर ही है। जो आसुरो से अग्वृत्त हैं वे ही आसुर तीर्थ कहे जाते हैं ॥२५॥ दैव प्रदेशो मे ही महर्षियो ने तपश्चर्या की है। दैव प्रभाव से और तप के प्रभाव से भी युक्त वे तीर्थ दैव और आर्ष दोनो ही हैं ॥२६॥ हे नारद ! आत्मा के श्रेय के लिये मुक्ति के लिये-पूजा के लिय अथवा भूति के लिये-आत्मा की फल मूर्ति के लिये तथा पुनः यश की प्राप्ति के लिये मानुषो के द्वारा जो कराये गय है वे मानुप तीर्थ है। हे मुनियो ! इस तरह से तीर्थो के चार भेद है ॥२७-२८॥

भेद न कश्चिज्जानाति श्रोतु युक्तोऽसि नारद ।
बह्वः पण्डितमन्याः ह्लण्वन्ति कथयन्ति च ॥
सुकृति कोऽपि जानाति वक्तुं श्रोतुं निर्जगुंणः ॥२९
तेषा स्वरूप भेद च श्रोतुमिच्छामि तत्वत ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशयः ॥३०

ब्रह्मन्कृतयुगादौ तु उपायोऽन्यो न विद्यते ।
तीर्थसेवा विना स्वल्पायासेनाभीष्टदायिनीम् ॥३१
न त्वया सदृशो धातर्वक्ता ज्ञाताऽथवा क्वचित् ।
त्व नाभिकमले विष्णोः सजातोऽखिलपूर्वजः ॥३२

गोदावरो भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका ।
तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः ॥३३
भागीरथी नर्मदा तु यमुना च सरस्वती ।
विशोका च वितस्ता च हिमवत्पर्वताश्रिताः ॥३४

एता नद्य. पुण्यतमा देवतीर्थान्युदाहृता: ।
गय: कोल्लासुरो वृत्रास्त्रपुरो ह्यन्धकस्तथा ॥३५
हयमूर्धा च लवणो नमुचि: शृङ्गकस्तथा ।
यम: पातालकेतुश्च मय: पुष्कर एव च ॥ ६

इन तीर्थों के भेद को कोई भी नही जानता है हे नारद ! अतएव तुम श्रवण करने के योग्य हो। बहुत से भ ने आपको महा पण्डित मानने लि श्रवण किया करते हैं और कहा करते हैं। कोई ही सुकृत करने वाला पुरुष ऐसा होता है जो निज के गुणो के द्वारा कहना और सुनना जाना करता है ॥२६। श्री नारदजी ने कह—हे ब्रह्मन् ! इन समस्त तीर्थों के स्वरूप को एव भेद को मैं सात्त्विक रूप से श्रवण करने की अभिलाषा रखता हू। जिसका श्रवण करके मनुष्य समस्त पापो से मुक्त हो जाया करता है इसमे कुछ भी सशय नही है ॥३०॥ हे ब्रह्मन् ! सत्य प्रगादि मे अन्य कोई भी उपाय नही है। केवल तीर्थो की ही सेवा ऐसी है जो थोडे से ही आयास से अभीष्टो के प्रदान कर देने व ली होती है ॥३ ॥ हे धाता ! आपके समान अन्य कही पर भी इन विपयो का ज्ञाता तथा वक्ता कोई नही है। आप तो सभी से पूर्व मे समुत्पन्न हुए हैं और साक्षात् भगवान् विष्णु के नाभि मे स्थित कमल से ही आपकी उत्पत्ति हुई है ॥३२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण मे गोदावरी-भीमरथी तुङ्ग भद्रा-वेणिका-तापी-और पयोरुणी ये छै छै नदियाँ बतलाई गयी हैं ॥३३॥ हिमालय पर्वत मे आश्रय लेने वाली छं सरिताओ मे भागीरथी-नर्मदा-यमुना-सरस्वती और वितस्ता तथा विशोका है ॥३४॥ ये नदियाँ परम पुण्यतमा हैं और ये देव तीर्थ कही गयी हैं। गय, कोल्लासुर-वृत्र-त्रिपुर-अन्धक-हयमृधा-लवण-नमुचि-शृङ्गक-यम-पाताल केतु-मय और पुष्कर ये असुरों के नाम हैं ॥३५-३६॥

एतैरावृततीर्थानि आसुराणि शुभानि च ।
प्रभासो भार्गवोऽगस्तिर्नरनारायणो तथा ॥३७

वसिष्ठश्च भरद्वाजो गौतमः कश्यपो मनुः ।
इत्यादिमुनिजुष्टानि ऋषितीर्थानि नारद ॥ ३८
अम्बरीषो हरिश्चन्द्रो मान्धाता मनुरेव च ।
कुरु कनखलश्चैव भद्राश्वः सगरस्तथा ॥३८
अश्वयूपो नाचिकेता वृषाकपिररिंदमः ।
इत्यादिमानुषैर्विप्र निर्मितानि शुभानि च ॥४०
यशसः फलभूत्यर्थं निर्मितानीह नारद ।
स्वतोद्भूतानि दैवानि यत्र क्वापि जगत्त्रये ॥
पुण्यतीर्थानि तान्याहुस्तीर्थभेदो मयोदितः ॥४१

इन उपर्युक्त असुरों से समाकुल एवं परम शुभ आसुर तीर्थ कहे जाते हैं । प्रभास-भार्गव-अगस्ति-नर-नारायण-वसिष्ठ-भरद्वाज-गौतम-कश्यप-मनु कुरु-कनखल-भद्राश्व-सागर-अश्वयूप-नाचिकेता वृषाकपि-अरिन्दम-इत्यादि मानुषों के द्वारा निर्मित शुभ तीर्थ हैं ॥३७-४०॥ हे नारद ! ये यहाँ पर यश की फल भूति के लिये ही निर्मित तीर्थ हैं जो परम शुभ हैं । स्वतः ही उत्पन्न दैव तीर्थ तीनों लोकों में जहाँ कहीं पर ही होते हैं ये सब पुण्य तीर्थ हैं जो कहे जाते हैं । इस प्रकार से तीर्थों का भेद मैंने बतला दिया है ॥४१॥

—:※:—

## ३४—गंगाजी के दो रूप कथन

कमण्डलुस्थिता देवी महेश्वरजटागता ।
श्रुता देव यथा मर्त्यमागता तद्ब्रवीतु मे ॥१
महेश्वरजटास्था या आपो देव्यो महामते ।
तासा च द्विविधो भेद आहर्तुर्द्वयकारणात् ॥२
एकांशो ब्राह्मणेनात्र व्रतदानसमाधिना ।
गौतमेन शिवं पूज्य आहृतो लोकविश्रुतः ॥३

अपरस्तु महाप्राज्ञ क्षत्रियेण वलीयसा ।
आराध्य शंकरं देवं तपोभिर्नियमैस्तथा ॥४
भगीरथेन भूपेन आहृतोंऽशोऽपरस्तथा ।
एवं द्वैरूप्यमभवद्गङ्गाया मुनिसत्तम ॥५
महेश्वरजटास्था या हेतुना केन गौतमः ।
आहार्ता क्षत्रियेणापि आहृता केन तद्वद ॥६
यथाऽऽनीता पुरा वत्स ब्राह्मणेनेतरेण वा ।
तत्सर्वं विस्तरेणाहं वदिष्ये प्रीतये तव ॥७

श्री नारद जी ने कहा—कमण्डलु में स्थित रहने वाली देवी (गङ्गा) फिर महेश्वर की मस्तक की जटा में प्राप्त हुई थी। हे देव ! जिस तरह से वह इस मनुष्य लोक में समागत हुई थी यह श्रवण किया है अब आप उसी को पूर्ण रूप से बतलाइये ॥१॥ श्री परमेष्ठी ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् महेश्वर देव की जटाओं में संस्थित रहने वाली जो जल स्वरूपा हे विपार्थी हे महामते ! आहर्त्ता के दो कारणों से उनके भी दो भेद हैं ॥२॥ उसका एक भाग व्रत और दान की समाधि वाले गौतम ब्राह्मण के द्वारा यहाँ पर भगवान् शिव की पूजा करके लाया गया है। हे महामति वाले ! यह लोक में विश्रुत है ॥३॥ हे महती प्रज्ञा वाले ! दूसरा अंश जो उस गङ्गा देवी का था वह महान् बलवान् क्षत्रिय राजा के द्वारा परम दुष्कर तपश्चर्या और नियमों के द्वारा देव शङ्कर की आराधना करके लाया गया था ॥४॥ इस प्रकार से भूप भगीरथ के द्वारा दूसरा भाग यहाँ पर समाहृत हुआ था। हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार से गङ्गा देवी के दो स्वरूप हुए थे ॥५॥ देवर्षि श्री नारद जी ने कहा था—महेश्वर की जटा में स्थित जो गङ्गा देवी थी उसका आहरण करने वाला गौतम किस कारण से हुए थे। तथा क्षत्रिय के द्वारा भी किस कारण से वह कहाँ पर लाई गयी थी यह मुझे बतलाइये ॥६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स ! जिस रीति से पहिले समय में एक ब्राह्मण के द्वारा तथा दूसरे क्षत्रिय के द्वारा वह यहाँ लायी गयी थी उस सम्पूर्ण इतिहास को मैं केवल तुम्हारे ऊपर प्रीति होने के कारण बतलाता हूँ ॥७॥

यस्मिन्काले सुरेशस्य उमा पत्न्यभवत्प्रिया ।
तस्मिन्नेवाभवद्गङ्गा प्रिया शंभोर्महामते ॥८
मम दोषापनोदाय चिन्तयानः शिवस्तदा ।
उमया सहितः श्रीमान्देवी प्रेक्ष्ये विशेषतः ॥९
रसवृत्तौ स्थितौ यस्मान्निर्ममे रसमुत्तमम् ।
रसिकत्वात्प्रियत्वाच्च स्त्रैणत्वात्पावनत्वतः ॥१०
सर्वाभ्यो ह्यधिकप्रीतिर्गङ्गाऽभूद्द्विजसत्तम ।
तामेव चिन्तयानोऽसौ सर्वदाऽऽस्ते महेश्वरः ॥११
सैवोद्भूता जटामार्गात्कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ।
स तु संगोपयामास गङ्गां शम्भुर्जटागताम् ॥१२
शिरसा च धृतां ज्ञात्वा न शशाक उमा तदा ।
सोढुं ब्रह्मञ्जटाजूटे स्थितां दृष्ट्वा पुनः पुनः ॥१३
अमर्षेण भवं गौरी प्रेमयस्वेत्यभाषत ।
नैवासौ प्रैरयच्छंभू रसिको रसमुत्तमम् ॥१४

जिस समय मे सुरेश की उमादेवी परम प्रिया पत्नी हुई थी और उसी समय मे हे महामते ! भगवान् शम्भु की प्रिया गङ्गा देवी हुई थी ॥८॥ उस समय मे मेरे दोष के अपनयन करने के लिये भगवान् शिव चिन्ता करने वाले उस समय मे थे । उमा सहित श्रीमान् भगवान् शम्भु देवी को विशेष रूप से देखते थे । ॥९॥ रस की वृत्ति मे स्थित वे स्थित थे इस कारण से उन्होंने उत्तम रस का निर्माण किया था । रसिक होने से-प्रिय होने से-स्त्रैण होने से और पावन होने से ही उन्होंने ऐसा किया था ॥१०॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! सभी से अधिक प्रीति वाली गङ्गा हो गयी थी । यह महेश्वर देव सर्वदा उसी गङ्गा का चिन्तन करने वाले रहा करते थे ॥११॥ किसी अन्य कारण से यही गङ्गा देवी जटाओं के मार्ग से समुद्गत हो गयी थी और वे भगवान् शम्भु अपनी जटाओ मे स्थित गङ्गा को छिपा रहे थे ॥१२॥ क्योंकि उस समय मे गङ्गा देवी शिर के द्वारा जटा मे स्थित थी और धारण की हुई थी इसलिये उमादेवी जान

न सकी थी । हे ब्रह्मन् ! बारम्बार जटाजूट मे स्थित गगा को देखकर गौरी उसको सहन नही कर सकी थी और गौरी देवी अमर्ष से भगवान् भव ( शिव ) से यही कहा था कि उसको प्रकट कर प्रेम करिये । किन्तु भगवान् शम्भु परम रसिक थे और उस उत्तम रस को उन्होने प्रकट नही किया था ॥१३-१४॥

जटास्वेव तदा देवी गोपायन्त विमृश्य सा ।
विनायक जयां स्कन्द रहो वचनमब्रवीत् ॥१५
नैवाय त्रिदेशेशानो गङ्गा त्यजति कामुकः ।
साऽपि प्रिया शिवस्याद्य कथ त्यजति ता प्रियाम् ॥१६
एव विमृश्य बहुशो गौरी चाऽऽह विनायकम् ॥१७
न देवैर्नासुरैर्यक्षैर्न सिद्धैर्भवताऽपि च ।
न राजभिरथान्यैर्वा न गङ्गा त्यजति प्रभुः ॥१८
पुनस्तप्स्यामि वा गत्वा हिमवन्त नगोत्तमम् ।
अथवा ब्राह्मणैः पुण्यैस्तपोभिर्हतकल्मषैः ॥१९
तैर्वा जटास्थिता गङ्गा प्रार्थिता भुवमाप्नुयात् ॥२०
एमच्छ्रुत्वा मातृवाक्य मातर प्राह विघ्नराट् ।
आशा स्कन्देन जयया समन्त्र्येह च युज्यते ॥२१

उस समय मे गौरी देवी ने जटाओ मे ही गगा देवी को छिपा कर सुरक्षित रखने वाले शम्भु को विचार कर उमा देवी ने एकान्त में विनायक-जया और स्कन्द से यह वचन कहा था ॥१५॥ यह देवो के अधीश्वर कामुक होने के कारण गगा का त्याग नही करते हैं । आज वह भी शिव की प्रिया है । उस प्रिया को कैसे त्याग करें । इस प्रकार से बहुत अधिक विचार करके गौरी देवी विनायक से बोली—॥१६-१७॥ पार्वती जी ने कहा—देवो के द्वारा-असुर-यक्ष-सिद्ध अन्य राजा तथा आपके द्वारा भी प्रभु गगा का त्याग नही करते है ॥१८॥ अतएव मैं फिर पर्वतो मे उत्तम हिमवान् मे जाकर तपस्या करूँगी । अथवा परम पुण्यमय तपस्वी और निष्पाप ब्राह्मणो के द्वारा जटाजूट मे स्थित गगा से प्रार्थना की जावे कि यह भूलोक मे प्राप्त हो जावे ॥१९-२०॥ श्री ब्रह्माजी

ने कहा—अपनी माता के इस वाक्य को सुनकर विघ्नों के राजा गणेश जी ने अपने भाई स्कन्द और जया के साथ भलीभाँति मन्त्रणा करके फिर अपनी माता उमादेवी से कहा कि यहाँ पर यह युक्त हो सकता है ॥२ ॥

तत्कुर्मो मस्तकाद्गङ्गा यथा त्यजति मे पिता ।
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्ननावृष्टिर जायत ॥२२
द्विर्द्वादश समा मर्त्ये सर्वप्राणिभयावहा ।
ततो विनष्टमभवज्जगत्स्थागरजङ्गमम् ॥२३
विना तु गौतमं पुण्यमाश्रमं सर्वकामदम् ।
स्रष्टुकामः पुरा पुत्र स्थावरं जङ्गमं तथा ॥२४
कृतो यज्ञो मया पूर्वं स देवयजनो गिरिः ।
मन्नाम्ना तत्र विख्यातस्ततो ब्रह्मगिरिः सदा ॥२५
तमाश्रित्य नगश्रेष्ठं सर्वदाऽऽस्ते स गौतमः ।
तस्याऽऽश्रमे महापुण्ये श्रेष्ठे ब्रह्मगिरौ शुभे ॥२६
आधयो व्याधयो वाऽपि दुर्भिक्षं वाऽप्यवर्षणम् ।
भयशोकौ न दारिद्र्यं न श्रूयन्ते कदाचन ॥२७
तदाश्रमं विनाऽन्यत्र हव्यं वा कव्यमेव वा ।
नास्ति पुत्र तथा दाता होता यष्टा तथैव च ॥२८

हम वही कार्य करते हैं जिस प्रकार से पिताजी अपने मस्तक से गंगा का त्याग कर देवें । इसी बीच में हे ब्रह्मन् ! अनावृष्टि हो गयी थी— ॥२२॥ वह अनावृष्टि भी मर्त्यलोक में चौबीस वर्ष तक रही थी जो कि समस्त प्राणियों के लिये बहुत ही अधिक भय देने वाली थी । इसके पश्चात् चराचर सम्पूर्ण जगत् विनष्ट हो गया था ॥२३॥ सब मनोरथों को देने वाले पुण्य आश्रम गौतम के बिना हे पुत्र ! पहिले स्थावर जंगम की सृष्टि करने की इच्छा वाले मैंने पूर्व में यज्ञ किया था । वह देव यजन गिरि है । वहाँ पर वह मेरे नाम से ही विख्यात हो गया था और सदा ब्रह्मगिरि कहा जाता है ॥२४-२५॥ उस श्रेष्ठ पर्वत का आश्रय ग्रहण

करके गौतम सर्वदा रहा करते हैं। उसके आश्रम में जो महान् पुण्यमय श्रेष्ठ है और शुभ ब्रह्मगिरि मे स्थित है? उसकी ऐसी महिमा है कि वहाँ पर कोई भी आधियाँ ( मानसिक व्यथाऐं ) व्याधियाँ-दुर्भिक्ष और अवृष्टि-भय-शोक तथा दरिद्रता कभी भी नहीं सुनी जाया करती हैं ॥२६-॥२७॥ हे पुत्र! उस आश्रम के बिना अन्य किसी भी स्थान में हव्य-कव्य का दाता, होता और यष्टा नही है ॥२८॥

यदैव गौतमो विप्रो ददाति च जुहोति च।
तदैवाप्ययन स्वर्गे सुराणामपि नान्यतः ॥२९
देवलोकेऽपि मर्त्ये वा श्रूयते गौतमो मुनिः।
होता दाता च भोक्ता च स एवेति जनाः विदुः ॥३०
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे नानाश्रमनिवासिनः।
गौतमाश्रममापृच्छन्नागच्छन्तस्तपोधनाः ॥३१
तेषां मुनीनां सर्वेषामागतानां स गौतमः।
शिष्यवत्पुत्रवद्भक्त्या पितृवत्पोषकोऽभवत् ॥३२
यस्य(तेषा)यथेप्सितं कामं यथा योग्यं यथाक्रमम्।
यथानुरूपं सर्वेषां शुश्रूषामकरोन्मुनिः ॥३३
आज्ञया गौतमस्याऽऽसन्नोषध्यो लोकमातरः।
आराधिताः पुनस्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३४
जायन्ते च तदौषध्यो लूयन्ते च तदैव हि।
संपत्स्यन्ते तदोप्यन्ते गौतमस्य तपोबलात् ॥३५

जिस समय में विप्र गौतम देता है और हवन किया करता है तभी स्वर्ग मे सुरो की तृप्ति हुआ करती है अन्य से नही होती है ॥२९॥ देव लोक में अथवा मर्त्यलोक में गौतम मुनि का नाम सुना जाता है। मनुष्य यह जानते हैं कि वह ही मुनि होता-दाता और भोक्ता है ॥३०॥ यह श्रवण करके अनेक आश्रमो में निवास करने वाले मुनिगण सभी गौतम के आश्रम को पूछते थे और तपोधन मुनिगण सब ओर से वहाँ पर आ रहे थे ॥३१॥ वह गौतम ऋषि उन समागत समस्त मुनियो का भक्ति-

भाव से शिष्यवत् और पुत्रवत् तथा पिता की भाँति पोषक हो गये थे ॥३२॥ जिसका जो भी जिस प्रकार का काम था उसको यथोचित रूप से यथा क्रम स्वरूप के अनुरूप समझकर उस मुनि ने सबकी सेवा शुश्रूषा की थी ॥३३॥ उस समय में गौतम मुनि की आज्ञा से लोक की माताएँ ओषधियाँ हुई थीं। इसके अनन्तर उन्होंने ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर की महेश्वर की आराधना की थी ॥३४॥ उस समय में ओषधियाँ उत्पन्न होती थी और उसी समय में छिन्न की जाती थी। गौतम के तपोबल से सब उगती थी और सम्पन्न होती थी ॥३५॥

सर्वाः समृद्धयस्तस्य संसिध्यन्ते मनोगताः।
प्रत्यहं वक्ति विनयाद्गौतमस्त्वागतान्मुनीन् ॥३६
पुत्रवच्छिष्यवच्चैव प्रेष्यवत्करवाणि किम्।
पितृवत्पोषयामास सवत्सरगणान्बहून् ॥३७
एव वसत्सु मुनिषु त्रैलोक्ये ख्यातिराश्रयात्।
ततो विनायकः प्राहमातर भ्रातर जयाम् ॥३८
देवाना सदने मातर्गीयते गौतमो द्विजः।
यन्न साध्य सुरगणैर्गौतमः कृतवानिति ॥३९
एव श्रुतं मया देवि ब्राह्मणस्य तपोबलम्।
स विप्रश्चालयेदेना मातर्गङ्गां जटागताम् ॥४०
तपसा वाऽन्यतो वाऽपि पूजयित्वा त्रिलोचनम्।
स एव च्यावयेदेना जटास्या मे पितृप्रियाम् ॥४१
तत्र नीतिर्विधातव्या ता विप्रो याचयेद्यथा।
तत्प्रभावात्सरिच्छ्रेष्ठा शिरसोऽवतरत्यपि ॥४२

उसके मन में रहने वाली सभी समृद्धियाँ संसिद्ध होती थीं। जो मुनियण वहाँ पर समागत हुए थे उनसे गौतम मुनि विनय पूर्वक प्रतिदिन निवेदन किया करते थे ॥३६॥ पुत्र की भाँति-शिष्य के सदृश और प्रेष्य (दूत) के समान मैं आपकी क्या सेवा करूँ। इस प्रकार से गौतम मुनि ने बहुत से वर्षों तक उन सबका पिता के समान पूर्णतया पोषण किया था ॥३७॥ इस तरह से वहाँ पर उन मुनियों के निवास करने पर

उस आश्रय से तीनों लोकों में ख्याति हो गयी थी। इसके अनन्तर विनायक ने अपनी माता से, भाई से और जया से कहा था ॥३८॥ विनायक ने कहा—हे माताजी ! देवों के भी सदन में गौतम द्विज की प्रशंसा का गान किया जाता है कि जो सुरगणों के द्वारा भी साध्य नहीं है वह गौतम ने कर दिया है ॥३९॥ हे देवि ! मैंने ब्राह्मण का इस प्रकार का तपोबल सुना है। हे माताजी ! वह विप्र इस जटाओं में समवस्थित गङ्गा को यहाँ से चला देगा ॥४०॥ तप से अथवा किसी अन्य साधन से भगवान् त्रिलोचन का पूजन करके वही मेरे पिताजी की प्रिया इस गङ्गा को जो कि जटाओं में स्थित है च्यावित कर देगा अर्थात् वहाँ अलग कर देगा ॥४१॥ उस विषय में कुछ नीति ( व्यावहारिक चाल ) करनी चाहिए जिससे उस गङ्गा से यह विप्र याचना करे और उसके प्रभाव से वह सरिताओं में श्रेष्ठ गगा पिताजी के शिर से नीचे उतर भी जायगी ॥४२॥

इत्युक्त्वा मातरं भ्राता जयया सहः विघ्नराट् ।
जगाम गौतमो यत्र ब्रह्मसूत्रधरः कृशः ॥४३
वसन्कतिपयाहःसु गौतमाश्रममण्डले ।
उवाच ब्राह्मणान्सर्वांस्तत्र तत्र च विघ्नराट् ॥४४
गच्छामः स्वमधिष्ठानमाश्रमाणि शुचीनि च ।
पुष्टाः स्म गौतमान्नेन पृच्छामो गौतमं मुनिम् ॥४५
इति सम्मन्त्र्य पृच्छन्ति मुनयो मुनिसत्तमाः ।
स तान्निवारयामास स्नेहबुद्ध्या मुनीन्पृथक् ॥४६
कृताञ्जलिः सविनयमासाध्वमिह चैव हि ।
युष्मच्चरणशुश्रूषां करोमि मुनिपुंगवाः ॥४७
शुश्रूषो पुत्रवन्नित्यं मयि तिष्ठति नोचितम् ।
भवता भूमिदेवानामाश्रमान्तरसेवनम् ॥४८
इदमेवाऽऽश्रमं पुण्यं सर्वेषामिति मे मतिः ।
अलमन्येन मुनय आश्रमेण गतेन वा ॥४९

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन विघ्नों के राजा श्री गणेश जी ने अपनी माताजी उमादेवी से इस प्रकार से कहकर फिर वह अपने भाई स्कन्द और जया के साथ वहाँ पर गये थे जहाँ पर ब्रह्मसूत्र को धारण करने वाले तपस्वी गौतम थे ॥४३॥ उस गौतम ऋषि के आश्रम में कुछ दिन पर्यन्त निवास करके वहाँ-वहाँ पर विघ्नराट् ने सभी ब्राह्मणों से कहा था ॥४४॥ अब हम अपने परम पवित्र आश्रमों को गमन करते हैं और ये भी आश्रम पवित्र हैं तथा गौतम के अन्न से अत्यधिक पुष्ट हो गये हैं। अब हम गौतम मुनि से पूछकर गमन की आज्ञा प्राप्त करते हैं ॥४५॥ इस तरह से मन्त्रणा करके मुनियों में श्रेष्ठ मुनियों ने गौतम से पूछा था ॥४६॥ गौतम मुनि ने कहा—मैं हाथ जोड़ने वाला हूँ और विनय पूर्वक निवेदन करता हूँ कि यह आपका यहाँ से गमन करना अनुचित है। हे मुनिश्रेष्ठो ! मैं आप लोगों के चरणों की सेवा करता हूँ ॥४७॥ एक पुत्र की भाँति सेवा करने की इच्छा वाले मेरे विद्यमान रहते हुए यह उचित नहीं है कि भूमिदेव आप सब मेरे इस आश्रम का त्याग कर किसी अन्य आश्रम में जाकर आश्रय ग्रहण करें ॥४८॥ मेरा ऐसा विचार है कि आप सब लोगों के लिये यही आश्रम परम पुण्यमय है। अतएव हे मुनिगणो ! अन्य आश्रम को यहाँ से आपको गमन नहीं करना चाहिए ॥४९॥

इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं विघ्नकृत्यमनुस्मरन् ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा ब्राह्मणान्स गणाधिपः ॥५०
अन्नक्रीता वयं किं नो निवारयति गौतमः ।
साम्ना नैव शक्ता गन्तुं स्व स्व निवेशनम ॥५१
नायमर्हति दण्डं वा उपकारी द्विजोत्तमः ।
तस्माद्बुद्ध्या व्यवस्यामि तत्सर्वैरनुमन्यताम् ॥५२
ततः सर्वे द्विजश्रेष्ठाः क्रियतामित्यनुग्रुवन् ।
एतस्य तूपकाराय लोकानां हितकाम्यया ॥५३
ब्राह्मणानां च सर्वेषां श्रेयो यत्स्यात्तथा कुरु ।
ब्राह्मणानां वचः श्रुत्वा मेने वाक्यं गणाधिपः ॥५४

क्रियते गुणरूपं यद्गौतमस्य विशेषतः ॥५५
अनुमान्य द्विजान्सर्वान्पुनः पुनरुदारधीः ।
स्वयं च ब्राह्मणो भूत्वा प्रणम्य ब्राह्मणान्पुनः ॥
मातुर्मते स्थितो विद्वाञ्जयां प्राह गणेश्वरः ॥५६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस वचन का श्रवण कर जो कि गौतम मुनि ने कहा था और विघ्न के कृत्य का स्मरण करते हुए गणाधिप ने हाथ जोड़ कर उन ब्राह्मणो से कहा था—॥५०॥ हम लोग अन्न के क्रय करने वाले है । यह गौतम क्यों हम लोगों को निवारित करत हैं । हम साम के द्वारा ही अपने २ आश्रम को गमन करने मे समर्थ नही हैं ॥५१॥ यह परम उपकार करने वाले परम श्रेष्ठ द्विज गौतम दण्ड के योग्य नही हैं अतएव मैं अपनी बुद्धि से ऐसा निश्चय करता हूं अतएव आप सबको अनुमति दे देनी चाहिए ॥५२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर सभी द्विजश्रेष्ठो ने 'करिए'—यह कहा क्योंकि लोको के हित की कामना से यह इसके उपकार के लिये ही होगा ॥५३॥ जिस प्रकार से समस्त ब्राह्मणो का कल्याण होवे वैसा ही करिये । ब्राह्मणो के इस वचन का श्रवण करके गणाधिप ने इस वाक्य को मान लिया था ॥५४॥ विनायक ने कहा—गुणो के अनुरूप ही और विशेष रूप से गौतम के अनुरूप ही किया जाता है ॥५५॥ इस तरह से बारम्बार समस्त द्विजो की अनुमति ग्रहण करके उदार बुद्धि वाले गणेश्वर ने स्वयं ब्राह्मण बनकर तथा समस्त ब्राह्मणो को प्रणाम करके अपनी माताजी के मत मे स्थित होकर विद्वान् गणेश जी ने जया से कहा था ॥५६॥

यथानान्यो विजानीते तथा कुरु शुभानने ।
गोरूपधारिणी गच्छ गौतमो यत्र तिष्ठति ॥५७
शालीन्खाद विनाश्याय विकारं कुरु भामिनि ।
कृते प्रहारे हुंकारे प्रेक्षिते चापि किंचन ॥
पत दीनं कृत्वा न स्वनं म्रियस्व न जीव च ॥५८

तथा चकार विजया विघ्नेश्वरमते स्थिता ।
यत्राऽऽसीद्गौतमो विप्रो जया गोरूपधारिणी ॥५६
जगाम शालीन्खादन्ती तां ददर्श स गौतमः ।
गां दृष्ट्वा विकृतां विप्रस्तां तृणेन न्यवारयत् ॥६०
निवार्यमाणा सा तेन स्वनं कृत्वा पपात गौः ।
तस्यां तु पतितायां च हाहाकारो महानभूत् ॥६१
स्वनं श्रुत्वा च दृष्ट्वा च गौतमस्य विचेष्टितम् ।
व्यथिता ब्राह्मणाः प्राहुर्विघ्नराजपुरस्कृताः ॥६२

विनायक ने कहा—हे शुभ मुख वाली ! जिस तरह से अन्य कोई भी न जान सके वैसा ही करो । जिस स्थान पर गौतम विद्यमान हैं वहाँ पर तुम गो रूप के धारण करने वाली होकर गमन करो ॥५७॥ इसके अनन्तर हे भामिनि ! तुम शालियों को खाओ और विनाश करके विकार उत्पन्न करो । कुछ भी प्रहार-हुङ्कार और देखने पर तुम वहीं पर दीनता से पूर्ण ध्वनि करके गिर जाना और ऐसी अपनी अवस्था बना लेना कि न तो मरण ही हो और न जीवित रहो ॥५८॥ ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् विघ्नेश्वर के मत में स्थित रहने वाली विजया ने उसी भाँति से यह सभी कुछ किया था । जहाँ पर विप्र गौतम रहा करते थे वहाँ पर विजया ने गमन किया था और शालियों को खाती हुई उस गौ का स्वरूप धारण करने वाली उसको गौतम ने देखा था । उस विकृत रूप वाली गौ को देखकर उस विप्र गौतम ने उसको तृण से निवारित किया था ॥५९-६०॥ उसके द्वारा निवारित होती हुई उस गौ के रूप धारण करने वाली ने वहीं पर ध्वनि करके पतन किया था अर्थात् वह गिर पड़ी थी । उस समय पर उसके मूर्छित सी होकर गिर जाने पर महान् हाहाकार हो गया था ॥६१॥ उस गौ की उस ध्वनि का श्रवण कर तथा गौतम के उस विशेष कृत्य को देखकर विघ्नेश्वर को अपने आगे करते हुए सब ब्राह्मण बहुत ही अधिक व्यथित हुए और बोले—॥६२॥

इतो गच्छामहे सर्वे न स्थातव्यं तवाऽऽश्रमे ।
पुत्रवत्पोषिताः सर्वे पृष्टोऽसि मुनिपुंगव ॥६३

इति श्रुत्वा मुनिर्वाक्यं विप्राणां गच्छतां तदा ।
वज्राहत इवाऽऽसीत्स विप्राणां पुरतोऽपतत् ॥६४
तमूचुर्ब्राह्मणाः सर्वे पश्येमां पतितां भुवि ।
रुद्राणां मातरं देवीं जगतां पावनीं प्रियाम् ॥६५
तीर्थदेवस्वरूपिण्यामस्यां गवि विधेर्बलात् ।
पतितायां मुनिश्रेष्ठ गन्तव्यमवशिष्यते ॥६६
चीर्णं व्रतं क्षयं याति यथा वासस्त्वदाश्रमे ।
वयं नान्यधना ब्रह्मन्केवलं तु तपोधनाः ॥६७
विप्राणां पुरतः स्थित्वा विनीतः प्राह गौतमः ॥६८
भवन्त एव शरणं पूतं मां कर्तुमर्हथ ॥६९
ततः प्रोवाच भगवान्विघ्नराड्ब्राह्मणैर्वृतः ॥७०
नैवेयं म्रियते तत्र नैव जीवति तत्र किम् ।
वदामोऽस्मिन्सुसंदिग्धे निष्कृतिं गतिमेव वा ॥७१

ब्राह्मणों ने कहा—हे मुनियों में श्रेष्ठ ! अब हम सब यहाँ से जाना चाहते हैं और आपके इस आश्रम में हमको नहीं ठहरना चाहिए। आपने एक पुत्र की भाँति ही हम सबको पोषित किया है अतएव हम आपसे पूछते हैं ॥६३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस अवसर पर उस गौतम मुनि ने जब गमन करते हुए मुनियों का यह वचन सुना था तो वह वज्र से आहत हुए के समान ही अत्यन्त दुःखित होकर उन सबके आगे गिर गया था ॥६४॥ उस समय में सभी ब्राह्मण उस मुनि से बोले—इस रुद्रों की माता देवी और जगतों को पवित्र करने वाली प्रिया को भूमि में पतित हुई देखो ॥६५॥ तीर्थ और देव स्वरूप वाली इस गौ के विधि बल से गिर जाने पर हे मुनिश्रेष्ठ ! अब तो हमारा गमन ही करना अवशेष रहा जाता है क्योंकि यहाँ रहना ठीक नहीं है ॥६६॥ हम लोगों ने जो कुछ भी व्रत चीर्ण किया है वह सभी क्षीणता को प्राप्त हो जाता है जब कि आपके इस आश्रम में निवास करते हैं। हे ब्रह्मन् ! हम लोगों के समीप में अन्य तो कोई धन का वैभव है ही नहीं—हम तो केवल अपना सञ्चित किये हुए तप के ही वैभव वाले हैं ॥६७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—

उस समय में उन समस्त विप्रों के आगे परम विनयान्वित होकर गौतम ने प्रार्थना पूर्वक कहा था ॥६८॥ गौतम ने कहा—अब आप लोग ही मेरे रक्षक हैं और आप मुझको पवित्र करने के योग्य होते हैं ॥६९॥ ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर जब कि गौतम ने ऐसी प्रार्थना की थी तो ब्राह्मणों से आवृत ब्राह्मण रूपधारी विघ्नराज ने कहा था—॥७०॥ श्री भगवान् विघ्नराट् बोले—यह गौ न तो मर रही है और न जीवित ही हो रही है तो इस प्रकार के सन्देह से युक्त इस विषय में हम लोग क्या इसकी निष्कृति और गति बतलावें अर्थात् ऐसी दशा में इसका कोई भी प्रायश्चित नहीं बताया जा सकता है ॥७१॥

कथमुत्थास्यतीयं गौरस्य चास्मिञ्च निष्कृतिम् ।
वक्तुमर्हथ तत्सर्वं करिष्येऽहमसंशयम् ॥७२
सर्वेषां च मतेनाथ वदिष्यति च बुद्धिमान् ।
एतद्वाक्यमथास्माकं प्रमाणं तव गौतम ॥७३
ब्राह्मणैः प्रेर्यमाणोऽसौ गौतमेन बलीयसा ।
विघ्नकृद्ब्रह्मवपुषा प्राह सर्वानिदं वचः ॥७४
सर्वेषां च मतेनाहं वदिष्यामि यथार्थवत् ।
अनुमन्यन्तु मुनयो मद्वाक्यं गौतमोऽपि च ॥७५
महेश्वरजटाजूटे ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
कमण्डलुस्थितं वारि तिष्ठतीति हि शुश्रुम ॥७६
तदानयस्व तरसा तपसा नियमेन च ।
तेनाभिषिञ्च गामेतां भगवन्भुवमाश्रिताम् ॥
ततो वत्स्यामहे सर्वे पूर्ववत्तव वेश्मनि ॥७७

गौतम मुनि ने कहा—अब यह गौ किस प्रकार से उठ कर खड़ी होगी और जो कुछ भी बन पड़ा है उसका क्या प्रायश्चित होगा—इस सब को आप लोग बतलाइये—मैं निश्चय ही यह सभी करूँगा ॥७२॥ ब्राह्मणों ने कहा—हे गौतम ! हम सबकी राय से यह ब्राह्मण इस विषय में बतलायेंगे क्योंकि यह बहुत ही अधिक बुद्धिमान् है। इनका वचन हम सबको प्रमाण स्वरूप ही होता है और आपको भी होना

चाहिए। इस प्रकार का संकेत विप्र रूपधारी विघ्नराज की ओर उस समय में सब ने किया था ॥७३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में समस्त ब्राह्मणों के द्वारा तथा बलीमान् गौतम के द्वारा जब बहुत ही अधिक प्रेरित किया गया था तो वह ब्राह्मण वेषधारी विघ्नराज सब से यह वचन बोले थे ॥७४॥ विघ्नराज ने कहा—आप सबकी सलाह से ही मैं बिल्कुल यथार्थ बात बतलाता हूँ। आप सब मुनिगण और यह गौतम भी मेरे वचन को मान लेवें ॥७५॥ महेश्वर प्रभु के जटा-जूट में अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी के कमण्डलु में जो स्थित था वह इस समय में स्थित है—ऐसा सुनते हैं ॥७६॥ उस जल को बड़ी शीघ्रता से तपोबल से और नियत से लाइये। उस जल से इस गौ का अभिषिञ्चन करो जो कि हे भगवन् ! इस समय मे भूमि में एक मूछित दशा मे पड़ी हुई है। तभी हम सब भी पूर्व के ही समान आपके इस आश्रम मे निवास करेंगे अन्यथा नहीं रहेगे ॥७७॥

इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे ब्राह्मणानां च संसदि ।
तत्रापतत्पुष्पवृष्टिर्जयशब्दो व्यवर्धत ॥
ततः कृताञ्जलिर्नम्रो गौतमो वाक्यमब्रवीत् ॥७८
तपसाऽग्निप्रसादेन देवब्रह्मप्रसादतः ।
भवतां च प्रसादेन मत्संकल्पोऽनुसिध्यताम् ॥७९
एवमस्त्विति त विप्रा आपृच्छन्मुनिपुंगवम् ।
स्वानि स्थानानि ते जग्मुः समृद्धान्यन्नवारिभिः ॥८०
यातेषु तेषु विप्रेषु भ्रात्रा सह गणेश्वरः ।
जयया सह सुप्रीतः कृतकृत्यो न्यवर्तत ॥८१
गतेषु ब्रह्मवृन्देषु गणेशे च गते तथा ।
गौतमोऽपि मुनिश्रेष्ठस्तपसा हतकल्मषः ॥८२
ध्यायंस्तदर्थं स मुनिः किमिदं मम संस्थितम् ।
इत्येवं बहुशो ध्यायञ्ज्ञानेन ज्ञातवान्द्विज ॥८३
निश्चित्य देवकार्यार्थमात्मनः किल्विषां गतिम् ।
लोकानामुपकारं च शंभोः प्रीणनमेव च ॥८४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस ब्राह्मणों की सभा में उस विप्रेन्द्र के द्वारा ऐसा कहने पर उसी समय मे आकाश से पुष्पो की वर्षा हुई थी और जयकार की ध्वनि भी हुई थी। इसके उपरान्त हाथ जोड़ते हुए गौतम मुनि ने अत्यन्त विनम्र होकर यह वाक्य कहा था ॥७८॥ गौतम ने कहा—तप से-अग्नि देव के प्रसाद से-देवो तथा ब्रह्मा की कृपा से और आप सब लोगो के प्रसाद से मेरा यह सत्य सङ्कल्प सिद्ध हो जावे ॥७९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी समय मे उन समस्त ब्राह्मणो ने उस मुनियो मे श्रेष्ठ गौतम से कहा था—ऐसा ही होगा अर्थात् आपका मनोरथ सफल हो जायगा। वे फिर सब विप्रगण अन्न-जल से समृद्ध होकर अपने आश्रमो को चले गये थे ॥८०॥ उन समस्त विप्रो के चले जाने पर गणेश्वर प्रभु अपने भाई के साथ तथा जया के सहित अत्यन्त प्रसन्न होते हुए कृत कृत्य होकर वहाँ से वापिस लौट आये थे ॥८१॥ उन विप्र वृन्दो के और गणेश के वहाँ से चले जाने पर मुनियो मे परम श्रेष्ठ गौतम भी तप से क्षीण कल्मषो वाले हुए ॥८२॥ उस गौतम मुनि ने उसके विषय मे ध्यान करते हुए विचार किया था कि यह मुझे क्या परिस्थिति प्राप्त हो गयी है और अब कैसे तथा क्या करना चाहिए। इस प्रकार से बहुत ही अधिक सोचने पर हे द्विज नारद ! ध्यान करते हुए ज्ञान के द्वारा उस गौतम ने यह जाना था ॥८३॥ यह देवो का कार्य है और अपनी भी परम पूर्ण गति का निधा-रण इसमे होता है तथा सभी लोको का इससे महान् उपकार होता है, अतएव भगवान् शम्भु को प्रसन्न करना ही इसका एक मात्र समुचित साधन होता है ॥८४॥

उमायाः प्रीणनं चापि गङ्गानयनमेव च।
सर्वं श्रेयस्करं मन्ये मयि नैव च किल्विषम् ॥८५
इत्येव मनसा ध्यायन्सुप्रीतोऽभूद्द्विजोत्तमः।
आराध्य जगतामीशं त्रिनेत्रं वृषभध्वजम् ॥८६
आनयिष्ये सरिच्छ्रेष्ठां प्रीतास्तु गिरिजा मम।
सपत्नी जगदम्बाया महेश्वरजटास्थिता ॥८७

एवं हि संकल्प्य मुनिप्रवीरः,
स गौतमा ब्रह्मगिरेर्जगाम ।
कैलासमाधिष्ठितमुग्रधन्वना,
सुरार्चितं प्रियया बृह्मवृन्दैः ॥८८

इससे उमादेवी को प्रसन्नता होगी तथा गङ्गा का आनयन भी हो जायगा । यह सभी परम कल्याण कारक कार्य होगा और इससे मुझ में भी कोई पाप शेष न होगा—ऐसा मैं मानता हूँ ॥८५॥ इस तरह से यह द्विजों मे उत्तम गौतम मन मे ध्यान करते हुए बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए थे कि मैं त्रिलोचन वृषभ की ध्वजा वाले जगतो के स्वामी भगवान् शम्भु की समाराधना करके उस सरिताओं मे श्रेष्ठ गंगा को यहाँ ले आऊँगा तथा गिरिजा देवी भी मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न होगी क्योंकि यह गङ्गा महेश्वर प्रभु की जटाजूट मे स्थित होकर उमादेवी की सपत्नी बनी हुई हैं ॥८६-८७॥ इस प्रकार से उस मुनियों मे प्रकृष्ट वीर गौतम ने अपने मन मे दृढ संकल्प किया था और वह फिर उग्र धनुष वाले शम्भु के द्वारा जो कि अपनी प्रिया एवं ब्राह्मणों के वृन्दों से युक्त तथा सुरो के द्वारा समर्चित होते हुए ब्रह्मगिरि के कैलास पर समवस्थित थे वही पर यह गौतम भी चले गये थे ॥८८॥

—:※:—

## ३५—गौतमकृतमुमामहेश्वरस्तवन

कैलाशशिखरं गत्वा गौतमो भगवानृपिः ।
किं,चकार तपो वाऽपि कां चक्रे स्तुतिमुत्तमाम् ॥१
गिरिं गत्वा ततो वत्स वाचं संयम्य गौतमः ।
आस्तीर्य स कुशान्प्राज्ञः कैलासे पर्वतोत्तमे ॥२

उपविश्य शुचिर्भूत्वा स्तोत्रं चेदं ततो जगौ ।
अपतत्पुष्पवृष्टिश्च स्तूयमाने महेश्वरे ॥३

भोगार्थिनां भोगमभीप्सितं च, दातुं महान्त्यष्टवपूंपि धत्ते ।
सोमो जनानां गुणवन्तिनित्यं, देवं महादेवमिति स्तुवन्ति ॥४
कर्तुं स्वकीयैर्विषयैः सुखानि, भर्तुं समस्तं सचराचरं च ।
संपत्तये ह्यस्य विवृद्धये च, महीमयं रूपमितीश्वरस्य ॥५

सृष्टेः स्थितेः संहरणाय भूमेराधारमाधातुमपां स्वरूपम् ।
भेजे शिवः शान्ततनुर्जनानां, सुखाय धर्माय जगत्प्रतिष्ठितम् ॥६
कालव्यवस्याममृतस्रव च, जीवस्थितिं सृष्टिमथो विनाशनम् ।
मुदं प्रजानां सुखमुन्नतिं च, चक्रेऽर्कचन्द्राग्निमयं शरीरम् ॥७

श्री नारदजी ने कहा—भगवान् गौतम ऋषि ने कैलास के शिखर पर पहुँच कर क्या किया था ? क्या कोई वहाँ पर उन्होंने तपस्या की थी अथवा कौन सी उत्तम स्तुति की थी ? ॥१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स ! फिर उस कैलास पर जाकर उस गौतम ने अपनी वाणी का सर्व प्रथम संयम किया था । फिर उस पर्वतों में परम श्रेष्ठ कैलास पर उस परम प्राज्ञ गौतम ने कुशाओं को फैला दिया था । उस स्थल पर वह उपविष्ट हो गये थे और पवित्र होकर उन्होंने इस नीचे बताये जाने वाले स्तोत्र का गान किया था । इस प्रकार से महेश्वर प्रभु की स्तुति करने पर नभोमण्डल से पुष्पों की वृष्टि हुई थी ॥२-३॥ गौतम ने इस प्रकार से महेश्वर की स्तुति करते हुए कहा था—गौतम बोले—हे भगवन् ! आप भोगों के अभिलाषा रखने वाले अपने भक्तों को उनका अभीष्ट भोग प्रदान करने के लिये महान् आठ वपुओं को धारण किया करते हैं । आप उमादेवी के सहित अपने जनों के लिये ही नित्य उन गुणों से युक्त आठ शरीरों को धारण करते हैं । सभी इनका देव-महान् देव हैं—ऐसा स्तवन किया करते हैं ॥४॥ आप अपने विषयों के द्वारा सुखों का संवर्धन करने के लिये तथा इस सम्पूर्ण चराचर विश्व का भरण करने के वास्ते और इस विश्व की सम्पत्ति

एव विशेष वृद्धि के लिये ईश्वर आपका यह महीमय ही स्वरूप है ॥५॥ शिव प्रभु सृजन-स्थिति-और संहार के लिये तथा भूमि के आधार को रखने के वास्ते आप जल के स्वरूप को धारण किया करते है। शान्त स्वरूप वाले भगवान् शिव अपने भक्तजनो के सुख तथा धर्म के लिये ही इस जगत् में प्रतिष्ठित रहा करते हैं ॥६॥ इस काल की व्यवस्था को—अमृत के स्रवण को—जीवो की स्थिति—सृष्टि और विनाश-प्रजाओं का आनन्द-सुख और उन्नति को आपका चन्द्राग्निमय शरीर किया करता है ॥७॥

वृद्धि गति शक्तिमथाक्षराणि, जीवव्यवस्थां मुदमप्यनेकाम् ।
स्रष्टुं कृत वायुरितीशरूप, त्व वेत्सि नून भगवन्भवन्तम् ॥८
भेदं विना नैव कृतिर्न धर्मो,नाऽऽत्मीयमन्यन्नदिशोऽन्तरिक्षम् ।
द्यावापृथिव्यो न च भुक्तिमुक्ती,तस्मादिद व्योमवपुस्तवेश ॥९
धर्म व्यवस्थापयितु व्यवस्य,ऋक्सामशास्त्राणि यजुश्च शाखाः ।
लोके च गाथाःस्मृतयःपुराणमित्यादिशब्दात्मकतामुपैति॥१०
यष्टा क्रतुर्यान्यपि साधनानि,ऋत्विक्प्रदेश(य)फलदेशकालाः,।
त्वमेव,श भो परमार्थतत्त्व,वदन्ति यज्ञाङ्गमय वपुस्ते ॥११
कर्ता प्रदाता प्रतिभूः प्रदानं,सर्वज्ञसाक्षी पुरुषः परश्च ।
प्रत्यात्मभूतः परमार्थरूप,स्त्वमेव सर्वं किमु वाग्विलासैः ॥१२
न वेदशास्त्रैं गुरुभिः प्रदिष्टो,न नासि बुद्ध्यादिभिरप्रघृष्यः।
अजोऽप्रमेयःशिवशब्दवाच्यस्त्वमस्तिसत्य भगवन्नमस्ते ॥१३
आत्मं कृता स्वप्रकृति कदाचिदंक्षच्छिवः सपदियं ममेति,।
पृथक्कृदं वाभवदप्रतर्क्याचिन्त्यप्रभावो बहुविश्वमूर्तिः ॥१४

वृद्धि-गति-शक्ति-अक्षर और अनेक प्रकार का आनन्द तथा जीवो की व्यवस्था का सृजन करने के लिये ही ईश का वायु स्वरूप होता है। हे भगवन् ! आप निश्चय ही अपने आपको जानते हैं अर्थात् अपने आपका ज्ञान आपको ही होता है अन्य को नही है ॥८॥ भेदो के विना न कोई कृति (यत्न) है और न धर्म ही होता है। अन्य कोई आत्मीय

नहीं है—न दिशाऐं हैं और न अन्तरिक्ष ही है। ये द्यावा पृथिवी भी नहीं है और न भुक्ति है तथा न मोक्ष है। इसीलिये हे ईश ! आपका यह व्योम रूपी वपु होता है ॥९॥ धर्म की व्यवस्था करने के ही लिये पृथक् ऋग्वेद-यजुर्वेद की शाखाऐँ-सामवेद-शास्त्र और लोक में गाथा-स्मृतियाँ-पुराण इत्यादि शब्द शास्त्रों के समुदाय के स्वरूप को आप ही स्वयं प्राप्त हुआ करते हैं ॥१०॥ यजन करने वाला-यज्ञ-यजन के समस्त साधन-ऋत्विक जन-यजन का स्थल-फल-देश और काल ये सभी कुछ हे शम्भो ! आप ही हैं अर्थात् आपके ही विभिन्न रूप हैं। परमार्थ तत्व आपको ही कहते हैं। यह यज्ञाङ्गमय आपका ही एक स्वरूप होता है ॥११॥ कर्म करने वाला—प्रदान करने वाला-प्रतिभू प्रदान-सब कुछ का ज्ञाता-सबको देखने वाला-पर पुरुष-प्रत्येक आत्मा के रूप में रहने वाले और परमार्थ भूत सभी कुछ आप ही का रूप है जो भिन्नतया दिखाई दिया करता है। विशेष वाणी के विलासों से क्या लाभ है अर्थात् आपके विषय में कुछ अधिक कहना व्यर्थ है ॥१२॥ आप वेदों और शास्त्रों के द्वारा तथा गुरुओं के द्वारा प्रदिष्ट नहीं हो सकते हैं। बुद्धि आदि के द्वारा भी आप प्रपंच करने के योग्य नहीं हैं। आप अजन्मा हैं—प्रमा के द्वारा जानने के योग्य नहीं हैं। आप "शिव"—इस शब्द के द्वारा कहने के योग्य होते हैं। आप सत्य स्वरूप वाले हैं। हे भगवन् ! आपको मेरा सादर नमस्कार है ॥१३॥ अपनी आत्मा की स्वकीय प्रकृति को किसी समय में भगवान् शिव ने यह इच्छा की थी कि यह सब मेरी ही सम्पत्ति है उसी समय में तर्कना न करने के योग्य और अचिन्तनीय प्रभाव वाले महाविश्वमूर्त्ति पृथक् हो गये थे ॥१४॥

भावेऽभिवृद्धा च भवे भवे च,
स्वकारण कारणमास्थिता च।
नित्या शिवा सर्वसुलक्षणा वा,
विलक्षणा विश्वकरस्य शक्तिः ॥१५
उत्पादन सस्थितिरग्रवृद्धि-
लयासतां यत्र सनातनास्ते।

एकैव मूर्तिर्न समस्ति किंचिद-
साध्यमस्या दयिता हरस्य ॥१६
यदर्थमन्नानि धनानि जीवा,
यच्छन्ति कुर्वन्ति तपांसि धर्मान् ।
साऽपीयमम्बा जगतो जनित्री,
प्रिया तु सोमस्य महासुकीर्तिः ॥१७
यदीक्षित काङ्क्षति वासवोऽपि,
यन्नामतो मङ्गलमाप्नुयाच्च ।
या व्याप्य विश्व विमलीकरोति,
सोमा सदा सोमसमानरूपा ॥१८
ब्रह्मादिजीवस्य चराचरस्य,
बुद्ध्यक्षिचैतन्यमनः सुखानि ।
यस्याः प्रसादात्फलवन्ति नित्यं,
वागीश्वरी लोकगुरोः सुरम्या ॥१९
चतुर्मुखस्यापि मनो मलीनं,
किमन्यजन्तोरिति चिन्त्य माता ।
गङ्गाऽवतारं विविधैरुपायैः,
सर्वं जगत्पावयितुं चकार ॥२०
श्रुतीः समालक्ष्य हरप्रभुत्वं,
विश्वस्य लोकः सकलैः प्रमाणैः ।
कृत्वा च धर्मान्बुभुजे च भोगान्-
विभूतिरेषा तु सदाशिवस्य ॥२१

भाव मे अभिवृद्ध और भव-भव में अपने कारण स्वरूप कारण में समास्थित-नित्या-समस्त सुलक्षणो वासी तथा विलक्षण विश्व के करने वाले की शक्ति ही शिवा है। अर्थात् शिव की शक्ति ही गौरी का स्वरूप धारण करने वाली उमा है उनसे भिन्न नहीं है ॥१५॥ उत्पादन-संस्थिति-अन्न की वृद्धि-लय और सत्ता का जहाँ पर आपके सनातन हैं वे सभी एक ही मूर्त्ति हैं और कुछ भी नहीं है जो इसकी असाध्य

है। यह हर की दयिता है ॥१६॥ जिसके लिये जीव अन्न और धनो को दिया करते हैं और धर्मों को तथा तपो को किया करते हैं वह भी यह जगदम्बा इस जगत् के जनन करने वाली है और यह भी सुकीर्ति वाली सोम की प्रिया है ॥१७॥ जिसकी कृपा दृष्टि की इन्द्र भी अभिलाषा रखता है और जिसके परम पावन नाम के स्मरण एवं उच्चारण से मङ्गल की प्राप्ति किया करता है। जो इस सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके उसको विमल किया करती है वह सोम के ही सदा समान स्वरूप वाली सोमा है ॥१८॥ ब्रह्मा से आदि लेकर चराचर जीवो के बुद्धि-नेत्र-चैतन्य और मन के सुख जिसके प्रसाद से ही नित्य फल वाले हुआ करते हैं वह लोको के गुरु भगवान् शिव परम सुरम्य वागीश्वरी हैं ॥१९॥ चतुर्मुख (ब्रह्मा) का भी मन मलिन रहता है तो दूसरे जन्तु की बात ही क्या है-यही विचार करके माता ने इस सब जगत् को पावन करने के लिये अनेक उपायो के द्वारा गङ्गा का अवतरण किया था ॥२०॥ मुनियो को विश्व के हर-प्रमुख का अवलोकन कर लोक समस्त प्रमाणो से धर्मों को करके भोगो का उपभोग किया करता था—यह सदा शिव भगवान् की विभूति है ॥२१॥

कार्यं क्रियाकारकसाधनानां,
वेदोदितानामथ लौकिकानाम् ।
यत्साध्यमुत्कृष्टतमं प्रियं च,
प्रोक्ता च सा सिद्धिरनादिकर्तुः ॥२२
ध्यात्वा वरं ब्रह्म परं प्रधानं,
यत्सारभूतं यदुपासितव्यम् ।
यत्प्राप्य मुक्ता न पुनर्भवन्ति,
सद्योगिनो मुक्तिरुमापतिः सः ॥२३
यथा यथा शम्भुरमेयमाया-
रूपाणि धत्ते जगतो हिताय ।
तद्योगयोग्यानि तथैव धत्से,
पतिव्रतात्वं त्वयि मातरेवम् ॥२४

इत्येवं स्तुवतस्तस्य पुरास्ताद्वृषभध्वजः ।
उमया सहितः श्रीमान्गणेशादिगणैर्वृतः ॥२५
साक्षादागत्य तं शंभुः प्रसन्नो वाक्यमब्रवीत् ॥२६
किं ते गौतम दास्यामि भक्तिस्तोत्रै व्रतैः शुभैः ।
परितुष्टोऽस्मि याचस्व देवानामपि दुष्करम् ॥२७

वेदो के द्वारा वर्णित तथा लौकिक कार्य-क्रिया-कारक और साधनों का जो सबसे उत्कृष्टतम और प्रियसाध्य है वह उसी अनादि कर्त्ता की ही सिद्धि बतायी गयी है ॥२२॥ परम श्रेष्ठ और सर्व प्रमुख ब्रह्म का ध्यान करके जो भी सारभूत है और जो उपासना करने के योग्य है— जिसको प्राप्त करके मुक्त हो जाने वाले फिर प्राणी जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं और सद्योगियो की मुक्ति है वह उमा के ही पति देव हैं ॥२३॥ जैसे-जैसे भगवान् शम्भु इस जगत् के हित के लिये अमेय माया के रूपो को धारण किया करते हैं उसी-उस योग के योग्य उसी प्रकार के जगदम्बा भी आपके विषय मे पतिव्रतात्व को धारण किया करती हैं ॥२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस तरह से स्तवन करने वाले उस गौतम मुनि के सामने उमादेवी के सहित गणेश आदि से युक्त श्रीमान् वृषभध्वज भगवान शम्भु साक्षात् उपस्थित होकर बहुत ही अधिक प्रसन्न होकर उस गौतम से यह वाक्य बोले—॥२५-२६॥ भगवान् शिव ने कहा—हे गौतम ! तुम्हारे भक्तिभाव से समन्वित परम शुभ स्तोत्रो से मैं तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हो गया हूँ । मैं तुमको क्या दूँ ? तुम जो देवगणो को प्राप्त होना बहुत कठिन हो उसको मुझ से प्राप्त कर लो ॥२७॥

इति श्रुत्वा जगन्मूर्तेर्वाक्यं वाक्यविशारदः ।
हर्षबाष्पपरीताङ्गो गौतमः पर्यचिन्तयत् ॥२८
अहो दैवमहा धर्मो ह्यहो व विप्रपूजनम् ।
अहो लोकगतिश्चित्रा अहो धातर्नमोऽस्तु ते ॥२९
जटास्थितां शुभां गङ्गां देहि मे त्रिदशार्चित ।
यदि तुष्टोऽसि देवेश त्रयीधाम नमोऽस्तु ते ॥३०

त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचितं त्वया ।
आत्मनस्तूपकाराय तद्याचस्वाकुतोभयः ॥३१
स्तोत्रेणानेन ये भक्तास्त्वां च देवीं स्तुवन्ति वै ।
सर्वकामसमृद्धाः स्युरेतद्धि वरयाम्यहम् ॥३२
एवमस्त्विति देवेशः परितुष्टोऽब्रवीद्वचः ।
अन्यानपि वरान्मत्तो याचस्व विगतज्वरः ॥३३
एवमुक्तस्तु हर्षेण गौतमः प्राह शंकरम् ॥३४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन जगन्मूर्ति भगवान् शम्भु के इस परम सुरम्य वचन का श्रवण करके हर्षातिरेक से निकले हुए अश्रुओं से भीगे हुए अङ्गों वाले तथा वचनों में कहने में बड़े पण्डित गौतम मुनि ने विचार किया था ॥२८॥ अहो ! दैव अर्थात् दैव के विषय में कैसा आश्चर्य है । ओहो ! यह धर्म कितना अद्भुत है और विप्रों के पूजन का कैसा विलक्षण प्रभाव होता है । ओहो ! यह लोक की गति कैसी अद्भुत है । हे धाता ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम सादर समर्पित है ॥२९॥ गौतम मुनि ने कहा—हे देवों के द्वारा अभ्यर्चित ! हे देवेश्वर ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं तो अपनी जटा में स्थित गङ्गा को जो शुभ है मुझे प्रदान कर दीजिए । हे त्रयीधाम ! अर्थात् वेदों के द्वारा प्राप्त होने वाले धाम ! आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥३०॥ ईश्वर ने कहा—यह जो गङ्गा की याचना तुमने की है वह तो तीनों लोकों के उपकार के ही लिये की है अब अपने आपकी भलाई के लिये भी सर्वथा निडर होकर मुझ से कुछ याचना करो ॥३१॥ गौतम मुनि ने कहा—इस स्तोत्र से जिसके द्वारा मैंने आपका स्तवन किया है उससे भक्त गण आपकी और देवी जगदम्बा की स्तुति करते हैं वे अपनी सम्पूर्ण कामनाओं से समृद्ध हो जावें—यह मैं आप से वरदान चाहता हूं ॥३२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—परम परितुष्ट देवेश्वर ने यह वचन कहा—ऐसा ही होगा अर्थात् जो तुमने वरदान माँगा है वह पूरा होगा । हे गौतम ! इनके अतिरिक्त और भी वरदानों की तुम विगत ज्वर होकर याचना करो ॥३३॥ इस प्रकार से भगवान् शिव के द्वारा

जब गौतम मुनि से कहा गया था तो वह बहुत प्रसन्नता से शंकर भगवान् से बोले—॥३४॥

इमां देवी जटासस्थां पावनी लोकपावनीम् ।
तव प्रिया जगन्नाथ उत्सृज ब्रह्मणो गिरौ ॥३५
सर्वासां तीर्थभूता तु यावद्गच्छति सागरम् ।
ब्रह्महत्यादिपापानि मनोवाक्कायिकानि च ॥३६
स्नानमात्रेण सर्वाणि विलय यान्तु शंकर ।
चन्द्रसूर्योपरागे च अयने विषुवे तथा ॥३७
सक्रान्तौ वैधृतौ पुण्यतीर्थेष्वन्येषु यत्फलम् ।
अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्य जायता हर ॥३८
श्लाघ्य कृते तपः प्रोक्तं त्रेतायां यज्ञकर्म च ।
द्वापरे यज्ञदाने च दानमेव कलौ युगे ॥३९
युगधर्माश्च ये सर्वे देशधर्मास्तथैव च ।
देशकालादिसयोगे यो धर्मो यत्र शस्यते ॥४०
यदन्यत्र कृत पुण्यं स्नानदानादिसयमैः ।
अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्यं जायतां हर ॥४१
यत्र यत्र त्विय याति यावत्सागरगामिनी ।
तत्र तत्र त्वया भाव्यमेष चास्तु वरो वरः ॥४२

गौतम मुनि ने कहा—आपकी जटाओ मे समवस्थित स्वय परम पवित्र और सब लोकों को पावन करने वाली आपकी परम प्रिया गङ्गा को हे जगन्नाथ ! ब्रह्माजी के गिरि पर छोड़ दीजिए ॥३५॥ यह समस्त सरिताओ की भी तीर्थभूता है और जब तक यह सागर मे जायगी तब तक ब्रह्म हत्या प्रभृति महान् पापों को और मन वाणी तथा शरीर से किये जाने वाले सब पाप हे शङ्कर ! इसके स्नान मात्र से ही विलीन हो जाया करें । चन्द्र-सूर्य के ग्रहण के समय मे-अयन मे-विषुव के अवसर पर-सक्रान्ति मे-वैधृति मे तथा अन्य पुण्य तीर्थों मे स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है हे हर ! इस गङ्गादेवी के केवल स्मरण मात्र से ही वह पुण्य-फल प्राप्त हो जाना चाहिए ॥३६-३८॥ कृत युग

मे तपश्चर्या करना परम श्लाघा करने के योग्य उत्तम कर्म समझा जाता था। त्रेतायुग मे यज्ञादि का यजन करना सर्वोत्तम कर्म माना गया था। द्वापर मे यज्ञो के साथ दान देने का परम श्रेष्ठ फल होता था। इस कलियुग मे केवल दान का उत्तम फल माना गया है ॥३९॥ ये सभी युगो के धर्म तथा विभिन्न देशों के विभिन्न धर्म और देश तथा काल आदि के संयोग मे जो धर्म प्रशस्त माना जाया करता है ॥४०॥ जो भी स्नान और दान आदि के द्वारा सयमो से अन्य स्थलो मे किये जाने पर पुण्यमय होता है वह इसके तो केवल स्मरण मात्र से ही हे हर ! वह पुण्य हो जाया करे—यह भी वरदान मुझे प्रदान कीजिए क्योंकि मैंने ही इस गङ्गा के भूलोक मे ले जाने की याचना की है ॥४१॥ जहाँ पर यह गङ्गा जावे जब तक कि यह सागर मे गमन करे वहाँ-वहाँ पर कृपा करके आप भी विद्यमान रहें—यही मेरा श्रेष्ठ वरदान है जिसकी याचना मैं आप से कर रहा हूँ ॥४२॥

योजनाना तूपरि तु दश यावच्च सख्यया ।
तदन्तरप्रविष्टाना महापातकिनामपि ॥४३
तत्पितृणा च तेषा च स्नानायाऽऽगच्छता शिव ।
स्नाने चाप्यन्तरे मृत्योर्मुक्तिभाजो भवन्तु वै ॥४४
एकतः सर्वतीर्थानि स्वर्गमर्त्यरसातले ।
एषा तेभ्यो विशिष्टा तु अल शंभो नमोऽस्तु ते ॥४५
तद्गौतमवचः श्रुत्वा तथाऽस्त्वित्यब्रवीच्छिवः ।
अस्याः परतरं तीर्थं न भूत न भविष्यति ॥४६
सत्य सत्य पुनः सत्यं वेदे च परिनिष्ठितम् ।
सर्वेषां गौतमी पुण्या इत्युक्त्वाऽन्तर धीयत ॥४७
ततो गते भगवति लोकपूजिते,
तदाज्ञया पूर्णबलः स गौतमः ।
जटा समादाय सरिद्वरा ता,
सुरप्रंसो ब्रह्मगिरिं विवेश ॥४८

ततस्तु गौतमे प्राप्ते जटामादाय नारद ।
पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र समाजग्मुः सुरेश्वराः ॥४६
ऋषयश्च महाभागा ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा ।
जयशब्देन तं विप्रं पूजयन्तो मुदान्विताः ॥५०

दश योजनाओं की संख्या मे अर्थात् दश योजन तक की जब गङ्गा दूरी पर हो और उसके भीतर जब महापात की लोग प्रवेश कर लेवें जो कि गङ्गा मे स्नान करने के लिये गमन कर रहे हो तो हे शिव ! उनकी तथा उनके पितरो की स्नान करने के अन्तर में ही अर्थात् मार्ग मे ही मृत्यु हो जावे तो वे सभी मुक्ति के प्राप्त करने के अधिकारी हो जाया करें ॥४२-४४॥ हे शम्भो ! स्वर्गलोक-मनुष्य लोक और रसातल मे एक ओर तो अन्य समस्त बड़े से भी बड़े तीर्थ हों उन सभी तीर्थों से यह महान एव विशिष्ट होवे बस यही वरदान मेरे लिये पर्याप्त है । मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥४५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन गौतम मुनि के कहे हुए वचनो का श्रवण करके शिवजी ने कहा था यह सभी कुछ जो भी तुमने याचनाऐं की हैं पूर्ण होंगी । अब इस गङ्गा से बड़ा कहीं पर भी कोई तीर्थ न था और न भविष्य मे भी होगा ॥४६॥ यह सर्वथा सत्य है और पुनरपि मैं यही कहता हूं कि यह नितान्त सत्य है तथा वेद मे भी परिनिष्ठित है कि अन्य सभी तीर्थों मे गौतमी गङ्गा परमाधिक पुण्यमयी है—इतना कह कर भगवान् शम्भु वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे ॥४७॥ इसके अनन्तर लोको के द्वारा वन्दित भगवान् शिव के गमन कर जाने पर उनकी आज्ञा से पूर्ण म… से युक्त वह गौतम मुनि शम्भु की जटा से उस श्रेष्ठ सरिता को लाक… सुरगण से समावृत होते हुए गौतम ने ब्रह्मगिरि मे प्रवेश किया था ॥४८॥ हे नारद ! इसके अनन्तर जटा को लेकर गौतम मुनि के वहाँ प्राप्त हो जाने पर वहाँ पर पुष्पो की वृष्टि हुई थी और सभी सुरेश्वर वहीं पर समागत हो गये थे ॥४९॥ सब ऋषिगण-महान् भाग वाले ब्राह्मण और क्षत्रिय जयकार की ध्वनि के द्वारा परमानन्द से युक्त होकर उस विप्र गौतम की अभ्यर्चना करने लगे थे ॥५०॥

## ३६—स्वर्गादीपंचदशाकृत्यागङ्गायागमन

महेश्वरजटाजूटाद्गङ्गामादाय गौतमः ।
आगत्य ब्रह्मणः पुण्ये ततः किमकरोद्गिरौ ॥१
आदाय गौतमो गङ्गां शुचिः प्रयतमानसः ।
पूजितो देवगन्धर्वै स्तथा गिरि निवासिभिः ॥२
गिरेर्मूर्ध्नि जटां स्थाप्य स्मरन्देव त्रिलोचनम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा गङ्गां स द्विजसत्तमः ॥३
त्रिलोचनजटोद्भूते सर्वकामप्रदायिनि ।
क्षमस्व मातः शान्ताऽसि सुखं याहि हितं कुरु ॥४
एवमुक्ता गौतमेन गङ्गा प्रोवाच गौतमम् ।
दिव्यरूपधरा देवी दिव्यस्रगनुलेपना ॥५
गच्छेयं देवसदनमथवाऽपि कमण्डलुम् ।
रसातलं वा गच्छेयं जातस्त्वं सत्यवागसि ॥६
त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचिता मया ।
शंभुना च तया दत्ता देयि तन्नान्यथा भवेत् ॥७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—गौतम ने महेश्वर की जटा-जूट से गङ्गा को लाकर ब्रह्माजी के पुण्य गिरि में समागत होकर इसके उपरान्त वहाँ पर क्या किया था ? ॥१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—गौतम मुनि गङ्गा को लाकर परम शुचि और प्रयत मन वाला हो गया था और वहाँ पर उस पर्वत के निवासी देवों और गन्धर्वों के द्वारा वह पूजित हुआ था ॥२॥ फिर उस गौतम ने उस पर्वत के शिखर पर जय को स्थापित करके त्रिलोचन देव का स्मरण करते हुए हाथ जोड़ कर वह द्विज श्रेष्ठ गङ्गा से बोला—॥३॥ गौतम मुनि ने कहा—हे माता ! आप तो भगवान् त्रिलोचन देव की जटा से समुद्भूत हुई हैं और सभी मनोरथों को प्रदान करने वाली हैं। आप तो परम शान्त स्वरूप वाली हैं मुझे क्षमा करिए। अब आप सुख पूर्वक गमन करिए तथा सबका

हित करिए ॥४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से गौतम मुनि के द्वारा कही गयी गङ्गा ने फिर गौतम से कहा था जो गङ्गा उस समय मे परमाधिक दिव्य रूप के धारण करने वाली तथा दिव्य माला एव अनुलेपन से युक्त देवी थी ॥५॥ श्री गङ्गा देवी ने कहा—मैं अब देवो के सदन स्वर्ग मे जाऊँगी अथवा परमेष्ठी के कमण्डलु में पुनः प्राप्त हो जाऊँगी या रसातल को चली जाऊँगी। तुम तो सत्य वाणी वाले हो ही गये हो। तात्पर्य यह है कि तुमने मेरे लाने की प्रतिज्ञा की थी वह पूरी हो गई है ॥६॥ गौतम मुनि ने कहा—मैंने जो भगवान् शम्भु से आपके प्राप्त करने की याचना की थी वह याचना तीनो लोकों की भलाई के ही लिये की थी। भगवान् शम्भु ने भी उसी मेरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपको मुझे दिया है। हे देवि ! वह वचन अन्यथा नही होना चाहिए ॥७॥

तद्गौतमवचः श्रुत्वा गङ्गा मेने द्विजेरितम् ।
त्रेधाऽऽत्मानं विभज्याथ स्वर्गमर्त्यरसातले ।.८
स्वर्गे चतुर्धा व्यगमत्सप्तधा मर्त्यमण्डले ।
रसातले चतुर्वैव सैव पञ्चदशाकृतिः ॥६
सर्वत्र सर्वभूतैव सर्वपापविनाशिनी ।
सर्वकामप्रदा नित्य सैव वेदे प्रगीयते ॥१०
मर्त्या मर्त्यगतामेव पश्यन्ति न तल गताम् ।
नैव स्वर्गगता मर्त्याः पश्यन्त्यज्ञानबुद्धयः ॥११
यावत्सागरगा देवी तावद्देवमयी स्मृता ।
उत्सृष्टा गौतमेनैव प्रायात्पूर्वार्णव प्रति ॥१२
ततो देवर्षिभिर्जुष्टां मातर जगतः शुभाम् ।
गौतमो मुनिशार्दूलः प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥१३
त्रिलोचन सुरेशानं प्रथमं पूज्य गौतमः ।
उभयोस्तीरयोः स्नानं करोमीति दधे मतिम् ॥१४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस गौतम के विनम्र वचन को सुन कर उस द्विज के द्वारा कथित वचन को गङ्गा ने स्वीकार कर लिया था।

इसके अनन्तर स्वर्ग-पाताल और मनुष्य लोक में अपने स्वरूप को तीन भागों मे उस देवी ने विभाजित किया था ।८। स्वर्ग मे भी उसने पुनः चार भाग किये थे । मर्त्यलोक मे अपने स्वरूप को सात भागो मे विभाजित किया था और रसातल मे भी चार भागों मे अपना स्वरूप विभक्त किया था । इस प्रकार से वह पन्द्रह आकृतियो वाली हो गई थी ।।६।। वह सर्वत्र सर्व भूता और समस्त पापो के विनाश कर देने वाली है । सब कामनाओ का पूर्ण करने वाली नित्य ही वही वेदों मे गायी जाया करती हैं ।।१०।। अज्ञान मे पूर्ण बुद्धि वाले मनुष्य उसको इस मनुष्य लोक ही मे रहने वाली देखते है । वे उसको रसातल मे गमन करने वाली और स्वर्ग लोक मे गई हुई नही देखते हैं ।।११।। जब तक वह देवी सागर मे गमन करने वाली थी तब तक वह देवमयी कही गयी है । गौतम मुनि के द्वारा उत्सृष्ट हुई वह पूर्वार्णव के प्रति गमन कर गयी थी ।।१२।। इसके पश्चात् मुनियो मे शार्दूल के समान गौतम ने उस जगत् की परम शुभा-देवर्षियो के द्वारा सेवित माता की प्रदक्षिणा की थी ।।१३।। गौतम मुनि ने सर्व-प्रथम सुरेशान त्रिलोचन की पूजा की थी और फिर उसने मन मे ऐसा विचार किया था कि मैं दोनो तटो पर स्नान करूँगा ।।१४।।

स्मृतमात्रस्तदा तत्राऽऽविरासीत्करुणार्णवः ।
तत्र स्नानं कथं सिध्येदित्येवं शर्वमब्रवीत् ।।१५
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्तिनम्रस्त्रिलोचनम् ।।१६
देवदेव महेशान तीर्थस्नानविधिं मम ।
ब्रूहि सम्यङ्महेशान लोकानां हितकाम्यया ।।१७
महर्षे शृणु सर्वं च विधिं गोदावरीभवम् ।
पूर्वं नान्दीमुखं कृत्वा देहशुद्धिं विधाय च ।।१८
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च तेषामाज्ञां प्रगृह्य च ।
ब्रह्मचर्येण गच्छन्ति पतितालापवर्जिताः ।।१९
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ।।२०

भावदुष्टिं परित्यज्य स्वधर्मपरिनिष्ठितः ।
श्रान्तसंवाहनं कुर्वन्दद्यादन्नं यथोचितम् ॥२१
अकिंचनेभ्यः साधुभ्यो दद्याद्वस्त्राणि कम्वलान् ।
शृण्वन्हरिकथां दिव्यां तथा गङ्गासमुद्भवाम् ॥
अनेन विधिना गच्छन्सम्यक्तीर्थफलं लभेत् ॥२२

उस अवसर पर वहाँ पर स्मरण मात्र करने से करुणा के सागर भगवान् शिव तुरन्त प्रकट हो गये थे उस समय में वहां पर स्नान किस प्रकार से सिद्ध होगा—यह इस प्रकार से शम्भु से पूछा था ॥१५॥ अपने दोनों हाथों को जोड़ कर भक्ति की भावना से अत्यन्त विनम्र होकर भगवान् त्रिलोचन से कहा था ॥१६॥ गौतम ने कहा—हे देवों के भी देव ! हे महेशान ! समस्त लोकों के हित की कामना से मुझे तीर्थों के स्नान की विधि बतलाइये ॥१७॥ भगवान् शिव ने कहा—हे महर्षे ! अब गोदावरी मे होने वाली सम्पूर्ण विधि का मुझ से तुम श्रवण करो । सर्व प्रथम नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिए और फिर देह की शुद्धि करे ॥१८॥ ब्राह्मणो को भोजन करा कर उनकी आज्ञा को ग्रहण करना चाहिए । पतित प्राणियों के साथ वार्त्तालाप न करने वाले होकर ब्रह्मचर्य व्रत के साथ गमन किया करते हैं ॥१९॥ जिसके हाथ पैर और मन सुसयत होते हैं तथा विद्या-तप एवं जिसकी कीर्त्ति होती है वही पुरुष तीर्थ के पुण्य-फल का भागी हुआ करता है ॥२०॥ भावों के दोषों का परित्याग करके अपने धर्म मे परिनिष्ठित रहे और श्रान्तों का संवाहन करते हुए यथोचित अन्न देना चाहिए ॥२१॥ जो अकिञ्चन हो अर्थात् जिनके पास कुछ भी वस्त्रादि के साधन न हों उन साधु पुरुषों को वस्त्र और कम्वल भी देने चाहिए । फिर गङ्गा से समुत्पन्न होने वाली श्री हरि की दिव्य कथा का श्रवण करते तीर्थ मे इस उपर्युक्त विधि से गमन करें तो भली भाँति यह मनुष्य तीर्थ का पुण्य-फल प्राप्त कर सकेगा ॥२२॥

## ३७—गौतमीमहत्त्ववर्णन

त्र्यम्बकश्च इति प्राह गौतमं मुनिभिर्वृतम् ॥१
द्विहस्तमात्रे तीर्थानि सम्भविष्यन्ति गौतम ।
सर्वत्राहं सन्निहितः सर्वकामप्रदस्तथा ॥२
गङ्गाद्वारे प्रयागे च तथा सागरसंगमे ।
एतेषु पुण्यदा पुंसां मुक्तिदा सा भगीरथी ॥३
नर्मदा तु सरिच्छ्रेष्ठा पर्वतेऽमरकण्टके ।
यमुना संगता तत्र प्रभासे तु सरस्वती ॥४
कृष्णा भीमरथी चैव तुङ्गभद्रा तु नारद ।
तिसृणां संगमो यत्र तत्तीर्थं मुक्तिदं नृणाम् ॥५
पयोष्णी संगता यत्र तत्रत्या तत्र मुक्तिदम् ।
इयं तु गौतमी वत्स यत्र कापि ममाऽऽज्ञया ॥६
सर्वेषां सर्वदा नृणां स्नानान्मुक्तिं प्रदास्यति ।
किंचित्काले पुण्यतमं किंचित्तीर्थं सुरागमे ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में मुनियों से आवृत गौतम से भगवान् त्र्यम्बकजी ने कहा ॥१॥ भगवान् शिव बोले—हे गौतम ! दो हाथ मात्र में तीर्थ होंगे । मैं यहाँ सर्वत्र सब कामों के प्रदान करने वाला मैं सन्निहित रहा करता हूँ ॥२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—गंगा द्वार में-प्रयाग में तथा सागर के सङ्गम में इन स्थलों में यह भागीरथी गङ्गा मनुष्यों को पुण्य फल प्रदान करने वाली तथा मुक्ति देने वाली हुआ करती है ॥३॥ अमर कण्टक पर्वत में सरिताओं में परम श्रेष्ठ नर्मदा है । वहाँ पर यमुना संगता होती है और प्रभास क्षेत्र में सरस्वती है ॥४॥ हे नारद ! कृष्णा-भीमरथी-तुङ्गभद्रा-इन तीनों का जहाँ पर सङ्गम होता है वह तीर्थ मनुष्यों को मुक्ति के प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥५॥ जहाँ पर वहाँ पर होने वाली पयोष्णी सरिता संगत हुआ करती है वह स्थल मुक्ति प्रदान करने वाला होता है । हे वत्स ! यह तो गौतमी गङ्गा है । जहाँ कहीं पर मेरी आज्ञा से संगता होती है ॥६॥ सर्वदा सभी मनुष्यों को यह स्नान करने से मुक्ति प्रदान करेगी ।

कुछ तीर्थ सुरो के आगमन होने पर किसी काल में विशेष पुण्य के प्रदाता होते हैं ॥७॥

सर्वेषां सर्वदा तीर्थं गौतमी नात्र संशयः ।
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च योजनानां शतद्वये ॥८
तीर्थानि मुनिशार्दूल सम्भविष्यन्ति गौतम ।
इयं माहेश्वरी गङ्गा गौतमी वैष्णवीति च ॥९
ब्राह्मी गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामदायिनी ।
ब्रह्मतेजःसमानीता सर्वपापप्रणाशनी ॥१०
स्मरणादेव पापौघहन्त्री मम सदा प्रिया ।
पञ्चानामपि भूतानामापः श्रेष्ठत्वमागताः ॥११
तत्रापि तीर्थभूतास्तु तस्मादापः पराः स्मृताः ।
तासां भागीरथी श्रेष्ठा ताभ्योऽपि गौतमी तथा ॥१२
आनीता सजटा गङ्गा अस्या नान्यच्छुभावहम् ।
स्वर्गे भुवि तले वाऽपि तीर्थं सर्वार्थद मुने ॥१३
इत्येतत्कथितं पुत्र गौतमाय महात्मने ।
साक्षाद्धरेण तुष्टेन मया तव निवेदितम् ॥१४
एवं सा गौतमी गङ्गा सर्वेभ्योऽप्यधिका मता ।
तत्स्वरूपं च कथितं कुतोऽन्या श्रवणस्पृहा ॥१५

किन्तु यह गौतमी गङ्गा सर्वदा ही समस्त मनुष्यों के लिये तीर्थ है उसमे कुछ भी संशय नही है। दो सौ योजनों मे साढ़े तीन करोड़ हे मुनि शार्दूल गौतम! तीर्थ समुत्पन्न होगे। यह माहेश्वरी गङ्गा है तथा गौतमी और वैष्णवी है ॥८-९॥ ब्राह्मी गोदावरी-नन्दा-सुनन्दा काम दायिनी हैं ब्रह्म तेज के द्वारा समानीता हैं और सब प्रकार के पापों का प्रणाश कर देने वाली हैं ॥१०॥ मेरी प्रिया सदा ही केवल स्मरण मात्र से ही पापों के समुदाय को नष्ट कर देने वाली होती है। पाँचों भूतो मे जल ही परम श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ है ॥११॥ उनमे भी जो जल तीर्थ भूत हैं। इसी कारण से जल सबसे प्रमुख कहे गये हैं। उन सबमे भागीरथी गङ्गा श्रेष्ठ है और उनसे भी गौतमी परम श्रेष्ठ है

॥१२॥ यह गौतमी जटाओं से सहित ही लाई गयी थी। हे मुने ! इससे अन्य कोई भी शुभा यह तथा समस्त अर्थों के देने वाला तीर्थ स्वर्ग में तथा भूतल में भी नहीं है ॥१३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे पुत्र ! यह सब साक्षात् भगवान् हर ने परम तुष्ट होकर महात्मा गौतम से कहा था और यह सब मैंने तुमको बतला दिया है ॥१४॥ इस रीति से यह गौतमी गङ्गा समस्त अन्य तीर्थों से अधिक श्रेष्ठ बतायी गयी है। उसका स्वरूप मैंने पूर्ण रूप से आपको वर्णित करके बतला दिया है। अब आप को अन्य क्या श्रवण करने की स्पृहा है सो मुझे बतलाइये जिसे मैं बतलाऊँ ॥१५॥

—※—

## ३=—कपोततीर्थवर्णन

कुशावर्तस्य माहात्म्यमहं वक्तुं न ते क्षमः।
तस्य स्मरणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥१
कुशावर्तमिति ख्यातं नराणां सर्वकामदम्।
कुशेनाऽऽवर्तितं यत्र गौतमेन महात्मना ॥२
कुशेनाऽऽवर्तयित्वा तु आनयामास तां मुनिः।
तत्र स्नानं च दानं च पितॄणां तृप्तिदायकम् ॥३
नीलगङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा निःसृता नीलपर्वतात्।
तत्र स्नानादि यत्किंचित्करोति प्रयतो नरः ॥४
सर्वं तदक्षयं विद्यात्पितॄणां तृप्तिदायकम्।
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु कपोतं तीर्थमुत्तमम् ॥५
तस्य रूपं च वक्ष्यामि मुने शृणु महाफलम्
तत्र ब्रह्मगिरौ कश्चिद्व्याधः परमदारुणः ॥ ६
हिनस्ति ब्राह्मणान्साधून्यतीन्गोपक्षिणो मृगान्।
एवंभूतः स पापात्मा क्रोधनोऽनृतभाषणः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—कुशावर्त्त का माहात्म्य बड़ा विशाल है। मैं। उसको तुम्हे बतला देने मे समर्थ नही हूँ अर्थात् उसका वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहिर है उसका तो केवल स्मरण ही कर लेने से मनुष्य कृत कृत्य (सफल) हो जाया करता है ॥१॥ वह "कुशावर्त्त" इस नाम से ही प्रसिद्ध हुआ है और मनुष्यो के सब मनोरथो के प्रदान करने वाला है। जहाँ पर महात्मा गौतम ने इसको कुशा से आवर्त्तित किया था ॥२॥ उस महा मुनि ने कुशा से आवर्त्तन करके उसका आनयन किया था। वहाँ पर स्नान करना तथा दान करना पितृगणो को बहुत ही अधिक तृप्ति देने वाला होता है ॥३॥ नील गङ्गा समस्त सरिताओं मे बहुत ही श्रेष्ठ है और वह नील पर्वत से निकली है। वहाँ पर कोई मनुष्य प्रयत होकर जो स्नान आदि जो कुछ भी किया करता है वह सभी अक्षय समझना चाहिए क्योंकि वह पितृगण को भी बहुत तृप्ति का देने वाला होता है। यह उत्तम तीर्थ तीनो लोको मे कपोत नाम से विख्यात है ॥४-५॥ हे मुने ! मैं उसका स्वरूप बतलाता हूं। जिसका कि महान् फल हुआ करता है। उसका तुम श्रवण करो। उस ब्रह्मगिरि मे एक व्याध रहता था जो बहुत ही दारुण था ॥६॥ वह सर्वदा ब्राह्मणो को-साधुओ को-यतियो को गौओ को तथा पक्षियो को और मृगो को मारा करता था। वह पापात्मा इसी तरह का था जो अत्यन्त क्रोधी एव मिथ्या भाषण करने वाला था ॥७॥

भीषणाकृतिरत्युग्रो नीलाक्षो ह्रस्वबाहुकः।
दन्तुरो नष्टनासाक्षो ह्रस्वपात्पृथुकुक्षिकः ॥८

ह्रस्वोदरो ह्रस्वभुजो विकृतो गर्दभस्वनः।
पाशहस्तः पापचित्तः पापिष्ठः सधनुः सदा ॥९

तस्य भार्या तथाभूता अपत्यान्यपि नारद।
तथा तु प्रेर्यमाणोऽसौ विवेश गहन वनम् ॥१०

स जघान मृगान्पापः पक्षिणो बहुरूपिणः।
पञ्जरे प्राक्षिपत्कांश्चिज्जीवमानां स्तथेतरान् ॥११

क्षुधया परितप्ताङ्गो विह्वलस्तृषया तथा ।
भ्रान्तदेशो बहुतरं न्यवर्तत गृहं प्रति ॥१२
ततोऽपराह्णे संप्राप्ते निवृत्ते मधुमाधवे ।
क्षणात्तडिद्गर्जितं च साभ्रं चवाभवत्तदा ॥१३
ववौ वायुः साश्मवर्षो वारिधारातिभीषणः ।
स गच्छंल्लुब्धकः श्रान्तः पन्थानं नावबुध्यतः ॥१४

वह बहुत ही भीषण आकृति वाला था । उसके नेत्र नीले वर्ण के थे और उसकी भुजाएँ बहुत छोटी थी । बड़े दाँतों वाला विनष्ट नाक और आँखों वाला छोटे पैरों वाला तथा बड़ी कुक्षियों वाला वह था ॥८॥ उसका उदर छोटा था भुजाएँ भी छोटी थी तथा अत्यन्त विकृत स्वरूप वाला था । उसकी ध्वनि गधे के समान थी । वह सर्वदा अपने हाथों में पाश लेकर रहा करता था । चित्त में उसके पाप ही भरा रहता था और धनुष हाथ में लेकर वह महान् पापिष्ट घूमा करता था ॥९॥ हे नारद ! उसकी भार्या भी वैसी ही दारुण और विकृत आकृति वाली थी और उसकी सन्तान भी उसी प्रकार की थी । उस पत्नी के द्वारा प्रेरित होकर गहन वन में प्रवेश किया करता था ॥१०॥ वन में प्रविष्ट होकर उस महान् पापी ने बहुत से स्वरूप वाले मृगों को और पक्षियों को मार डाला था । जो कुछ जीवित रह गये थे उन सबको उसने एक पिंजड़े में डाल दिया था ॥११॥ भूख से परितप्त अङ्गों वाला वह प्यास से भी बहुत घबड़ाया हुआ था । बहुत से वन के भागों में भ्रमण करने वाला वह अपने घर की ओर वापिस लौटा था ॥१२॥ जब दुपहर के बाद का समय हुआ तो उस समय में मधु माधव के निवृत्त हो जाने पर क्षण मात्र में ही उस समय में मेघों के सहित बिजली की गर्जना हुई थी ॥१३॥ उस समय में जल की घोर धाराओं से अत्यन्त भीषण पत्थरों की अर्थात् ओलों की वर्षा के सहित बड़ी भयानक वायु चलने लगी थी । वह व्याध घर को जा ही रहा था कि मार्ग में ही ऐसी घटना घटने लगी थी । वह बहुत ही थका हुआ था और महान् भयानक समय में अपने घर का मार्ग भूल गया था ॥१४॥

जल स्थलं गर्तमथो पन्थानमथवा दिशः ।
न बुबोध तदा पापः श्रान्तः शरणमप्यथ ॥१५
क्व गच्छामि क्व तिष्ठेयं किं करामोत्यचिन्तयत् ।
सर्वेषा प्राणिना प्राणानाहर्ताऽह यथाऽन्तकः ॥१६
ममाप्यन्तकरं भूत सप्राप्त चाश्मवर्षणम् ।
त्रातारं नैव पश्यामि शिला वा वृक्षमन्तिके ॥१७
एवं बहुविध व्याधो विचिन्त्यापश्यदन्तिके ।
वने वनस्पतिमिवि नक्षत्राणा यथाऽग्निजम् ॥१८
मृगाणा च यथा सिहमाश्रमाणा गृहाधिपम् ।
इन्द्रियाणां मन इव त्रातार प्राणिना नगम् ॥१९
श्रेष्ठ विटपिन शुभ्रं शाखापल्लवमण्डितम् ।
तमाश्रित्योपविष्टोऽभूत्क्लिन्नवासा स लुब्धकः ॥२०
स्मरन्भार्यापत्यानि जीवेयुरथवा न वा ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चास्त प्राप्तो दिवाकरः ॥२१

उस समय मे यह पापी इतना थका हुआ था कि उस अन्धड़ और तूफान मे उसे जल-स्थल-गड्ढा-मार्ग और दिशाऐं कुछ भी सूझ नही पड़ता था। वह किसकी शरण ग्रहण करे—यह वह नहीं जान सका था ॥१५॥ उसने सोचा कि मैं अब क्या करूँ ? मैं यमराज की भाँति ही समस्त प्राणियो के प्राणो का आहरण करने वाला हूँ। मेरा भी अन्त कर देने वाली अश्मो ( ओलो ) की वर्षा हो रही है। मैं इस समय मे अपना परित्राण करने वाला कोई भी नही देख रहा हूँ। न इस समय में मेरे समीप मे कोई शिला है और न कोई वृक्ष ही है जिसका आश्रय मैं ले सकूँ ॥१६-१७॥ इस तरह से बहुत रीति से उस व्याध ने सोचा था इसके उपरान्त उसने समीप मे ही एक वृक्ष को देखा था जो उस उपवन में वनस्पति की भाँति तथा नक्षत्रों मे अग्निज के समान था। जिस तरह से सब पशुओ मे सिंह होता है और समस्त आश्रमो मे गृहस्थ होता है तथा सब इन्द्रियों मे मन होता है उसी प्रकार से प्राणियों के त्राण करने वाले उस वृक्ष को व्याध ने देखा था ।'१८-१९॥ वह वृक्ष परम श्रेष्ठ शुभ्र

और शाखाओं तथा पल्लवों से विभूषित था। उसी वृक्ष का समाश्रय लेकर भीगे हुए वस्त्रों वाला वह व्याध बैठ गया था ॥२०॥ वह व्याध अपनी भार्या और बच्चों का स्मरण कर रहा था कि वे इस भीषण समय में जीवित भी रहे होंगे या नहीं। इसी बीच में वहीं पर सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये थे ॥२१॥

तमेव नगमाश्रित्य कपोतो भार्यया सह ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतो ह्यास्ते तत्र नगोत्तमे ॥२२
सुखेन निर्भयो भूत्वा सुतुष्टः प्रीत एव च ।
बहवो वत्सरा याता वसतस्तस्य पक्षिणः ॥२३
पतिव्रता तस्य भार्या सुप्रीता तेन चैव हि ।
कोटरे तन्नगे श्रेष्ठे जलवाय्वग्निर्जिते ॥२४
भार्यापुत्रैः परिवृतः सर्वदाऽऽस्ते कपोतकः ।
तस्मिन्दिने दैववशात्कपोतश्च कपोतकी ॥२५
भक्ष्यार्थं तु उभौ यातौ कपोतौ नगमभ्यगात् ।
साऽपि दैववशात्पुत्र पञ्जरस्थैव वर्तते ॥२६
गृहीता लुब्धकेनाथ जीवमानेव वर्तते ।
कपोतकोऽप्यपत्यानि मातृहीनान्युदीक्ष्य च ॥२७
वर्षं च भीषण प्राप्तमस्तं यातो दिवाकरः ।
स्वकोटरं तयाहीनमालोक्य विललाप सः ॥२८

उसी वृक्ष का आश्रय ग्रहण करके एक कपोत (कबूतर) अपनी भार्या के सहित पुत्र-पौत्रों से परिवृत होता हुआ उस उत्तम वृक्ष पर निवास किया करता था ॥२२॥ वह सुख के साथ निर्भय होकर परम सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर वहाँ रहा करता था। उसको वहाँ पर निवास करते हुए बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये थे ॥२३॥ उसकी भार्या पतिव्रता थी और उस अपने पति से भी वह परम प्रसन्न रहा करती थी। जल-अग्नि और वायु के भय से रहित उस श्रेष्ठ वृक्ष की खोतर में वह कबूतर अपनी भार्या और पुत्रों से परिवृत होता हुआ सर्वदा निवास किया करता है। उसी दिन में दैव वश से वह कपोत और कबूतरी दोनों ही भक्ष्य के

लिये चले गये थे । हे पुत्र ! यह कपोती भी भाग्य के वश से पिंजरे में स्थित होकर व्याध के कब्जे मे फँस गयी थी और वह कबूतर अपने आश्रम वाले वृक्ष पर समागत हो गया था । वह कपोती जीवित रहते हुए ही लुब्धक के द्वारा पकड़ ली गई थी । उस कपोत ने अपने बच्चों को माता से हीन देखा था ॥२४-२७॥ वर्षा बहुत ही भीषण हुई थी और सूर्यदेव भी अस्त हो गये थे । उस समय मे उस कपोत ने अपनी आश्रय की खोतर को पत्नी से रहित देखा तो वह विलाप करने लग गया था ॥२८॥

तां बद्धां पञ्चरस्थां वा न बुबोध कपोतराट् ।
अन्वारेभे कपोतो वै प्रियाया गुणकीर्तनम् ॥२९
नाद्याप्यायाति कल्याणी मम हर्षविवर्धिनी ।
मम धर्मस्य जननी मम देहस्य चेश्वरी ॥३०
धर्मार्थकाममोक्षाणां सैव नित्य सहायिनी ।
तुष्टे हसन्ती रुष्टे च मम दुःखप्रमार्जनी ॥३१
सखी मन्त्रेषु सा नित्य मम वाक्यरता सदा ।
नाद्याप्यायाति कल्याणी सप्रयातेऽपि भास्करे ॥३२
न जानाति व्रतं मन्त्रं देवं धर्मार्थमेव च ।
पतिव्रता पतिप्राणा पतिमन्त्रा पतिप्रिया ॥३३
नाद्याप्यायाति कल्याणी किं करोमि क यामि वा ।
किं मे गृहं काननं च तया हीन हि दृश्यते ॥३४
तया युक्तं श्रिया युक्तं भीषणं वाऽपि शोभनम् ।
नाद्याप्यायाति मे कान्ता यया गृहमुदीरितम् ॥३५

वह कपोतो का राजा यह नही जानता था कि वह उसकी पत्नी पिंजरे मे स्थित होकर बद्ध हो गयी है । तब तो अपनी पत्नी के वियोग मे विलाप करते हुए उस कपोत ने अपनी प्रिया के गुणो का कीर्तन करना आरम्भ कर दिया था ॥२९॥ कपोत कह रहा था—वह कल्याणी मेरे हर्ष को बढ़ाने वाली अभी तक भी नही आ रही है । वह प्रिया मेरे धर्म की जननी है और मेरे शरीर की स्वामिनी है ॥३०॥ धर्म, अर्थ,

काम, मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों की नित्य ही सहायता करने वाली भी वह ही मेरी प्रियतमा होती है। जब मैं परम क्रुद्ध होता था तो वह हँसती रहा करती थी और किसी कारण वश रुष्ट हो जाता था तो वह मेरे हार्दिक दुःख का परिमार्जन किया करती थी ॥३१॥ कभी किसी विषय में मन्त्रणा करने का अवसर होता था तो वह हमेशा मेरी सखी बन जाया करती थी अर्थात् हितैषी मित्र के समान सलाह दिया करती थी। वह सर्वदा मेरे वचनों में रति रक्खा करती थी। भगवान् भास्कर भी अस्त हो गये हैं और इतना विलम्ब होने पर भी वह कल्याणी भार्या अब तक भी नहीं आयी है ॥३२॥ वह मेरी पत्नी परम पतिव्रता है—पति को ही प्राण के समान मानने वाली है—पति ही उसका एक मात्र मन्त्र है और पति की वह बहुत ही प्यारी है। वह न कोई व्रत जानती है न मन्त्र का ही ज्ञान है—दैव को भी वह कुछ नहीं समझती और पति के सिवाय धर्मार्थ को भी नहीं जानती है ॥३३॥ वह मेरी परम कल्याणी प्रिया अभी तक भी नहीं आई है। मैं कहाँ जाऊँ और अब क्या करूँ ? अब यह मेरा घर क्या है—यह तो वन जैसा ही है। उसके विना यह गृह बहुत बुरा दिखाई दे रहा है ॥३४॥ जब इस घर में वह रहती है तो यह गृह श्री से सुसम्पन्न दिखाई देता है और चाहे यह कैसा भी भीषण हो तो अच्छा दिखलाई दिया करता है। वह मेरी कान्ता अभी तक भी नहीं आयी है जिसके होने पर ही यह गृह कहा गया है ॥३५॥

विनाऽनया न जीविष्ये त्यजे वाऽपि प्रियां तनुम्।
किं कुर्वन्तु त्वपत्यानि लुप्तधर्मस्त्वहं पुनः ॥३६

एवं विलपतस्तस्य भर्तुर्वाक्यं निशम्य सा।
पञ्जरस्थैव सा वाक्यं भर्तारं मिदमब्रवीत् ॥३७

अत्राहमस्मि बद्धैव विवशाऽस्मि खगोत्तम।
आनीताऽहं लुब्धकेन बद्धा पाशैर्महामते ॥३८

धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि पतिर्वक्ति गुणान्मम।
सतो वाऽप्यसतो वाऽपि कृतार्थाऽहं न संशयः ॥३९

तुष्टे भर्तरि नारीणा तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।
विपर्यये तु नारीणामवश्यं नाशमाप्नुयात् ॥४०
त्व देव त्व प्रभुर्मह्यं त्व सुहृत्त्व परायणम् ।
त्वं व्रतं त्वं पर ब्रह्म स्वर्गो मोक्षस्त्वमेव च ॥४१
मा चिन्तां कुरु कल्याण धर्मं बुद्धि स्थिरां कुरु ।
त्वत्प्रसादाच्च भुक्ता हि भोगाश्च विविवा मया ॥४२
अलं खेदेन मज्जेन धर्मं बुद्धि कुरु स्थिराम् ॥४३

उस कपोत ने उक्त प्रकार पत्नी के वियोग मे क्रन्दन करते हुए कहा था कि अब मैं इसके बिना जीवित नही रहूँगा अथवा इस प्रिय शरीर का ही परित्याग कर दूँ । ये बच्चे क्या करेंगे ? मैं तो धर्म के लुप्त हो जाने वाला ही हो गया हूँ ॥३६॥ इस प्रकार से विलाप करते हुए अपने स्वामी के क्रन्दन पूर्ण इन वचनों को सुनकर पिजडे मे स्थित होती हुई ही उस कपोती ने अपने भर्त्ता से यह कहा था ॥३७॥ उस कपोती ने कहा—हे खगोत्तम ! मैं हूं तो यही पर, किन्तु पिजडे मे बद्ध होने के कारण विवश हू । हे महती मति वाले ! पतिदेव ! इप लुब्धक के द्वारा पाशो से बांध कर मुझे यहाँ लाया गया है ॥३८॥ मैं परम धन्य हूँ और अनुगृहीत हो गई हूं कि मेरा स्वामी स्वय अपने मुख से मेरे गुणो का कीर्त्तन करते हैं । चाहे वे गुण हों अथवा न भी हो तो भी मैं परम कृतार्थ हो गयी हूँ इसमे कुछ भी सशय नही है ॥३६॥ नारियो का यदि भर्त्ता पूर्णतया सन्तुष्ट है तो उससे सभी देवता परम सन्तुष्ट एव प्रसन्न रहा करते हैं । यदि नारियो का पति ही उनसे सन्तुष्ट नही है तो अवश्य ही नाश के विपर्यय होने पर प्राप्त हो जाया करती हैं क्योकि नारियो का एक मात्र पति ही सब कुछ हुआ करता है ॥४०॥ हे पति देव ! मेरे आप ही देव हैं—आप ही प्रभु हैं मेरे आप ही सुहृत है और आप ही मेरे लिये परम देवता हैं । आप ही मेरे व्रत है—आप ही परमोपास्य देव हैं तथा ब्रह्म हैं और आप ही मेरे लिये स्वर्ग एव मोक्ष है ॥४१॥ हे कल्याण स्वरूप ! आप मेरे लिये चिन्तित होकर ऐसा करुण क्रन्दन मत करिए और आप अपनी धर्म सम्बन्धिनी बुद्धि को ही सुस्थिर करिये । हे पति-

देव ! आपके प्रसाद से मैंने अनेक प्रकार के भोगो का उपभोग किया है। आप अब अत्यन्त खेद मेरे लिये न करिए और वियोग की खिन्नता मे निमग्न न होइए। आप तो मेरी चिन्ता का पूर्णतया त्याग करके धर्म मे ही अपनी बुद्धि को सुस्थिर करिये ॥४२-४३॥

इति श्रुत्वा प्रिया वाक्यमुत्ततार नगोत्तमात् ।
यत्र सा पञ्जरस्था तु कपोति वर्तते त्वर(द्रु त)म् ॥४४
तामागत्य प्रिया दृष्ट्वा मृतवच्चापि लुब्धकम् ।
मोचयामीति तामाह निश्चेष्टो लुब्धकोऽधुना ॥४५
मा मुञ्चस्व महाभाग ज्ञात्वा सबन्धमस्थिरम् ।
लुब्धाना खेचरा ह्यद्य जीवो जीवस्य चाशनम् ॥४६
नापराध स्मराम्यस्य धर्मबुद्धि स्थिरा कुरु ।
गुरुरग्निर्द्विजातीना वर्णाना ब्राह्मणो गुरुः ॥४७
पतिरेव गुरु. स्त्रीणा सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ।
अभ्यागतमनुप्राप्त वचनैस्तोषयन्ति ये ॥४८
तेषा वागीश्वरी देवी तृप्ता भवति निश्चितम् ।
तस्यान्नस्य प्रदानेन शक्रस्तृप्तिमवाप्नुयात् ॥४६
पितरः पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः ।
तस्योपचाराद्वै लक्ष्मीविष्णुना प्रीतिमाप्नुयात् ॥५०

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार के अपनी प्रिया के वचनो का श्रवण करके वह कपोत उस अपने आश्रय वाले वृक्ष से नीचे उतर आया था और वह वहाँ पर पहुँच गया था जहाँ पर पिंजडे मे स्थित वह कपोती विद्यमान थी ॥४४॥ वह तुरन्त ही बहुत ही शीघ्रता से उसके समीप मे पहुच गया और उसने अपनी प्रिया को वहाँ पर देखा था तथा उस लुब्धक को भी देखा था जो मृतक के समान वही पर पड़ा हुआ था। उस कपोत ने अपनी.प्रिया से कहा था कि मैं तुम्हारा मोचन करता हूँ क्योंकि यह व्याध तो इस समय मे चेतनाहीन मूर्छित सा पड़ा हुआ है ॥४५॥ उस कपोती ने कहा—हे महाभाग ! इस सम्बन्ध को स्थिरता से शून्य समझ कर मेरा मोचन मत करो। तात्पर्य यह है कि यह सांसारिक

पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थायी नहीं है। व्याधों का खाद्य अन्न तो पक्षी ही हुआ करते हैं क्योंकि जीव ही जीवों का भोजन हुआ करता है ॥४६॥ अब मैं तो इस व्याध के अपराध के विषय मे कुछ भी स्मरण नहीं करती हूँ। आप भी धर्म की बुद्धि ही को स्थिर करिए। द्विजातियों का गुरु अग्निदेव होते हैं—वर्णों के गुरु ब्राह्मण होते हैं ॥४७॥ स्त्रियों का गुरु एक मात्र पति हुआ करता है और जो अभ्यागत होता है वह तो सभी का गुरु हुआ करता है। अभ्यागत अर्थात् अतिथि का सबसे अधिक महत्त्व शास्त्रो मे माना गया है। जो लोग प्राप्त हो जाने वाले अभ्यागत का परम सुमधुर वचनो के द्वारा तोष किया करते हैं उनके ऊपर वागीश्वरी देवी निश्चित रूप से तृप्त हो जाती है। उस अभ्यागत को जो कुछ अन्न समर्पित किया जाता है तो उससे महेन्द्र देव परम सतृप्त हो जाया करते हैं ॥४८-४९॥ अतिथि के चरणों को धोने से पितृगण प्रसन्न होते हैं और अन्नादि के समर्पित करने से प्रजापति संतृप्त होते हैं। अभ्यागत के अन्य उपचार करने से लक्ष्मी देवी तृप्त होती है और लक्ष्मी के साथ ही भगवान् विष्णु भी परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥५०॥

शयने सर्वदेवास्तु तस्मात्पूज्यतमोऽतिथिः।
अभ्यागतमनुश्रान्तं सूर्योढं गृहमागतम्॥
तं विद्याद्देवरूपेण सर्वक्रतुफलो ह्यसौ ॥५१

अभ्यागतं श्रान्तमनुव्रजन्ति,
देवाश्च सर्वे पितरोऽग्नयश्च।
तस्मिन्हि तृप्ते मुदमाप्नुवन्ति,
गते निराशेऽपि च ते निराशाः ॥५२

तस्मात्सर्वात्मना कान्त दुःखं त्यक्त्वा शमं व्रज।
कृत्वा तिष्ठ शुभां बुद्धिं धर्मकृत्यं समाचर ॥५३
उपकारोऽपकारश्च प्रवराविति संमतौ।
उपकारिषु सर्वोऽपि करोत्युपकृतिं पुनः ॥५४
अपकारिषु यः साधु पुण्यभाक्स उदाहृतः ॥५५

अभ्यागत के शयन कराने पर समस्त देवगण सतृप्त हो जाते हैं। इस कारण मे जो अतिथि होता है वह तो परमाधिक पूजा करने के योग्य हुआ करता है। अनुश्रान्त-सूर्योढ और गृह मे समागत अभ्यागत को साक्षात् देवता के ही रूप मे समझना चाहिए क्योंकि यह सब यज्ञो के फल के स्वरूप वाला ही हुआ करता है ॥५१॥ जो अभ्यागत परिश्रान्त हो उसके पीछे सब देवता-पितृगण और समस्त अग्नि गमन किया करते हैं अर्थात् उसके ही साथ पीछे २ चला करते हैं। जब वह अभ्यागत तृप्त हो जाता है तो ये सब भी परमानन्द को प्राप्त किया करते हैं और अतिथि निराश होकर किसी के घर से चला जाता है तो ये सब भी निराश होते हुए गमन किया करते हैं ॥५२॥ अतएव हे कान्त ! पूर्ण रूप से अपने हृदय के दु ख का त्याग करके शान्ति को प्राप्त करो। शुभ बुद्धि बना कर स्थित रहो तथा जो धर्म से परिपूर्ण कृत्य हो उसी को करना चाहिए ॥५३॥ उपकार और अपकार दोनो ही प्रवर है—ऐसा माना गया है। जो उपकार करने वाले हैं उनके विषय मे तो सभी उपकार किया करते हैं। जो साधु पुरुष अपकार करने वालो के विषय मे साधु होता है अर्थात् उन अपकारियो का भी उपकार करता है वही परम पुण्य का भागी बताया गया है ॥५४-५५॥

आवयोरनुरूपं च त्वयोक्तं साधु मन्यसे ।
किंतु वक्तव्यमप्यस्ति तच्छृणुष्व वरानने ॥५६
सहस्रं भरते कश्चिच्छतमन्यो दशापरः ।
आत्मानं च सुखेनान्यो वयं कष्टोदरभराः ॥५७
गर्तधान्यधनाः केचित्कुशूलधनिनोऽपरे ।
घटक्षिप्तधनाः केचिच्चञ्चुक्षिप्तधना वयम् ॥५८
पूजयामि कथं श्रान्तमभ्यागतमिमं शुभे ॥५९
अग्निरापः शुभा वाणी तृणकाष्ठादिकं च यत् ।
एतदप्यर्थिने देयं शीतार्तो लुब्धकस्त्वयम् ॥६०
एतच्छ्रुत्वा प्रियावाक्यं वृक्षमारुह्य पक्षिराट् ।
आलोकयामास तदा वह्निं दूरं ददर्श ह ॥६१

स तु गत्वा वह्निदेशं चञ्चुनोल्मुकमाहरत् ।
पुरोऽग्निं ज्वालयामास लुब्धकस्य कपोतकः ॥६२
शुष्ककाष्ठानि पर्णानि तृणानि च पुनः पुनः ।
अग्नौ निक्षेपयामास निशीथे स कपोतराट् ॥६३

कपोत ने कहा—हे प्रिये ! तुमने हम दोनों के ही अनुरूप कथन किया है और तुम्हारा ज्ञान परमोत्तम है तथा तुम समुचित ही मानती हो किन्तु हे वरानने ! इस विषय मे मेरा कुछ वक्तव्य है उसका भी श्रवण कर लो ॥५६॥ इस ससार मे बहुत प्रकार के जीव हैं—कोई तो एक सहस्र प्राणियो का भरण-पोषण किया करता है—दूसरा सौ प्राणियों का पालन करता है, अन्य ऐसा है जो दश ही जीवो का पोषण किया करता है—कोई ऐसा ही है जो सुखपूर्वक अपना ही उदर-पोषण कर लेता है किन्तु हम लोग तो ऐसे प्राणी हैं जो अपना ही उदर बड़े कष्ट के साथ भरा करते है ॥५७॥ कुछ प्राणी ऐसे इसी ससार मे विद्यमान हैं जो अपने विशाल धन को भूमि के तहखानो मे गाढ कर रखते हैं—दूसरे ऐसे हैं जो कुशल धनी हैं। कतिपय ऐसे भी प्राणी हैं जो घटो मे भरकर धन को अर्थात् धान्य को रखते हैं किन्तु हम तो उन प्राणियो मे से हैं जो केवल अपनी चोंच मे ही धन अर्थात् धान्य को रखते हैं। कथन का अभिप्राय ऐसा ही है कि हमारे पास सग्रह तो होता ही नही है। हे शुभे ! भला फिर तुम ही बतलाओ मैं इस परम श्रान्त अभ्यागत का पूजन एवं सत्कार किस तरह से करूँ क्योकि हमारे पास मे तो कुछ भी सगृहीत नही है ॥५८-५९॥ उस कपोती ने कहा—हे प्राणनाथ ! इस समय मे बिचारा यह लुब्धक शीत से अत्यन्त उत्पीड़ित हो रहा है। अग्नि-जल-परम मधुर एव शुभ वाणी और जो भी तृण-काष्ठ प्रभृति कुछ हो वही इसको देना चाहिए ॥६०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपनी प्रिया के द्वारा कथित इस वचन को सुनकर वह पक्षियो का राजा अपने आश्रय वाले उस वृक्ष पर चला गया था और उस समय मे उसने देखा था कि बहुत दूरी पर कहीं अग्नि विद्यमान है ॥६१॥ वह उसी समय मे अग्नि के स्थल पर उड़ कर गया और अपनी चोंच से वह्नि का एक कण वहाँ से

ले आया था। फिर उस लुब्धक के सामने उस कपोत (कबूतर) ने आग जलायी थी। उस आग में उसने सूखी हुई लकड़ियाँ-पत्ते तथा तृणों को बारम्बार डाल दिया था। वह उस समय में आधी रात का घोर शीत से पूर्ण समय था ॥६२-६३॥

तमग्निं ज्वलितं दृष्ट्वा लुब्धकः शीतदुःखितः ।
अवशानि स्वकाङ्गानि प्रताप्य सुखमाप्तवान् ॥६४
क्षुधाग्निना दह्यमानं व्याधं दृष्ट्वा कपोतकी ।
मा मुञ्चस्व महाभाग इति भर्तारमब्रवीत् ॥६५
स्वशरीरेण दुःखार्तं लुब्धकं प्रीणयामि तम् ।
इष्टातिथीनां ये लोकास्तांस्त्वं प्राप्नुहि सुव्रत ॥६६
मयि तिष्ठति नैवायं तव धर्मो विधीयते ।
इष्टातिथिर्भवामीह अनुजानीहि मां शुभे ॥६७
इत्युक्त्वाऽग्निं त्रिरावर्त्य स्मरन्देवं चतुर्भुजम् ।
विश्वात्मकं महाविष्णुं शरण्यं भक्तवत्सलम् ॥६८
यथासुखं जुषस्वेति वदन्नग्निं तथाऽविशत् ।
तं दृष्ट्वाऽग्नौ क्षिप्तजीवं लुब्धको वाक्यमब्रवीत् ॥६९
अहो मानुषदेहस्य धिग्जीवितमिदं मम ।
यदिदं पक्षिराजेन मदर्थे साहसं कृतम् ॥७०

उस जली हुई अग्नि को देखकर वह व्याध जो शीत से अत्यन्त दुःखित था कुछ चेष्टा युक्त हुआ और उसने अपने शीत की अधिकता से विवश अङ्गों को प्राप्त किया था और उससे उसे बहुत ही सुख प्राप्त हुआ था ॥६४॥ अब तो क्षुधा की अग्नि से दग्ध हुए उस व्याध को कपोती ने देखा था और फिर उसने अपने स्वामी से निवेदन किया कि हे नाथ ! आप बड़े ही भाग्यशाली हैं अब मुझको इस पींजरे से मुक्त कर दीजिए अर्थात् पींजरे को खोलकर जाल में बद्ध मुझे खोलकर बाहिर निकाल देवें जिससे मैं अपने शरीर के द्वारा जो कि एक दिन अवश्य ही विनाश को प्राप्त होने वाला है उस भूख से परम दुःखित व्याध को प्रसन्न करूँ। हे सुव्रत ! जो लोक अपने इष्ट अतिथियों के हैं

उनको आप प्राप्त करिए ॥६५-६६॥ कपोत ने अपनी प्रिया के उन वचनों का श्रवण करके कहा—कपोत बोला—मेरे जीवित एवं विद्यमान रहते हुए तुम्हारा यह धर्म नहीं किया जाता है। हे शुभे ! यहाँ पर इष्टातिथि मैं ही होता हूँ—ऐसा ही तुम समझ लो ॥६७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इतना भर कहकर उस अग्नि की तीन प्रदक्षिणा उस कपोत ने की और भगवान् चतुर्भुज का स्मरण किया था जो इस विशाल विश्व के स्वरूप वाले शरणागति में सम्प्राप्त प्राणी की रक्षा करने वाले—अपने भक्तों पर बहुत ही प्यार करने वाले महाविष्णु हैं ॥६८॥ सुखपूर्वक प्रीति के साथ सेवन करो—इतना कहते हुए वह उस अग्नि मे प्रवेश कर गया था। अग्नि मे अपने सजीव शरीर को प्रक्षिप्त करने वाले उस कपोत को देखकर वह लुब्धक यह वचन कहने लगा। उस व्याध ने कहा—ओहो ! मनुष्य का देह धारण करने वाले मेरे इस जीवन को धिक्कार है जब कि इस पक्षियों के राजा कपोत ने मेरे प्राणों की सुरक्षा के वास्ते इतना बड़ा साहस किया है अर्थात् अपने परम प्रिय प्राणों की आहुति दे दी है ॥६९-७०॥

एवं ब्रुवन्तं तं लुब्धं पक्षिणी वाक्यमब्रवीत् ॥७१

मा त्वं मुञ्च महाभाग दूरं यात्येष मे पतिः ॥७२

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पञ्जरस्थां कपोतकीम् ।
लुब्धको मोचयामास तरसा भीतवत्तदा ॥७३

साऽपि प्रदक्षिणं कृत्वा पतिमग्निं तदा जगौ ॥७४

स्त्रीणामयं परो धर्मो यद्भर्तुरनुवेशनम् ।
वेदे च विहितो मार्गः सर्वलोकेषु पूजितः ॥७५

व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलात् ।
एवं त्वनुगता नारी सह भर्त्रा दिवं व्रजेत् ॥७६

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे ।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं याऽनुगच्छति ॥७७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार के वचनों को कहने वाले उस व्याध से वह कपोती यह वचन कहने लगी थी ॥७१॥ कपोती ने कहा—

हे महाभाग ! अब आप मुझे भी मुक्त कर दो क्योंकि मेरे स्वामी यह बहुत दूर गमन कर रहे हैं ॥७२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस पक्षिणी के यह वचन श्रवण करके पिंजरे में स्थित उस कपोतनी को उस लुब्धक ने पिंजरे से मुक्त कर दिया था। यद्यपि उसने कपोती को मुक्त तो बड़ी तेजी से कर दिया था किन्तु वह उस समय में भयभीत था हो गया था। उस कपोती ने भी पिंजरे से छूट कर उसी समय में उस अग्नि में स्थित अत्यन्त अपने पति की तीन परिक्रमाएँ की थीं और उसी समय में यह ध्यान किया था। कपोती बोली—इस संसार में नारियों का यही परम धर्म होता है कि वे अपने मृत भर्त्ता के साथ ही चिता में अपना प्रवेश कर जावें। यही स्त्रियों के लिये वेद में मार्ग निहित किया गया है और यह स्वामी का अनुसरण करना सभी लोकों में पूजित माना गया है ॥७३-७५॥ व्यालों को पकड़ने वाला जिस तरह से बलपूर्वक व्याल (सर्प) को बिल से उद्धृत कर लिया करता है इसी प्रकार से अपने पति के पीछे अनुगमन करने वाली नारी भी अपने स्वामी के ही साथ स्वर्ग लोक चली जाया करती है ॥७६॥ इस मनुष्य के शरीर में साढ़े तीन करोड़ जो रोम होते हैं उतने ही वर्षों तक वह नारी स्वर्ग में निवास किया करती है जो अपने स्वामी के पीछे ही उसका अनुगमन किया करती है ॥७७॥

नमस्कृत्वा सुद देवान्गङ्गा चापि वनस्पतीन् ।
आश्वास्य तान्यपत्यानि लुब्धकं वाक्यमब्रवीत् ॥७८
त्वत्प्रसादान्महाभाग उपयन्तं समेष्यहम् ।
अपत्यानां क्षमस्वेह गता यामि त्रिविष्टपम् ॥७९

इत्युक्त्वा पक्षिणी साध्वी प्रविवेश हुताशनम् ।
प्रविष्टाया हुतवहे जयशब्दो व्यवर्तत ॥८०
गगने सूर्यसंकाशं विमानमतिशोभनम् ।
तदारूढौ सुरनिभौ दम्पती ददृशे ततः ॥८१
हर्षेण शोचमानो लुब्धकं विस्मयान्वितम् ॥८२

गच्छवस्त्रिदशस्थानमापृष्टोऽपि महामते ।
आवयोः स्वर्गसोपानमतिथिस्त्वं नमोऽस्तु ते ॥८३
विमानवरमारूढौ तौ दृष्ट्वा लुब्धकोऽपि सः ।
सधनुः पञ्जरं त्यक्त्वा कृताञ्जलिरभाषत ॥८४

इसके अनन्तर उस कपोती ने भूमि की वन्दना की तथा देवों को-गङ्गा को और समस्त वनस्पतियों को प्रणाम किया था । फिर अपने बच्चों को समाश्वासन दिया था और अन्त में वह कपोती उस व्याध से कहने लगी ॥७८॥ कपोती ने कहा—हे महाभाग ! आपके ही प्रसाद से मुझे यह सुअवसर प्राप्त हुआ है । अब आप मेरी सन्ततियों को क्षमा कर देना क्यों कि मैं तो अपने भर्त्ता के ही साथ स्वर्ग को गमन कर रही हूँ ॥७९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—बस, इतना कह कर वह पक्षिणी जो परम साध्वी थी अग्नि मे प्रवेश कर गयी थी । उसके उस समय मे अग्नि मे प्रविष्ट हो जाने पर जय ध्वनि हुई थी ॥८०॥ गमन करने के अवसर पर सूर्य के समान देदीप्यमान अत्यन्त शोभा वाला विमान वहाँ आया था और इसके पश्चात् देवों के समान वह दम्पती (पति-पत्नी का जोड़ा) उस विमान पर चढ़े हुए दिखलाई दिया था । उन दोनों ने बड़े ही हर्ष के साथ विस्मय से युक्त उस लुब्धक से कहा ॥८१-८२॥ दम्पती ने कहा—हे महामते ! अब हम देवों के निवास स्थान को जा रहे हैं । आप से आज्ञा चाहते हैं । हम दोनों को स्वर्गारोहण की सीढ़ियाँ रूप आप ही अतिथि हुए हैं अर्थात् आपके ही आतिथ्य से हमको स्वर्ग की प्राप्ति हुई है और इसके कारण आप ही हैं अतएव आपको हमारा नमस्कार है ॥८३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस व्याध ने भी परम श्रेष्ठ विमान पर चढ़े हुए उन दोनों को देखकर अपना धनुष और पिंजरा छोड़ कर दोनों हाथों को जोड़ कर बोला ॥८४॥

न त्यक्तव्यो महाभागौ देयं किंचिदजानते ।
अहमत्यातिथिर्मान्यो निष्कृतिं वक्तुमर्हथः ॥८५
गौतमीं गच्छ भद्रं ते तस्याः पापं निवेदय ।
तत्रैवाऽऽप्लवनात्पक्षं सर्वपापैर्विमोक्ष्यसे ॥८६

मुक्तपापः पुनस्तत्र गङ्गायामवगाहने ।
अश्वमेधफलं पुण्यं प्राप्य पुण्यो भविष्यसि ॥८७
सरिद्वरायां गौतम्यां ब्रह्मविष्ण्वीशसंभुवि ।
पुनराप्लवनादेव त्यक्त्वा देहं मलीमसम् ॥८८
विमानवरमारूढः स्वर्गं गन्ताऽस्यसंशयम् ॥८९
तच्छ्रुत्वा वचनं ताभ्यां तथा चक्रे स लुब्धकः ।
विमानवरमारूढो दिव्यरूपधरोऽभवत् ॥९०
दिव्यमाल्याम्बरधरः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ।
कपोतश्च कपोती च तृतीयो लुब्धकस्तथा ॥
गङ्गायाश्च प्रभावेण सर्वे वं दिवमाक्रमन् ॥९१
ततः प्रभृति तत्तीर्थं कापोतमिति विश्रुतम् ।
तत्र स्नानं च दानं च पितृपूजनमेव च ॥९२
जपयज्ञादिकं कर्म तदानन्त्याय कल्पते ॥९३

लुब्धक ने कहा—हे महाभाग वालो ! आपको मेरा त्याग नहीं करना चाहिए । मैं तो बहुत ही अज्ञानी हूं । मुझे भी आप लोगों को कुछ देना चाहिए । मैं यहाँ पर मान्य अतिथि हूं । आप मेरे पापों की कोई निष्कृति बतलाने के योग्य हैं ॥८५॥ दम्पती ने कहा—आप गौतमी गङ्गा के समीप में जाइये । आपका कल्याण वहीं पर होगा । गौतमी से अपने पापों के विषय में निवेदन करो । एक पक्ष पर्यन्त वहाँ पर आप्लवन करने से आप समस्त पापों से छुटकारा पाजायगे ॥८६॥ जब आप अपने किये हुए पापों से मुक्त हो जावें तो फिर विशुद्ध होकर उस गौतमी गङ्गा में अवगाहन करने पर अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का पुण्य-फल प्राप्त कर परम पुण्यवान् हो जायगे ॥८७॥ ब्रह्मा-विष्णु और शम्भु से समुत्पन्न हुई उन समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ गौतमी गङ्गा में फिर स्नान करने से ही इस महामलिन देह को त्याग कर आप परम श्रेष्ठ विमान पर समारूढ होकर निश्चित रूप से स्वर्गलोक को गमन करेंगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥८८-८९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन दोनों से कहे हुए उस वचन को सुनकर उस लुब्धक ने वैसा ही

किया था और फिर उस पुण्य के प्रभाव से एक परम दिव्य विमान पर समारूढ होकर वह दिव्य रूप के धारण करने वाला हो गया था ॥६०॥ वह दिव्य मालाओं के धारण करने वाला तथा दिव्य वस्त्रधारी और अप्सराओं के द्वारा पूज्यमान हो गया था। वे कपोत-कपोती दोनों और तीसरा लुब्धक गौतमी गङ्गा के प्रभाव से सब के सब स्वर्गलोक को चले गये थे ॥६१॥ तभी से लेकर वह तीर्थ "कपोत तीर्थ"—इस शुभ नाम से विख्यात हो गया है। वहा पर किया हुआ स्नान-दान तथा पितृगण का अर्चन और जाप-यज्ञ प्रभृति सब अनन्त एवं अक्षय माने जाते है ॥६२-६३॥

—:※:—

## २६—दशाश्वमेधतीर्थवर्णन

दशाश्वमेधिकं तीर्थं तच्छृणुष्व महामुने ।
यस्य श्रवणमात्रेण हयमेधफलं लभेत् ॥१
विश्वकर्मसुतः श्रीमान्विश्वरूपो महाबलः ।
तस्यापि प्रथम. पुत्रस्तत्पुत्रो भौवनो विभुः ॥२
पुरोधाः कश्यपस्तस्य सर्वज्ञानविशारदः ।
तमपृच्छन्महाबाहुर्भौवनः सार्वभौवनः ॥३
यक्ष्येऽहं हयमेधैश्च युगपद्दशभिर्मुने ।
इत्यपृच्छद्गुरुं विप्रं क यक्ष्यामि सुरानिति ॥४
सोऽवदद्देवयजनं तत्र तत्र नृपोत्तम ।
यत्र यत्र द्विजश्रेष्ठाः प्रावर्तन्त महाक्रतून् ॥५
तत्राभवन्नृपिगणा आर्त्विज्ये मखमण्डले ।
युगपद्दशमेधानि प्रवृत्तानि पुरोधसा ॥६
पूर्णता नाऽऽययुस्तानि दृष्ट्वा चिन्तापरो नृपः ।
विहाय देवयजनं पुनरन्यत्र तान्क्रतून् ॥७

उपक्रामत्तथा तत्र विघ्नदोषास्तमाययुः ।
दृष्ट्वाऽपूर्णांस्ततो यज्ञान्राजा गुरुमभाषत ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे महामुने ! एक दशाश्वमेधिक तीर्थ है उसके विषय मे श्रवण करिए जिसके केवल सुनने से ही अश्वमेध यज्ञ का पुण्य प्राप्त हो जाता है ॥१॥ विश्वकर्मा का पुत्र महान् बलवान् श्री सम्पन्न विश्व रूप था। उसका भी जो प्रथम पुत्र था उसका पुत्र विभु भौवन हुआ था ॥२॥ उसका पुरोहित कश्यप ऋषि थे जो कि सब प्रकार के ज्ञान के महान् पण्डित थे। महाबाहु सार्व भौवन ने उन अपने पुरोहित जी से पूछा था ॥३॥ हे महामुने ! मैं एक ही बार मे एक साथ दस अश्वमेधो के द्वारा यजन करूँगा। उसने अपने गुरु उन विप्रवर से यही पूछा था कि सब सुरो का यजन मैं कहाँ पर कर सकूँगा ॥४॥ उस पुरोहित कश्यप ने कहा—हे नृपोत्तम ! वहाँ-वहाँ पर ही देवो का यजन होता है जहाँ-जहाँ पर श्रेष्ठ द्विजो ने महान् क्रतुओ को पहिले किया था ॥५॥ वहाँ पर आतिज्य मखमण्डल मे ऋषियो का समुदाय एकत्रित हुआ और पुरोहित कश्यप मुनि के द्वारा एक साथ दश अश्वमेध यज्ञो का प्रारम्भ किया गया था ॥६॥ किन्तु वे पूर्ण नही हुए थे—उन यज्ञो की अपूर्णता को देखकर नृप बहुत ही चिन्ता युक्त हो गया था। उस राजा ने वहाँ पर देवो का यजन करना त्याग कर फिर किसी अन्य स्थल पर उन्ही क्रतुओ को करने का उपक्रम किया था किन्तु वहाँ पर भी उसको विघ्नो के दोषो का समुदाय आगया। उस राजा ने अपने समारब्ध यज्ञो को अपूर्ण देखकर गुरुजी से कहा ॥७-८॥

देशदोषात्कालदोषान्मम दोषात्तवापि वा ।
पूर्णता नाऽऽप्नुवन्ति स्म दशमेधानि वाजिनः ॥९
ततश्च दुःखितो राजा कश्यपेन पुरोधसा ।
गीष्पतेर्भ्रातरं ज्येष्ठं गत्वा संवर्तमूचतुः ॥१०
भगवन्दुर्गपारकार्याण्यश्वमेधानि मानद ।
दश संपूर्णतां यान्ति तं देशं तं गुरुं वद ॥११
वचो व्याख्या ऋषिश्रेष्ठः संवर्तो भौवनं तदा ।

अब्रवीद्गच्छ ब्रह्माणं गुरु देशं वदिष्यति ॥१२
भौवनोऽपि महाप्राज्ञः कश्यपेन महात्मना ।
आगत्य मामब्रवीच्च गुरुं देशादिकं च यत् ॥१३
ततोऽहमब्रव पुत्र भौवनं कश्यपं तथा ।
गौतमी गच्छ राजेन्द्र स देशः क्रतुपुण्यवान् ॥१४

राजा ने कहा—हे भगवन् ! यह कोई देश का दोष है अथवा काल का दोष है ? मेरा ही कोई दोष या कमी है या कोई आपका दोष है ? क्या कारण है कि मेरे ये दश अश्वमेघ यज्ञ एक साथ करने का जो मेरा सङ्कल्प था वह पूर्ण नही होता है ? ॥८॥ ब्रह्माजी ने कहा—इसके उपरान्त वह राजा अत्यन्त दुःखित होकर अपने पुरोहित कश्यप जी के साथ भगवान् वृहस्पति जी के जो ज्येष्ठ भाई सवर्त्त थे उनके समीप मे जाकर उनसे उन दोनो ने कहा—कश्यप और भौवन ने कहा—हे मानद ! भगवन् ! दश अश्वमेघ यज्ञ मुझे एक ही साथ करने हैं। ये दशो अश्वमेघ यज्ञ पूर्णता को प्राप्त हो जावें—वह स्थल कौन सा है उसी देश को मेरे गुरुजी को वतलाने की कृपा कीजिए ॥१०-११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके उपरान्त उसी समय मे ऋषियो मे परम श्रेष्ठ सम्वर्त्त जी ने योगाभ्यास की रीति से ध्यान किया था और फिर उन्होने कहा था कि ब्रह्माजी के समीप मे चले जाओ। वे आपके गुरुजी को वह देश वतला देंगे ॥१२॥ इसके अनन्तर महान् पण्डित राजा भौवन महान् आत्मा वाले कश्यप ऋषि के साथ मेरे समीप मे समागत हुए थे और वह गुरु तथा देशादि के सम्वन्ध में बोला था ॥१३॥ हे पुत्र ! इसके पश्चात् मैंने भौवन नृप और कश्यप मुनि से कहा था कि हे राजेन्द्र ! गौतमी गङ्गा के समीप मे चले जाओ। वही देश क्रतुओ के लिये पुण्य वाला है ॥१४॥

अयमेव गुरुः श्रेष्ठः कश्यपो वेदपारगः ।
गुरोरस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः ॥१५
एकेन हयमेधेन तत्र स्नानेन वा पुनः ।
सेत्स्यन्ति तव यज्ञाश्च दशमेधानि वाजिनः ॥१६

यच्छ्रुत्वा भौवनो राजा गौतमीतीरमभ्यगात् ।
कश्यपेन सहायेन हयमेधाय दीक्षितः ॥१७
ततः प्रवृत्ते यज्ञेशे हयमेधे महाक्रतौ ।
सपूर्णे तु तदा राजा पृथिवीं दातुमुद्यत. ॥१८
ततोऽन्तरिक्षे वागुच्चैरुवाच नृपसत्तमम् ।
पूजयित्वा स्थित विप्रानृत्विजोऽय सदस्पतीन् ॥१९
पुरोधसे कश्यपाय सशैलवनकाननाम् ।
पृथिवी दानुकामेन दत्त सर्वं त्वया नृपः ॥२०
भूमिदानस्पृहा त्यक्त्वा अन्न देहि महाफलम् ।
नान्नदानसम पुण्य त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥२१

हे राजन् ! आपके गुरु तो यह हो कश्यप मुनि परम श्रेष्ठ हैं क्योंकि यह वेदों के पारगामी महान् मनीषी हैं। इन्ही गुरुदेव के प्रसाद से और भगवती गौतमी गंगा की कृपा से यहीं पर एक अश्वमेध यज्ञ से अथवा पुनः स्नान से यहीं पर दस अश्वमेध यज्ञ एक साथ पूर्ण हो जायेंगे ॥१८-१६॥ यह श्रवण करके राजा भौवन हयमेध यज्ञ का यजन करने के लिये ही दीक्षित होकर कश्यप ऋषि को सहायक बनाकर गौतमी गगा के तट पर पहुंच गया था ॥१७॥ इसके अनन्तर महान् क्रतु अश्वमेध के प्रवृत्त हो जाने पर जो कि सभी यज्ञों का ईश्वर है यह सम्पूर्ण हो गया था और उसके साङ्ग सम्पूर्ण हो जाने पर राजा समस्त भूमि का दान करने के लिये उद्यत हो गया था ॥१८॥ तब तो नभोमण्डल मे आकाश वाणी ने उस राजाओं मे श्रेष्ठ से कहा था जो विप्रों को ऋत्विजों को और सद स्पतियों को पूजकर वहाँ पर स्थित था ॥१९॥ आकाश वाणी ने कहा था—हे नृप ! आपने अपने पुरोहित मुनि के लिये पर्वतों और वनों से युक्त पृथिवी को दान करने की कामना वाले ने सब कुछ दान कर दिया है ॥२०॥ अब आप भूमि के दान की स्पृहा का त्याग करके अब महान् फल वाले अन्न का दान दो क्योंकि अन्न के दान के समान पुण्य तीनों लोकों में अन्य किसी भी दान का पुण्य नहीं होता है ॥२१॥

विशेषतस्तु गङ्गायाः श्रद्धया पुलिने मुने ।
त्वया तु हयमेधोऽयं कृतः सबहुदक्षिणः ॥
कृतकृत्योऽसि भद्रं ते नात्र कार्या विचारणा ॥२२
तथाऽपि दातुकामं तं मही प्रोवाच भौवनम् ॥२३
विश्वकर्मज सार्वभौम मा मां देहि पुनः पुनः ।
निमज्जेऽहं सलिलस्य मध्ये तस्मान्न दीयताम् ॥२४
ततश्च भौवनो भीतः किं देयमिति चाब्रवीत् ।
पुनश्चोवाच सा पृथ्वी भौवनं ब्राह्मणैर्वृतम् ॥२५
तिला गावो धनं धान्यं यत्किंचिद्गौतमीतटे ।
सर्वं तदक्षयं दानं किं मां भौवन दास्यसि ॥२६
गङ्गातीरं समाश्रित्य ग्रासमेकं ददाति यः ।
तेनाहं सकला दत्ता किं मां भौवन दास्यसि ॥२७
तद्भुवो वचनं श्रुत्वा भौवनः सार्वभौवनः ।
तथेति मत्वा विप्रेभ्यो ह्यन्नं प्रादात्सुविस्तरम् ॥२८
ततः प्रभृति तत्तीर्थं दशाश्वमेधिकं विदुः ।
दशानामश्वमेधानां फलं स्नानादवाप्यते ॥२९

हे मुने ! विशेष रूप से श्रद्धा के साथ गङ्गा के पुलिन पर आपनें बहुत दक्षिणा वाला यह अश्वमेध यज्ञ किया है। अब आप पूर्णतया कृत कृत्य (सफल) हो गये हैं। आपका कल्याण होगा। इसमें कुछ भी विचार नही करना चाहिए ॥२२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—तो भी दान करने की कामना वाले उस राजा भौवन से मही ने कहा था ॥२३॥ पृथिवी बोली—हे विश्वकर्मा से समुत्पन्न होने-वाले ! हे सार्वभौम ! मुझको आप बारम्बार मत दीजिए। मैं समुद्र के मध्य में निमग्न हो जाती हूँ अतएव मेरा दान मत करिए ॥२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके पश्चात् वह राजा भौवन भय से डरा हुआ हो गया था और उसने कहा था कि मुझे क्या दान करना चाहिये। इसके अनन्तर फिर वह पृथ्वी ब्राह्मणों से समावृत भौवन से बोली ॥२५॥ भूमि ने कहा—हे भौवन ! इस गौतमी के तट पर तिल-गौएँ,धन-धान्य जो कुछ भी दान किया

जाता है वह अक्षय होता है फिर आप मुझको क्यों देते हैं ॥२६॥ इस गौतमी गङ्गा के तीर पर समाश्रय करके जो कोई एक भी ग्रास का दान किया करता है उसने समस्त भूमि का दान ही कर दिया है ऐसा समझना चाहिए फिर हे भौवन ! मुझको क्यो दे रहे हैं ? ॥२७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस सार्व भौवन सम्राट् भौवन ने भूमि के इस वचन का श्रवण करके उसे उसी तरह से मान लिया था और फिर उसने बहुत अधिक अन्न का दान विप्रो को दिया था ॥२८॥ उसी दिन से आरम्भ करके यह तीर्थ दशाश्वमेधिक विश्रुत हो गया है। यहाँ पर उस तीर्थ मे स्नान करने से मनुष्य को दश अश्वमेध यज्ञो के यजन करने का पुण्य-फल प्राप्त होता है ॥२९॥



## ४०—पैशाचतीर्थवर्णन

पैशाचं तीर्थमपर पूजितं ब्रह्मवादिभिः।
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि गौतम्या दक्षिणे तटे ॥१

गिरिर्ब्रह्मगिरेः पार्श्वे अञ्जनो नाम नारद।
तस्मिञ्छैले मुनिवर शापभ्रष्टा वराप्सरा ॥२

अजना नाम तत्राऽऽसीदुत्तमाङ्गेन वानरी।
केसरी नाम तद्भर्ता अद्रिकेति तथाऽपरा ॥३

साऽपि केसरिणो भार्या शापभ्रष्टा वराप्सरा।
उत्तमाङ्गेन मार्जारी साऽप्यास्तेऽञ्जनपर्वते ॥४

दक्षिणार्णवमभ्यागात्केसरी लोकविश्रुतः।
एतस्मिन्नन्तरेऽगस्त्योऽञ्जन पर्वतमभ्यगात् ॥५

अजना चाद्रिका चैव अगस्त्यमृषिसत्तमम्।
पूजयामासतुरुभे यथान्याय यथासुखम् ॥

तत: प्रसन्नो भगवानाहोभे व्रियतां वर: ।
ते आहतुरुभेऽगस्त्य पुत्रौ देहि मुनीश्वर ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—यहाँ पर गौतमी गङ्गा के दक्षिण तट पर एक दूसरा पैशाच तीर्थ है जो ब्रह्म वादियों के द्वारा समर्चित होता है। अब मैं उसका पूर्ण स्वरूप को बतलाता हूं ॥१॥ हे नारद ! ब्रह्म गिरि के पार्श्व मे एक अञ्जन नाम का गिरि है। हे मुनिवर ! उस पर्वत पर एक परम श्रेष्ठ अप्सरा शाप से भ्रष्ट हो गई थी ॥२॥ वहाँ पर उत्तम अङ्गों से युक्त अञ्जना नाम वाली नारी थी। केसरी नाम वाला उसका स्वामी था। और दूसरी अद्रिका नाम वाली थी ॥३॥ वह भी केसरी की ही भार्या थी जो कि वरा अप्सरा शाप से भ्रष्ट हो गयी थी उत्तमाङ्ग से वह मार्जारी भी उस अञ्जन पर्वत पर रहती थी ॥४॥ वह लोकों मे परम प्रख्यात केसरी दक्षिण सागर को चला गया था। इसी अन्तर में अगस्त्य उस अञ्जन पर्वत पर समागत हो गये थे ॥५॥ उस समय में अञ्जना और अद्रिका इन दोनो ने ऋषिगणों में श्रेष्ठ अगस्त्य का न्यास पूर्वक यथा सुख पूजन किया था ॥६॥ तब तो भगवान् अगस्त्य उन दोनों पर बहुत ही अधिक प्रसन्न होकर उन दोनों से बोले कि मुझ से तुम दोनो वरदान मांग लो। हे मुनीश्वर ! इन दोनों ने अगस्त्य मुनि से कहा था कि हम दोनो को पुत्र होने का वरदान प्रदान करिये ॥७॥

सर्वेभ्यो बलिनौ श्रेष्ठौ सर्वलोकोपकारकौ ।
इत्येत्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठो जगमाऽऽशां स दक्षिणाम् ॥८

तत: कदाचित्त काले अंजना चाद्रिका तथा ।
गीतं नृत्यं च हास्यं च कुर्वंत्यौगिरिमूर्धनि ॥९
वायुश्च निऋतिश्चापि ते दृष्ट्वा सस्मितौ सुरौ ।
कामाक्रान्तधियौ चोभौ तदा सत्वरमीयतु: ॥१०

भार्ये भवेतामुभयोरायां देवौ वरप्रदौ ।
ते अप्यूचतुरस्त्वेतद्रमाते गिरिमूर्धनि ॥११

अंजनायां तथा वायोर्हनुमान्सजायत ।
अद्रिकायां च निर्ऋतेरद्रिर्नाम पिशाचराट् ॥१२
पुनस्ते आहतुरुभे पुत्रौ जातौ मुनेर्वरात् ।
आवयोर्विकृतं रूपमुत्तमाङ्गेन दूषितम् ॥१३
शापाच्छचीपतेस्तत्र युवामाज्ञातुमर्हथः ।
ततः प्रोवाच भगवान्वायुश्च निर्ऋतिस्तथा ॥१४

वे पुत्र भी ऐसे होने चाहिए कि सबसे अधिक बलवान्-श्रेष्ठ और सभी लोकों की भलाई करने वाले होवें । उस मुनि श्रेष्ठ ने ऐसा ही होगा । यह कह दिया था और फिर वे दक्षिण दिशा को वहाँ से चले गये थे ॥८॥ इसके अनन्तर ये दोनों अञ्जना और अद्रिका किसी समय में उस पर्वत की शिखर पर गीत-नृत्य और हास्य कर रही थीं । उसी समय में वायु और निर्ऋति इन दोनों ने उन दोनों को देखा था और वे दोनों सुरस्मित युक्त हो गये थे । वे दोनों ही देव काम वासना से आक्रान्त बुद्धि वाले होकर बहुत ही शीघ्र वहाँ पर उसी समय में समागत होगये थे ॥९-१०॥ उन्होंने वहाँ पर उनसे कहा था कि दोनों हम दोनों की भार्या हो जाओ । हम दोनों वरदान देने वाले देव हैं । उन दोनों ने भी उनके कथन को स्वीकार कर लिया था और उन दोनों ने उस पर्वत की चोटी पर रमण किया था ॥११॥ उस अञ्जना नाम वाली वानरी के उदर से वायुदेव के द्वारा हनुमान ने जन्म ग्रहण किया था और अद्रिका के उदर से निर्ऋति के द्वारा अद्रि नाम वाला पिशाचराट् समुत्पन्न हुआ था ॥१२॥ फिर उन दोनों ने कहा था कि दोनों पुत्र मुनि वर से समुत्पन्न हुए हैं । उन दोनों का रूप उत्तमाङ्ग ने विकृत एवं दूषित कर दिया है ॥१३॥ वहाँ पर शची के पति महेन्द्र के शाप से ऐसा हुआ है तो आप दोनों आज्ञा प्रदान करने के योग्य होते हैं । इसके अनन्तर भगवान् वायु देव तथा निर्ऋति ने कहा था ॥१४॥

गौतम्यां स्नानदानाभ्यां शापमोक्षो भविष्यति ।
इत्युक्त्वा तावुभौ प्रीतौ तत्रैवान्तरधीयताम् ॥१५

ततोऽञ्जनां समादाय अद्रिः पैशाचमूर्तिमान् ।
भ्रातुर्हनुमतः प्रीत्यै स्नापयामास मातरम् ॥१६
तथैव हनुमान्गङ्गामादायाद्रिमतित्वरन् ।
मार्जाररूपिणीं नीत्वा गौतम्यास्तीरमासवान् ॥१७
ततः प्रभृति तत्तीर्थं पैशाचं चाऽञ्जनं तथा ।
ब्रह्मणो गिरिमासाद्य सर्वकामप्रदं शुभम् ॥१८
योजनानां त्रिपञ्चाशन्मार्जारं पूर्वतो भवेत् ।
मार्जारसंज्ञितात्तस्माद्धनूमन्तं वृषाकपिम् (?)॥१९
फेनासंगममाख्यातं सर्वकामप्रदं शुभम् ।
तस्य स्वरूप व्युष्टिश्च तत्रैव प्रोच्यते शुभा ॥२०

गौतमी गङ्गा में स्नान और दान करने से उस शाप से छुटकारा हो जायगा । इतना कह कर वे दोनों परम प्रसन्न हुए थे और वहीं पर वे अन्तर्धान हो गये थे ॥१५॥ इसके पश्चात् पैशाच मूर्ति वाले अद्रि ने अञ्जना को लेकर भाई हनुमान् की प्रीति के लिये माता का स्नपन कराया था ॥१६॥ उसी प्रकार से हनुमान भी बहुत ही शीघ्रता करते हुए मार्जार रूपिणी अद्रि को लेकर गौतमी के तट पर प्राप्त हो गये थे ॥१७॥ उसी समय से लेकर वह तीर्थ पैशाच तथा अञ्जन प्रसिद्ध हो गया था । ब्रह्मा के गिरि पर प्राप्त होकर वह परम शुभ तथा सब मनोरथों को पूर्ण करने वाला हो गया था ॥१८॥ तिरेपन योजन पूर्व मार्जार होता है और उस मार्जार संज्ञा वाले से वृषाकपि हनुमन्त फेना संगम नाम वाला है जो शुभ और सब मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला है । उसका स्वरूप और व्युष्टि परम शुभ वहीं पर कही जाया करती है ॥१९-२०॥

---

# ४१—क्षुधातीर्थवर्णन

क्षुधातीर्थमिति ख्यातं शृणु नारद तन्मनाः ।
कथ्यमानं महापुण्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् ॥१
ऋषिरासित्पुरा कण्वस्तपस्वी वेदवित्तमः ।
परिभ्रमन्नाश्रमाणि क्षुधया परिपीडितः ॥२
गौतमस्याऽऽश्रमं पुण्यं समृद्धं चान्नवारिणा ।
आत्मनं च क्षुधायुक्तं समृद्धं चापि गौतमम् ॥३
वीक्ष्य कण्वोऽथ वैषम्यं वैराग्यमगमत्तदा ।
गौतमोऽपि द्विजश्रेष्ठो ह्यहं तपसि निष्ठितः ॥४
समेन याच्ञयाऽयुक्ता ख्यातस्माद्गौतमवेश्मनि ।
न भोक्ष्येऽहं क्षुधार्तोऽपि पीडितेऽपि कलेवरे ॥५
गच्छेयं गौतमीं गङ्गामर्जयेयं च संपदम् ।
इति निश्चित्य मेधावी गत्वा गङ्गां च पावनीम् ॥६
स्नात्वा शुचिर्यतमना उपविश्य कुशासने ।
तुष्टाव गौतमीं गङ्गां क्षुधां च परमापदम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! एक क्षुधा तीर्थ नाम वाला परम विख्यात है । अब तुम तन्मस्क होकर उसका श्रवण करो । उसके विषय मे कथन करना मनुष्यो के लिये महान् पुण्य का प्रदान करने वाला तथा सब अभीप्सित मनोरथो को पूर्ण करने वाला होता है ॥१॥ बहुत प्राचीन काल में एक कण्व नाम धारी परम तपस्वी और वेदो के ज्ञाताओ मे श्रेष्ठ ऋषि हुए थे । वह आश्रमो मे इधर-उधर भ्रमण करते हुए भूख से अत्यन्त पीडित हो गये थे ॥२॥ अन्न और जल से समृद्ध एक परम पुण्य-मय गौतम मुनि का आश्रम था । अपने आपको क्षुधा से युक्त और गौतम को पूर्णतया सभी प्रकार से समृद्ध देखा था । जब कण्व ने इतनी अपने आप मे और गौतम मे विषमता देखी तो उसी समय मे कण्व मुनि को उत्कट वैराग्य हो गया था । उन्होने अपने मन मे विचार किया था कि गौतम भी द्विजो मे परम श्रेष्ठ है और मैं भी सर्वदा तपश्चर्या मे

निष्ठित रहने वाला हूँ ॥३-४॥ एक अपने ही समान मुनि से याच्ना करना भी उचित नही प्रतीत होती है। अतएव मैं गौतम के घर में यद्यपि मैं क्षुधा से अत्यन्त उत्पीड़ित होते हुए भी और शरीर के पीड़ित होने पर भी वहाँ भोजन नही करूँगा ॥५॥ मुझे अब गौतमी गङ्गा के सन्निधि मे ही चलना चाहिए और वही सम्पदाओं का अर्जन करना चाहिए। ऐसा ही अपने मन मे दृढ निश्चय करके मेधा से सम्पन्न कण्व मुनि ने परम पावनी गौतमी गङ्गा के समीप मे गमन किया था। वहाँ पर पहुंच कर कण्व ने स्नान किया था और परम पवित्र एव सयत मन वाला होकर एक कुशा के आसन पर उपवेशन किया था। वहाँ पर उस कण्व मुनि ने गौतमी गङ्गा का स्तवन किया था और परमापदा क्षुधा के विषय मे भी प्रार्थना की थी ॥६-७॥

नमोऽस्तु गङ्गे परमार्तिहारिणि,
　　नमः क्षुधे सर्वजनार्तिकारिणि।
नमो महेशानजटोद्भवे शुभे,
　　नमो महामृत्युमुखाद्विनिसृते ॥८

पुण्यात्मना शान्तरूपे क्रोधरूपे दुरात्मनाम्।
सरिद्रूपेण सर्वेषां तापपापाहारिणी ॥९
क्षुधारूपेण सर्वेषा तापपापप्रदे नमः।
नमः श्रेयस्करि देवि नमः पापप्रतर्दिनि ॥
नमः शान्तिकरि देवि नमो दारिद्र्यनाशिनि ॥१०

इत्येवं स्तुवतस्तस्य पुरस्तादभवद्द्वयम्।
एक गाङ्ग मनोहारि ह्यपर भीपणाकृति ॥
नमः कृताञ्जलिर्भूत्वा नमस्कृत्वा द्विजोत्तमः ॥११
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये ब्राह्मि माहेश्वरि शुभे।
वैष्णवि त्र्यम्बके देवि गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥१२
त्र्यम्बकस्य जटोद्भूते गौतमस्याघनाशिनि।
सप्तधा सागरं यान्ति गोदावरि नमोस्तु ते ॥१३

सर्वपापकृतां पापे धर्मकामार्थनाशिनि।
दु:खलोभमयि देवि क्षुधे तुभ्यं नमो नमः ॥१४

श्री कण्व मुनि ने कहा—हे गंगे ! आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम समर्पित है। आप तो परम आपत्तियों के हरण करने वाली हैं। हे क्षुधे ! आपको भी मेरा नमस्कार है। आप तो समस्त जनों की आर्त्ति (पीड़ा) दूर कर देने वाली हैं। हे शुभे ! आप तो भगवान् महेश्वर की जटाओं से समुत्पन्न होने वाली हैं। आपको मेरा नमस्कार है। आप महामृत के मुख से विनिःसृत होने वाली है आपको प्रणाम है ॥८॥ आप पुण्यात्मा जनों के लिये तो परम शान्त स्वरूप वाली हैं और जो दुष्ट आत्मा वाले जन हैं उनके लिये आप क्रोध रूपिणी है। आप एक सरिता के स्वरूप के द्वारा सभी जनों के तापों और पापों का हरण करने वाली हैं ॥९॥ आप ही क्षुधा का स्वरूप धारण करके सबको तापों और पापों को प्रदान किया करती हैं। आपको मेरा नमस्कार है। हे श्रेय करने देवि ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है। हे पापों का प्रतर्दन करने वाली देवि ! आपको नमस्कार है। हे देवि ! आप शान्ति कर देने वाली हैं और हे देवि ! आप दरिद्रता का विनाश करने वाली है। आपको नमस्कार है ॥१०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस रीति से स्तुति करने वाले उन कण्व मुनि के समक्ष में दो स्वरूप प्रकट होकर उपस्थित हो गये थे। एक तो उन दो में गङ्गा का मनोहर स्वरूप था और दूसरा परम भीषण आकृति वाला था। वह द्विजोत्तम दोनों हाथों को जोड़ कर नमस्कार करके उनके सामने खड़ा हो गया था ॥११॥ कण्व मुनि ने कहा—हे समस्त मङ्गलों के भी मङ्गल रूप वाली ! हे माहि ! हे शुभे ! माहेश्वरि ! हे वैष्णवि ! हे त्र्यम्बके ! हे देवि गोदावरि ! आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम है। हे गौतम मुनि के अघों का विनाश कर देने वाली ! आपका उद्भव तो भगवान् त्र्यम्बक की जटाओं से ही हुआ था। आप सात स्वरूपों से सागर में गमन किया करती हैं। हे गोदावरि ! आपको मेरा नमस्कार है ॥१२-१३॥ हे क्षुधे ! आप तो सब पापों के करने वालों को पाप रूप वाली हैं तथा धर्म और काम तथा अर्थ इन तीनों का नाश

विनाश कर देने-वाली हैं। हे देवि ! आप परमाधिक दुःख और लोभ से परिपूर्ण हैं। आपकी सेवा मे मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥१४॥

तत्कण्ववचनं-श्रुत्वा सुप्रीते आहतुर्द्विजम् ॥१५
अभीष्टं वद कल्याण वरान्वरय सुव्रत ॥१६
प्रोवाच प्रणतो गङ्गा कण्वः क्षुधां यथाक्रमम् ॥१७
देहि देवि मनोज्ञानि कामानि-विभव मम ।
आयुर्वित्तं च भुक्ति च मुक्ति गङ्गे प्रयच्छ मे ॥१८
इत्युक्त्वा गौतमी गङ्गा क्षुधां चाऽऽह द्विजोत्तमः ।१९
मयि मद्वंशजे चापि क्षुधे तृष्णे दरिद्रिणि ।
याहि पापतरे रूक्षे न भूयास्त्व कदाचन ॥२०
अनेन स्तवेन ये वं त्वां स्तुवन्ति क्षुधातुराः ।
तेषा दारिद्य दुःखानि न भवेयुर्वरोऽपरः ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—कण्व मुनि की इस स्तुति के वचनों को सुनकर वे दोनो देवियाँ बहुत प्रसन्न होकर उस द्विज कण्व से कहने लगीं। गङ्गा और क्षुधा दोनो ने कहा—हे सुव्रत ! हे कल्याण ! अब तुम अपने अभीष्ट वरदानो की याचना कर लो ॥१५-१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—कण्व मुनि ने परम प्रणत होकर गङ्गा देवी और क्षुधा से यथाक्रम निवेदन किया था ॥१७॥ कण्व ने कहा—हे देवि ! हे देवि ! मेरी मनोज्ञ कामनाओं को विभव-आयु वित्त और भुक्ति तथा मुक्ति को हे गंगे ! मुझे प्रदान कीजिए ॥१८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वह उत्तम द्विज कण्व इस प्रकार से गौतमी गङ्गा देवी से निवेदन करके फिर क्षुधा से कहने लगा था ॥१९॥ कण्व ने कहा—हे क्षुधे ! हे तृष्णे ! हे दरिद्रिणि ! हे पापतरे ! हे रूक्षे ! मुझ मे और मेरे वंश मे समुत्पन्न मे फिर आप कभी भी मत गमन करना, यही मैं आपसे वरदान चाहता हूँ। इस स्तव के द्वारा जो लोग क्षुधा से आतुर होकर आपकी स्तुति किया करते हैं उनको कभी भी दरिद्रता का दुःख न होवे—यही मेरा दूसरा वरदान है जिसको मैं आपसे प्राप्त करना चाहता हूँ ॥२०-२१॥

अस्मिंस्तीर्थे महापुण्ये स्नानदानजपादिकम् ।
ये कुर्वन्ति नरा भक्त्या लक्ष्मीभाजो भवन्तु ते ॥२२
यस्त्विदं पठते स्तोत्रं तीर्थे वा यदि वा गृहे ।
तस्य दारिद्र्यदुःखेभ्यो न भयं स्याद्वरोऽपरः ॥२३
एवमस्त्विति चोक्त्वा ते कण्व याते स्वमालयम् ।
ततः प्रभृति तत्तीर्थं काण्वं गाङ्गं क्षुधाभिधम् ॥
सर्वपापहरं वत्स पितॄणां प्रीतिवर्धनम् ॥२४-२५

इस महा पुण्यमय महान् तीर्थ मे जो पुरुष स्नान-दान-होम और जप आदि किया करते हैं और भक्ति की भावना से युक्त होते हैं वे सभी लक्ष्मी के भाजन हो जावें ॥२२॥ जो पुरुष इस स्तोत्र का पाठ करता है चाहे किसी तीर्थ मे इसका पाठ करे या घर मे ही बैठकर करे उसको दरिद्रता के दुःखो से भय कभी भी न होवे—यह भी मुझे एक अन्य वरदान प्रदान कीजिए ॥२३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी समय मे "ऐसा ही होगा"—यह कण्व मुनि से कहकर वे दोनो गङ्गा और क्षुधा देवियाँ अपने निवास गृह को चली गयीं थीं । तभी से आरम्भ करके वह तीर्थ क्षुधा नाम वाला कण्व और गाङ्ग इन नामो से विख्यात हो गया था । हे वत्स ! यह तीर्थ समस्त पापो का हरण करने वाला है और पितृगणो की प्रीति के वर्धन करने वाला होता है ॥२४-२५॥

—:※:—

## ४२—जनस्थानतीर्थवर्णन

तस्मादप्यपरं तीर्थं जनस्थानमिति श्रुतम् ।
चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणान्मुक्तिदं नृणाम् ॥१
वैवस्वतान्वये जातो राजाऽभूज्जनकः पुरा ।
सोऽप्पापतेस्तु तनुजामुपयेमे गुणार्णवाम् ॥२

धर्मार्थकाममोक्षाणां जनकां जनको नृपः ।
अनुरूपगुणत्वाच्च तस्य भार्या गुणार्णवा ॥३
याज्ञवल्क्यश्च विप्रेन्द्रस्तस्य राज्ञः पुरोहितः ।
तमपृच्छन्नृपश्रेष्ठो याज्ञवल्क्यं पुरोहितम् ॥४
भुक्तिमुक्ती उभे श्रेष्ठे निर्णीते मुनिसत्तमैः ।
दासीदासेभतुरगरथाद्यं भुक्तिरुत्तमा ॥५
किन्त्वन्तविरसा भुक्तिर्मुक्तिरेका निरत्यया ।
भुक्तेर्मुक्तिः श्रेष्ठतमा भुक्त्या मुक्ति कथं व्रजेत् ॥६
सर्वसङ्गपरित्यागान्मुक्तिप्राप्तिः सुदुःखतः ।
तद्ब्रूहि द्विजशार्दूल सुखान्मुक्तिः कथं भवेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उससे भी दूसरा एक तीर्थ है जो "जनस्थान"—इस शुभ नाम से प्रसिद्ध है। इस तीर्थ का विस्तार चार योजन का है और यह केवल स्मरण करने ही से मुक्ति मनुष्यों को प्रदान कर दिया करता है ॥१॥ बहुत प्राचीन समय मे पहिले वैवस्वत मनु के वंश मे एक जनक नामधारी राजा ने जन्म ग्रहण किया था। उस राजा ने जलो के स्वामी की गुण गणो की सागर पुत्री के साथ विवाह किया था ॥२॥ राजा जनक की यह भार्या धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की जनक थी। उस राजा के रूप और गुणो के अनुरूप होने से ही उसकी भार्या भी गुणो की खान थी ॥३॥ विप्रों का स्वामी याज्ञवल्क्य उस राजा जनक का पुरोहित था। उस नृपो मे परम श्रेष्ठ जनक ने अपने पुरोहित याज्ञवल्क्य जी से एक बार पूछा था ॥४॥ राजा जनक ने कहा—परम श्रेष्ठ मुनियो के द्वारा भुक्ति ( सासारिक सुखो का उपभोग ) और मुक्ति ये दोनो ही श्रेष्ठ बतलाई गयी है। दासी-दास-हाथी-घोड़े-रथ आदि के द्वारा सुखो का उपभोग करना भुक्ति होती है जो कि परमोत्तम है और प्रायः सभी इसकी अभिलाषा रखते हैं ॥५॥ किन्तु विषयो के रस का भोग करना अच्छा सो प्रतीत होता है अन्त में वह भुक्ति निरस हो जाया करती है अर्थात् उसका आनन्द नष्ट हो जाता है क्योंकि इसकी एक अवधि हुआ करती है। हाँ, मुक्ति एक ऐसी है जिसका कभी विनाश

नही होना है और उसमे नीरसता आनी ही नही है। अतएव इस भुक्ति से मुक्ति परम श्रेष्ठतम होती है तो हे भगवन् ! यह बतलाइये इस भुक्ति से मुक्ति की प्राप्ति के लिये कैसे गमन किया जाता है ? ॥६॥ सभी के सङ्ग के परित्याग कर देने से जो मुक्ति की प्राप्ति बतलायी गयी है वह तो बहुत ही दुःखो के साथ हो सकती है क्योंकि सबके संग का परित्याग करना ही बहुत दुष्कर कार्य है। हे द्विज शार्दूल ! अब आप कृपा कर यही बतलाइये कि सुख पूर्वक मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है ? ॥७॥

अपांपतिस्तव: गुरु: श्वशुर: प्रियकृत्तथा।
त गत्वा पृच्छ नृपते उपदेक्ष्यति ते हितम् ॥८
याज्ञवल्क्यश्च जनको राजान वरुण तदा।
गत्वा पोचतुरव्यग्रो मुक्तिमार्ग यथाक्रमम् ॥९
द्विधा तु संस्थित: मुक्ति कर्मद्वारेऽप्यकर्मणि।
वेदे च निश्चितो मार्ग: कर्म ज्यायो ह्यकर्मण: ॥१०
सर्वं च कर्मणा वद्ध पुरुषार्थचतुष्टयम्।
अकर्मणवाऽप्यत इति मुक्तिमार्गो नृपोच्यते ॥११
कर्मणा सर्वधान्यानि सेत्स्यन्ति नृपसत्तम।
तस्मात्सर्वात्मना कर्म कर्तव्यं वैदिक नृभि: ॥१२
तेन भुक्ति च मुक्ति च प्राप्नुवन्तीह मानवा:।
अकर्मण: कर्म पुण्य कर्म चाप्याश्रमेषु च ॥१३
जात्याश्रित च राजेन्द्र तत्रापि शृणु धर्मवित्।
आश्रमाणि च चत्वारि कर्मद्वाराणि मानद ॥१४

याज्ञवल्क्य महामुनि ने कहा—जलो का स्वामी वरुण देव आपके गुरु-श्वशुर तथा आपके प्रिय करने वाले हैं। हे नृप ! आप उन्हीं वरुण देव के समीप मे गमन करिये। वे आपके हित की बात का उपदेश अवश्य ही करेंगे ॥८। उसी समय मे याज्ञवल्क्य मुनि और राजा जनक राजा वरुण देव के समीप मे पहुचे थे। वहाँ जाकर इन दोनो ने व्यग्रता से रहित होकर यथाक्रम मुक्ति के मार्ग को पूछा था ॥९॥ वरुण देव ने कहा—यह मुक्ति दो प्रकार की संस्थित होती है। कर्मद्वार मे और

अकर्म मे भी मुक्ति होती है अर्थात् कर्मों के करते हुए भी मुक्ति होती है तथा कर्मों का सर्वथा त्याग करके भी मुक्ति प्राप्त की जाया करती है। वेद मे इसका मार्ग निश्चित किया गया है। कर्म न करने से कर्मों का करना अधिक श्रेष्ठ होता है ॥१०॥ ये चारों प्रकार के पुरुषार्थ सभी कर्मों के द्वारा बद्ध है और अकर्म से भी है अतएव यह मुक्ति का मार्ग ही मृषा कहा जाता है ॥११॥ हे नृप श्रेष्ठ ! समस्त धान्य कर्म से ही हुआ करते हैं इसी लिये मनुष्यो को सर्वात्मभाव से वैदिक कर्म के द्वारा मानव भुक्ति एवं मुक्ति दोनों को इस लोक मे प्राप्त किया करते हैं। कर्म न करने से कर्मों का करना पुण्यमय होता है और वह कर्म भी आश्रमो में रह कर ही करना चाहिए ॥१२-१३॥ हे राजेन्द्र ! वह जाति के आश्रित है। उनमे भी धर्म के वेत्ता श्रवण करो। वे आश्रम चार होते हैं, जो हे मानद ! कर्मों के द्वारा हुआ करते हैं ॥१४॥

चतुर्णामाश्रमाणां च गार्हस्थ्य पुण्यदं स्मृतम् ।
तस्माद्भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवतीति मतिर्मम ॥१५
एतच्छ्रुत्वा तु जनको याज्ञवल्क्यश्च बुद्धिमान्।
वरुण पूजयित्वा तु पुनर्वचनमूचतुः ॥१६
को देशः किं च तीर्थं स्याद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
तद्वदस्व सुरश्रेष्ठ सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते ॥१७
पृथिव्यां भारत वर्षं दण्डक तत्र पुण्यदम् ।
तस्मिन्क्षेत्रे कृत कर्म भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥१८
तीर्थानां गौतमी गङ्गा श्रेष्ठा मुक्तिप्रदा नृणाम् ।
तत्र यज्ञेन दानेन भोगान्मुक्तिमवाप्स्यति ॥१९
याज्ञवल्क्यश्च जनको वाच श्रुत्वा ह्यपांपतेः ।
वरुणेन ह्यनुज्ञातौ स्वपुरीं जग्मतुस्तदा ॥२०
अश्वमेधादिक कर्म चकार जनको नृपः ।
याजयामास विप्रेन्द्रो याज्ञवल्क्यश्च तं नृपम् ॥२१

इन चारों आश्रमो मे गार्हस्थ्य आश्रम परम पुण्य के प्रदान करने वाला बताया गया है। इस गार्हस्थ्य आश्रम मे रहने से भुक्ति और

मुक्ति ये दोनो ही हो जाती है—मेरा ऐसा ही विचार है ॥१५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—राजा जनक और परम बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य मुनि ने वरुण देव के उन वचनो का श्रवण करके उन दोनो ने पुनः वरुण देव का पूजन करके फिर उनसे पूछा था ॥१६॥ कौन सा वह देश है और कौन सा तीर्थ है जो भुक्ति और मुक्ति इन दोनो के प्रदान करने वाला होता है ? हे सुरो मे परम श्रेष्ठ ! यही आप हमको बतलाने की कृपा कीजिए। आप तो सभी कुछ के ज्ञाता है ॥१७॥ वरुण देव ने कहा—पृथिवी मे भारत वर्ष है और उस भारत मे भी एक दण्डक नामक क्षेत्र है जो परम पुण्य का प्रदान करने वाला है। उस क्षेत्र मे किया हुआ कर्म मनुष्यो को भुक्ति और मुक्ति दोनो के प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥१८॥ सब तीर्थों मे गौतमी गङ्गा परम श्रेष्ठ है जो कि मानवो को भोग और मोक्ष दोनो के प्रदान करने वाली होती है। वहाँ पर यज्ञ का यजन करने से और दान देने से भोग से ही मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है ॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपो ( जलो ) के स्वामी ( वरुण ) के इन वचनो का श्रवण करके याज्ञवल्क्य मुनि और जनक नृप दोनो ही वरुण के द्वारा आज्ञा प्राप्त कर उस समय मे अपनी पुरी को चले गये थे ॥२०॥ फिर राजा जनक ने अश्वमेध आदि कर्म किये थे और विप्रेन्द्र याज्ञवल्क्य ने उस नृप को यजन कराया था ॥२१॥

गङ्गातीरं समाश्रित्य यज्ञान्मुक्तिमवाप राट् ।
तथा जनकराजानो बहवस्तत्र कर्मणा ॥२२
मुक्ति प्रापुर्महाभागा गौतम्याश्च प्रसादतः ।
तत. प्रभृति तत्तीर्थं जरस्थानेति विश्रुतम् ॥२३
जनकाना यज्ञसदो जनस्थानं प्रकीर्तितम् ।
चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणात्सर्वपापनुत् ॥२४
तत्र स्नानेन दानेन पितृणा तर्पणेन तु ।
तीर्थस्य स्मरणाद्वाऽपि गमनाद्भक्तिसेवनात् ॥२५
सर्वान्कामानवाप्नोति मुक्ति च समवाप्नुयात् ॥२६

उस राजा ने गौतमी गंगा के तट पर समाश्रित होकर यज्ञ का यजन करने से मुक्ति प्राप्त की थी। तथा यहाँ पर कर्म के द्वारा जनक आदि राजाओं ने जो महान् भाग वाले थे, गौतमी गङ्गा के प्रसाद से मुक्ति को प्राप्त किया था। तभी से लेकर वह तीर्थ 'जनस्थान'—इस नाम से संसार में विख्यात हो गया है ॥२२-२३॥ जनकों के जो यज्ञों के यजन करने के स्थल हैं वे ही जनस्थान नाम से प्रख्यात हैं। ये स्थल चार योजन के विस्तार वाले हैं और इनके केवल स्मरण करने ही से समस्त पापों का विनाश कर देने वाला होता है ॥२४॥ वहाँ पर पहुँच कर स्नान-दान और पितृगणों का तर्पण करने से अथवा केवल इस तीर्थ के स्मरण करने से भी एवं वहाँ गमन करके भक्ति भाव से सेवन करने से मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त कर लेता है और मुक्ति को भी निश्चित रूप से प्राप्त कर लिया करता है ॥२५-२६॥

---

## ४३—गरुड़तीर्थवर्णन

गारुडं नाम यत्तीर्थं सर्वविघ्नप्रशान्तिदम् ।
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः ॥१
मणिनाग इति ख्यासीच्छेषपुत्रो महाबलः ।
गरुडस्य भयाद्भक्त्या तोषयामास शंकरम् ॥२
ततः प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठी महेश्वरः ।
तमुवाच महानागं वरं वरय पन्नग ॥३
नागः प्राह प्रभो मह्यं देहि मे गरुडाभयम् ।
तथेत्याह च तं शंभुर्गरुडादभयं भवेत् ॥४
निर्गतो निर्भयो नागो गरुडादरुणानुजात् ।
क्षीरोदशायी यत्राऽऽस्ते क्षीरार्णवसमीपतः ॥५
इतश्चेतश्च चरति नागोऽसौ सुखशीतले ।
गरुडोऽपि च यत्राऽऽस्ते तं देशमपि यात्यसौ ॥६

गरुडः पन्नगं दृष्ट्वा चरन्तं निर्भयेन तु ।
स गृहीत्वा महानागं प्राक्षिपत्स्वस्य वेश्मनि ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—गरुड नाम वाला जो तीर्थ है वह सब विघ्नों की प्रशान्ति के प्रदान करने वाला है। हे नारद ! उस तीर्थ के प्रभाव को मैं बतलाऊँगा । उसको आप श्रवण करो और यत्न के साथ ही भली-भाँति सुन लो ॥१॥ एक महान् बलशाली शेषनाग का पुत्र मणिनाग था। उसने गरुड के भय से डर कर बहुत ही भक्ति की प्रबल भावना से भगवान् शङ्कर को प्रसन्न किया था ॥२॥ उसकी भक्ति से भगवान् परमेष्ठी महेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हो गये थे और उस महानाग से उन्होंने कहा था—हे पन्नग ! वरदान का वरण कर लो ॥३॥ उस नाग ने कहा था—हे प्रभो ! आप यदि मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं तो मुझको गरुड से कोई भी भय न रहने का वरदान मुझे प्रदान कीजिए। तब तो भगवान् शम्भु ने उससे कहा था कि तुझे गरुड से अभय हो जायगा ॥४॥ फिर वह नाग अरुण के अनुज गरुड से सर्वथा निडर होकर निकल गया था और जहाँ पर क्षीर सागर के समीप से क्षीर सागर में शयन करने वाले रहते थे ॥५॥ वह नाग सुख शीतल स्थल में इधर-उधर विचरण किया करता था। जहाँ पर गरुड़ भी रहा करता था उस भाग में भी वह जाया करता था क्योंकि इसको फिर उसको गरुड से तो कोई भय शेष नहीं रह गया था ॥६॥ निर्भयता पूर्वक संचरण करने वाले उस पन्नग को देखकर गरुड ने उस महानाग को पकड़ कर अपने ही घर में डाल दिया था ॥७॥

तं बद्ध्वा गारुडं पाशैर्गरुडो नागसत्तमम् ।
एतस्मिन्नन्तरे नन्दी प्रोवाचेशं जगत्प्रभुम् ॥८
नूनं नागो न चाऽऽयाति भक्षितो बद्ध एव वा ।
गरुडेन सुरेशान जीवन्नागो न सञ्जेत् ॥९
नन्दिनो वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा शम्भुरथाब्रवीत् ॥१०
गरुडस्य गृहे नागो बद्धस्तिष्ठति सत्वरम् ।
गत्वा तं जगतामीशं विष्णुं स्तुहि जनार्दनम् ॥११

वद्धं नागं काश्यपेन मद्वाक्यादानय स्वयम् ।
तत्प्रभोर्वचनं श्रुत्वा नन्दी गत्वा श्रियः पतिम् ॥१२
व्यज्ञापयत्स्वयं वाक्यं विष्णुं लोकपरायणम् ।
नारायणः प्रीतमना गरुडं वाक्यमब्रवीत् ॥१३

गरुड़ ने उस नागो मे श्रेष्ठ को गारुड़ पाशो से बाँध कर घर मे डाल रक्खा था। इसी बीच में नन्दी ने जगत् के प्रभु ईश्वर से कहा था ॥८॥ नन्दिकेश्वर ने निवेदन किया था—वह नाग यहाँ पर नही आता है अतः निश्चय ही या तो वह खा लिया गया है अथवा बाँधकर कही पर उसे डाल दिया है। हे सुरेशान ! गरुड़ के द्वारा ही ऐसा किया गया है कि यदि वह जीवित भी है तो कही पर गमन नही कर रहा है ॥९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—नन्दी के इस वचन का श्रवण करके और जान करके भगवान् शम्भु ने कहा था ॥१०॥ शिवजी ने कहा—इस समय मे वह नाग गरुड़ के घर मे बाँधा हुआ पड़ा है। तुम शीघ्र जाओ और जगतो के स्वामी भगवान् जनार्दन विष्णु का स्तवन करो ॥११॥ काश्यप अर्थात् कश्यप मुनि के पुत्र गरुड़ के द्वारा बद्ध किये गये नाग को मेरे वचन मे स्वयं तुम यहाँ ले आओ। प्रभु शिव के उस आदेश वचन को सुन कर तुरन्त ही नन्दी श्री के स्वामी भगवान् विष्णु के समीप में पहुँच गया था और उस नन्दी ने लोक परायण विष्णु की सेवा मे भगवान् शिव के आदेश को बतला दिया था तब तो प्रसन्न मन वाले नारायण ने गरुड़ से यह वचन कहा था ॥१२-१३॥

विनतात्मज मे वाक्यान्नन्दिने देहि पन्नगम् ।
कम्पमानस्तदाकर्ण्य नेत्युवाच विहंगमः ॥
विष्णुमप्यब्रवीत्कोपात्सुपर्णो नन्दिनोऽन्तिके ॥१४
यद्यत्प्रियतमं किंचिद्भृत्येभ्यः प्रभविष्णवः ।
दास्यन्त्यन्ये भवान्नैव मयाऽऽनीतं हरिष्यति ॥१५
पश्य देव त्रिनयन नागं मोक्ष्यति नन्दिना ।
मयोपपादितं नागं त्वं तु दास्यसि नन्दिने ॥१६

त्वा वहामि सदा स्वामिन्मम देय सदा त्वया ।
मयोपपादित नाग प्रत्कु देहीति नोचितम् ॥१७
सता प्रभूणां नेय स्याद्वृत्ति. सद्वृत्तिकारिणाम् ।
सन्तो दास्यन्ति भृत्येभ्यो मदुपात्तहरो भवान् ॥१८
दैत्याञ्जयसि सग्रामे मद्बलेनैव केशव ।
अहं महाबलीत्येव मुधैव श्लाघते भवान् ॥१९
गरुडस्येति तद्वाक्य श्रुत्वा चक्रगदाधरः ।
विहस्य नन्दिनः पार्श्वे पश्यद्भिर्लोकपालकैः ॥२०
इदमाह महाबुद्धिर्मा समुह्य कृशो भवान् ।
त्वद्वचादसुरान्सर्वाञ्जेष्येऽह खगसत्तम ॥२१

भगवान् विष्णु ने कहा—हे विनता के पुत्र ! मेरी आज्ञा से उस पन्नग को इसी समय मे नन्दी को दे दो । यह सुन कर काँपते हुए पक्षी गरुड ने 'नही दूँगा'—यह वचन कहा था । उस नन्दी के समीप मे ही उस सुपर्ण ( गरुड ) ने कोप से भगवान् विष्णु को भी ऐसा कह दिया था ॥१४॥ गरुड ने कहा — जो जो भी कुछ प्रियतम हुआ करता है समर्थ स्वामी अपने भृत्यो को दिया करते है यह तो अन्य स्वामियो की बात है । आप मेरे द्वारा लाये हुए इस नाग को नही हरण करेंगे ॥१५॥ आप त्रिनेत्र देव भगवान् शिव को ही देख लीजिए कि ये नन्दी के द्वारा नाग को छुड़वा रहे हैं । मेरे द्वारा लाये हुए नाग को मेरे स्वामी होकर भी आप इस नन्दी को दिला रहे हैं ॥१६॥ हे स्वामिन् ! मैं तो आपका वाहन सदा किया करता हू । मुझे तो सदा ही आपको देना चाहिए । मेरे द्वारा प्राप्त किये गये नाग को आप कहते हैं 'दे दो'—यह तो सर्वथा अनुचित ही है ॥१७॥ सद्वृत्तिकारी सत् प्रभुओ की वृत्ति ऐसी होती है कि प्राप्त करना चाहिए और सत्पुरुष तो अपने भृत्यो के लिये दिया ही करते हैं किन्तु आप तो मेरे द्वारा जो प्राप्त किया गया है उसका भी हरण करने वाले हो रहे हैं ॥१८॥ हे केशव ! सग्राम मे आप मेरे ही बल के द्वारा दैत्यो के ऊपर विजय प्राप्त किया करते हैं । आपकी जो यह श्लाघा है कि मैं बड़ा भारी बलवान् हूँ यह तो मिथ्या ही है ॥१९॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—समस्त लोक पालकों के देखते हुए गरुड़ के इन वचनों को चक्र और गदा के धारण करने वाले प्रभु ने सुनकर नन्दी के समीप में उनको हँसी आ गई थी ॥२०॥ भगवान् महा बुद्धिमान् विष्णु ने कहा था कि हे खगों मे परम श्रेष्ठ ! आह् मेरा वहन करके कृश हो गये है क्योंकि मैं तुम्हारे ही बल से सब असुरों को जीतूँगा ॥२१॥

इत्युक्त्वा श्रीपतिर्ब्रह्मञ्शान्तकोपोऽब्रवीदिदम् ।
वहाङ्गुलिं करस्याऽऽशु कनिष्ठां नन्दिनोऽन्तिके ॥२२
गरुडस्य ततो मूर्ध्नि न्यस्येदं पुनरब्रवीत् ।
सत्यं मां वहसे नित्यं पश्य धर्मं विहंगम ॥२३
न्यस्तायां च ततोऽङ्गुल्यां शिरः कुक्षौ समाविशत् ।
कुक्षिश्च चरणस्यान्तः प्राविशच्चूर्णितोऽभवत् ॥
ततः कृताञ्जलिर्दीनो व्यथितो लज्जयाऽन्वितः ॥२४
त्राहि त्राहि जगन्नाथ भृत्यं मामपराधिनम् ।
त्वं प्रभुः सर्वलोकानां धर्ता धार्यस्त्वमेव च ॥२५
अपराधसहस्राणि क्षमन्ते प्रभविष्णवः ।
कृतापराधेऽपि जने महती यस्य वै कृपा ॥२६
वदन्ति मुनयः सर्वे त्वामेव करुणाकरम् ।
रक्षस्वाऽऽर्तं जगन्मातर्मामम्बुजनिवासिनि ॥
कमले बालकं दीनमार्तं सनयवत्सले ॥२७

हे ब्रह्मन् ! इतना कहकर श्री पति ने अपने कोप को शान्त करके उससे यह कहा था कि इस नन्दी के समीप में बहुत ही शीघ्र मेरे हाथ की कनिष्ठा अंगुलि का वहन करो ॥२२॥ इसके पश्चात् गरुड़ के मस्तक पर उसको रखकर फिर यह कहा था—हे विहङ्गम ! यह सर्वथा सत्य है कि तुम नित्य ही मेरा वहन किया करते हो अर्थात् मुझे अपने ऊपर चढ़ाकर ले जाया करते हो । अब उसके धर्म को देखो ॥२३॥ इसके उपरान्त उस अंगुलि के रखने पर उस गरुड़ का शिर कुक्षि मे घुस गया था और वह कुक्षि भी चरणों मे अन्दर प्रविष्ट होकर चूर्णित हो गया था । तब तो वह हाथों को जोड़कर अत्यन्त दीन होता हुआ बहुत

ही पीड़ित हो गया था और लज्जा से भी युक्त हो गया था ॥२४॥ गरुड ने कहा—हे जगन्नाथ ! मुझ परमाधिक अपराधी का परित्राण करिए, मैं आपका भृत्य हूं मेरी रक्षा कीजिए। आप तो सभी लोकों के प्रभु और सबके धारण करने वाले हैं तथा आप ही धारण करने के योग्य भी हैं ॥२५॥ 'प्रभाविष्णु सहस्रों अपराधों को भी क्षमा किया करते हैं। जो अपना भक्तजन कोई अपराध भी कर देता है तो उस पर भी जिन दयालु प्रभु को बहुत बड़ी कृपा हुआ करती है आप ऐसे ही प्रभु हैं। सब मुनिजन परम करुणा करने वाले दया के सागर आप ही को कहा करते हैं। हे कमल मे निवास करने वाली माता ! आप तो समस्त जगत् की अम्बा है। अधिक आर्त्त मेरी आप रक्षा करिए। हे कमले ! आप तो अपने पुत्रों पर कृपा एवं प्यार करने वाली हैं। इस परम दीन आर्त्त बालक की रक्षा कीजिए ॥२६-२७॥

ततः कृपान्विता देवी श्रीरप्याह जनार्दनम् ॥२८
रक्ष नाथ स्वकं भृत्यं गरुडं विपदं गतम् ।
जनार्दन उवाचेदं नन्दिनं शंभुवाहनम् ॥२६
नय नागं सगरुडं शंभोरन्तिकमेव च ।
तत्प्रसादाच्च गरुडो महेश्वरनिरीक्षितः ॥
आत्मीयं च पुना रूपं गरुडः समवाप्स्यति ॥३०
तथेत्युक्त्वा च वृषभो नागेन गरुडेन च ।
शनैः स शंकरं गत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥
शंकरोऽपि गरुत्मन्तं प्रोवाच शशिशेखरः ॥३१
याहि गङ्गां महाबाहो गौतमीं लोकपावनीम् ।
सर्वकामप्रदां शान्तां तामाप्लुत्य पुनर्वपुः ॥३२
प्राप्स्यसे सर्वकामांश्च शतधाऽथ सहस्रधा ।
सर्वपापोपतप्ता ये दुर्दैवोन्मूलितोद्यमाः ॥
प्राणिनोऽभीष्टदा तेषां शरणं खग गौतमी ॥३३
तद्वाक्यं प्रणतो भूत्वा श्रुत्वा तु गरुडोऽभ्यगात् ।
गङ्गामाप्लुत्य गरुडः शिवं विष्णुं ननाम सः ॥३४

ततः स्वर्णमयः पक्षी वज्रदेहो महाबलः ।
वेगी भवन्मुनिश्रेष्ठ पुनर्विष्णुमियात्सुधीः ॥३५
ततः प्रभृति तत्तीर्थं गारुडं सर्वकामदम् ।
तत्र स्नानादि यत्किञ्चित्करोति प्रयतो नरः ॥
सर्वं तदक्षयं वत्स शिवविष्णुप्रियावहम् ॥३६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस रीति से प्रार्थना करने पर श्री देवी के हृदय मे कृपा उभर आई और वे श्री जनार्दन से कहने लगी थी ॥२८॥ कमला देवी ने कहा—हे नाथ ! अब आप कृपा करके अपने भृत्य गरुड़ की रक्षा कीजिए क्योकि वह इस समय में विपत्ति से ग्रस्त हो रहा है । तब तो जनार्दन प्रभु ने भगवान् शम्भु के वाहन नन्दी से यह कहा था ॥२९॥ श्री विष्णु देव ने कहा—जाओ गरुड के सहित इस नाग को भगवान् शम्भु के समीप मे ले जाओ । आपके प्रसाद से यह गरुड़ भी महेश्वर प्रभु के द्वारा निरीक्षित होने का सुअवसर प्राप्त कर लेगा । तथा यह गरुड पुनः अपने आत्मीय रूप को भी प्राप्त कर लेगा ॥३०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही किया जायगा—यह कहकर वह वृषभ नन्दी उस नाग और गरुड के साथ धीरे २ भगवान् शङ्कर के समीप चला गया था और वहाँ पर पहुच कर उनसे सम्पूर्ण हाल निवेदन कर दिया था । भगवान् शङ्कर भी उस समय मे गरुड़ से कहने लगे ॥३१॥ श्री शिव ने कहा—हे महाबाहो ! सब लोको को पावन बना देने वाली गौतमी गङ्गा पर चले जाओ । सभी मनोरथो को पूर्ण करने वाली परम शान्तस्वरूप से युक्त उस गौतमी गङ्गा मे निमज्जन करके पुनः शरीर प्राप्त करोगे और सभी कामनाओ को सैकड़ो तथा सहस्रो रूप से पा लोगे । जो सभी तरह के पापो से सतृप्त होते हैं और जो दुर्भाग्य से उन्मूलित उद्यम वाले है ऐसे प्राणियो के लिये वह अभीप्सित मनोरथों को पूर्ण कर देने वाली है । हे खग ! गौतमी उनकी शरण अर्थात् रक्षिका हुआ करती है ॥३२-३३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—परम प्रणत होकर उनके वचन को सुनकरगरुड़ गौतमी पर चला गया था और वहाँ गौतमी गङ्गा मे निमज्जन करके उस गरुड़ ने भगवान् शिव एवं विष्णु को

प्रणाम किया था ॥३४॥ उसके पश्चात् वह पक्षी वज्र देह वाला महान् बलवान् वेग से युक्त हो गया था और हे मुनिश्रेष्ठ ! फिर वह सुधी भगवान् विष्णु की सन्निधि में प्राप्त हो गया था ॥३५॥ तभी से लेकर वह गारुड़ तीर्थ प्रख्यात हो गया है जो कि समस्त कामनाओं को पूर्ण कर देने वाला है । वहाँ पर जो कोई मनुष्य प्रणत होकर स्नान तथा दान आदि जो कुछ भी सत्कर्म किया करता है हे वत्स ! वह सभी शिव और विष्णु के प्रिय करने वाला तथा अक्षय हो जाता है ॥३६॥

—:※:—

## ४४—अग्नितीर्थवर्णन

अग्नितीर्थमिति ख्यातं सर्वक्रतुफलप्रदम् ।
सर्वविघ्नोपशमनं तत्तीर्थस्य फलं शृणु ॥१
जातवेदा इति ख्यातो अग्नेर्भ्राता स हव्यवाट् ।
हव्यं वहन्त देवानां गौतम्यास्तीर एव तु ॥२
ऋषीणां सत्रसदने अग्नेर्भ्रातरमुत्तमम् ।
भ्रातुः प्रियं तथा दक्षं मधुर्दितिसुतो बली ॥३
जघान ऋषिमुख्येषु पश्यत्सु च सुरेष्वपि ।
हव्यं देवा नैव चाऽऽपुर्मृते वै जातवेदसि ॥४
मृते भ्रातरि स त्वग्निः प्रिये वै जातवेदसि ।
कोपेन महताऽऽविष्टो गाङ्गमम्भः समाविशत् ॥५
गङ्गाम्भसि समाविष्टे ह्यग्नौ देवाश्च मानुषाः ।
जीवमुत्सर्जयामासुरग्निजीवा यतो मताः ॥६
यत्राग्निर्जलमाविष्टस्त देशं सर्व एव ते ।
आजग्मुर्विबुधाः सर्वे ऋषयः पितरस्तथा ॥७
विनाऽग्निना न जीवामः स्तुवन्तोऽग्निं विशेषतः
अग्निं जलगतं दृष्ट्वा प्रियं चोचुर्दिवौकसः ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—सब ऋतुओं के पुण्य-फल को प्रदान करने वाला अग्नि तीर्थ-इस नाम से तीर्थ संसार में प्रसिद्ध है। यह तीर्थ समस्त विघ्नों का उपशमन करने वाला है। अब इस अग्नि तीर्थ का फल सुनो ॥१॥ वह अग्नि का भाई हव्यवाट् 'जातवेदा'—इस नाम से प्रख्यात है। गौतमी के तट पर ही वह देवों के लिये हव्य का वहन किया करता है ॥२॥ दिति के पुत्र मधु ने जो बहुत बलवान् था ऋषियों के सत्र सदन में भाई के परम प्रिय तथा अतीव दक्ष अग्नि के उत्तम भाई को सब ऋषियों के तथा सुरों के देखते हुए ही मार दिया था। उस जात वेदा के मृत हो जाने पर देवगण अपना हव्य नहीं प्राप्त किया करते थे ॥३-४॥ वह अग्नि परम प्रिय अपने भाई जात वेदा के मर जाने पर महान् क्रोध में आविष्ट होकर गङ्गा के जल में समाविष्ट हो गया था ॥५॥ अग्नि देव के गङ्गा के जल में समाविष्ट हो जाने पर सब देवगण और मनुष्यों ने अपने जीव का उत्सर्ग कर दिया था क्योंकि ये सभी अग्नि जीव ही माने गये हैं ॥६॥ जिस स्थान पर अग्नि जल में प्रविष्ट हुआ था उसी स्थल पर वे सब देवगण-समस्त ऋषि लोग और सब पितृगण वहाँ पर आयये थे ॥७॥ सबने विशेष रूप अग्नि का स्तवन किया था और कह रहे थे कि हम बिना अग्नि के नहीं जीवित रहेंगे। अग्नि को जल के अन्दर गया हुआ देखकर देवों ने उसका प्रिय कहा था ॥८॥

देवाञ्जीवय हव्येन कव्येन च पितॄंस्तथा।
मानुषानन्नपाकेन बीजानां क्लेदनेन च ॥९

अग्निरप्याह तान्देवान्भ्राता यो मे गतोऽनुजः।
क्रियमाणे भवत्कार्ये या गतिर्जातवेदसः ॥१०

सा वाऽपि स्यान्मम सुरा नोत्सहे कार्यसाधने।
कार्यं तु सर्वतस्तस्य भवतां जातवेदसः ॥११

इमां स्थितिमनुप्राप्तो न जाने मे कथं भवेत्।
इह चामुत्र च व्याप्तौ शक्तिरप्यत्र नो भवेत् ॥१२

अथापि क्रियमाणे वै कार्ये सेव गतिर्मम ।
देवास्तमूचुर्भावेन सर्वेण ऋषयस्तथा ॥१३
आयुः कर्मणि च प्रीतिर्व्याप्तौ शक्तिश्च दीयते ।
प्रयाजाननुयाजांश्च दास्यामो हव्यवाहन ॥१४

देवो ने कहा था—हे अग्ने ! आप हव्य के द्वारा देवो को जीवन प्रदान करो—कव्य पहुचा कर पितरो को जीवित रक्खो—अन्न के परिपाक के द्वारा मनुष्यो को जीवन दो तथा क्लेदन से बीजो को जीवन दो ॥६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे अग्नि ने भी उन देवो से कहा था कि जो समर्थ मेरा छोटा भाई था वह तो अब चला ही गया है अर्थात् मृत हो गया है । आप लोगो के कर्म के करने पर भी जात वेदा को जो यह गति हुई है वही मेरी भी गति हो सकती है अतएव हे सुरगणो ! मुझे आप लोगो के कार्य के साधन करने मे कुछ भी उत्साह नही होता है । सब प्रकार से आप लोगो के कार्य को करने वाले उस जात वेदा की यह स्थिति हो गयी है तो मैं नही जानता हू कि मेरी किस प्रकार की गति हो जावे । यहाँ पर और परलोक मे व्याप्ति मे भी हमारी शक्ति है ॥१०-१२॥ तो भी कार्य के करन पर यही मेरी भी गति हो जायगी जो जात वेदा मेरे भाई की हुई है । तब तो देवो ने उससे कहा था तथा ऋषियो ने भी सर्व भाव से कहा था कि कर्म मे आयु और व्याप्ति मे प्रीति तथा शक्ति दी जाती है । हे हव्य वाहन ! प्रयान अनुयाजो को देगे ॥१३-१४॥

देवाना त्व मुख श्रेष्ठमाहुतयः प्रथमास्तव ।
त्वया दत्त तु यद्द्रव्य भोक्ष्याम. सुरसत्तम ॥१५
ततस्तुष्टोऽभवद्वह्निर्देववाक्याद्यथाक्रमम् ।
इह चामुत्र च व्याप्तौ हव्ये वा लौकिके तथा ॥१६
सर्वत्र वह्निरभय· समर्थोऽभूत्सुराज्ञया ।
जातवेदा बृहद्भानुः सप्तार्चिर्नीललोहित. ॥१७
जलगर्भ शमीगर्भो यज्ञगर्भः स उच्यते ।
जलादाकृष्यविबुधा अभि(भ्य,पिच्यवि(च्चन्वि)भावसुम. ॥१८

उभयत्र पदे वासः सर्वगोऽग्निस्ततोऽभवत् ।
यथागतं सुरा जग्मुर्वह्नितीर्थं तदुच्यते ॥१६
तत्र सप्त शतान्यासंस्तीर्थानि गुणवन्ति च ।
तेषु स्नानं च दानं च यः करोति जितात्मवान् ॥२०
अश्वमेधफलं साग्र प्राप्नोत्यविकलं शुभम् ।
देवतीर्थं च तत्रैव आग्नेय जातवेदसम् ॥२१
अग्निप्रतिष्ठितं लिङ्गं तत्राऽऽस्तेऽनेकवर्णवत् ।
तद्देवदर्शनादेव सर्वक्रतुफलं लभेत् ॥२२

हे अग्ने ! आप देवों के परम श्रेष्ठ मुख हैं और प्रथम आहुतियाँ आपकी ही हैं। हे सुरों में श्रेष्ठ ! आप के द्वारा दिया हुआ द्रव्य ही हम ग्रहण कर भक्षण करेंगे ॥१५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर वह क्रमानुसार देवों के वाक्य से वह वह्नि सन्तुष्ट हुआ था। यहाँ पर-परलोक में- व्याप्ति में-हव्य में तथा लौकिक में सर्वत्र वह्नि अभय और समर्थ सुरों की आज्ञा से होगया था। वह फिर जात वेदा-वृहद्भानु सप्तार्चि-नील लोहित-जलगर्भ-शमी गर्भ और यज्ञ गर्भ कहा जाया करता है। देवों ने उसको जल से आकृष्ट करके और विभावसु का अभिषेचन करके उभयत्र पद में वास वाला-सर्वत्र गमन करने वाला तब से अग्नि हो गया था। सुरगण जिस मार्ग से वहाँ समागत हुए थे उसी से वे फिर चले गये थे और वह वह्नि तीर्थ नाम से कहा जाता है ॥१६-१६॥ वहाँ पर सात सौ तीर्थ हैं जो गुणों वाले हैं। उन तीर्थों में जो कोई जितात्मा पुरुष स्नान और दान किया करता है वह साग्र अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का सम्पूर्ण एवं परम शुभ पुण्य फल का लाभ किया करता है। वहाँ पर ही देव तीर्थ है और वहाँ पर ही जातवेदस आग्नेय है ॥२०-२१॥ वहाँ पर अनेक वर्णों वाला अग्नि प्रतिष्ठित लिङ्ग है। उस देव के दर्शन मात्र से ही सब क्रतुओं के करने का फल प्राप्त हो जाया करता है ॥२२॥

—:×:—

## ४५—ऋणप्रमोचनतीर्थवर्णन

ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थं वेदविदो विदुः ।
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः ॥१
आसीत्पृथुश्रवा नाम प्रियः कक्षीवतः सुतः ।
न दारसंग्रहं लेभे वैराग्यान्नाग्निपूजनम् ॥२
कनीयांस्तु समर्थोऽपि परिवित्तिभयान्मुने ।
नाकरोद्दारकर्मादि नैवाग्नीनामुपासनम् ॥३
ततः प्रोचुः पितृगणाः पुत्रं कक्षीवतः शुभम् ।
ज्येष्ठं चैव कनिष्ठं च पृथक्पृथगिदं वचः ॥४
ऋणत्रयापनोदाय क्रियतां दारसंग्रहः ॥५
नेत्युवाच ततो ज्येष्ठः किमृणं केन युज्यते ।
कनीयांस्तु पितॄन्प्राह न योग्यो दारसंग्रहः ॥६
ज्येष्ठे सति महाप्राज्ञाः परिवित्तिभयादिति ।
तावुभौ पुनरप्येवमूचुस्ते वै पितामहाः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऋण प्रमोचन नाम वाला एक तीर्थ है जिसको वेदों के ज्ञाता लोग भली भाँति जानते हैं। हे नारद! अब हम उस तीर्थ के स्वरूप का वर्णन करेंगे। तुम तन्मनस्क होकर उसका श्रवण करो ॥१॥ एक पृथुश्रवा नामधारी कक्षीवान् का परम प्रिय पुत्र था। उसने वैराग्य से दारा का संग्रह नहीं किया था और अग्नि पूजन भी नहीं किया था ॥२॥ हे मुने! कनीयान् वह समर्थ भी था किन्तु परिवित्ति के भय से दार कर्मादि को नहीं किया था और अग्नियों की भी उपासना नहीं की थी ॥३॥ इसके अनन्तर पितृगणों ने उस कक्षीवान् के शुभ पुत्र से पूछा था। पितरों ने ज्येष्ठ तथा कनिष्ठ दोनों ही से पृथक पृथक् वचनों द्वारा कहा था ॥४॥ पितृगणों ने कहा—तीन प्रकार के ऋणों के अपनोदन करने के लिये दाराओं का संग्रह करो। देव ऋण ऋषि ऋण और पितृऋण ये तीन ऋण सभी के ऊपर हुआ करते हैं जिनका चुकाना सबको परमावश्यक है और गृहस्थ होकर उन

ऋणों को चुकाया जाता है ॥५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—पितरों के ऐसा कहने पर उनमे जो ज्येष्ठ था उसने निषेध कर दिया था और कहा क्या ऋण होता है और किस के द्वारा युक्त किया जाता है। जो कनीयान् छोटा था उसने भी पितरों से कहा था कि दाराओं का संग्रह करना योग्य नहीं है ॥६॥ क्योंकि ज्येष्ठ के होने पर मुझे दार सग्रह क्यों करना है। उस महा प्राज्ञ ने यह भी कहा था परिवित्ति का भय भी दार-संग्रह मे रहता है अतएव मैं नही करता हूं। तब वो पितमहों ने उन दोनो से पुनः इस प्रकार से कहा था ॥७॥

यातामुभौ गौतमीं तु पुण्यां कक्षीवतः सुतौ।
कुरुतां गौतमीस्नानं सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥८
गच्छतां गौतमीं गङ्गां लोकत्रितयपावनीम्।
स्नानं च तर्पणं तस्यां कृत्वा श्रद्धयाऽन्वितौ ॥९
दृष्ट्वाऽवनमिता ध्याता गौतमी सर्वकामदा।
न देशकालजात्यादिनियमोऽस्यावगाहने॥
ज्येष्ठोऽनृणस्ततो भूयात्परिवित्तिर्न चेतरः ॥१०
ततः पृथुश्रवा ज्येष्ठः कृत्वा स्नानं सतर्पणम्।
त्रयाणामपि लोकानां काक्षीवतोऽनृणोऽभवत् ॥११
ततः प्रभृति तत्तीर्थमृणमोचनमुच्यते।
श्रौतस्मार्तऋणेभ्यश्च इतरेभ्यश्च नारद॥
तत्र स्नानेन दानेन ऋणी मुक्तः सुखी भवेत् ॥१२

पितृगण ने कहा—आप दोनो ही कक्षीवान् के पुत्र परम पुण्यमयी गौतमी गङ्गा पर जाइए और वहाँ पहुँच कर समस्त अभीष्टों के प्रदान करने वाला गौतमी में स्नान करिए ॥८॥ गौतमी गगा पर जाइये वह तीनों लोकों को पावन करने वाली है। उसमें स्नान और तर्पण भी परमाधिक श्रद्धा से युक्त होकर करिए ॥९॥ उस गौतमी का दर्शन—उसको अवनमन-ध्यान करने पर वह गौतमी गङ्गा सब कामनो को देने वाली है। इसमें जो अवगाहन किया जाता है उसमें देश-काल और जाति आदि का कुछ भी विशेष नियम नहीं होता है। उसके प्रभाव से

तुममे जो ज्येष्ठ है वह ऋण रहित हो जायगा और जो छोटा दूसरा भाई है उसकी परिवृत्ति नहीं होगी ॥१०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर उस ज्येष्ठ भाई ने वहाँ पर स्नान और तर्पण किया था वह कक्षीवान् का पुत्र तीनों लोकों में ऋण रहित हो गया था ॥११॥ तभी से आरम्भ करके वह तीर्थ ऋण मोचन नाम से पुकारा जाया करता है। हे नारद ! श्रौत-स्मार्त्त ऋणों से और अन्य ऋणों से भी वहाँ पर स्नान तथा दान से ऋणी मुक्त हो जाता है और सुखी होता है ॥१२॥



## ४६—पिप्पलतीर्थवर्णन

पिप्पल तीर्थमाख्यातं चक्रतीर्थादनन्तरम् ।
यत्र चक्रेश्वरो देवश्चक्रमाप यतो हरिः ॥१
यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वा चकार्यं शंकरं विभुम् ।
पूजयामास तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम् ॥२
यत्र प्रीतोऽभवद्विष्णोः शंभुस्तत्पिप्पलं विदुः ।
महिमानं यस्य वक्तुं न क्षमोऽप्यहिनायकः ॥३
चक्रेश्वरो पिप्पलेशो नामधेयस्य कारणम् ।
शृणु नारद तद्भक्त्या साक्षाद्वेदोदितं मया ॥४
दधीचिरिति विख्यातो मुनिरासीद्गुणान्वितः ।
तस्य भार्या महाप्राज्ञा कुलीना च पतिव्रता ॥५
लोपामुद्रेति या ख्याता स्वसा तस्या गभस्तिनी ।
इति नाम्ना च विख्याता वडवेति प्रकीर्तिता ॥६
दधीचेः सा प्रिया नित्यं तपस्तेपे तया महत् ।
दधीचिरग्निमाश्रित्य गृहधर्मपरायणः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—चक्रतीर्थ के अनन्तर पिप्पल तीर्थ कहा गया है जहाँ पर चक्रेश्वर देव हैं जिनसे श्री हरि ने चक्र को प्राप्त किया था

।।१।। जहाँ पर भगवान् विष्णु ने स्वयं स्थित होकर सुदर्शन चक्र को प्राप्त करने के लिये विभु शङ्कर का अभ्यर्चन किया था। वही तीर्थ "चक्र तीर्थ"—कीर्तित हुआ है ।।२।। जिस स्थल पर भगवान् शंकर विष्णु पर परम प्रसन्न हुए थे वह शम्भुरातिपिप्पल जाने गये हैं। जिसकी महिमा को शेष नाग भी वर्णन करने में असमर्थ हैं ।।३।। पिप्पलेश चक्रेश्वर नाम का भी एक विशेष कारण है। हे नारद ! भक्ति की भावना से उस कारण को जो वेदों के द्वारा बताया गया है आप इस समय में मुझ से श्रवण करो ।।४।। एक दधीचि नामधारी मुनि परम विख्यात थे जो अनेक गुणगणों से युक्त हुए हैं। उन महामुनि की भार्या महापण्डिता एवं कुलीना और परमाधिक पतिव्रता थी ।।५।। वह लोपा मुद्रा—इस नाम से विख्यात थी और उसकी बहिन गभस्तिनी हुई थी। वह इसी नाम से प्रसिद्ध थी और वडवा इस नाम से कही गयी थी ।।६।। वह मुनिवर दधीचि की परम प्रिया थी। और उसके साथ वह नित्य ही तपश्चर्या का तपन किया करते थे। दधीचि नित्य ही अग्निमान् थे तथा धर्म के कर्मों में परम तत्पर रहा करते थे ।।७।।

भागीरथी समाश्रित्य देवातिथिपरायणः ।
स्वकलत्ररतः शान्तः कुम्भयोनिरिवापरः ।।८
तस्य प्रभावात्त देशं नारयो दैत्यदानवाः ।
आजग्मुर्मुनिशार्दूल यत्रागस्त्यस्य चाऽऽश्रमः ।।९
तत्र देवाः समाजग्मू रुद्रादित्यास्तथाऽश्विनौ ।
इन्द्रो विष्णुर्यमोऽग्निश्च जित्वा दैत्यानुपागतान् ।।१०
जयेन जातसहर्षाः स्तुताश्चैव मरुद्गणैः ।
दधीचिं मुनिशार्दूलं दृष्ट्वा नेमुः सुरेश्वराः ।।११
दधीचिर्जातसहर्षः सुरान्पूज्य पृथक्पृथक् ।
गृहकृत्यं ततश्चक्रे सुरेभ्यो भार्यया सह ।।१२
पृष्टाश्च कुशलं तेन कथाश्चक्रुः सुरा अपि ।
दधीचिमब्रुवन्देवा भार्यया सुखितं पुनः ।।१३
आसीनं हृष्टमनसं ऋषिं नत्वा पुनः पुनः ।।१४

भगवती भागीरथी गङ्गा का समाश्रय ग्रहण करके देवगण तथा अतिथियों की सेवा में वे परायण रहा करते थे। अपनी ही पत्नी में रति रखने वाले थे और परम शान्त स्वरूप से सम्पन्न एवं दूसरे कुम्भ योनि के ही समान थे ॥८॥ उनके तप के प्रभाव से उस देश में अरि दैत्य तथा दानव नहीं आये थे। हे मुनिशार्दूल ! वहाँ पर अगस्त्य महामुनि का भी आश्रम था ॥६॥ वहाँ पर रुद्र, आदित्य, अश्विनी कुमार, इन्द्र, विष्णु, यम, अग्नि, उपागत दैत्यों को जीत कर अपनी विजय होने के कारण अधिक हर्ष पाते एवं मरुद्गणों के द्वारा स्तुत होते हुए समागत हुए थे। मुनिशार्दूल दधीचि का दर्शन करके वे सब सुरेश्वर उनको प्रणिपात करने वाले हुए थे ॥१०-११॥ दधीचि भी परम हर्षित हुए और उन्होंने उन देवों की पृथक्-पृथक् पूजा की थी। इसके उपरान्त अपनी भार्या के साथ उन्होंने सुरों के लिये गृह-कृत्य किया था ॥१२॥ तब मुनिवर ने उन समस्त देवों से क्षेम-कुशल पूछा था और सुरगण कथाएँ करने लगे थे। फिर अपनी भार्या के साथ परम सुखी दधीचि से देवों ने कहना आरम्भ किया था। सभी देव अत्यधिक प्रसन्न मन वाले थे और वहाँ समवस्थित मुनि को बारम्बार उन सबने प्रणाम किया था ॥१३-१४॥

किमद्य दुर्लभं लोके नृपेऽस्माकं भविष्यति ।
त्वादृशः सकृपो येषु मुनिर्भूः कल्पपादपः ॥१५
एतदेव फलं पुंसां जीवतां मुनिसत्तम ।
तीर्थाप्लुतिर्भूतदया दर्शनं च भवादृशाम् ॥१६
यत्स्नेहादुच्यतेऽस्माभिरवधारय तन्मुने ।
जित्वा दैत्यानिह प्राप्ता हत्वा राक्षसपुङ्गवान् ॥१७
वयं च सुखिनो ब्रह्मंस्त्वयि दृष्टे विशेषतः ।
नाऽऽयुधैः फलमस्माकं वोढुं नैव क्षमा वयम् ॥१८
स्थाप्यदेशं न पश्याम आयुधानां मुनीश्वर ।
स्वर्गे सुरद्विषो ज्ञात्वा स्थापितानि हरन्ति च ॥१९
नयेयुरायुधानीति तथैव च रसातले ।

नैवात्र किंचिद्भयमस्तिविप्र,
न दानवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च घोरम् ।
त्वदाज्ञया रक्षितपुण्यदेशो,
न विद्यते तपसा ते,समानः ॥२१

देवगण ने कहा—हे ऋषिवर ! लोक मे अब हम लोगो के लिये क्या वस्तु दुर्लभ हो सकती है जिन हम सब पर आप परमाधिक कृपा करने वाले आप विद्यमान है जिनको कि इस भूमण्डल का कल्प वृक्ष ही कहना चाहिए जो हृदय मे समुत्थित सभी मनोरथो को तुरन्त पूर्ण कर दिया करता है ॥१५॥ हे मुनियो-मे परम श्रेष्ठ ! जीवनधारी पुरुषो का यही सबसे बड़ा फल होता है कि तीर्थों मे अभिषेचन करना प्राणियों पर परमाधिक दया का भाव रखना और आप सरीखे महामुनियो का दर्शन प्राप्त कर लेना—ये सब पुण्य-फल होते हैं ॥१६॥ जिनके अधिक स्नेह होने के कारण से ही हे मुनिवर ! हम लोगो के द्वारा निवेदन किया जाता है। आप उसका अवधारण कीजिए। हम लोग दैत्यों के ऊपर विजय प्राप्त करके तथा बड़े २ महा राक्षसो को मारकर ही इस समय मे आपकी सेवा मे समुपस्थित हुए है ॥१७॥ हे ब्रह्मन् ! हम इस समय मे परम सुख से सम्पन्न हैं और आप का दर्शन करके अधिक सुखी हुए हैं। अब हमको आयुधो से कुछ भी फल नही है और न हम उनके वहन करने मे समर्थ ही हैं ॥१८॥ हे मुनीश्वर ! उन समस्त आयुधो के स्थापित करने के योग्य किसी भी स्थल को हम लोग नही पा रहे हैं। स्वर्ग मे उनको स्थापित करें तो वहाँ पर सुरो के द्वेषीगण जान लेते हैं और उनका हरण कर लिया करते है ॥१९॥ यदि हमने उन सब आयुधो को जान लेते हैं तो सबको लेकर वे रसातल को ले जायेंगे। हे मानद ! इसी कारण से आपके ही इस पुण्यमय आश्रम में उन अस्त्रो को स्थापित दिया जाता है ॥२०॥ हे विप्र ! यहाँ पर कुछ भी भय नही है। न तो दानवो के आने का डर है और न राक्षसो से ही घोर भय यहाँ पर है। यदि आपकी आज्ञा ऐसी हो जावे तो बहुत

ही अच्छा हो । यह तो परम सुरक्षित एव पवित्र स्थल है क्यो कि तप-स्या मे आपके सदृश अन्य कोई भी विद्यमान नही है ॥२१॥

जितारयो ब्रह्मविदा वरिष्ठ,
वयं च पूर्वं निहता दैत्यसघा: ।
अस्त्ररल भारभूतं: कृतार्थै:,
स्थाप्य स्थान ते समीपे मुनीश ॥२२
दिव्यान्भोगान्कामिनीभि: समेता-
न्देवोद्याने नन्दने सभजाम: ।
ततो याम: कृतकार्या. सहेन्द्रा:,
स्व स्व स्थान चाऽऽयुधाना च रक्षा ॥२३
त्वया कृता जायतां तत्प्रशाधि ।
समर्थस्त्व रक्षणे धारणे च ॥२४
तद्वाक्यमाकर्ण्य दधीचिरेव,
वाक्य जगौ विबुधानेवमस्तु ।
निवार्यमाण: प्रियशीलया स्त्रिया,
किं देवकार्येण विरुद्धकारिणा ॥२५
ये ज्ञातशास्त्रा: परमार्थनिष्ठा:,
ससारचेष्टासु गतानुरागा: ।
तेषा परार्थ व्यसनेन किं मुने,
येनात्र वाऽमुत्र सुखं न किंचित् ॥२६
देवद्विषो द्वेषमनुप्रयान्ति,
दत्ते स्थाने विप्रवर्य शृणुष्व ।
नष्टे हृते चाऽऽयुधाना मुनीश,
कुप्यन्ति देवा रिपवस्ते भवन्ति ॥२७
तस्मान्न दे वेदविदा वरिष्ठ,
युक्तं द्रव्ये परकीये ममत्वम् ।
तावच्च मैत्री द्रव्यभावश्च ताव-
न्नष्टे हृते रिपवस्ते भवन्ति ॥२८

आप तो ब्रह्म के ज्ञाताओं में परम वरिष्ठ हैं। और हम लोग अपने अरियों के जीत लेने वाले हैं। और हमने सब दैत्यों के संघों को पूर्व मे ही मार दिया है। अब ये सब अस्त्र व्यर्थ ही हैं क्यो कि हम सफल हो चुके हैं अतएव केवल ये सब एक भार के ही समान प्रतीत हो रहे हैं। हे मुनीश्वर ! अब आपके ही समीप मे इस स्थान मे इनको स्थापित कर देना चाहिए ॥२२॥ अब तो आप लोग देवों के उद्यान नन्दन वन मे कामिनियो से युक्त होकर दिव्यभोगो के सुख का भोग करें। इसलिये कृतकार्य हम सब इन्द्रदेव के सहित वापिस गमन करते हैं और अपने २ आश्रमो को जाते हैं क्योंकि आयुधो की तो सुरक्षा है यहाँ पर आयुधों की रक्षा आपके द्वारा हो ही गयी है। अब आप हमको आज्ञा दीजिए। आप इनके धारण एव सरक्षण करने मे पूर्णतया समर्थ हैं ॥२३-२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन देवो के इस वचन को सुन कर दधीचि मुनि ने उन देवो से ऐसा ही होगा—यह वाक्य कह दिया था। उस समय में प्रिय शील स्वभाव वाली पत्नी के द्वारा निवरण भी किया गया था कि विरुद्ध कार्य करने वाले इस देवो के इस कार्य से हमको क्या प्रयोजन है ॥२५॥ जिन्होंने शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और जो परमार्थ मे ही निष्ठा रखते हैं तथा जिनका सांसारिक चेष्टाओ मे अनुराग सर्वथा गत हो गया है हे मुने ! उनको दूसरो के अर्थ के व्यसन से क्या प्रयोजन है जिससे न तो इस लोक मे और न परलोक में ही कुछ सुख है वे दूसरो के झगड़ो मे क्यो पड़ें क्यों कि उनके लिये सब व्यर्थ ही हैं ॥२६॥ हे विप्रवर्य ! देवो से द्वेष करने वाले द्वेष करेंगे जब कि आप इन देवो के लिये आयुधो के रखने का स्थान देदेंगे। आप यह सुनिये कि यदि किसी कारण से नष्ट होगये या हे मुनिवर ! हरण कर लिये गये तो ऐसा हो जाने पर ये ही देवगण आप पर क्रोधित हो जाँयगे और फिर आपके ही ये सब शत्रु बन जायँगे जोकि इस समय आपकी बड़ी वन्दना अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये कर रहे हैं ॥२७॥ हे वेदों के ज्ञाताओ मे परम श्रेष्ठ ! इस कारण से दूसरो के द्रव्य मे ममता रखना युक्त नहीं है। ये सब तभी तक आपसे

मैत्री का भाव रखते हैं और द्रव्य भाव भी इनका सभी तक है। नष्ट हो जाने या अपहृत हो जाने पर ये सब आपके शत्रु हो जायेंगे ॥२८॥

चेदस्ति शक्तिर्द्रव्यदाने ततस्ते,
दातव्यमेवार्थिने किं विचार्यम्।
नो चेत्सन्तः परकार्याणि कुर्यु-
र्वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिस्तथैव ॥२९
परस्वसधारणमेतदेव,
सद्भिर्निरस्तं त्यज कान्त सद्यः ॥३०
एवं प्रियाया वचनं स विप्रो,
निशम्य भार्यामिदमाह सुभ्रूम् ॥३१
पुरा सुराणामनुमान्य भद्रे,
नेतीति वाणी न सुखं ममेति ॥३२
श्रुत्वेरितं पत्युरिति प्रियाया,
दैवं विनाऽन्यन्न नृणां समर्थम्।
तूष्णीं स्थितायां सुरसत्तमास्ते,
संस्थाप्य चास्त्राण्यतिदीप्तिमन्ति ॥३३
नत्वा मुनीन्द्रं ययुरेव लोका-
न्दैत्यद्विषो न्यस्तशस्त्राः कृतार्थाः।
गतेषु देवेषु मुनिप्रवर्यो
हृष्टोऽवसद्भार्यया धर्मयुक्तः ॥३४
गते च काले ह्यतिविप्रयुक्ते,
द्वे वै वर्षे संख्यया वै सहस्रे।
न ते सुरा आयुधाना मुनीश,
वाचं मनश्चापि तथैव चक्रुः ॥३५

यदि आपकी द्रव्य के दान मे शक्ति है तो याचना करने वाले को दे ही देना चाहिए—इसमे विचार ही क्या करना है। यदि कुछ देना नही है तो सन्त पुरुष दूसरो के कार्यों को कर दिया करते हैं और कर भी देना चाहिए। अपनी वाणी से—मन से और प्रयत्नो के द्वारा परकार्य

कर देने चाहिए और सन्त पुरुष ऐसा ही किया भी करते हैं ॥२६॥ किन्तु हे कान्त ! पराये धन का रखना ऐसा है कि सत्पुरुषों ने इसका निषेध ही किया है सो हे स्वामिन् ! इसका आप तुरन्त ही त्याग कर दीजिए ॥३०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से कहे हुए अपनी प्रिय पत्नी के वचनों का श्रवण करके उस विप्र ने सुन्दर भृकुटियों वाली भार्या से यह कहा था ॥३१॥ दधीचि मुनि ने कहा—हे भद्रे ! पहिले सुरों का समादर पूर्वक कथन मान कर अब निषेध करना मुझे सुख-कर प्रतीत नहीं होता है ॥३२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने स्वामी के कथित वचन को सुन कर प्रिया के विषय में दैव के विना मनुष्यों के लिये अन्य कोई भी समर्थ नहीं है। वह मुनि पत्नी चुप-चाप स्थित हो गई तो वे सब सुरगण अपने दीप्ति से युक्त अस्त्रों को वहाँ पर संस्थापित करके उन महामुनि को नमस्कार करके अपने२ लोकों को वापिस चले गये थे क्यों कि वे दैत्यों के शत्रु देवगण शस्त्रों को रखने में सफल हो गये थे ! जब सब देवगण चले गये तो उनके जाने पर मुनियों में परम श्रेष्ठ दधीचि प्रसन्न होकर अपनी भार्या के साथ धर्म से युक्त होते हुए अपने आश्रम में निवास किया करते थे ॥३३-३४॥ फिर एक सहस्र दैव वर्षों के काल के व्यतीत हो जाने पर भी हे मुनीश्वर ! उन देवों ने अपने आयुधों के विषय में कुछ भी न कहा और न उन्होंने मन में आयुधों का स्मरण भी नहीं किया था ॥३५॥

दधीचिरप्याह गभस्तिमोजसा,
देवारयो मा द्विपतीह भद्रे ।
न ते सुरा नेतुकामा भवन्ति,
संस्थापितान्यत्र वदस्व युक्तम् ॥३६

सा चाऽऽह कान्त विनयादुक्तमेव,
त्वं जानीषे नाथ यदत्र युक्तम् ।
दैत्या हरिष्यन्ति महाप्रवृद्धा-
स्तपोयुक्ता बलिनः स्वायुधानि ॥३७

तदस्त्ररक्षार्थमिदं स चक्रे,
मन्त्रैस्तु सक्षाल्य जलैश्च पुण्यैः ।
तद्वारि सर्वास्त्रमयं सुपुण्य,
तेजोयुक्तं तच्च पपौ दधीचिः ॥३८
निर्वीर्यरूपाणि तदायुधानि,
क्षयं जग्मुः क्रमशः कालयोगात् ।
सुराः समागत्य दधीचमूचु-
र्महाभयं ह्यागतं शात्रवं नः ॥३९
ददस्व चास्त्राणि मुनिप्रवीर,
यानि त्वदन्ते निहितानि देवैः ।
दधीचिरप्याह सुरारिभीत्या,
अनागत्या भवता चाचिरेण ॥४०
अस्त्राणि पीतानि शरीरसस्था-
न्युक्तानि युक्तं मम तद्वदन्तु ।
श्रुत्वा तदुक्तं वचनं तु देवाः,
प्रोचुस्तमित्थं विनयावनम्राः ॥४१
अस्त्राणि देहीति च वक्तुमेव-
च्छक्य न चाऽन्यत्प्रतिवक्तुं मुनीन्द्र ।
विना च तैः परिभूयेम नित्य,
पुष्टारयः क्व प्रयामो मुनीश ॥४२

दधीचि मुनि ने भी ओज के साथ गभस्ति से कहा था कि हे भद्रे ! देवों के रिपुगण मुझ से द्वेष करते हैं । ये सुरगण तो इन अपने शस्त्रों को ले जाने की इच्छा वाले ही नहीं हैं । ये उनके आयुध यहाँ पर सस्थापित किये हुए हैं । अब क्या करना उचित है मुझे बतलाओ ॥३६॥ उसने विनय पूर्वक अपने स्वामी से जो पूर्व कथित बात थी वही कह दी । उसने कहा था कि हे नाथ ! यहाँ पर क्या उचित है इसे आप स्वयं ही जानते हैं । दैत्य महान् प्रवृद्ध हैं । ये तप से भी युक्त हैं तथा बहुत बल वाले हैं । ये अपने आयुधों का हरण कर लेंगे ॥३७॥ तब

तो उन महामुनि ने उनके अस्त्रों की सुरक्षा के लिये यह किया था कि मन्त्रो के द्वारा तथा पुण्यमय जलों के द्वारा उनका संक्षालन कर दिया और दधीचि ने सब अस्त्रो से परिपूर्ण-पुण्य से युक्त उस जल का जो तेज से भी युक्त था स्वयं पान कर लिया था ॥३८॥ वीर्य से हीन स्वरूप वाले ने उनके आयुध काल के योग से क्रम से क्षय को प्राप्त हो गये थे। फिर सुरगण वहाँ पर समागत हो गये थे और दधीचि मुनि से कहने लगे थे कि हमको शत्रुओं का महान् भय समागत हो गया है ॥३९॥ हे मुनि प्रवीर ! देवो मे जो आपके पास मे निहित किये थे वे अस्त्र हमको दे दीजिए। दधीचि मुनि ने कहा था कि सुरो के शत्रुओ के भय के कारण से और शीघ्र आप लोगो के न आने के कारण से वे सब मैंने पा लिये हैं। अब जो भी युक्त हो वह आप लोग मुझको बतलायें। इस प्रकार से ऋषि के द्वारा कथि वचन का श्रवण करके देवों ने विनय से अवनत होकर इस प्रकार से उन मुनि से कहा था ॥४०-४१॥ इस समय मे तो हमारे अस्त्रो को आप दे देवें यही कहा जा सकता है इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही कहा जा सकता है हे मुनीन्द्र ! विना अपने उन आयुधो के तो हम नित्य ही महान् पराभव को प्राप्त करेंगे। हे मुनीश ! हमारे शत्रुगण तो बडे ही परिपुष्ट हो गये हैं। आप ही बतलाइये कि हम कहाँ पर जायें ॥४२॥

न मर्त्यलोके न तले न नाके,
वासः सुराणां भविताऽद्य तात ।
त्वं विप्रवर्यस्तपसा चैव युक्तो,
नान्यद्वक्तुं युज्यते ते पुरस्तात् ॥४३

विप्रस्तदोवाच मदस्थिसंस्था-
न्यस्त्राणि गृह्णन्तु न संशयोऽत्र ।
देवास्तमप्याहुरनेन किं नो,
ह्यस्त्रैर्हीनाः स्त्रीत्वमाप्ताः सुरेन्द्राः ॥४४.

पुनस्तदा चाऽऽह मुनिप्रवीर-
स्त्यक्ष्ये जीवान्दैहिकान्योगयुक्तः ।

अस्त्राणि कुर्वन्तु मदस्थिभूता-
न्यनुत्तमान्युत्तमरूपवन्ति ॥४५
कुरुष्व चेत्याहुरदीनसत्त्व,
दधीचिमित्युत्तरमग्निकल्पम् ।
तदा तु तस्य प्रियमीरयन्ती,
न सान्निध्ये प्रातिथेयी मुनीश ॥ ६
ते चापि देवास्तामदृष्ट्वैव शीघ्रं,
तस्या भीता विप्रमूचुः कुरुष्व ।
तत्याज जीवान्दुस्त्यजान्प्रीतियुक्तो
यथासुखं देहमिमं जुपध्वम् ॥४७
मदस्थिभिः प्रीतिमन्तो भवन्तु,
सुराः सर्वे किंतु देहेन कार्यम् ॥४८

हे तात ! इस समय मे तो ऐसी परिस्थिति बन गई है कि सुरों का मर्त्यलोक मे-पाताल मे और स्वर्ग मे कही पर भी निवास नही हो सकेगा । हे भगवन् ! आप तो विप्रों मे परम श्रेष्ठ हैं और तपश्चर्या से भी युक्त हैं । आपके समक्ष मे हम लोग अन्य कुछ भी कह नहीं सकते हैं ॥४३॥ तब तो विप्र दधीचि ने कहा था कि वे अस्त्र तो मेरी अस्थियो मे इस समय मे संस्थित हैं । आप मेरी अस्थियों को ही ग्रहण कर लेवें—इसमे कुछ भी संशय नहीं है । देवों ने कहा था कि इससे हमारा क्या भला होगा ? अब तो हम लोग अस्त्रो से हीन होकर सब सुरेन्द्र स्त्री को ही प्राप्त होगये हैं अर्थात् स्त्रियो के समान ही बल विहीन बन गये हैं ॥४४॥ तब तो उसी समय मे वह मुनियो मे परम श्रेष्ठ दधीचि ने कहा—मैं योगाभ्यास से युक्त होकर अपने देह के अङ्गो मे रहने वाले प्राणों का त्याग कर दूँगा । आप लोग फिर अत्यन्त स्वरूप सम्पन्न और उत्तम मेरी अस्थियो से अपने अस्त्रो का निर्माण कर लीजिए ॥४५॥ उन देवो ने अदीन सत्व वाले अग्नि के सदृश दधीचि को 'करो'—यही उत्तर मे कहा था । हे मुनीश ! उस समय मे उसके प्रिय का कथन करने वाली प्रातिथेयी वहाँ समीप मे नही थी ॥४६॥ उन देवो ने भी

उसको न देख कर बहुत ही शीघ्र उसके भय से डरे हुए होकर विप्र दधीचि से कहा—'करिये'। बहुत ही प्रीति से युक्त होकर दधीचि ने परम दुस्त्यज जीवों का परित्याग कर दिया था। तथा उस समय में देवो से मुनीद्र ने कहा था कि आप लोग सुख पूर्वक इस मेरे देह का सेवन करिए ॥४७॥ आप समस्त सुरगण मेरे देह से जो भी आपका करना हो उसे करिए और आप लोग मेरी अस्थियों से परम प्रीति वाले होइये ॥४८॥

इत्युक्त्वाऽसौ बद्धपद्मासनस्थो,
नासाप्रदत्ताक्षिप्रकाशप्रसन्नः ।
वायुं सर्वाह्नि मध्यमोद्घाटयोगा-
न्नीत्वा शनैर्दहराकाशगर्भम् ॥४९

यदप्रमेयं परमं पदं य-
द्यद्ब्रह्मरूप यदुपासितव्यम् ।
तत्रैव विन्यस्य धिय महात्मा,
सायुज्यतां ब्रह्मणोऽसौ जगाम ॥५०

निर्जीवतां प्राप्तमभीक्ष्य देवाः,
कलेवर तस्य सुराश्च सम्यक् ।
त्वष्टारमप्यूचुरतित्वरन्तः,
कुरुष्व चास्त्राणि बहूनि सद्यः ॥५१

स चापि तानाह कथं नु कार्यं,
कलेवरं ब्राह्मणस्येह देवाः ।
बिभेमि कर्तुं दारुणं चाक्षमोऽहं,
विदारितान्यायुधान्युत्तमानि ॥५२

तदस्थिभूतानि करोमि सद्य-
स्ततोदेवा गाः समूचुस्त्वरन्तः ॥५३

वज्रं मुखं वः क्रियते हितार्थं,
गावो देवैरायुधार्थं क्षणेन ।

दधीचिदेहं तु विदार्य यूय-
मस्थीनि शुद्धानि प्रयच्छताद्य ॥५४

ता देववाक्याच्च तथैव चक्रुः,
संलिह्य चास्थीनि ददुः सुराणाम् ।
सुरास्त्वरा जग्मुरदीनसत्वाः,
स्वमालयं चापि तथैव गावः ॥५५

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन मुनीश्वर दधीचि ने इतना देवों से निवेदन करके पद्मासन को बाँध कर स्थित होगये और अपनी नासिका के अग्र भाग मे नेत्रों के प्रकाश को लगाकर परम प्रसन्न हो गये थे तथा मध्यमो द्वारा योग से शनैः वह्नि के सहित वायु को दहराकाश गर्भ मे ले गये थे ॥४९॥ फिर जो प्रमान करने के योग्य परम पद है और जो उपासना करने के योग्य ब्रह्म का स्वरूप है । उस महान् आत्मा वाले ब्राह्मण ने वही पर अपनी बुद्धि का न्यास करके सायुज्यता की प्राप्ति कर ली थी ॥५०॥ देवो ने जब देखा कि यह मुनीश्वर निर्जीवता को प्राप्त हो गये तो सुरगण ने उनके कलेवर को लेकर अत्यन्त शीघ्रता करते हुए त्वष्टा से भली भाँति कहा था कि इसकी अस्थियो से तुरन्त बहुत से अस्त्रो की रचना कर डालो ॥५१॥ उस त्वष्टा ने भी उन देवो से कहा था कि हे देवो ! यहा पर इस ब्राह्मण के शरीर से मैं कैसे क्या करूँ और क्या बनाऊँ ? मैं तो इस महान् दारुण कर्म के करने मे डरता हू । हे देवगण ! मैं तो इस कर्म करने की क्षमता नही रखता हूँ । उत्तम आयुध विदारित हो गये हैं ॥५२॥ मैं तो उनको तुरन्त अस्थि भूत कर देता हू । इसके अनन्तर देवगण शीघ्रता करते हुए गायो से बोले ॥५३॥ देवो ने कहा—क्षण मात्र मे आयुधो के लिये हे गौओ ! आपका मुख देवो के द्वारा मख्य किया जाता है । आप दधीचि के देह को विदीर्ण करके इस समय विशुद्ध अस्थियो को हमको देवें ॥५४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन गायो ने देवो के वाक्य से उसी भाँति किया था । अस्थियों को भली-भाँति चाट कर सुरों को दे दिया था । मदीन

सत्व वाले सुरगण बड़ी शीघ्रता से अपने२ आश्रमों को चले गये थे और वे गौऐं भी चली गयी थी ॥५५॥

कृत्वा तथाऽस्त्राणि च देवताना,
त्वष्टा जगमाथ सुराज्ञया तदा ।
तत्तश्चिराच्छीलवती सुभद्रा,
भर्तुः प्रिया वालगर्भा त्वरन्ती ॥५६

करे गृहीत्वा कलश वारिपूर्ण-
मुमानत्वा फलपुष्पैः समेत्य ।
अग्नि च भर्तारमथाऽऽश्रम च,
सद्रष्टुकामा ह्याजगामाथ शीघ्रम् ॥५७

आगच्छन्ती तां प्रातिथेयी तदानीं,
निवारयामास तदोल्कपातः ।
सा सभ्रमादागता चाऽऽश्रम स्व,
नैवापश्यत्तत्र भर्तारमग्रे ॥५८

क वा गतश्चेति सविस्मया सा,
पप्रच्छ चाग्नि प्रातिथेयी तदानीन् ।
अग्निस्तदोवाच सविस्तर ता,
देवागम याचन वै शरीरे ॥५९

अस्थ्नामुपादानमथ प्रयाण,
श्रुत्वा सर्व दुःखिता सा बभूव ।
दुःखोद्वेगात्सा पपाताथ पृथ्व्या,
मन्द मन्द वह्निनाऽऽश्वासिता च ॥६०

शापेऽमराणां तु नाह समर्था,
अग्नि प्राप्स्ये किं नु कार्यं भवेन्मे ॥६१
कोपं च दुखं च नियम्यसाध्वी,
तदाऽवादीद्धर्मयुक्त च भर्तुः ॥६२

उत्पद्यते यत्तु विनाशि सर्वं,
न शाच्यमस्तीति ममुष्यलोके ।
गोविप्रदेवार्थमिह त्यजन्ति,
प्राणान्प्रियान्पुण्यभाजो मनुष्याः ॥६३

उसी समय मे सुरों की आज्ञा से देवों के अस्त्रों का निर्माण करके त्वष्टा चला गया था। इसके पश्चात् बहुत समय के अनन्तर शील वाली सुभद्रा अपने स्वामी की प्रिया-बालक को गर्भ मे धारण करती हुई बहुत ही शीघ्रता करती हुई हाथ मे जल से भरा हुआ कलश लेकर फलों और पुष्पों से उमादेवी को नमस्कार करके तथा अग्नि को नमन करके अपने भर्त्ता को देखने की इच्छा वाली आश्रम मे बहुत शीघ्र ही आगयी थी ॥५६-५७॥ उस समय मे आगमन करती हुई उस प्रातिथेयी को उल्कापात ने निवारित किया था वह बहुत ही सभ्रम के साथ अपने आश्रम मे समागत हो गयी और वहाँ पर उसने आगे अपने भर्त्ता को नहीं देखा था ॥५८॥ मेरे स्वामी कहाँ पर चले गये हैं इस विस्मय से बहुत समन्वित हो गई थी क्यों कि वह उनको वहीं पर छोड़ कर गयी थी। उस समय प्रातिथेयी ने अग्नि से पूछा था। उस समय मे अग्नि ने विस्तार के साथ उससे वहाँ पर देवों का समागमन और शरीर की याचना करना बतला दिया था ॥५६॥ उनकी अस्थियों का उपादान करना और इसके अन्तर शीघ्रता से प्रयाण कर जाना सभी कुछ घटना को अग्नि ने बतला दिया था। इस दुर्घटित घटना का श्रवण कर वह बहुत ही दुःखित हुई थी। उस महान् दुःख के उद्वेग के कारण वह भूमि पर गिर पड़ी थी फिर धीरे२ वह्नि के द्वारा उसको समाश्वास नहीं दिया गया था ॥६०॥ प्रातिथेयी ने कहा—मैं देवों को शाप देने मे जो समर्थ नहीं हूँ किन्तु अब मैं अग्नि मे प्राप्त हो जाऊँगी क्यों कि मेरे यहाँ पर रहने से क्या प्रयोजन होगा ॥६१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस परम साध्वी ने अपने हार्दिक दुःख और कोप का नियमन करके अपने भर्त्ता के उस धर्म से युक्त कार्य के विषय मे कहा था ॥६२॥ प्रातिथेयी

ने कहा—जो इस जगत् में समुत्पन्न होता है वह सभी कुछ विनाश-शील होता है अतएव इस मनुष्य लोक में भी शोच करने के योग्य नहीं है। बहुत ही पुण्यशाली मनुष्य ही गो-विप्र और देवों के लिये अपने परम प्रिय प्राणों का परित्याग किया करते हैं ॥६३॥

संसारचक्रे परिवर्तमाने
देहं समर्थं धर्मयुक्तं त्ववाप्य ।
प्रियान्प्राणान्देवविप्रार्थहेतो-
स्ते वै धन्याः प्राणिनो ये त्यजन्ति ॥६४

प्राणाः सर्वेऽस्यापि देहान्वितस्य,
यातारो वै नात्र सदेहलेशः ।
एवं ज्ञात्वा विप्रगोदेवदीना-
द्यर्थंचैनानुत्सृजन्तीश्वरास्ते ॥६५

निवार्यमाणोऽपि मया प्रपन्नया,
चकार देवास्त्रपरिग्रहं सः ।
मनोगतं वेत्त्यथवा विधातुः,
को मर्त्यलोकातिगचेष्टितस्य ॥६६
इत्येवमुक्त्वाऽऽपृज्य चाग्नीन्यथाव-
द्भर्तुस्त्वचालोमभिः सा विवेश ।
गर्भस्थितं बालकं प्रातिथेयी,
कुक्षिं विदार्यापि करे गृहीत्वा ॥६७
नत्वा च गङ्गां भुवमाश्रमं च,
वनस्पतीनोषधीराश्रमस्थान् ॥६८

पित्रा हीनो बन्धुभिर्गोत्रजैश्च,
मात्रा हीनो बालकः सर्व एव ।
रक्षन्तु सर्वेऽपि च भूतसंघा-
स्तथौषध्यो बालकं लोकपालाः ॥६९

ये बालकं मातृपितृप्रहीणं,
सनिर्विशेष स्वतनुप्ररूढः ।
पश्यन्ति रक्षन्ति त एव नून,
ब्रह्मादिकानामपि वन्दनीयाः ॥७०

इस परिवर्त्तनशील ससार रूप चक्र मे इस परम सामर्थ्य से युक्त मानवीय-धर्म से युक्त शरीर को प्राप्त करके अपने परमाधिक प्रिय प्राणो को देखो और विप्रो के कार्य की सिद्धि के लिये जो प्राणी त्याग किया करते हैं वे वास्तव मे बहुत ही धन्य हैं ॥६४॥ ये प्राण तो सब ही देह-धारी मनुष्य के गमन करने वाले हुआ करते हैं अर्थात् जो भी कोई देहधारी हैं वे सभी अवश्य ही एक न एक दिन अवश्य ही अपने प्राणों का त्याग किया करते हैं—इसमे कुछ भी सशय नही है। इस तरह से ज्ञान प्राप्त करके जो ब्राह्मण गौ और देवो के हित-सम्पादन करने के लिये इनका उत्सर्ग कर दिया करते हैं वे परम समर्थ ईश्वर ही होते है ॥६५॥ मेरु द्वारा बहुत कुछ निवारण करने पर जो कि मैं परम प्रपन्न अपने पतिदेव की थी मेरे स्वामी ने देवो के अस्त्रो को अपने आश्रय मे रख लेना स्वीकार कर लिया था । अथवा मनुष्य लोक के अतिगमन करने वाली चेष्टा से युक्त विधाना के मन मे रहने वाली बात को कौन जानता है अर्थात् विधाता के हृदय की बात को कोई भी नही जान सकता है ॥६६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा था। ब्रह्माजी बोले—इस तरह से उस दधीचि मुनि की पत्नी ने कहकर यथोचित रीति से अग्नियो का पूजन करके जो अपने भर्त्ता की त्वचा और लोमादि वहाँ पर शेष थे उनके साथ उसने अग्नि मे प्रवेश कर लिया था उसके गर्भ मे स्थित जो बालक था उसको उस प्रातिथेयी ने कुक्षि को विदारित करके हाथ मे ग्रहण कर लिया था। फिर गङ्गा का, भूदेवी का और अपने आश्रम का तथा उस आश्रम मे स्थित वनस्पतियो का और ओषधियो का प्रणिपात किया था ॥६७-६८॥ प्रातिथेयी ने कहा—यह बालक इस समय मे पिता सब बन्धुगण गोत्रज और माता से भी हीन है अर्थात् इसका इस समय मे कोई भी रक्षा करने वाला नही है। सर्वथा अनाथ ही है इसका सरक्षण

समस्त भूतसंघ, ओषधियाँ और सब लोकपाल करें ॥६९॥ इस माता-पिता से हीन बालक को अपने शरीर से प्ररूढ़ों के द्वारा विशेष रूप से अपना ही समझकर देखेंगे और इसकी सुरक्षा करेंगे वे निश्चय ही ब्रह्मादि देवों के भी वन्दनीय होगे। अर्थात् ब्रह्मा प्रभृति देव भी उसकी वन्दना करेंगे ॥७०॥

इत्युक्त्वा चात्यजद्‌बालं भर्तृचित्तपरायणा ।
पिप्पलानां समीपे तु न्यस्य बालं नमस्य च ॥७१
अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य यज्ञपात्रसमन्विता ।
विवेशाग्निं प्रातिथेयी भर्त्रा सह दिवं ययौ ॥७२
रुरुदुश्चाऽऽश्रमस्था ये वृक्षाश्च वनवासिनः ।
पुत्रवत्पोषिता येन ऋषिणा च दधीचिना ॥७३
विना तेन न जीवामस्तया मात्रा विना तथा ।
मृगाश्च पक्षिणः सर्वे वृक्षाः प्रोचुः परस्परम् ॥७४
स्वर्गमासेदुषोः पित्रोस्तदपत्येष्वकृत्रिमम् ।
ये कुर्वन्त्यनिशं स्नेहं त एव कृतिनो नराः ॥७५
दधीचिः प्रातिथेयी वा वीक्षतेऽस्मान्यथा पुरा ।
तथा पिता न माता वा धिगस्मान्पापिनो वयम् ॥७६
अस्माकमपि सर्वेषामतः प्रभृति निश्चितम् ।
बालो दधीचिः प्रातिथेयी बालो धर्मः सनातनः ॥७७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने स्वामी में अपने चित्त को तत्पर रखने वाली प्रातिथेयी ने इतना निवेदन करके उस बालक को पिप्पलों के समीप में रखकर तथा नमस्कार करके उस बालक का त्याग कर दिया था फिर यज्ञ के पात्रों से समन्वित होकर अग्नि की प्रदक्षिणा की थी और तदनन्तर उस प्रातिथेयी ने अग्नि में प्रवेश कर लिया था और अपने स्वामी के साथ ही वह दिवलोक को चली गयी थी ॥७१-७२॥ उस समय में वहाँ पर बहुत ही करुणापूर्ण दृश्य उपस्थित हो गया था जो भी आश्रम में स्थित वृक्ष एवं वन में निवास करने वाले थे वे सभी रुदन करने लगे थे क्योंकि दधीचि ऋषि ने उन सबको अपने ही पुत्र के समान

पोषित किया था। वहाँ के सभी पक्षी मृग और वृक्ष परस्पर में कह रहे थे कि हम अब उस ऋषि के बिना तथा परम करुणामयी माता के बिना अब जीवित नही रहेंगे ।।७३-७४।। वृक्षो ने कहा—स्वर्ग मे गमन करने वाले माता-पिता के अपत्यो में जो अकृत्रिम स्नेह निरन्तर किया करते हैं वे ही मनुष्य परम पुण्यात्मा होते हैं ।।७५।। पहिले महर्षि दधीचि और प्रातिथेयी हम लोगों को जिस तरह से देखा करते थे अर्थात् हम सबकी पूर्णतया देखभाल रखते थे वैसी देखभाल माता-पिता भी नही किया करते हैं। हम बड़े ही पापी हैं हमको धिक्कार है ।।७६।। इसी लिये हम सबका भी आज से लेकर यही निश्चय है कि यह बालक ही दधीचि ऋषि हैं और यह बालक ही प्रातिथेयी माता के सदृश है एवं सनातन धर्म धर्म स्वरूप है। तात्पर्य यह है कि अब तो यह बालक ही उनका स्वरूप है ।।७७।।

एवमुक्त्वा तदौषध्यो वनस्पतिसमन्विता: ।
सोम राजानमभ्येत्य याचिरेऽमृतमुत्तमम् ।।७८
स चापि दत्तवास्तेभ्य सोमोऽमृतमनुत्तमम् ।
ददुर्बालाय ते चापि अमृतं सुरवल्लभम् ।।७९
स तेन तृप्तो ववृध शुक्लपक्षे यथा शशी ।
पिप्पलै: पालितो यस्मात्पिप्पलाद: स बालक: ।
प्रवृद्ध: पिप्पलानेवमुवाच त्वतिविस्मित: ।।८०
मानुषेभ्यो मानुषास्तु जायन्ते पक्षिभि: खगा: ।
बीजेभ्यो वीरुधो लोके वैषम्य नैव दृश्यते ।।
वार्क्षस्त्वहं कथं जातो हस्तपादादिजीववान् ।।८१
वृक्षास्तद्वचन श्रुत्वा सर्वमूचर्यथाक्रमम् ।
दधीचेर्मरण साध्व्यास्तथा चाग्निप्रवेशनम् ।।८२
अस्थ्नां संहरणं देवैरेतत्सर्वं सविस्तरम् ।
श्रुत्वा दु:खसमाविष्टो निपपात तदा भुवि ।।८३
आश्वासित: पुनर्वृक्षैर्वाक्यैर्धर्मार्थसहितै: ।
आश्वस्त: स पुन: प्राह तदौषधिवनस्पतीन् ।।८४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से कहकर उन सब ओषधियों ने और वृक्षों ने तथा वनस्पतियो ने राजा सोम के समीप मे जाकर उत्तम अमृत की याचना की थी ॥७८॥ उस सोम राजा ने भी उनको परमोत्तम अमृत का प्रदान कर दिया था। उन्होंने फिर उस सुरों का परम प्रिय अमृत को लाकर उस शिशु को दे दिया था। वह बालक उस अमृत से संतृप्त होकर शुक्ल पक्ष मे चन्द्र के ही समान वर्धमान हो गया था। पिप्पलों के द्वारा वह पालित किया गया था इसी कारण से वह बालक पिप्पलाद नाम वाला हो गया था। जब वह बड़ा हो गया था तो उसने अत्यन्त विस्मित होकर उन पिप्पलो से इस तरह कहा था। पिप्पलाद बोला—मनुष्यों से मनुष्य समुत्पन्न हुआ करते हैं—पक्षियो से पक्षी पैदा होते हैं तथा बीजो से लताएँ, और वृक्ष आदि की समुत्पत्ति हुआ करती है—इस प्राकृतिक नियम मे कही पर भी विषमता नही दिखलाई दिया करती है। मैं फिर वृक्ष से समुत्पन्न होने वाला हाथ-पैर आदि से युक्त जीवधारी मनुष्य कैसे उत्पन्न हुआ हूँ ? यहा पर इस सार्वदिक नियम मे विषमता कैसे होगयी है ? ॥७९-८१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस बालक के इस प्रकार के समुचित प्रश्न-वचनो का श्रवण करके उन आश्रम मे रहने वाले वृक्षो ने सम्पूर्ण वृत्तान्त क्रम पूर्वक उस बालक को बतला दिया था जिस तरह से महर्षि दधीचि का मरण हुआ और जैसे साध्वी प्रातिथेयी का अग्नि मे प्रवेश हुआ था तथा जिस रीति से देवों के द्वारा दधीचि की अस्थियों का सहरण किया गया था यह सभी सुविस्तृत रूप से कहकर उस बालक को श्रवण करा दिया गया था। यह समस्त वृत्तान्त सुनकर वह बालक दुःख से समाविष्ट हो गया था और उसी समय मे भूमि पर गिर पड़ा था ॥८२-८३॥ फिर उन वृक्षो ने धर्मार्थ समन्वित वाक्यो के द्वारा उसको समाश्वासित किया था। आश्वस्त होकर फिर उस बालक ने उन ओषधि और वनस्पतियों से कहना आरम्भ कर दिया था ॥८४॥

पितृहन्तॄन्हनिष्येऽह नान्यथा जीवितु क्षमः।
पितुर्मित्राणि शत्रूंश्च तथा पुत्रोऽनुवर्तते ॥८५

स एव पुत्रो योऽन्यस्तु पुत्ररूपो रिपुः स्मृतः ।
वदन्ति पितृमित्राणि तारयन्त्यहितानपि ।।८६
वृक्षास्त बालमादाय सोमान्तिकमथाऽऽययुः ।
बालवाक्य तु ते वृक्षाः सोमायाय न्यवेदयन् ।।
श्रुत्वा सोमोऽपि त बाल पिप्पलादमभापत ।।८७
गृहाण विद्यां विधिवत्समग्रा,
तप सभृद्धि च शुभा च वाचम् ।
शौर्यं च रूप च बलं च बुद्धि,
सप्राप्स्यसे पुत्र मदाशया त्वम् ।।८८
पिप्पलादस्तमप्याह ओषधीश विनीतवत् ।।८६
सर्वमेतद्‌वृथा मन्ये पितृहन्तृविनिष्कृतिम् ।
न करोम्यत्र यावच्च तस्मात्तत्प्रथम वद ।।६०
यस्मिन्देशे यत्र काले यस्मिन्देवे च मन्त्रके ।
यत्र तीर्थं च सिध्येत मत्सकल्पः सुरोत्तम ।।६१

पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने माता पिताओ के हनन करने वालो को अवश्य ही मार डालूँगा अन्यथा मैं जीवित रहने मे समर्थ नही रहूँगा । पुत्र का कर्त्तव्य होता है कि वह माता-पिता के जो मित्र होते हैं अथवा शत्रु होते है उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया करता है ।।८५।। वही वास्तव मे पुत्र है तथा इसके विपरीत आचरण करने वाला तो पुत्र नही होता है प्रत्युत वह पुत्र के रूप मे रिपु ही हुआ करता है ऐसा ही कहा गया है । पितृ मित्र कहते हैं और वे अहितों को भी तार दिया करते हैं ।।८६।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—वे वृक्ष उस बालक को साथ लेकर राजा सोम के समीप मे समागत हुए थे और उन वृक्षो ने यह समस्त वृत्तान्त जो उस बालक ने कहा था सोम से निवेदन कर दिया था । यह श्रवण करके सोम ने भी उस पिप्पलाद बालक से कहा था ।।८७।। राजा सोम कहने लगा—हे पुत्र ! पहिले तुम विधि पूर्वक समग्र विद्या को ग्रहण करो–तपश्चर्या की पूर्ण समृद्धि को सम्प्राप्त करो और परम शुभ वाणी का भी तुमको ग्रहण करना चाहिए । तथा शौर्य, रूप, बल, विक्रम और

कुशाग्र बुद्धि को ग्रहण कर लो। फिर मेरी भी आज्ञा है कि तुम सब कुछ प्राप्त कर लोगे ॥८८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे उस पिप्पलाद ने परम विनम्र होकर ओषधियो के स्वामी उस सोम से कहा था। पिप्पलाद बोला—मैं तो इन सब विद्याओं तथा सिद्धियो को प्राप्त करना व्यर्थ ही समझता हूँ जब तक कि मैं पिता के हनन करने वालों की विनिष्कृति नही करूँ अर्थात् पिता के मारने वालो से बदला न ले लूँ। अतएव आप कृपा करके सबसे प्रथम मुझे वही बदला लेने का उपाय बतलाइये ॥८९-९०॥ हे सुरोत्तम ! जिस देश में, जिस काल मे, जिस देव में, जिस मन्त्र मे, और जिस तीर्थ मे मेरा मन का सत्य सङ्कल्प पूर्ण हो जावे वही मुझे आप पहिले बतलाइये ॥९१॥

चन्द्रः प्राह चिरं ध्यात्वा भुक्तिर्वा मुक्तिरेव वा।
सर्वं महेश्वराद्वाञ्जायते नात्र सशयः ॥९२
स सोमं पुनरप्याह कथ द्रक्ष्ये महेश्वरम्।
बालोऽहं बालबुद्धिश्च न सामर्थ्यं तपस्तथा ॥९३
गौतमी गच्छ भद्र त्व स्तुहि चक्रेश्वरं हरम्।
प्रसन्नस्तु तवेशानो ह्यल्पायासेन वत्सक ॥९४
प्रीतो भवेन्महादेवः साक्षात्कारुणिकः शिवः।
आस्ते साक्षात्कृतः शंभुर्विष्णुना प्रभविष्णुना ॥९५
वरं च दत्तवान्विष्णोश्चक्रं च त्रिदशार्चितम्।
गच्छ तत्र महाबुद्धे दण्डके गौतमी नदीम् ॥९६
चक्रेश्वरं नाम तीर्थं जानन्त्योषधयस्तु तत्।
तं गत्वा स्तुहि देवेशं सर्वभावेन शंकरम् ॥
स ते प्रीतमनास्तात सर्वान्कामान्प्रदास्यति ॥९७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—चन्द्र देव ने बहुत अधिक समय तक ध्यान करके भुक्ति अथवा मुक्ति सभी कुछ महेश्वर देव की उपासना एव समाराधना से हुआ करती हैं—इसमे लेशमात्र भी सशय नही है ॥९२॥ उस बालक पिप्पलाद ने पुनः उस सोमदेव से पूछा था कि मैं भगवान् महेश्वर का दर्शन किस रीति से प्राप्त कर सकूँगा। मैं तो अत्यन्त

छोटा बालक हूँ और मेरे अन्दर अभी बाल बुद्धि है। मुझ में न तो इतनी शक्ति ही है और न कोई तपोबल ही विद्यमान है ।।९३।। चन्द्र देव ने कहा—हे भद्र ! तुम गौतमी गङ्गा पर चले जाओ और वहाँ पर पहुच कर चक्रेश्वर हर का स्तवन करो। हे वत्स ! वहाँ पर थोड़े से ही परिश्रम के करने से भगवान् ईशान तुम पर परम प्रसन्न हो जायगे ।।९४।। भगवान् शिव बहुत ही अधिक दयालु हैं और महादेव साक्षात् होकर तुम पर प्रसन्न हो जायगे। वहाँ पर प्रभाविष्णु के द्वारा शिव का साक्षात्कार किया है ।।९५।। भगवान् शम्भु ने वहाँ पर विष्णु को वरदान दिया था तथा देवो के द्वारा समर्चित सुदर्शन चक्र भी दिया था। अतएव हे वत्स ! तुम तो महान् बुद्धिमान बालक हो दण्डकारण्य मे गौतमी नदी पर शीघ्र ही गमन करो ।।९६।। वहाँ पर चक्रेश्वर नामक तीर्थ है और ये समस्त औषधियाँ उस तीर्थ को जानती हैं। वहाँ पर पहुच कर सर्वभाव से देवेश्वर भगवान् शङ्कर की स्तुति करो। वह प्रसन्न मन वाले होकर हे तात ! तुम्हारे समस्त मनोरथो को अवश्य ही पूर्ण कर देंगे ।।९७।।

तद्राजवचनाद्ब्रह्मन्पिप्पलादो महामुनिः।
आजगाम जगन्नाथो यत्र रुद्रः स चक्रदः ।।९८
त बाल कृपयाऽऽविष्टाः पिप्पलाः स्वाश्रमान्ययुः।
गोदायर्या ततः स्नात्वा नत्वा त्रिभुवनेश्वरम् ।।
तुष्टाव सर्वभावेन पिप्पलादः शिव शुचिः ।।९९
सर्वाणि कर्माणि विहाय धीरा-
स्त्यक्तैषणा निर्जितचित्तवाताः।
यं यान्ति मुक्त्यै शरण प्रयत्ना-
समादिदेव प्रणमामि शम्भुम् ।।१००
यः सर्वसाक्षी सकलान्तरात्मा,
सर्वेश्वरः सर्वकलानिधानम्।
विज्ञाय मच्चित्तगत समस्त,
स मे स्मरारिः करुणा करोतु ।।१०१

दिग्गीश्वराञ्जित्य सुरार्चितस्य,
कैलासमान्दोलयतः पुरारेः ।
अङ्गुष्ठकृत्यैव रसातलादधो-
गतस्य तस्यैव दशाननस्य ॥१०२

आलूनकायस्य गिरं निशम्य,
विहस्य देव्या सह दत्तमिष्टम् ।
तस्मै प्रसन्नः कुपितोऽपि तद्व-
दयुक्तदाताऽसि महेश्वर त्वम् ॥१०३

सौत्रामणीमृद्धिमघः स चक्रे,
योऽर्चा हरो.रे, नित्यमतीव कृत्वा ।
वाणः प्रशस्यः कृतवानुच्चपूजां,
रम्यां मनोज्ञां शशिखण्डमोलेः ॥१०४

जित्वा रिपून्देवगणान्प्रपूज्य,
गुरुं नमस्कर्तुमगाद्विशाखः ।
चुकोप दृष्ट्वा गणनाथमूढ-
मङ्के तमारोप्य जहास सोमः ॥१०५

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! उस राजा सोम देव के वचन से वह महामुनि पिप्पलाद वहाँ पर समागत हो गया था जहाँ पर इस जगत् के स्वामी चक्र प्रदान करने वाले रुद्रदेव विराजमान थे ॥६८॥ उस बालक को वहाँ पहुचा कर दया से परिपूर्ण पिप्पल वृक्ष अपने आश्रमो को चले गये थे । उस पिप्पलाद बालक ने गोदावरी मे स्नान किया था। फिर उसने भगवान् त्रिभुनेश्वर को प्रणाम किया था । पिप्पलाद ने परम शुचि होकर सर्वभाव से भगवान् शिव का स्तवन किया था ॥६६॥ पिप्पलाद ने शिव । निवेदन किया था कि धीर पुरुष सब एगणाओ का त्याग करके और अन्य सब कर्मों को छोड़कर अपनी चित्त की वृत्ति पर विजय पाकर जिन देवेश्वर की शरणागति मे प्रयत्न पूर्वक मुक्ति के लिये आया करते हैं उन्हीं आदि देव भगवान् शम्भु के चरणों मे मेरा प्रणाम समर्पित है ॥१०७॥ जो सबका साक्षी है और जो सबका अन्तरात्मा है

अर्थात् सबके अन्दर अन्तर्यामी रूप से विराजमान है। जो सबका ईश्वर तथा समस्त कलाओं की खान है वही प्रभु मेरे चित्त में स्थित मनोरथ को समझकर कामदेव को भस्म कर देने वाले भगवान् शम्भुदेव मुझ पर करुणा की वृष्टि करें ॥१०१॥ समस्त दिक्पालों को जीत कर सुरों के द्वारा समर्पित भगवान् पुरारि के आश्रय भूत कैलास पर्वत को हिला देने वाले अगुष्ठकृति से ही रसातल से भी नीचे गये हुए आलूनकाय दशानन की वाणी को सुनकर देवी के साथ हँस कर जिसने अभीष्ट दिया था। कुपित होकर भी उस पर परम प्रसन्न हो गये थे उसी की भाँति हे महेश्वर ? आप अयुक्त दाता हैं ॥१०२-१०३॥ जिस बाण ने हर की नित्य अर्चा को करके सौत्रामणी ऋद्धि को भी तुच्छ कर दिया था उस प्रशस्य बाण ने शशि खण्ड को मस्तक पर धारण करने वाले प्रभु की परम रम्य एवं मनोज्ञ समुच्च पूजा की थी ॥१०४॥ विशाग रिपुओं को जीतकर देवगणों की पूजा करके गुरु को प्रणाम करने के लिये गया और रुद्र गणनाथ को देखकर कुपित हो गया था उसको सोम ने अङ्क में समारोपित कर हास किया था ॥१०५॥

ईशाङ्करूढोऽपि शिशुस्वभावा-
स मातुरङ्कं प्रमुमोच बालः।
क्रुद्धं सुत बोधितुमप्यशक्त-
स्ततोऽर्धनारित्वमवाप सोमः ॥१०६

ततः स्वयम्भूः सुप्रीतः पिप्पलादमभाषत ॥१०७
वरं वरय भद्रं ते पिप्पलाद यथेप्सितम् ॥१०८

हतो देवैर्महादेव पिता मम महायशाः।
अदाम्भिकः सत्यवादी तथा माता पतिव्रता ॥१०९

देवेभ्यश्च तयोर्नाशं श्रुत्वा नाथ सविस्तरम्।
दुःखकोपसमाविष्टो नाहं जीवितुमुत्सहे ॥११०
तस्मान्मे देहि सामर्थ्यं नाशयेयं सुरान्यथा।
अवध्यस्त्वथ्यसर्वलोकये त्वमेव शशिशेखर ॥१११

ईश के अङ्क ( गोद ) में समारूढ होते हुए भी शिशु के स्वभाव के कारण बालक ने माता की गोद को नही छोड़ा था उस समय मे क्रुद्ध सुत को समझाने मे असमर्थ होकर तभी से सोम अर्धनारित्व को प्राप्त हो गये थे ॥१०६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से स्तवन का श्रवण करके स्वयम्भू प्रभु परम प्रसन्न हो गये थे और उसी समय में पिप्पलाद से कहने लगे ॥१०७॥ भगवान् शिव ने कहा—हे पिप्पलाद ! मुझ से वरदान का वरण कर लो। जो भी कुछ तुमको अभीष्ट हो माँग लो ॥१०८॥ पिप्पलाद ने कहा—हे महादेव प्रभो ! महान् यशस्वी मेरे पिता दधीचि का देवो के द्वारा हनन किया गया था। मेरे पिता थी दम्भ से सर्वथा रहित थे और सत्यवादी थे। मेरी माता पूर्ण पतिव्रता थी ॥१०९॥ हे नाथ ! देवो से उन दोनो का सविस्तृत विनाश सुनकर मैं अत्यन्त दुःख और कोप से समाविष्ट हो गया हूँ और अब मैं जीवित रहने का उत्साह नही करता हूँ। अतएव आप कृपा करके मुझ मे ऐसी शक्ति दीजिए कि मैं जिसके द्वारा सुरो का विनाश कर सकूँ। हे शशि को मस्तक पर धारण करने वाले स्वामिन् ! आप ही ऐसे प्रभु त्रिलोकी मे हैं जो अवध्य हैं और सेव्य हैं ॥११०-१११॥

तृतीयं नयनं द्रष्टुं यदि शक्नोपि मेऽनघ ।
ततः समर्थो भविता देवांश्छेदयितुं भवान् ॥११२
ततो द्रष्टुं मनश्चक्रे तृतीयं लोचनं विभोः ।
न शशाक तदोवाच न शक्तोऽस्मीति शंकरम् ॥११३
किंचित्कुरु तपो बाल यदा द्रक्ष्यसि लोचनम् ।
तृतीयं त्वं तदाऽभीष्टं प्राप्स्यसे नात्र संशयः ॥११४
एतच्छ्रुत्वेशानवाक्यं तपसे कृतनिश्चयः ।
दधीचिसूनुर्धर्मात्मा तत्रैव बहुलाः समाः ॥११५
शिवाध्यानकनिरतो बालोऽपि बलवानिव ।
प्रत्यहं प्रातरुत्थाय स्नात्वा नत्वा गुरून्क्रमात् ॥११६
सुखासीनो मनः कृत्वा सुषुम्नायामनन्यधीः ।
हस्तस्वस्तिकमारोप्य नाभौ विस्मृतसंसृतिः ॥११७

स्थानात्स्थानान्तरोत्कर्पान्विदध्यौ शांभव महः ।
ददर्श चक्षुर्देवस्य तृतीय पिप्पलाशनः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनीत इदमब्रवीत् ॥११८

ईश्वर ने कहा—हे अनघ ! यदि तुम मेरे तीसरे नेत्र को देख सकते हो तो तुम निश्चय ही सब देवो का छेदन करने मे समर्थ हो सकते हो ॥११२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर उस पिप्पलाद ने विभु के तीसरे नेत्र को देखने का मन मे विचार किया था किन्तु वह ऐसा न कर सका था। उसी समय मे उसने भगवान शङ्कर से कहा था—हे भगवन् ! मैं तो आपका तृतीय नेत्र देखने की शक्ति नही रखता हू ॥११३॥ भगवान् ईश्वर ने कहा—हे बच्चे ! अभी तुम कुछ तप करो तभी तुम मेरा तीसरा नेत्र देख लोगे। और जब मेरा तीसरा लोचन देख लोगे तो उसी समय से अपना अभीप्सित मनोरथ भी अवश्य ही प्राप्त कर लोगे इसमे लेशमात्र भी सशय नही है ॥११४॥ यह ईशान देव का वचन सुनकर उस बालक ने तपश्चर्या करने का निश्चय किया था और दधीचि महर्षि के पुत्र ने वही पर परम धर्मात्मा दधीचि के पुत्र ने बहुत से वर्षो तक तप किया था ॥११५॥ यद्यपि वह बालक था, तो भी एक बलवान् पुरुष की ही भाँति शिवजी के ध्यान मे निरत होकर तपश्चर्या कर रहा था। प्रतिदिन प्रात काल मे उठकर स्नान किया करता था और क्रम से अपने गुरुजनो को प्रणाम करता था ॥११६॥ सुख पूर्वक फिर बैठकर अनन्य बुद्धि वाला होते हुए अपने मन को सुषुम्ना नाडी मे करके हस्त स्वस्तिक का नाभि मे आरोप करके एकदम ससार को विस्मृत कर देता था ॥११७॥ शनै शनैः एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपना उत्कर्ष करके भगवान् शम्भु के तेज का चिन्तन किया करता था। उस पिप्पलाशन ने देवेश्वर के तीसरे नेत्र को देख लिया था। जैसे ही तृतीय लोचन का उसने दर्शन प्राप्त किया था वैसे ही हाथ जोड़कर परम विनम्र होते हुए यह वचन बोला था ॥११८॥

शम्भुना देवदेवेन वरो दत्तः पुरा मम ।
तार्तीयचक्षुषो ज्योतिर्यदा पश्यसि तत्क्षणात् ॥११९

सर्वं ते प्रार्थितं सिध्येदित्याह त्रिदशेश्वरः ।
तस्माद्रिपुविनाशाय हेतुभूतां प्रयच्छ मे ॥१२०
तदैव पिप्पलाः प्रोचुर्वडवाऽपि महाद्युते ।
माता तव प्रातियेयी वदन्त्येव दिवं गता ॥१२१
पराभिद्रोहनिरता विस्मृतात्महिता नराः ।
इतस्ततो भ्रान्तचित्ताः पतन्ति नरकावटे ॥१२२
तन्मातृवचनं श्रुत्वा कुपितः पिप्पलाशनः ।
अभिमाने ज्वलत्यन्तः साधुवादो निरर्थकः ॥१२३
देहि देहीति तं प्राह कृत्या नेत्रविनिर्गता ।
वडवेति स्मरन्विप्रः कृत्याऽपि वडवाकृतिः ॥१२४
सर्वसत्त्वविनाशाय प्रभूताऽनलगर्भिणी ।
गभस्तिनो बालगर्भा या माता पिप्पलाशिनः ॥१२५
तद्ध्यानयोगात्तु जाता कृत्या साऽनलगर्भिणी ।
उत्पन्ना सा महारौद्रा मृत्युजिह्वेव भीषणा ॥१२६

पिप्पलाद ने कहा—भगवान् शम्भु ने पहिले मुझे वरदान दिया था कि जिस समय मे तृतीय नेत्र मे होने वाली ज्योति का दर्शन करेगा तुरन्त ही उसी क्षण मे तेरा सभी प्रार्थना किया हुआ मनोरथ सिद्ध हो जावेगा—यही मुझसे भगवान् त्रिदशेश्वर ने आदेश प्रदान किया । अतएव मेरे शत्रुओ के विनाश करने के लिये जो भी हेतुभूता हो उसका प्रदान कीजिए ॥११९-१२०॥ उसी समय मे पिप्पलों ने कहा था—हे महती द्युति वाले ! आपकी माता प्रातियेयी और वड़वा ने भी दिवलोक को गमन करने के समय में यह कह रही थी ॥१२१॥ पराये द्रोह मे अभिरति रखने वाले तथा आत्मा के हित को भुला देने वाले मनुष्य इधर-उधर भ्रान्त चित्त होकर भटकते हुए अन्त मे नरकावट मे पतन किया करते हैं ॥१२२॥ उस माता के द्वारा कथित वचन का श्रवण करके पिप्पलाशन बहुत ही कुपित हो गया था और अभिमान में उसका अन्तः-करण जलने लगा था । उसने कहा था कि यह साधुवाद निरर्थक ही है ॥१२३॥ उस अवसर पर भगवान् शम्भु के तृतीय नेत्र से निकली हुई

कृत्या ने उनसे 'दो-दो'—यह कहा था। विप्र ने वडवा का स्मरण करते हुए देखा था कि वह कृत्या भी वडवा के समान ही आकृति वाली थी ॥१२४॥ समस्त जीवों के विनाश करने के लिये वह अनलगर्भिणी समुत्पन्न हुई थी जो पप्पनाशी की बालक को गर्भ धारण करने वाली गभस्तिनी माता थी ॥१२५॥ उनके ध्यान योग से वह अनल गर्भिणी कृत्या होकर समुत्पन्न हुई थी। और अधिक भीषण मृत्यु की जिह्वा के ही समान वह रौद्र रूप वाली समुत्पन्न हुई थी ॥१२६॥

अवोचत्पिप्पलादं तं किं कृत्य मे वदस्व तत् ।
पिप्पलादोऽपि तां प्राह देवान्खाद रिपून्मम ॥१२७
जग्राह सा तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं पुरस्थितम् ।
स प्राह किमिदं कृत्ये सा चाप्याह त्वयोदितम् ॥१२८
देवैश्च निर्मितं देहं ततो भीतः शिवं ययौ ।
तुष्टाव देवं स मुनिः कृत्या प्राह तदा शिवः ॥१२९
योजनान्तःस्थिताञ्जीवान्न गृहाण मदाज्ञया ।
तस्माद्याहि ततो दूरं कृत्ये कृत्यं ततः कुरु ॥१३०
तीर्थात्तु पिप्पलात्पूर्वं यावद्योजनसंख्यया ।
प्रातिष्ठद्वडवारूपा कृत्या सा र्ष्यिनिर्मिता ॥१३१
तस्या जातो महानग्निर्लोकसंहरणक्षमः ।
तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे त्रस्ता शम्भुमुपागमन् ॥१३२
चक्रेश्वरं पिप्पलेशं पिप्पलादेन तोषितम् ।
स्तुवन्तो भीतमनसः शम्भुमूचुर्दिवौकसः ॥१३३

उस कृत्या ने उसी समय में पिप्पलाद से कहा था कि मुझे क्या करना है उसे शीघ्र बतला दो। इस वचन के कहने पर पिप्पलाद ने भी उसको यही उत्तर दिया था कि मेरे शत्रु देवों का भक्षण करो ॥१२७॥ 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर उसने अपने समक्ष में स्थित पिप्पलाद को ही सर्व प्रथम पकड़ लिया। तब तो उस पिप्पलाद ने उससे कहा—हे कृत्ये ! यह क्या कर रही हो ? उस कृत्या ने उसको

उत्तर देते हुए कहा था कि तुमने ही तो मुझे यह करने के लिये अभी? कहा था ॥१२८॥ यह तुम्हारा देह भी तो देवों के ही द्वारा निर्मित हुआ है। तब तो वह पिप्पलाद परमाधिक भयभीत होकर भगवान् शिव की शरण मे गया था और उस मुनि ने शिव का स्तवन किया था। उस समय मे भगवान् शङ्कर ने कृत्या से कहा था। श्री शिवजी ने कहा—हे कृत्ये! मेरी आज्ञा है कि एक योजन के अन्दर जो भी जीव हैं उनका तुम ग्रहण मत करो। इस कारण से हे कृत्ये! तुम दूर चली जाओ और फिर वहाँ जाकर अपना कार्य करो ॥१२९-१३०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—पिप्पल तीर्थ से पूर्व जहाँ तक योजन की सख्या होती है यह बड़वा रूपा कृत्या जो ऋषि निर्मित है प्रतिष्ठित हो गयी थी ॥१३१॥ उस मे महान् अग्नि समुत्पन्न हो गयी थी जो सम्पूर्ण लोक के संहार कर देने मे समर्थ थी उस महान् सहारक भीषण अग्नि को देख कर सब देवगण भयभीत हो गये थे और भाग कर भगवान् शङ्कर के समीप मे पहुचे थे ॥१३२॥ भगवान् चक्रेश्वर पिप्पलेश को पिप्पलाद मुनि ने प्रसन्न कर लिया है अतएव बहुत डरे हुए मन वाले देवो ने स्तुति करते हुए भगवान् शम्भु से प्रार्थना की थी ॥१३३॥

रक्षस्व शंभो कृत्याऽस्मान्बाधते तद्भवानलः।
शरणं भव सर्वेश भीतानामभयप्रद ॥१३४
सर्वतः परिभूतानामार्तानां भ्रान्तचेतसाम्।
सर्वेषामेव जन्तूना त्वमेव शरण शिव ॥१३५
ऋषिणाऽभ्यर्थिता कृत्या त्वच्चक्षुर्वह्निनिर्गता।
सा जिघांसति लोकांस्त्रीस्त्व नस्त्राता न चेतरः ॥१३६
तानब्रवीज्जगन्नाथो योजनान्तर्निवासिन ः।
न बाधते त्वसौ कृत्या तस्माद्यूयमहर्निशम् ॥१३७
इहैवाऽऽस्ध्वममरास्तस्या वो न भयं भवेत् ॥१३८
पुनरूचुः सुरेशानं त्वया दत्तं त्रिविष्टपम्।
तत्त्यक्त्वाऽत्र कथं नाथ वत्स्यामस्त्रिदशार्चित ॥१३९
देवानां वचनं श्रुत्वा शिवो वाक्यमथाब्रवीत् ॥१४०

देवों ने कहा—हे शम्भो ! हमारी रक्षा कीजिए। यह कृत्या हमको खाता रही है उसके द्वारा अनल समुत्पन्न हो गया है। हे सर्वेश्वर ! आप हमारे रक्षक होइये। आप तो सर्वदा भय से भीतों को अभय प्रदान करने वाले हैं ॥१३४॥ हे शिव ! सब ओर से जो परिभव को प्राप्त करने वाले—परमाधिक आर्त्त-भ्रान्त चित्त वाले समस्त जन्तुओं की रक्षा करने वाले आप ही हैं ॥१३५॥ पिप्पलाद ऋषि ने उससे प्रार्थना की है और यह कृत्या आपके तीसरे नेत्र से प्रकट होने वाली ही वह्नि है। यह तीनों लोकों का संहार करना चाहती है। अब आप ही हमारे रक्षक हैं अन्य कोई भी नहीं है ॥१३६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—जगत् के नाथ भगवान् शम्भु ने उन देवगणों से कहा था कि यह कृत्या जो एक योजन के अन्दर निवास करने वाले हैं उनको कोई बाधा नहीं पहुँचाती है। इस लिये आप सब लोग यहाँ पर ही अहर्निश रहिए। हे अमरो ! फिर यहाँ पर आपको उस कृत्या से कुछ भी भय नहीं होगा ॥१३७-१३८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उनने पुनः सुरेशान से प्रार्थना की थी कि आपने ही हम सबको निवास करने के लिये स्वर्ग लोक प्रदान किया था। हे नाथ ! अब उसका त्याग करके यहाँ पर कैसे निवास करेंगे। आप तो देवों के द्वारा अर्चित देव हैं ॥१३९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शिव ने देवों के वचन को सुन कर फिर यह वाक्य कहा था ॥१४०॥

देवोऽसौ विश्वतश्चक्षुर्यो देवो विश्वतोमुखः ।
यो रश्मिभिस्तु धमते नित्यं यो जनको मतः ॥१४१

स सूर्य एक एवात्र साक्षाद्रूपेण सर्वदा ।
स्थिति करोतु तन्मूर्तौ भविष्यन्त्यखिलाः स्थिताः ॥१४२

तथेति शंभुवचनात्पारिजाततरोस्तदा ।
देवा दिवाकरं चक्रुस्त्वष्टा भास्करमब्रवीत् ॥१४३

इहैवाऽऽस्स्व जगत्स्वामिन्प्रक्षोमान्विबुधान्स्वयम् ।
त्वाशीश्च वयमप्यत्र तिष्ठामः शंभुसंनिधौ ॥१४४

चक्रेश्वरस्य परितो यावद्योजनसख्यया ।
गङ्गाया उभयं तीरमासाद्याऽसन्सुरोत्तमाः ॥१४५
अङ्गुल्यर्घार्घमात्रं तु गङ्गातीरं समाश्रिताः ।
तिस्रः कोट्यस्तथा पञ्च शतानि मुनिसत्तम ।
तीर्थानां तत्र व्युष्टि च कः शृणोति ब्रवीति वा ॥१४६

भगवान् शङ्कर बोले—यह सूर्य देव सम्पूर्ण विश्व के नेत्र है और यह समस्त विश्व का मुख हैं। तथा जो अपनी किरणो के द्वारा नित्य धमन किया करते हैं तथा जो सबके जनक माने गये हैं वे सूर्यदेव एक ही यहाँ पर सर्वदा साक्षात् रूप से विद्यमान रहा करते हैं। उन सूर्य देव की मूर्त्ति मे आप लोग अपनी स्थिति करिए। वहाँ पर आप सभी स्थित हो जाँयगे ॥१४१-१४२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा——भगवान् शम्भु के वचन से देवो ने ऐसा ही करेंगे-यह कर उनकी आज्ञा को स्वीकार कर लिया था और उसी समय मे पारिजात तरु के समीप देवगण ने भगवान् दिवाकर का दर्शन प्राप्त किया । उस समय मे त्वष्टा ने भास्कर प्रभु से कहा था ॥१४३॥ त्वष्टा ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! आप यहाँ पर ही ठहरिये और इन देवो की आप स्वय रक्षा कीजिए। और अपने अंशो के द्वारा हम भी यहाँ पर शम्भु की सन्निधि मे ठहरेंगे॥१४४॥ भगवान् चक्रेश्वर दोनो ओर जहाँ तक एक योजन के विस्तार की सख्या समाप्त होती है गङ्गा के दोनो तटो को प्राप्त करके वे सुरोत्तम रहते थे ॥१४५॥ अंगुलि के अर्ध-अर्ध मात्र तक वे गङ्गा के तीर पर समाश्रित हुए थे। हे मुनियो मे परमश्रेष्ठ ! वहाँ पर तीन करोड़ पाच सौ तीर्थों की व्युष्टि है। उन सबको कौन तो बतलाता है और कौन श्रवण करता है। तात्पर्य यह है कि तीर्थों की सख्या इतनी अधिक है कि उन सबको न तो कोई बतला सकता है और न कोई श्रवण करने की ही शक्ति रखता है ॥१४६॥

ततः सुरगणाः सर्वे विनीताः शिवमब्रुवन् ॥१४७
पिप्पलादं सुरेशान शम नय जगन्मय ॥१४८

ओमित्युक्त्वा जगन्नाथः पिप्पलादमवोचत ॥१४६
नाशितेष्वपि देवेषु पिता ते नाऽऽगमिष्यति ।
दत्ताः पित्रा तव प्राणा देवानां कार्यसिद्धये ॥१५०
दीनार्तकरुणाबन्धुः को हि तादृग्भवे भवेत् ।
तथा याता दिवं तात तव माता पतिव्रता ॥१५१
समा काऽप्यत्र मतया लोपामुद्राऽप्यरुन्धती ।
यदस्थिभिः सुराः सर्वे जयिनः सुखिनः सदा ॥१५२
तेनावाप्तं यशः स्फीतं तव मात्राऽक्षयं कृतम् ।
त्वया पुत्रेण सर्वत्र नातः परतरं कृतम् ॥१५३
त्वत्प्रतापभयात्स्वर्गाच्च्युतास्त्वं पातुमर्हसि ।
नाऽऽर्तत्राणादभ्यधिकं सुकृतं क्वापि विद्यते ॥१५४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके पश्चात् फिर सब देवों ने विनम्र होकर भगवान् शिव से प्रार्थना की थी ॥१४७॥ देवों ने कहा—हे जगन्मय ! आप तो सुरों के स्वामी हैं । अब आप उस पिप्पलाद को शान्त कीजिए ॥१४८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अच्छा ऐसा करेंगे । इस तरह से देवों की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया, और फिर वे पिप्पलाद से बोले । श्री शिव ने कहा—हे पिप्पलाद ! इन सब देवों के विनष्ट कर देने पर भी तेरे पिता दधीचि तो मृत्युगत हो जाने के कारण पुनः अब यहाँ पर आयेंगे नहीं । उन देवों ने ही तेरे प्राणों को देव कार्य की सिद्धि के लिये प्रदान किया है ॥१४६-१५०॥ तुम्हारे पिताजी तो दीनों आर्त्तों पर करुणा करने वाले और उनके बन्धु के समान थे । उन सरीखा इस संसार में अन्य कौन हो सकता है ? अर्थात् वैसा दयालु तो कोई हो ही नहीं सकता । हे तात ! तुम्हारी माता भी परम पुनीत पतिव्रता थी । वे दोनों ही स्वर्ग वासी हो गये हैं ॥१५१॥ लोपामुद्रा और अरुन्धी के द्वारा भी सम्मानित उस तुम्हारी माता के समान यहाँ पर कौन है ? अर्थात् कोई भी नहीं है । जिसकी अस्थियों से सभी सुरगण सदा विजयी और सुखी रहते हैं । उस तुम्हारे पिता ने अपना सुयश त्रैलोक्य में फैला दिया है और तुम्हारी माता ने तो उस यश को अक्षय ही बना

दिया है। तुम पुत्र ने सर्वत्र ही उस यश को कर दिया है। इससे अधिक किसी ने भी ऐसा यश अब तक नही किया है ॥ ५२-१५३॥ तुम्हारे प्रताप के भय से ये सब देवगण स्वर्ग से भी च्युत हो गये हैं अब इनकी रक्षा करने के लिये तुम योग्य होते हो। जो कोई भी आर्त्त हो उनके परित्राण से अधिक सुकृत कहीं भी नहीं होता है ॥१५४॥

यावद्यशः स्फुरति चारु मनुष्यलोके,
अहानि तावन्ति दिवं गतस्य ।
दिने दिने वर्षसङ्ख्या(ख्य) परस्मि-
ल्लोके वासो जायते निर्विकार ॥१५५

मृतास्त एवात्र यशो न येपा-
मन्धास्त एव श्रुतवर्जिता ये ।
ये दानशीला न नपुंसकास्ते,
ये धर्मशीला न त एव शोच्याः ॥१५६

भाषितं देवदेवस्य श्रुत्वा शान्तोऽभवन्मुनिः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नत्वा नाथमथाब्रवीत् ॥१५७

वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिः कदाचि-
न्ममोपकुर्वन्ति हिते रता ये ।
तेभ्यो हितार्थं त्विह चापरेषां,
सोम नमस्यामि सुरादिपूज्यम् ॥१५८

संरक्षितो यैरभिवर्धितश्च,
समानगोत्रश्च समानधर्मा ।
तेषामभीष्टानि शिवः करोतु,
बालेन्दुमौलि प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥१५९

यैरहं वर्धितो नित्यं मातृवत्पितृवत्प्रभो ।
तन्नाम्ना जायता तीर्थं देवदेव जगत्त्रये ॥१६०
यशस्तु तेषा भविता तेभ्योऽहमनृणस्ततः ।
यानि क्षेत्राणि देवाना यानि तीर्थानि भूतले ॥१६१

तेभ्यो यदिदमधिकमनुमन्यन्तु देवता- ।
ततः क्षमेऽह देवानामपराध निरञ्जनः ।।१६२

जब तक यह तुम्हारा यश इस मनुष्य लोक मे बहुत ही सुन्दरता के साथ फैला रहेगा उतने दिन तक स्वर्गलोक मे गये हुए का, विकार से रहित निवास स्वर्ग मे हुआ करता है ।।१५५।। वे ही लोग वास्तव मे मरे हुए हैं जिनका यश यहाँ पर कुछ भी नही होता है और वे ही लोग अन्धे हैं जो ध्रुव से रहित होते है । जो दान करने के शील स्व-भाव वाले होते हैं वे नपुंसक नही होते हैं और जो धर्मशील पुरुष होते हैं उनका तो कभी भी शोच करना ही नही चाहिए अर्थात् धार्मिक पुरुषो की मृत्यु हो जाने पर भी उनके विषय मे चिन्ता या शोक कभी नही करना चाहिए ।।१५६।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से देवेश्वर प्रभु के इस भाषित को सुन कर पिप्पलाद मुनि परम शान्त हो गया था । फिर उस मुनि ने दोनो अपने हाथो को जोड़ कर नमस्कार किया था और फिर अपने नाथ की सेवा मे सविनय निवेदन किया ।।१५७।। पिप्पलाद मुनि ने कहा—जो वचनो के द्वारा-मनो के द्वारा और यत्नो के द्वारा मेरा उपकार किया करते हैं तथा मेरे हित करने मे रति रखते है उनके हित के लिये और दूसरो को भलाई के लिये सुरगण आदि के द्वारा पूज्य सोम को मैं नमस्कार करता हूँ ।।१५८।। जिन्होने मेरी सुरक्षा की थी और जिनके द्वारा मेरा अभिवर्धन हुआ था जो मेरे समान गोत्र वाले एव समान धर्म वाले हैं उन सबके अभीष्टो को भग-वान् शिव पूर्ण करें । मैं उन बालचन्द्र को मस्तक मे धारण करने वाले प्रभु को नित्य ही प्रणाम करता हूँ ।।१५६।। हे प्रभो ! जिन्होने नित्य ही माता पिता के समान मुझे सवर्धित किया है हे देवो के देव ! त्रैलोक्य मे उनके ही नाम से यह तीर्थ होना चाहिए ।।१६०।। उनका यश होगा तो मैं उनसे फिर मैं अनृण हो जाऊँगा अर्थात् किये हुए उनके उपकार ऋण का भार मेरे शिर से उतर जायगा । जो भी देवो के क्षेत्र है और जो भी भूतल मे तीर्थ है उन सबसे यह तीर्थ अधिक माना जावे

और सब देवता भी इसको सबसे बड़ा मानें तभी निरञ्जन मैं देवों के अपराधों को क्षमा कर दूँगा ॥१६१-१६२॥

ततः समक्ष सुरसाक्षरां गिरं,
सहस्रचक्षुःप्रमुखास्तयाऽग्रतः ।
उवाच देवा अपि मेनिरे वचो,
दधीचिपुत्रोदितमादरेण ॥१६३

बालस्य बुद्धि विनयं च विद्या,
शौर्यं बलं साहसं सत्यवाचम् ।
पित्रोर्भक्ति भावसुद्धि विदित्वा,
तदाऽवादीच्छंकरः पिप्पलादम् ॥१६४

वत्स यद्वै प्रियं काम यच्चापि सुरवल्लभम् ।
प्राप्स्यसे वद कल्याण नान्यथा त्व मनः कृथाः ॥१६५

ये गङ्गायामाप्लुता धर्मनिष्ठाः,
सपश्यन्ति त्वत्पदाब्ज महेश ।
सर्वान्कामानाप्नुवन्तु प्रसह्य,
देहान्ते ते पदमायान्तु शैवम् ॥१६६

तातः प्राप्तस्त्वत्पद चाम्बिका मे,
नाथ प्राप्ता पिप्पलश्चामराश्च ।
सुखं प्राप्ता नाथनाथ विलोक्य,
त्वा पश्येयुस्त्वत्पद ते प्रयान्तु ॥१६७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर महेन्द्र आदि देवों के आगे उसने परम सुरस अक्षरों वाली वाणी को कहा था और उस दधीचि के पुत्र के द्वारा कथित वचन को देवों ने भी बहुत आदर के साथ मान लिया था ॥१६३॥ उस समय मे उस बालक की बुद्धि-विनय-विद्या-शौर्य-बल-साहस-सत्य वचन माता-पिता की भक्ति और भावना की विशुद्धि को जानकर भगवान् शिव ने पिप्पलाद से कहा था ॥१६४॥ भगवान् शङ्कर ने कहा—हे वत्स ! जो भी तुम्हारा प्रिय हो और जो सुरों का प्रिय हो उसको तुम प्राप्त करोगे । हमेशा कल्याण का कथन करो और अन्यथा

अर्थात् कल्याण के विपरीत कर्मों में अपने मन को मत करना ॥१६५॥ पिप्पलाद ने कहा—जो धर्मनिष्ठ पुरुष गङ्गा में स्नान करने वाले हैं और हे महेश ! आपके चरण कमलों का दर्शन करते हैं वे अपने समस्त अभीप्सितों को बलात् प्राप्त कर लेवें और देह के अन्त समय में शैव पद को गमन किया करें। मेरे पिताजी और मेरी माता आपके पद को प्राप्त हो गये हैं। हे नाथ ! पिप्पल तथा अमरगण भी नाथों के नाथ आपका अवलोकन करके सुख पूर्वक प्राप्त हो गये हैं। जो भी आपके चरण कमलों का दर्शन करें वे सभी आपके पद की प्राप्ति कर लिया करें ॥१६६-१६७॥

तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं देवदेवो महेश्वरः ।
अभिनन्द्य च तं देवैः साधं वाक्यमथाब्रवीत् ॥१६८
देवा अपि मुदा युक्ता निर्भयास्तत्क्षणाद्भयात् ।
इदमूचुः सर्व एव दाधीचं शिवसन्निधौ ॥१६६
सुराणां यदभीष्टं च त्वया कृतमसंशयम् ।
पालिता देवदेवस्य आज्ञा त्रैलोक्यमण्डनी ॥१७०
याचितं च त्वया पूर्वं परार्थं नाऽऽत्मने द्विज ।
तस्मादन्यतम ब्रूहि किंचिद्दास्यामहे वयम् ॥२७१
पुनः पुनस्तदेवोचुः सुरसंघा द्विजोत्तमम् ।
कृताञ्जलिपुटः पूर्वं नत्वा शम्भुसुरानिदम् ॥
उवाच पिप्पलादश्च उमां नत्वा च पिप्पलान् ॥१७२
पितरौ द्रष्टुकामोऽस्मि सदा मे शब्दगोचरौ ।
ते धन्याः प्राणिनो लोके मातापित्रोर्वशे स्थिताः ॥१७३
शुश्रूषणपरा नित्यं तत्पादाज्ञाप्रतीक्षकाः ।
इन्द्रियाणि शरीरं च कुलं शक्तिं श्रियं वपुः ॥१७४
परिलभ्य तयोः कृत्ये कृतकृत्यो भवेत्स्वयम् ।
पशुना पक्षिणा चापि सुलभं मातृदर्शनम् ॥१७५
दुर्लभं मम तच्चापि पृच्छे पापफलं नु किम् ।
दुर्लभं च तथा चेत्स्यात्सर्वेषां यस्य कस्यचित् ॥१७६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—देवो के देव महेश्वर प्रभु ने पिप्पलाद से ऐसा ही होगा—यह कह देवों के साथ ही उसका अभिनन्दन करके वाक्य कहा था। फिर तो सब देवगण भी आनन्द से युक्त तथा उसके किये हुए भय से निडर होकर भगवान् शिव की सन्निधि मे ही सब उस दधीचि के पुत्र से इस वचन को बोले थे ॥१६८-१६९॥ देवों ने कहा—देवो का जो अभीप्सित मनोरथ था वह आपने बिना किसी संशय के पूर्ण कर दिया है और आपने देवो के देव भगवान् शिव की त्रैलोक्य मण्डनी आज्ञा का भी पूर्णतया पालन किया है ॥१७०॥ हे द्विज ! आपने जो कुछ भी याचना की है वह भी पहिले दूसरो के ही हितार्थ की है अपने लिये आपने कुछ भी नही माँगा है। अतएव आप कुछ अन्य भी बोलिए हम लोग आपको प्रदान करेंगे ॥१७१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन सुरो के संघो ने उस उत्तम द्विज से बारम्बार यही बात कही थी। तब तो उस पिप्पलाद ने दोनो हाथो को जोडकर पहिले भगवान् शम्भु तथा सुरो को एव जगदम्बा उमा देवी को और पिप्पलो को प्रणाम करके यह वचन कहा था ॥१७२॥ पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने माता-पिता के दर्शन करने की कामना रखता हूँ वे सदा मेरे शब्द गोचर होवें। वे प्राणी इस जगत् मे परम धन्य एव महान् भाग्यशाली हैं जो सर्वदा अपने माता-पिता के वश मे ही स्थित रहा करते हैं ॥१७३॥ जो नित्य ही माता-पिता की शुश्रूषा मे तत्पर रहते हैं और उन चरणो की आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते हैं। इन्द्रियाँ-शरीर-कुल-शक्ति-धी-वपु को प्राप्त कर माता-पिता के कृत्य मे स्वयं कृतकृत्य होना ही चाहिए। पशुओ को और पक्षियों को भी माता का दर्शन सुलभ होता है किन्तु मुझे वह भी दुर्लभ हो गया था। मैं यही पूछना चाहता हू कि कौन से मेरे पाप का यह फल उदय हुआ था। यदि यह दुर्लभ ही होता है तो सभी मे जिस किसी को ही होना चाहिए ॥१७४-१७६॥

नोपपद्येत सुलभ मत्तो नान्योऽस्ति पापकृत् ।
तयोर्दर्शनमात्र च यदि प्राप्स्ये सुरोत्तमाः ॥१७७

मनोवाक्कायकर्मभ्यः फलं प्राप्तं भविष्यति ।
पितरौ ये न पश्यन्ति समुत्पन्ना न (स्तु) संसृतौ ॥
तेषां महापातकानां कः संख्यां कर्तुमीश्वरः ॥१७८
तद्वचनं श्रुत्वा मिथः समन्त्र्य ते सुराः ।
विमानवरमारूढौ पितरौ दंपती शुभौ ॥१७९
तव सद्दर्शनाकाङ्क्षौ द्रक्ष्यसे चाद्य निश्चितम् ।
विषाद लोभमोहौ च त्यक्त्वा चित्त शम नय ॥१८०
पश्य पश्येति तं प्राहुर्दधीच सुरसत्तमाः ।
विमानवरमारूढौ स्वर्गिणौ स्वर्णभूषणौ ॥१८१
तव सद्दर्शनाकाङ्क्षौ पितरौ दंपती शुभौ ।
वीज्यमानौ सुरस्त्रीभिः स्तूयमानौ च किन्नरैः ॥१८२

यदि यह सुलभ नहीं होता है तो मुझसे अन्य कोई भी पापों के करने वाला नहीं है । सुरोत्तमो ! यदि मैं उनका केवल दर्शन भी प्राप्त कर लूँगा तो मेरे मन-वाणी और कर्मों का फल प्राप्त हो जायगा । जो अपने माता पिता का दर्शन नहीं करते हैं वे तो मानो इस संसार में उत्पन्न ही नहीं हुए हैं । वे वास्तव में महान् पातकी हैं और उनके महापातकों की संख्या करने की किसमें शक्ति है अर्थात् कोई उनको गिन कर नहीं बता सकता है ॥१७७-१७८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस ऋषि के इन वचनों का श्रवण कर उन सब सुरों ने परस्पर में मन्त्रणा की थी । वे शुभ दम्पती तुम्हारे माता-पिता परम श्रेष्ठ विमान में समारूढ़ हुए हैं और तुम्हारे दर्शन की आकाङ्क्षा वाले हैं । आज तुम निश्चित रूप से उनको देख लोगे । विषाद तथा लोभ एवं मोह का त्याग करके अपने चित्त को शान्त करो ॥१७९-१८०॥ फिर तुरन्त ही उन देव गणों ने दधीचि के पुत्र से कहा था—देखो, देखो वे परमाधिक श्रेष्ठ विमान पर चढ़े हुए, स्वर्ग में रहने वाले, स्वर्ण के भूषणों को धारण करने वाले तथा तुम्हारे देखने की आकाङ्क्षा रखने वाले शुभ दम्पती तुम्हारे माता-पिता हैं जो देवाङ्गनाओं के द्वारा पंखे झलने वाले हैं और किन्नरों के द्वारा स्तुति किये जा रहे हैं ॥१८१-१८२॥

दृष्ट्वा स मातापितरौ ननाम शिवसंनिधौ ।
हर्षवाष्पाश्रुनयनौ स कथंचिदुवाच तौ ॥१८३
तारयन्त्येव पितरावन्ये पुत्राः कुलोद्वहाः ।
अहं तु मातुरुदरे केवल भेदकारणम् ॥
एवभूतोऽपि तौ मोहात्पश्येयमतिदुर्मतिः ॥१८४
तावालोक्य ततो दुःखाद्वक्तुं नैव शशाक सः ।
देवाश्च मातापितरौ पिप्पलादमथाब्रुवन् ॥१८५
धन्यस्त्वं पुत्र लोकेषु यस्य कीर्तिर्गता दिवम् ।
साक्षात्कृतस्त्वया त्र्यक्षो देवाश्चाऽऽश्वासितास्त्वया ॥
त्वया पुत्रेण सल्लोका न क्षीयन्ते कदाचन ॥१८६
पुष्पवृष्टिस्तदा स्वर्गात्पपात तस्य मूर्धनि ।
जयशब्दः सुरैरुक्तः प्रादुर्भूतो महामुने ॥१८७
आशिषं तु सुते दत्त्वा दधीचिः सह भार्यया ।
शंभुं गङ्गां सुरांस्तत्वा पुत्र वाक्यमथाब्रवीत् ॥१८८
प्राप्य भार्यां शिवे भक्तिं कुरु गङ्गां च सेवय ।
पुत्रानुत्पाद्य विधिवद्यज्ञानिष्ट्वा सदक्षिणान् ॥
कृतकृत्यस्ततो वत्स आक्रमस्व चिरं दिवम् ॥१८९

भगवान् शिवजी की सन्निधि मे उस ऋषि ने अपने माता-पिता का दर्शन करके उनको उसने प्रणाम किया था। वे दोनो ही हर्ष के अश्रुओ से भरे हुए लोचनों वाले थे। उस समय में वह ऋषि बड़ी ही कठिनता से उनसे बोला था ॥१८३॥ उस ऋषि पुत्र ने कहा—अपने कुल के उद्वहन करने वाले अन्य पुत्र अपने माता पिता को तार दिया करते हैं। मैं तो ऐसा अभागा हूं कि माता के उदर मे रह कर केवल उसके भेदन करने का ही कारण बन गया था। इस प्रकार का होते हुए भी अत्यन्त दुर्मति वाला मैं उन दोनों को मोह मे देख रहा हूं ॥१८४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन दोनों माता-पिता का दर्शन करके उसे इतना अधिक दुःख हुआ था कि वह और कुछ बोलने मे समर्थ न हो सका था। इसके अनन्तर देवगण और उसके माता-पिता ने उस पिप्पलाद से कहा था

॥१८५॥ देवों ने कहा—हे पुत्र ! तुम परम धन्य हो, लोकों में जिसकी कीर्त्ति विद्यमान है और दिवलोक में भी पहुंच गयी है । हे पुत्र ! तुमने भगवान् त्रिलोचन प्रभु का साक्षात्कार किया है और समस्त देवों को भी समाश्वासन दिया है । हे पुत्र ! तेरे द्वारा सत्लोक कर्मों भी क्षीण नहीं किये जारहे हैं अर्थात् तुने अच्छे लोक सदा अक्षय ही होंगे ॥१८६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी समय में उसके मस्तक पर स्वर्ग से पुष्पों की वर्षा हुई थी । हे महामुने ! सुरों के द्वारा कथित जयकार का शब्द प्रादुर्भूत हो गया था अर्थात् देवों ने जय-जयकार किया था ॥१८७॥ भार्या के साथ ही दधीचि ने अपने पुत्र को आशीर्वाद किया था और भगवान् शम्भु-गङ्गा और सुरों की सेवा में प्रणाम करके फिर अपने पुत्र से कहा था ॥१८८॥ दधीचि ने कहा—हे वत्स ! तुम भार्या को प्राप्त करो तथा शिव की भक्ति करो और गङ्गा का सेवन करो । गार्हस्थ्य आश्रम की विधि के साथ पुत्रों को उत्पन्न करने तथा दक्षिणा के सहित यज्ञों का यजन करके तुम फिर कृतकृत्य हो जाओगे । इसके पश्चात् चिरकाल तक स्वर्ग में सक्रमण करना ॥१८९॥

करोम्येवमिति प्राह दधीचिं पिप्पलाशनः ।
दधीचिः पुत्रमाश्वास्य भार्यया च पुनः पुनः ॥१९०
अनुज्ञातः सुरगणैः पुनः स दिवामाक्रमत् ।
देवा अप्यूचिरे सर्वे पिप्पलादं ससम्भ्रमाः ॥१९१
कृत्या शमय भद्र ते तदुत्पन्न महानलम् ॥१९२
पिप्पलादस्तु तानाह न शक्तोऽहं निवारणे ।
असत्य नैव वक्ताऽहं यूयं कृत्यां तु ब्रूत ताम् ॥१९३
मां दृष्ट्वा सा महारौद्रा विपरीत करिष्यति ।
तामेव गत्वा विबुधाः प्रोचुस्ते शान्तिकारणम् ॥१९४
अनलं च यथाप्रीति ते उभे नेत्यवोचताम् ।
सर्वेषां भक्षणार्थैव सृष्टा चाहं द्विजन्मना ॥१९५
तथा च मत्प्रसूतोऽग्निरन्यथा तत्कथं भवेत् ।
महाभूतानि पञ्चापि स्थावरं जङ्गमं तथा ॥१९६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में उस पिप्पलाशन ने मैं ऐसा ही करूँगा—यह अपने पिता दधीचि से कहा था। दधीचि मुनि ने अपनी भार्या के सहित अपने पुत्र का बारम्बार समाश्वासन किया और फिर सुरगणों के द्वारा आज्ञा प्राप्त कर दिवलोक में चला गया। फिर उन देवों ने सब ने मिलकर बहुत ही सभ्रम के साथ पिप्पलाद से कहा था ॥१६०-१६१॥ देवों ने कहा—इस कृत्या का अब शमन कर दो—तुम्हारा कल्याण होगा क्योंकि उसके मुख से महान् भयानक अनल उत्पन्न हो गया है ॥१६२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे उन सुरो से पिप्पलाद ने कहा था कि मैं उसका निवारण करने मे समर्थ नही हूँ। मैं कभी असत्य भाषण करने वाला नही हू। आप उस कृत्या से स्वयं पूछिय। मुझको देख कर तो वह महान् रौद्र रूप वाली विपरीत ही कर्म्म करेगी। तब तो देवो ने उसके समीप मे उपस्थित होकर उसकी शान्ति का कारण पूछा था ॥१६३-१६४॥ देवो ने यही कहा था कि जैसे यह अनल शान्त हो और आप प्रसन्न होवें वह बतलाइये, हम ये दोनों का होना चाहते हैं। उस कृत्या ने कहा था कि विप्र के द्वारा मैं सभी के भक्षण करने के लिये समुत्पन्न की गयी हूं ॥१६५॥ अतएव मेरे द्वारा उत्पादित की हुई यह अग्नि अन्यथा कैसे हो सकती है। पांचो महाभूत तथा स्थावर एव जगम इन सब को मेरे मुख में समझना चाहिए ॥१६६॥

सर्वमस्मन्मुखे विद्याद्वक्तव्य नावशिष्यते।
मया समन्त्र्य ते देवाः पुनरूचुरुभावपि ॥१६७

भक्षयेतामुभौ सर्वं यथानुक्रमतस्तथा।
वडवाऽपि सुरानेवमुवाच शृणु नारद ॥१६८
भवतामिच्छया सर्वं भक्ष्यं मे सुरसत्तमाः ॥१६६

वडवा सा नदी जाता गङ्गया संगता मुने।
तद्भवस्तु महानग्निर्य आसीदतिभीषणः ॥
तमाहुरमरा वह्नि भूतानामादितो विदुः ॥२००

आपो ज्येष्ठतमः ज्ञेयास्तथैव प्रथमं भगवान् ।
तत्राप्यपापतिं ज्येष्ठं समुद्र (तिर्यग्भ्रस्तस्यात्व) मशनं कुरु ॥
यथैव तु वय ब्रूमो गच्छ भुङ्क्ष्व यथा सुखम् ॥२०१
अनलस्त्वमरानाह आपस्तन कथं त्वहम् ।
व्रजेय यदि मा तत्र प्रापयन्त्युदकं महत् ॥२०२
भवन्त एव तेऽप्याहुः कथं तेऽग्ने गतिर्भवेत् ।
अग्निरप्याह तान्देवान्कन्या मा गुणशालिनी ॥२०३
हिरण्यकलशे स्थाप्य नयेद्यत्र गतिर्मम ।
तस्य तद्वचन श्रुत्वा कन्यामूचुः सरस्वतीम् ॥२०४

विशेष कुछ कहना अवशिष्ट ही नहीं रह जाता है। तब तो ब्रह्मा-जी ने कहा—मेरे साथ में मन्त्रणा करके उन देवों ने पुनः उन दोनों से कहा। आप अनुक्रम से दोनों सब का भक्षण कर लेवें। हे नारद ! उस समय में वह वडवा भी सुरों से इस भाँति कहने लगी जिसका आप श्रवण करिए॥१९७-१९८॥ वड़वा ने कहा—हे सुरसत्तमो ! आप लोगों की इच्छा से मेरा सब ही भक्ष्य है। श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुने ! वह वडवा नदी हो गयी थी और मङ्गा के साथ सगत हो गयी थी। उससे समुत्पन्न हुआ अग्नि महान् एवं अत्यन्त भीषण था। अमरगणों ने उस वह्नि से कहा था कि भूतों को आदि से जान लो ॥१९९-२००॥ सुरों ने कहा—समस्त भूतों में जल ही सबसे बड़े हैं उसी क्रम से सर्व प्रथम आप उनका ही भक्षण करिए। उन जलों में भी अपांपति समुद्र सबसे ज्येष्ठ है उस समुद्र का भक्षण करें। जिस प्रकार से हम लोग आपको बतलायें उसी रीति से सुख पूर्वक आप भक्षण करें ॥२०१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में उस अनल ने देवों से कहा था कि जल तो वहाँ पर है, मैं वहाँ कैसे गमन करूँ ? आप लोग यदि मुझको उस महान् जल तक प्राप्त करा देवें तो ऐसा हो सकता है। तब तो उन देवों ने भी कहा है कि हे अग्ने ! वहाँ पर आपका गमन कैसे हो सकता है ? तब तो उस अग्नि ने कहा कि यदि कोई गुण शालिनी कन्या मुझको सुवर्ण के कलश में स्थापित करके ले जावे तो मेरी गति वहाँ पर हो सकेगी।

इसे जीवन पर्यन्त दु:ख ही भोगना होगा ॥ ४१ ॥ क्योंकि सुरभि का वचन कभी मिथ्या नही होता, इसलिए जीवन पर्यंत दु:ख भोगेगी, मैं दु:खित चित्त से इसके स्नेहवश ही यहाँ आई हूँ ॥ ४२ ॥

यतोविशेषोनैवास्तिस्वसखीनिजदेहयोः ।
यद्येषाभिमतवीरपतिमाप्नोतिशोभना ॥४३॥
ततस्त्वहंतपःकुर्यानिर्व्यलीकेनचेतसा ।
त्वंतुकोवाविमार्यवासंप्राप्तोत्समहामते ॥४४॥
देवोदैत्योनुगंधर्वःपन्नग.किन्नरोपिवा ।
नह्यत्रमानुषगतिर्नचेदृङ् मानुषीगतिः ॥४५॥
तत्त्वमाख्याहिकोसित्वंयथैवावितथंमया ।
यन्मांपृच्छसिधर्मज्ञे कस्त्वंकिंवासमागतः ॥४६॥
तच्छृणुष्वामलप्रज्ञे कथयाम्यादितस्तव ।
राज्ञःशत्रुजित पुत्र पित्रासंप्रेषित शुभे ॥४७॥
मुनिरक्षणमुद्दिश्यगालवाश्रमागत ।
कुर्वतोममरक्षांचमुनीनांधर्मचारिणाम् ॥४७॥
विघ्नार्थमागतःकोपिशोकरवपुरास्थित ।
मयासविद्धोबाणेनचद्रार्द्धकारवर्चसा ॥४६॥

क्योंकि मैं इसके और अपने देह मे पृथकत्व नही मानती यदि इसे अपनी इच्छानुसार पति मिल जाय ॥ ४३ ॥ तो मैं स्वस्थ मन से तप करूँ । हे महामते ! तुम कौन हो ? यहाँ क्यो आये हो ? ॥ ४४ ॥ क्या तुम देवता, दैत्य, गधर्व, नाग या उरग हो ? क्योकि मनुष्य का तो शरीर ही ऐसा नही होता, जिससे वह यहाँ आ सके ॥ ४५ ॥ इसलिए जैसे मैंने अपना सब वृत्तान्त सुनाया है वैसे ही तुम भी अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त सत्य सत्य सुनाओ । कुवलयाश्व बोले—तुमने पूछा है कि तुम कौन हो और यहाँ क्यो आये हो ? ॥ ४६ ॥ यह सब मैं तुम्हे बताता हूँ, सुनो । मैं राजा शत्रुजित् का पुत्र हूँ और अपने पिता की प्रेरणा से ॥ ४७ ॥ मुनियो के रक्षणार्थ गालव मुनि के आश्रम मे रह कर मुनियो की रक्षा करता था ॥ ४८ ॥ उसी समय एक शूकर उनके कर्म मे विघ्न उपस्थित करने को यहाँ आया और मैंने उसे अर्धचन्द्र बाण से

बाँध दिया ॥ ४६ ॥

अपक्रांतोतिवेगेनतमस्यनुगतोहयी ।
पपातसहमागर्त्तं सक्रोथेश्वश्चमामकः ॥५०॥
सोहमश्व समारूढस्तमस्येक-परिभ्रमन् ।
प्रकाशमामादिनवान्दृष्टाचभवतीमया ॥५१॥
पृष्टाचनचमेकिंचिद्ब्रुवत्यादत्तमुत्तरम् ।
त्वाचैवानुप्रविष्टोहमिमप्रासादमुत्तमम् ॥५२॥
इत्येतत्कथितसत्यनदेवोहनदानवः ।
न गोनगधर्वं किन्नरोवाशुचिस्मिते ॥५३॥
समस्ता पूज्यपक्षावैदेवाद्याममकुंडले ।
मनुष्योस्मिविशकातेनकर्त्तव्यानकर्हिचित् ॥५४॥
तत प्रहृष्टासाकन्यासखीवदनमुत्तमम् ।
लज्जाजडवीक्षमाणाकिंचिन्नोवाचभामिनी ॥५५॥
ततसखीपुनरप्येनाप्रहृष्टाप्रत्युवाचह ।
यथावत्कथिततेनमुरभ्यावचनानुगम् ॥५६॥

तब वह अत्यन्त वेग से दौड़ा और मैंने भी अश्वारोहण पूर्वक उसका पीछा किया, फिर वह एक विशाल गर्त्त में गिरा और मैं भी उसका पीछा करता हुआ अपने अश्व सहित उसमें गिर गया, परन्तु अपने अश्व पर चढ़ा हुआ चलता रहा और इस प्रकाशमय स्थान में आकर तुम्हें देखा ॥ ५०-५१ ॥ तुमसे पूछने पर तुमने कोई उत्तर नहीं दिया, तब मैं तुम्हारे पीछे-पीछे इस भवन में चला आया ॥ ५२ ॥ यह मैंने सत्य ही कहा है, मैं देव, दानव, पन्नग, गंधर्व अथवा किन्नर में से कोई भी नहीं हूँ ॥ ५३ ॥ मैं मनुष्य हूँ देवता इत्यादि तो सभी मेरे पूज्य हैं, तुम मेरे मनुष्य होने में किसी प्रकार का संदेह मत करो ॥५४॥ पुत्रों ने कहा-हे पिता, तब वह कन्या मदालसा अत्यन्त हर्षित होकर लज्जा से मौन हुई सखी की ओर देखने लगी ॥५५॥ तब सखी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर मदालसा से कहा—हे सखि ! तू सुरभि के वचन में तत्पर है, इन्होंने यथार्थ वृत्तान्त कहा है, फिर वह राजकुमार से बोली ॥ ५६ ॥

वीरसत्यमसंदिग्धंभवताभिहितंवचः ।
नान्यत्रहृदयंह्यस्यादृष्ट्वास्थैर्यंप्रयास्यति ।।५७।।
चद्रमेवधिकाकांतिःसमुपैतिरविप्रभा ।
भूतिर्धन्यंधृतिर्धीरक्षांतिरभ्येतिचोत्तमम् ।।५८।।
त्वयैवविद्धोसदिग्धंसपापोदानवाधमः ।
सुरभिःसागवांमाताकथंमिथ्यावदिष्यति ।।५९।।
तद्धन्येयंसभाग्याचत्वत्संबंधमवेत्यवै ।
कुरुष्ववीरयत्कार्यंविधिनैवसमाहितम् ।।६०।।
परवानहमित्याहराजपुत्रःसदापितुः ।
सचापितत्क्षणात्प्राप्तोनिगृहीतसमित्कुशः ।
मदालसायाःसंप्रीत्याकुंडलागौरवेणच ।।६२।।
प्रज्वाल्यपावकंहुत्वामंत्रवित्कृतमगलाम् ।
वैवाहिकेविधौकन्यांप्रतिपाद्याययथागतम् ।।६३।।

कुण्डला ने कहा—हे वीर ! आपने जो कुछ कहा है यह सत्य न होता तो यह आपके दर्शन मात्र से ही अपने हृदय मे स्थिरता को क्यो प्राप्त होती ? ।। ५७ ।। क्योकि चन्द्रमा को ही अधिक कान्ति और सूर्य को ही अधिक प्रभा प्राप्त है, ऐश्वर्य पुरुष को धन्य करता है, धृति धीर को और शान्ति श्रेष्ठ पुरुष को ही प्राप्त होती है ।। ५८ ।। इसलिए आपने ही इस दानवाधम को विद्ध किया है, इसमे सदेह नही, गोमाता सुरभि कभी मिथ्या नही बोल सकती ।। ५६ ।। इसलिए आपके साथ सम्बन्ध प्राप्त करके यह सखी सौभाग्यवती और धन्य हुई है, अब आप विधिवत् कर्तव्य का अनुष्ठान करिये ।। ६० ।। पुत्री ने कहा—हे पिता ! राजपुत्र उससे बोले—मै पराधीन हूं, पिता की आज्ञा के बिना इस बाला से विवाह कैसे कर सकता हूं ! इस पर कुण्डला ने कहा है, यह देवकन्या है, आप इसके साथ विवाह कीजिये, तब राजपुत्र ने स्वीकृति दी और विवाह के लिए तत्पर हुए, उस समय मदालसा ने अपने कुल गुरु तुम्बरु का स्मरण किया ।। ६१ ।। तभी तुम्बरु समिध और कुश लेकर वहां आगए ।। ६२ ।। और घृताहुति देकर अग्नि को प्रज्वलित करके विधि पूर्वक मदालसा और राजपुत्र का विवाह सम्पन्न कराया और फिर अपने

स्थान को चले गये ॥ ६३ ॥

जगामतपसेधीमान्स्वमाश्रमपदंततः ।
साचाहृतासखीबालाकृतार्थास्मिवरानने ॥६४॥
सयुक्तामनुनादृष्ट्वात्वामहंरूपशालिनीम् ।
तपस्तप्स्येहमतुलंनिर्व्यलीकेनचेतसा ॥६५॥
तीर्थांबुधौतपापाचभविश्रीनेदृशीयथा ।
तंचाहराजपुत्रंसाप्रश्रयोपनतंवचः ॥६६॥
गन्तुकामानिजसखीस्नेहविक्लवभाषिणी ।
पुंभिरप्यमितप्रज्ञेनोपदेशोभवद्विधे ॥६७॥
दातव्य किमुतस्त्रीभिरतोनोपदिशामिते ।
किन्त्वस्यास्तनुमध्याया.स्नेहाकृष्टेनचेतसा ॥६८॥
त्वयाविश्रभिताचास्मिस्मारयाम्यरिसूदन ।
भर्त्तव्यारक्षितव्याचभार्याहिपतिनासदा ॥६९॥
धर्मार्थकामससिद्धयै भार्याभर्त्तु.सहायिनी ।
याचभार्याचभर्त्ताचपरस्परमनुव्रतौ ॥७०॥

वह अपने आश्रम म तप करने के लिए जब चले गये तब कुण्डला ने मदालसा से कहा—कि अब मैं कृतार्थ हो गई ॥ ६४ ॥ हे रूपवती ! तुझे इनके साथ मिली देखकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई, अब मैं निर्विकार मन से तपस्या करूंगी ॥ ६५ ॥ अब मुझे फिर इस प्रकार न रहना पड़े, इसलिए तीर्थ जल से स्नान कर पाप-रहित होऊंगी, फिर उसने राजकुमार से नम्रता पूर्वक कहा ॥ ६६ ॥ इच्छित स्थान मे जाने को तत्पर अपनी सखी के स्नेह से व्याकुल कुण्डला ने कहा—हे अत्यन्त बुद्धिमान् ! आपके समान पुरुष को ज्ञानी पुरुष भी उपदेश देने मे समर्थ नही है ॥ ६७ ॥ मैं तो स्त्री हूं, आपको उपदेश नही देती, फिर भी मेरा मन अपनी सखी के स्नेह मे आकर्षित है ॥ ६८ ॥ हे शत्रुनाशक ! आप पर विश्वास करती हुई मैं आपको याद दिलाती हूँ कि पति को पत्नी की सदैव रक्षा करनी चाहिये ॥ ६९ ॥ पत्नी भी पति की सहायिका होती है और धर्म, अर्थ तथा काम की सिद्धि के लिए दोनों ही परस्पर वशीभूत रहते हैं ॥ ७० ॥

तदाधर्मार्थकामानांत्रयाणामपिसंगतम् ।
कथंभार्यामृतेधर्ममर्थंवापुरुषःप्रभो ॥७१॥
प्राप्नोतिकाममर्थंवातस्यांत्रितयमाहितम् ।
तथैवभर्त्तारमृतेभार्याधर्मादिसाधने ॥७२॥
नसमर्थात्रिवर्गोयंदांपत्यंसमुपाश्रिताः ।
देवतापितृभृत्यानामतिथीनांचपूजनम् ॥७३॥
नपुंभिःशक्यतेकर्त्तुं मृतेभार्यानृपात्मज ।
प्राप्तोपिचार्थोमनुजैरानीतोपिनिजंगृहम् ॥७४॥
क्षयमेतिविनाभार्याकुभार्यासंग्रहेपिवा ।
कामस्तुतस्यनैवास्तिप्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते ॥७५॥
दंपत्योःसहधर्मेणत्रयीधर्ममवाप्नुयात् ।
पुत्राणांयोनिरन्यावैनान्यतोभार्यंयाविना ।
पितृन्पुत्रैस्तथैवान्नसाधनैरतिथीनपि ॥७६॥
पूजाभिरमरांस्तद्वत्साध्वींभार्यानरोवति ।
स्त्रियाश्चापिविनाभर्त्राधर्मकामार्थसंततिः॥७७॥

तभी धर्म, अर्थ और काम का सिद्धि सभव है, यह तीनो धर्म पत्नी मे समाहित होने से, जैसे पत्नी के बिना कभी धर्म, अर्थ ॥ ७१ ॥ प्राप्त करने मे समर्थ नही होता वैसे ही धर्मादि के साधन मे पति के बिना पत्नी भी ॥ ७२ ॥ समर्थ नही होती, क्योकि धर्म, अर्थ और काम पति-पत्नी दोनो के ही आश्रित हैं। हे राजकुमार ! देवता, पितर भृत्य और अतिथियों का सत्कार ॥ ७३ ॥ न हो तो धर्माचरण नही हो सकता तथा पुरुष द्वारा अनायास उपार्जित धन भी गृह मे लाने पर ॥ ७४ ॥ यदि पत्नी न हो अथवा कुभार्या हो तो वह सब नष्ट हो जाता है, पत्नी के बिना, न होने वाला यह कार्य तो प्रत्यक्ष ही है ॥ ७५ ॥ यदि स्त्री-पुरुष दोनो ही समान धर्म को पालें तभी, अर्थ, काम मे समर्थ होते हैं, साध्वी पत्नी को प्राप्त करके पुत्रोत्पादन द्वारा पितरो को तथा अन्नादि से अतिथियो को ॥ ७६ ॥ और पूजन द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने मे समर्थ होते हैं, स्वामी के बिना नारी के भी धर्म और काम का भले प्रकार विस्तार नही हो सकता ॥ ७७ ॥

नैवतस्मात्त्रिवर्गोयंदांपत्यमधिगच्छति।
एतन्मयोक्तं युवयोर्गमिष्यामियथेप्सितम् ॥७८॥
वर्धंत्वमनयासार्द्धं धनपुत्रसुखायुषा।
इत्युक्त्वासपरिष्वज्यस्वसखीतनमस्यच ॥७९॥
जगामदिव्ययागत्यायथाभिप्रेतमात्मनः।
सोपिशत्रुजितःपुत्रस्तामारोप्यतुरंगमम् ॥८०॥
निर्गंतुकाम पातालाद्विज्ञातोदनुसंभवैः।
ततस्तं सहसोत्कुष्टं ह्रियतेह्रियतेत्विति ॥८१॥
कन्यारत्नयदानीत दिवःपातालकेतुना।
तत परिघनिस्त्रिंशगदाशूलशरायुधम् ॥८२॥
दानवानांबलप्राप्तसहपातालकेतुना।
तिष्ठतिष्ठेतिजल्पतस्तेतदादानवोत्तमाः ॥८३॥
शरवर्षैस्तथाशूलैर्ववपुर्नृपनंदनम्।
सतुशत्रुजित पुत्रस्ततस्तान्प्रतिवीर्यवान् ॥८४॥

यह त्रिवर्ग दोनो मे ही आश्रित है, यही मेरा कहना है, अब मुझे आज्ञा दीजिये, जिससे मै अपने इच्छित स्थान मे चली जाऊ ॥ ७८ ॥ मेरा आशीर्वाद है कि आप इससे युक्त होकर धन, पुत्र, आयु और सुख मे वृद्धि को प्राप्त हो नागपुत्री ने कहा-इस प्रकार कहती हुई कुण्डला अपनी सखी को आलिंगन और राजकुमार को नमस्कार करके ॥ ७९ ॥ दिव्यगति से अपने इच्छित स्थान को गई और ऋतुध्वज ने मदालसा को अश्व पर चढा कर ॥ ८० ॥ जैसे ही पाताल से निकलना चाहा, वैसे ही दानवो को उसका पता लग गया कि 'स्वर्ग से जिस कन्या को पाताल केतु लाया था, उसे हरण किये ले जा रहा है, यह कहते हुए दानव चीत्कार करने लगे और पातालकेतु के साथ मिल कर दानव सेना परिघ, खड्ग, गदा, शूल, बाण इत्यादि ॥ ८१-८२ ॥ आयुधो को ग्रहण कर ठहरो, ठहरो, कहते हुए ॥ ८३ ॥ राजकुमार पर शस्त्र-वर्षा करने लगे ॥ ८४ ॥

चिच्छेदशरजालेनप्रहसन्निवलीलया।
क्षणेनपातालतलमसिशक्त्यृष्टिसायकैः ॥८५॥

छिन्नैःसंछन्नमत्यर्थंमृतुध्वजशरोत्करैः ।
ततोऽस्त्रंत्वाष्ट्रमादायचिक्षेपप्रतिदानवान् ॥८६॥
तेनतेदानवाःसर्वेसहपातालकेतुना ।
ज्वालामालातितीव्रेणस्फुटदस्थिचयास्तदा ॥८७॥
निर्दग्धाःकापिलतेजःसमासाद्येवसागराः ।
ततःसराजपुत्रोऽश्वीनिहत्यासुरसत्तमान् ॥८८॥
स्त्रीरत्नेनसमंतेनसमागच्छत्पितुःपुरम् ।
प्रणिपत्यचतत्सर्वंसतुपित्रेन्यवेदयत् ॥८९॥
पातालगमनंचैवकुंडलायाश्चदर्शनम् ।
तद्वन्मदालसाप्राप्तिदानवैश्चापिसगरम् ॥९०॥
वधश्चतेपामस्त्रेणपुनरागमनंतथा ।
इतिश्रुत्वापितातस्यचरितंचात्रचेतसः ॥९१॥
प्रीतिमानभवत्त्नंनपरिष्वज्याहचात्मजम् ।
सत्पुत्रेणत्वयापुत्रतारितोहंमहात्मना ॥९२॥

सब शत्रुजित् के अत्यन्त बली पुत्र ने अपने बाणो से उनके सब शस्त्र बात की बात मे काट डाले और उसके बाणो से कट-कट कर गिरे शस्त्रास्त्रो से पातालतल ॥ ८५ ॥ भर गया, तब राजकुमार ने बड़े-बड़े बाण चलाये और फिर त्वाष्ट्र अस्त्र लेकर दानवो पर छोड़ा ॥ ८६ ॥ उस ज्वाल-माला वाले भयकर अस्त्र ने सभी दानवो के सहित पातालकेतु की हड्डियाँ तोड़ डाली ॥ ८७ ॥ और वह तुरन्त ही, जैसे कपिल मुनि के तेज से सगरपुत्र भस्म हुए थे, उसी प्रकार भस्म हो गये, इस प्रकार दैत्य कुल का नाश करके वह राजकुमार स्त्री के सहित अश्व पर चढ कर अपने नगर मे आये और अपने पिता को प्रणाम पूर्वक सम्पूर्ण वार्ता सुनायी ॥ ८८-८९ ॥ पाताल मे जाना, कुण्डला का देखना, मदालसा का प्राप्त होना, दैत्यो के साथ युद्ध ॥ ९० ॥ अस्त्र से उनका सहार और पुनः वापिस लौटना आदि सब वृत्तान्त कहा, जिसे सुन कर वह सुन्दर चित्त वाले राजा ॥ ९१ ॥ अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुत्र को आलिगन पूर्वक बोले कि हे सत्पुत्र ! तूने मुझे तार दिया ॥ ९२ ॥

भयेभ्योमुनयस्त्रातायेनसद्धर्मचारिणा ।
मत्पूर्वैःख्यातिमानीतंमयाविस्तारितंपुनः ॥६३॥
पराक्रमवतावीरत्वयातद्बहुलीकृतम् ।
यदुपात्तयशःपित्राधनंवीर्यमथापिवा ॥६४॥
तन्नहापयतेयस्तुसनरोमध्यमःस्मृतः ।
तद्वीर्यादधिकंयस्तुपुनरन्यत्स्वशक्तितः ॥६५॥
निष्पादयतितंप्राज्ञावदतिनरमुत्तमम् ।
य.पित्रासमुपात्तानिधनवीर्ययशांसिवै ॥६६॥
न्यूनतानयतिप्राज्ञास्तमाहु.पुरुषाधमम् ।
तन्मयाब्राह्मणत्राणकृतमासीद्यथात्वया ॥६७॥
पातालगमनयच्चयच्चासुरविनाशनम् ।
एतदभ्यधिकवत्सतेनत्वपुरुषोत्तमः ॥६८॥

जिसके द्वारा मुनियो की रक्षा हुई उसी सत्पात्र द्वारा मैं भी तर गया, मेरे पूर्व पुरुष जिससे विख्यात हुए और मैंने भी जिसका विस्तार किया ॥ ६३ ॥ वह यश तुम्हारे द्वारा और भी वृद्धि को प्राप्त हुआ, जो यश, बल अथवा धन पिता के द्वारा उपार्जित है ॥ ६४ ॥ उसकी रक्षा करने वाला पुरुष मध्यम है परन्तु जो उसे अपनी शक्ति से बढाता है ॥ ६५ ॥ उसे पण्डित-जन उत्तम पुरुष कहते हैं। तथा जो पिता द्वारा उपार्जित यश, बल धन को ॥ ६६ ॥ नष्ट करता है, अधम कहा जाता है, पहिले मैंने तुम्हारे समान ब्राह्मणो का रक्षण मात्र किया था ॥ ६७ ॥ तुमने पाताल मे जाकर असुरो का नाश और ब्राह्मणो की रक्षा की, इस प्रकार मुझसे अधिक कार्य किया हैं, इसलिए तुम उत्तम पुरुष हो ॥ ६८ ॥

तद्धन्योस्म्यथवानत्वमहमेवगुणाधिक' ।
त्वांपुनमीदृशप्राप्यश्लाघ्यपुण्यवतामपि ॥६९॥
नसत्पुत्रकृतांप्रीतिमन्य.प्राप्नोतिमानव. ।
पुत्रेणनातिशयितोय प्रज्ञादानविक्रमै. ॥१००॥
धिक्तस्यजन्मय.पित्रालोकेविज्ञायतेनरः ।
यत्पुत्रात्ख्यातिमभ्येतितस्यजन्मसजन्मनः ॥१०१॥

तब तो देवों ने उसका वचन सुन कर कन्या सरस्वती से प्रार्थना की थी ॥२०२–२०४॥

नयैनमनलं शीघ्रं शिरसा वरुणालयम् ॥२०५
सरस्वती सुरानाह नैका शक्ता च धारणे ।
युक्ता चतसृभिः शीघ्रं वहेयं वरुणालयम् ॥२०६
सरस्वत्या वचः श्रुत्वा गङ्गां च यमुनां तथा ।
नर्मदां तपतीं चैव सुराः प्रोचुः पृथक्पृथक् ॥२०७
ताभिः समन्वितोवाह हिरण्यकलशेऽनलम् ।
संस्थाप्य शिरसाऽऽधार्य ता जग्मुर्वरुणालयम् ॥२०८
संस्थाप्य यत्र देवेशः सोमनाथो जगत्पतिः ।
अध्यास्ते विबुधैः सार्धं प्रभासे शशिभूषणः ॥२०९
प्रापयामासुरनलं पञ्चनद्यः सरस्वति ।
अध्यास्ते च महानग्निः पिबन्वारि शनैः शनैः ॥२१०

देवों ने कहा—हे सरस्वति ! इस अनल को अति शीघ्र शिर पर रख कर समुद्र में ले जाओ ॥२०५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—सरस्वती देवी ने कहा था कि मैं अकेली उसके धारण करने में समर्थ नहीं हूँ। मैं चार अन्य कन्याएं हों तो मैं शीघ्र इसका वहन कर समुद्र में पहुँचा दूँगी ॥२०६॥ सरस्वती के इस वचन को सुन कर देवों ने अलग-अलग गङ्गा-यमुना-नर्मदा और तपती से यही प्रार्थना की थी ॥२०७॥ उन चारों से समन्विता होकर उस सरस्वती ने एक सुवर्ण के कलश में उस अनल को संस्थापित करके शिर पर धारण किया था और वे सब वरुणालय (सागर) में चली गयी थी ॥२०८॥ उसको भली-भाँति स्थापित करके वे चली थी और जहाँ पर जगत् के पति देवेश्वर सोमनाथ शशि का भूषण धारण किये हुए प्रभास में देवों के साथ विराजमान थे वह सरस्वती और अन्य चारो के साथ पाँचो नदियों ने उस अनल को वहाँ पर पहुँचा दिया था। वह महान् अग्नि शनैः शनैः उस जल का पान करता हुआ वहाँ पर स्थित हो गया था ॥२०९-२१०॥

आपृच्छ्य पिप्पलादं तु सुराः स्वं सदनं ययुः ।
पिप्पलाः कालपर्याये स्वर्गं जग्मुस्साश्रमम् ॥२११
पादपानां पदं विप्रः पिप्पलादः प्रतापवान् ।
सेनाधिपत्ये संस्थाप्य पूजयामास शङ्करम् ॥२१२
दधीचिसूनुर्मुनिरुग्रतेजा,
अवाप्य भार्यां गौतमस्यात्मजां च ।
पुत्रानथावाप्य श्रियं यशश्च,
सुहृज्जनैः स्वर्गमवाप धीरः ॥२१३
ततः प्रभृति तत्तीर्थं पिप्पलेश्वरमुच्यते ।
सर्वक्रतुफलं पुण्यं स्मरणादघनाशनम् ॥२१४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—फिर पिप्पलाद मुनि से पूछ कर वे सब सुरगण अपने सदन को गये थे। काल का पर्याय प्राप्त होने पर पिप्पल भी उन आश्रम स्वर्ग को प्राप्त हो गये ॥२११॥ प्रताप वाला पिप्पलाद विप्र ने पादपों के स्थान पर संस्थापित करके भगवान् शङ्कर की पूजा की थी ॥२१२॥ उग्र तेज वाले मुनि दधीचि के पुत्र ने गौतम ऋषि की पुत्री को अपनी भार्या प्राप्त किया। उसके गर्भ से पुत्रों को प्राप्त कर अपना यश तथा श्री का लाभ करके सुहृज्जनों के सहित उस धीर ने अन्त में स्वर्ग का निवास प्राप्त किया था ॥२१३॥ तभी से लेकर वह तीर्थ पिप्पलेश्वर कहा जाता है। यहा पर सब क्रतुओं के करने का पुण्य-फल होता है और वह तीर्थ समस्त अघों का विनाश कर देने वाला है ॥२१४॥

—※—